प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

पहली बार १९५१

मूल्य
अजिल्द साढ़े चार रुपये
सजिल्द पाँच रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक गांधी-साहित्यका सातवां भाग है। इसमें गांधीजीकी उन रचनाओंका संग्रह किया गया है, जिनमें उन्होंने अपने समयके बडे-से-बडे नेतासे लेकर सामान्य जन-सेवक तककी सेवाओंका अत्यंत मार्मिक रूपमें स्मरण किया है। अपने बहुतसे सम्माननीय नेताओंके नामों और कार्योंसे हम सब परिचित हैं, लेकिन इसी दुनियामें ऐसे भी लोग हैं, जो चुपचाप अपने सेवा-कार्यमें संलग्न रहते हैं और जिनके नामका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। गांधीजीने ऐसे दर्जनों मूक सेवकोंको इस संग्रहके लेखोंमें वाणी प्रदान की है। जहां लोकमान्य तिलक, गोखले, मोतीलाल नेहरू आदि सुविख्यात नेताओंको उन्होंने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है, वहां निरक्षर वालीअम्मा, मोतीलाल दरजी, केलप्पन आदि दर्जनों लोकसेवकोंकी महान सेवाओंको भी बडे गर्व और गौरवके साथ याद किया है। इस प्रकार उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि जिन्हें छोटा मानकर प्राय उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा जाता है, वे वस्तुत छोटे नहीं हैं और उनकी सेवाओंका भी उतना ही मूल्य है, जितना किसी भी महान नेताकी सेवाका। इस दृष्टिसे यह संग्रह अद्वितीय है।

पुस्तकका संकलन और संपादन हिन्दीके सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकरने किया है। उनकी सावधानी और प्रयत्नके बावजूद यदि कुछ संगत सामग्री छूट गई हो अथवा कहीं कोई चूक रह गई हो तो पाठक कृपया उसकी सूचना हमें दे दें, जिससे अगले संस्करणमें उसका सुधार किया जा सके।

—मंत्री

संकेत-निर्देश

हि० न० हि० न० जी०	=	हिंदी नवजीवन
प्रा० प्र०	=	प्रार्थना प्रवचन
द० अ० स०	=	दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास
ह० से०	=	हरिजन सेवक
का० क०	=	बापूकी करावास-कहानी
म० डा०	=	महादेवभाईकी डायरी
य० इ०	=	यग इडिया
आ० आ० क०	=	आत्म-कथा
य० म०	=	यरवदा मदिरसे
दी० श्री०	=	दीनवधु श्रीएडूज
इ० ओ०	=	इडियन ओपीनियन
ह०	=	हरिजन

(इनके अतिरिक्त जिन अन्य साधनोसे सामग्री इकट्ठी की गई है, उनका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है।)

आमुख

प्रसिद्ध गायक श्रीदिलीपकुमार रायसे वातचीत करते हुए सन् १९३४ में गाधीजीने कहा था—"जीवन समस्त कलाओसे श्रेष्ठ है। मै तो समझता हू कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवनकी भूमिकाके विना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है। कलाके मूल्यका आवार है जीवनको उन्नत वनाना। जीवन ही कला है।"[1] साहित्य-को इस दृष्टिसे कलासे अलग नही किया जा सकता। जीवनसे इतना अटूट सवध हो जानेके वाद वह नितात सरल और सुगम हो जाता है। कदाचित ऐसे ही साहित्यको दृष्टिमे रखकर गाधीजीने इन्ही श्रीरायसे कहा था—"वही काव्य और वही साहित्य चिरजीवी रहेगा जिसे लोग सुगमतासे पा सकेंगे, जिसे वे आसानीसे पचा सकेगे।" ऐसे साहित्यका सृजन वही कर सकता है जिसने साहित्यके विपयसे साक्षात्कार कर लिया है अर्थात् जो उसे जीता है। इसीको गावीजीकी भापामे यो कह सकते है कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही साहित्यिक है। इस दृष्टिसे वे एक ऊचे साहित्यिक थे। निस्सदेह वे एक साहित्यिकके नाते आगे नही आये और न उन्होने कभी कवि, कथाकार या आलोचक होनेका दावा ही किया, परतु फिर भी जहा तक जीवनी-साहित्य, आत्मकथा, शव्द-चित्र और सस्मरण आदिका सवध है उनकी पूजी सहज ही उन्हे प्रथम श्रेणीके लेखकोमें ला वैठाती है।

उनकी आत्मकथा (अथवा सत्यके प्रयोग) एक अपूर्व ग्रथ है। वह सभी दृष्टियोंसे इस क्षेत्रमें स्थापित सभी परपराओको खड-खड करनेवाली क्रातिकारी पुस्तक है। उनके घोर-से-घोर विरोधी भी उसकी महानता-को मुक्त कठसे स्वीकार करते है।

---

[1]हिन्दी नवजीवन, १० फरवरी १९२४

वस्तुत गाधीजीने सच्चे अर्थोमें 'आत्मकथा' लिखी है। जीवनमें यदि कुछ गोपनीय रह जाता है तो आत्मकथा अधूरी है। सत्य और अहिंसाके परीक्षण करनेवाला वैज्ञानिक अधूरी आत्मकथा नही लिख सकता। जिस प्रकार उन्होने अपना विश्लेषण करते समय सत्यको नही छोडा है उसी तरह दूसरोके वारेमे लिखते समय उन्होने अहिंसाको अपना आधार बनाया है। इसलिए उनके साहित्यमें जहा उनकी पारदर्शिनी दृष्टिका चमत्कार है वहा वह मानवके सहज सौंदर्य सहानुभूतिसे भी आप्लावित है। जव कभी उन्होने किसीके वारेमें लिखनेके लिए कलम उठाई है अपनी सरल, सुवोध और सुगठित भाषामे उस वर्ण्य व्यक्तिका वडा ही सहानुभूतिपूर्ण चित्र उतार कर रख दिया है।

वे कभी लिखनेके लिए ही किसीका जीवनवृत्त या सस्मरण लिखने वैठे हो, यह तो उनके लिए सभव नही था, परतु अपने वहुधधी सार्वजनिक जीवनमे उन्हे असख्य छोटे और वडे व्यक्तियोके सपर्कमें आना पडा था। केवल भारत ही नही, दक्षिण अफ्रीकामे भी अनेकानेक देशी और विदेशी व्यक्तियोसे उनका सवध रहा था। वहुतोसे वह सवध अति प्रगाढ और आत्मीयतासे छलकता हुआ था। वहुतोके साथ उन्होने अपने सघर्षमय जीवनके अनेक वर्ष विताए थे। कुछके साथ वे कुछ ही दिन रहे थे। उनमे अनेक उनसे वडे थे, जिनसे उन्होने वहुत-कुछ सीखा था। वहुतसे उनसे प्रेरणा लेते थे और उन्हे अपना आराध्यदेव मानते थे। वहुतसे उनके विरोधी भी थे, जिनसे उन्हे टक्कर लेनी पडती थी। ऐसे भी लोग थे जिनसे उनका कोई विशेष सवध तो नही था, पर किन्ही विशेष कारणोसे गाधीजीको उन व्यक्तियोमे रुचि थी। इन सव व्यक्तियोमे जाति, लिंग, वर्ण या वर्गका कोई भेद नही था। उनमे राजनीतिके धुरधर पडित और साधारण स्वय-सेवक, धर्माचार्य और श्रद्धालु भक्त, सम्राट और सेवक, पूजीपति और मजदूर, विद्रोही और प्रतिक्रियावादी सभी थे। सभीके वारेमें उन्होने समान भाव और समान रूपसे लिखा है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है लिखनेके ये अवसर कभी पूर्व योजनाके अनुसार नही आये। उस वहुवधी व्यस्त जीवनमे न जाने कव किस पर लिखना पड जाए, यह कोई नही जानता था। फिर भी ऐसे अवसर वहुत आते थे और साधारणतया उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है

१—गावीजी अपने सहयोगियो, समाजके मूक सेवको या किसी रूपमें प्रख्यात व्यक्तियोकी मृत्युपर समवेदना और श्रद्धाजलिके रूपमें लिखा करते थे।

२—जव उनके सहकर्मियो और सहयोगियोपर आक्षेप होते थे तव उनका निराकरण और समावान करनेके लिए उन्हे लिखना पडता था।

३—राष्ट्रीय महासभाके सभापति पदके लिए चुने जानेवाले व्यक्तिके वारेमे चुनावसे पूर्व या पश्चात् वे कभी-कभी लिखते थे।

४—अपने आदोलनोमें भाग लेनेवालो और उनके विरोधियोके विषयमें उन आदोलनोके दौरानमें वे लिखते थे।

५—'आत्मकथा' और 'दक्षिण अफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' आदि पुस्तकोमें तत्सवधी व्यक्तियोका वर्णन आया है।

६—अनेक व्यक्तियोंके जन्म-दिन या जयती आदिके अवसरपर पत्रोको सदेश और शुभकामनाके रूपमे उन्होने लिखा है।

७—कभी-कभी विशुद्ध सपादकीय कर्तव्यको निवाहनेके लिए लिखना पडता था।

८—निजी पत्रोमें व्यक्तियोकी चर्चा आ जाती थी।

यदि उनके साहित्यका काल-क्रमसे अध्ययन किया जाय तो एक वात ज्ञात होगी कि शुरूमें वे व्यक्तियोंके वारेमें अधिक लिखते थे, परतु जैसे-जैसे समय वीतता गया यह लेखन कम होता गया। जवसे उन्होने 'हरिजन' पत्रोका प्रकाशन किया तवसे तो हरिजन सेवकोको छोड कर और किसीके वारेमें वे उन पत्रोमें नही लिखते थे। इन पत्रोको छोडकर पुस्तकादि लिखनेका समय अव उनके पास नही रहा था।

फिर भी इस सबधमे गाधीजीके एक गुणकी बात विशेष उल्लेखनीय है। वे प्रत्येक सपर्कमे आनेवाले व्यक्तिसे, चाहे वह छोटा हो या बडा, विरोधी हो या सहयोगी, अधिक-से-अधिक आत्मीयता स्थापित करनेकी चेष्टा करते थे। वे उसकी मानव-सुलभ भावनाओको छू कर उससे बाते करते थे। सबसे पहले वे मानव थे और दूसरोको भी मानव समझते थे। और यह सब था अहिंसाके कारण। इस दृष्टिसे उनके सस्मरण अध्ययन की वस्तु है।

प्रस्तुत सग्रह 'मेरे समकालीन' मे गाधीजी द्वारा लिखे गये इसी प्रकारके सस्मरण—शब्द-चित्र और लेख—सकलित किये गए हैं। यह सकलन इस दृष्टिसे नई चीज है। अबतक गाधीजीके लेखो और भाषणो-के अनेकानेक सग्रह विभिन्न भाषाओमे प्रकाशित हुए हैं। परतु उन सबका विषय गाधीजीके विचारो और मान्यताओसे सबध रखता है। जिन असख्य व्यक्तियोके सपर्कमें वे आए उनके बारेमें गाधीजीके क्या विचार थे, यह जाननेकी अभीतक किसीने चेष्टा नही की। इस सकलन द्वारा उसी अभावको दूर करनेका प्रयत्न किया गया है।

जैसे वे सरल और सशक्त भाषा लिखनेमे लासानी थे वैसे ही वे शब्द-चित्र खीचनेमें भी बहुत कुशल थे। एक तो अपने जीवनके प्रति निर्दिष्ट वैज्ञानिक दृष्टिकोण (सत्य)के कारण, दूसरे विभिन्न विचार और व्यवहारके इतने अधिक व्यक्तियोके सपर्क मे आनेके तथा मानवता (अहिंसा) में अपनी आस्थाके कारण उनकी परख बडी सही और खरी हो गई थी, और जब दृष्टि पारदर्शी हो जाती है तो वर्णन स्वत ही सजीव और मार्मिक हो जाता है।

सन् १९२९ मे प० जवाहरलाल नेहरूके लिए उन्होने जो कुछ लिखा था वह शब्दोमे एक अपूर्व चित्र है—"बहादुरीमें कोई उनसे बढ नही सकता और देशप्रेममे उनसे आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वह जल्दबाज और अधीर है। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहा उनमें एक वीर योद्धाकी तेजी और अधीरता है वहा एक राज-

नीतिज्ञका विवेक भी है । . वह स्फटिक मणिकी भाति पवित्र है, उनकी सत्यशीलता सदेहसे परे है । वह अहिंसक और अनिंदनीय योद्धा है। राष्ट्र उनके हाथमें सुरक्षित है।"

दक्षिण अफ्रीकाके श्री थम्बी नायडूका चित्र देखिये . "उनकी बुद्धि भी वडी तीव्र थी। नवीन प्रश्नोको वे वडी फुर्तीके साथ समझ लेते थे। उनकी हाजिर-जवावी आश्चर्यजनक थी। वे भारत कभी नही आये थे, फिर भी उसपर उनका अगाव प्रेम था। स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमें भरा हुआ था। उनकी दृढता चेहरेपर ही चित्रित थी। उनका शरीर वडा मजवूत और कसा हुआ था। मेहनतसे कभी थकते ही न थे। कुर्सी पर वैठकर नेतापन करना हो तो उस पदकी भी शोभा वढा दे, पर साथ ही हरकारेका काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीतिसे वे कर सकते थे। सिर पर वोझा उठाकर वाजारसे निकलनेमे थम्बी नायडू जरा भी न शरमाते थे। मेहनतके समय न रात देखते, न दिन। कौमके लिए अपने सर्वस्व की आहुति देनेके लिए हर किसीके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे।" (पृष्ठ ३२९)

पर इन शब्द-चित्रोंसे कोई यह न समझ ले कि गाधीजी विशेषणोका ही प्रयोग करना जानते थे। वैसे वे जव विशेषणोका प्रयोग करते थे तो दिल खोलकर करते थे। कुमारी श्लेजीन, नारणदास गाधी, मगनलाल गाधी, महादेव देसाई आदिके रेखा-चित्र इस वातके प्रमाण है। परतु किसी भी व्यक्तिकी दुर्वलता उनसे छिपी नही रहती थी और अवसर आनेपर वे उसी स्पष्टतासे उसे प्रकट कर देते थे, जिस प्रकार उसके गुणोपर प्रकाश डालते थे। सत्यका पुजारी व्यक्तित्वका अधूरा चित्रण कर ही नही सकता। ऊपर जिन थम्वी नायडूका शब्द-चित्र दिया गया है, उन्हीके वारेमे उसी चित्रमें गाधीजीने आगे लिखा है—"अगर थबी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता तो आज वह वीर पुरुप ट्रान्सवालमें काछलियाकी अनुपस्थितिमें आसानीसे कौमका

नेतृत्व ग्रहण कर सकता था। ट्रान्सवालके युद्धके अंत तक उनके क्रोधका कोई विपरीत परिणाम नही हुआ था, वल्कि तवतक उनके अमूल्य गुण जवाहिरोके समान चमक रहे थे, पर वादमे मैंने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रवल शत्रु सावित हुए और उन्होने उनके गुणोको छिपा दिया ।" (पृष्ठ ३२९)

सरोजिनी नायडूका चित्र उन्होने एक ही वाक्यमे उतार दिया है — "सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढिया कर लेती है, मगर सच्ची सस्कृति-की कीमत देकर।" (पृष्ठ ३३५)

जिन महादेव भाईके लिए वे स्वप्नमे भी अधीर रहते थे, उनके वारेमे भी उन्होने लिखा है

"महादेवकी मैं भाटकी तरह स्तुति करता हू मगर मेरा मन उसकी शिकायत भी करता है।" (पृष्ठ ३१५)

वस्तुत किसी भी व्यक्तिका ठीक-ठीक विश्लेषण करनेमें उन्हे अद्-भुत कुशलता प्राप्त थी। कम-से-कम और नपे-तुले सार्थक शब्दोमे वे वर्ण्य व्यक्तिके अदर और वाहरका चित्र कागजपर उतार कर रख देते थे।

"सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए, लोकमान्य समुद्रकी तरह। गोखले गगाकी तरह। उसमे मैं नहा सकता था। हिमालय पर चढना मुश्किल है, समुद्रमें डूबनेका भय रहता है, पर गगाकी गोदीमें खेल सकते हैं, उसमें डोगीपर चढकर तैर सकते है। (पृष्ठ १७८)

"शिष्य होना परम पवित्र, पर व्यक्तिगत् भाव है। मैंने १८८८ में दादाभाईके चरणोमे अपनेको समर्पित किया, पर मेरे आदर्शसे वे वहुत दूर थे। मै उनके पुत्रके स्थानपर हो सकता था, उनका शागिर्द नही हो सकता था। शिष्यका दर्जा पुत्रसे ऊचा है। शिष्य, पुत्र रूपसे दूसरा जन्म ग्रहण करता है। शिष्य होना अपनी स्वकीय प्रेरणासे समर्पित करना है। जस्टिस रानडेसे मुझे भय लगता था। उनके सामने मुझे वयान करनेका भी साहस नही होता था । वदरुद्दीन तैयवजी पिताकी

तरह प्रतीत हुए। उन्होने मुझे सलाह दी कि फिरोजशाह मेहता और रानडेके परामर्शसे काम करो। सर फिरोजशाह तो हमारे सरक्षक वन गये। इसलिए उनकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य थी। जो कुछ वे कहते, मै चुपचाप स्वीकार करता। वबईके उस शेरने मुझे आज्ञापालनका मर्म सिखाया। उन्होने मुझे अपना शागिद नही वनाया। उन्होने आजमाइश भी नही की।

"जिस समय मै उनसे (लोकमान्य तिलकसे) मिला, वे अपने साथियोसे घिरे वैठे थे। उन्होने मेरी वातें सुनी और कहा—"आपका भाषण सार्वजनिक सभामें होना जरूरी है। पर आप जानते है कि यहा दलवदी है। इससे ऐसा सभापति चाहिए जो किसी दल-विशेषका न हो। यदि इसके लिए आप डाक्टर भाडारकरसे मिले तो उत्तम हो।" मैने उनकी सलाह स्वीकार की और लौट आया। सिवा इसके कि स्नेहमय मिलापके भाव प्रदर्शित करके उन्होने मेरी घवराहट दूर की, नही तो लोकमान्यका उस समय मुझपर कोई अच्छा प्रभाव नही पडा। डाक्टर भाडारकरने मेरा उसी तरह स्वागत किया जिस तरह गुरु शिष्यका करता है। उनके चेहरेसे विद्वत्ता टपक रही थी। मेरे हृदयमें श्रद्धाका ज्वार उमड आया, पर गुरु-भक्तिका भाव फिर भी न भरा। वह हृदय-सिहासन उस समय भी खाली रह गया। मुझे अनेक धीर-वीर मिले, पर राजा-की पदवी तक कोई न पहुच सका।

"पर जिस समय मै श्रीयुत गोखलेसे मिलने गया, वाते एकदम वदल गई। यह मिलन ठीक उसी प्रकार हुआ था जैसे दो चिर विछोही मित्रो या माता और पुत्रका होता है। उनकी नम्र आकृति देखकर मेरा हृदय शात हुआ। दक्षिण अफ्रीका तथा मेरे सवधमे उन्होने जिस तरह पूछताछ की उससे मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया। उनसे विदा होते समय मैने अपने दिलमें कहा—"वस, मेरे मनका आदमी मिल गया।" १९०१ में दूसरी वार दक्षिण अफ्रीकासे लौटा। इस वार

मेरी घनिष्टता और भी प्रगाढ हो गई। उन्होंने अपने हाथमें मेरा हाथ लेकर पूछना शुरू किया—"किस तरह रहते हो? क्या कपडे पहनते हो? भोजन कैसा होता है?" मेरी माता भी इतनी तत्पर नही थी। मेरे और उनके बीचमें कोई अतर नही था। यह चक्षुराग था, अर्थात् प्रथम दर्शनसे ही हृदयमे प्रगाढ प्रेमका अकुर जम गया था। (पृष्ठ २०३)

इस उद्धरणमे गाधीजीने भारतके तत्कालीन नेताओका जो तुलनात्मक चित्रण उपस्थित किया है वह उनकी पारदर्शिनी दृष्टि, उनकी विश्लेषण शक्ति, उनकी तीव्र और प्रखर अनुभूति को स्पष्ट करता है। गोखले-के चित्रमे कितनी आत्मीयता है। वह उनके अपने मानवतासे छलकते हुए हृदयकी झाकी है। श्री जवाहरलाल नेहरूने अपने जीवन-चरितमें गाधीजीके विचारोकी अच्छी खासी आलोचना की है, पर सब कुछ कहकर उन्होने लिखा है—"लेकिन वे अपने भारतको अच्छी तरह जानते है।" इसी तरह और लोगोको भी उनसे मत-भेद हो सकता है, पर वे मानेंगे कि गाधीजी व्यक्तिको पहचानते थे। गोखलेसे उनका बहुत-सी बातोपर मतभेद था, परतु उन्हीके शब्दोमें "पर इससे हम लोगोमें किसी तरहका अतर नही आ सका।" आही नही सकता था, क्योकि अहिंसाका पुजारी प्रेमके अतिरिक्त और कुछ नही कर सकता और प्रेमकी शर्त है मित्रता, दासता नही।

लोकमान्य तिलकसे उनके मतभेदकी बात सब जानते है। उनके जीवनकालमे और मृत्युके बाद गाधीजीने उन मतभेदोको कभी कम करके बताने या भुलानेकी चेष्टा नही की, पर इसी कारण वे लोकमान्यका सही मूल्याकन करनेमें नही झिझके। उनकी मृत्यु पर उन्होने लिखा—

"लोकमान्य बालगगाधर तिलक अब ससारमें नही है। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे ससारसे उठ गए। हम लोगोके समयमे ऐसा दूसरा कोई नही जिसका जनतापर लोकमान्य जैसा प्रभाव हो। हजारो देश-वासियोकी उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह

अपूर्व थी। यह अक्षरश. सत्य है कि वे जनता के आराध्यदेव थे, प्रतिमा थे, उनके वचन हजारो आदमियोके लिए नियम और कानूनसे थे। पुरुषोमें पुरुप-सिह ससारसे उठ गया। केशरीकी घोर गर्जना विलीन हो गई।"

अनुभूतिकी तीव्रता और वास्तविकताका और भी सुदर चित्रण उनके सस्मरणोमे हुआ है। घटनाओ और वार्तालापके द्वारा उन्होने वर्ण्य व्यक्तिकी वाहरी और आतरिक सुदरता-कुरूपताकी रेखाओको इस प्रकार उभार दिया है कि इसके पूर्ण परिपाकके साथ-साथ व्यक्तिका सपूर्ण चित्र हृदयपर पत्थरकी लीक वन जाता है। कस्तूरवा गाधी, वाला-सुदरम्, देशवधुदास, घोपाल वावू तथा वासती देवी आदिके सस्मरण इस दृष्टिसे वहुत ही सुदर वने है

"मै घोपालवावूके पास गया। उन्होने मुझे नीचेसे ऊपर तक देखा। कुछ मुस्कराये और वोले "मेरे पास कारकुनका काम है। करोगे ?"

मैने उत्तर दिया—"जरूर करूगा। अपने वस भर सवकुछ करनेके लिए मै आपके पास आया हू।"

"नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसीको कहते है।"

कुछ स्वयसेवक उनके पास खडे थे। उनकी ओर मुखातिव होकर कहा—"देखते हो, इस नवयुवकने क्या कहा ?"

फिर मेरी ओर देखकर कहा, "तो लो यह चिट्ठियोका ढेर देखते हो न कि सैकडो आदमी मुझसे मिलने आया करते है। अव मै उनसे मिलू या जो लोग फालतू चिट्ठिया लिखा करते है उन्हे उत्तर दू। इनमें वहुतेरी तो फिजूल होगी, पर तुम सवको पढ जाना। जिनकी पहुच लिखना जरूरी है उनकी पहुच लिख देना और जिनके उत्तरके लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना।"

उनके इस विश्वाससे मुझे वडी खुशी हुई। श्री घोपाल मुझे पह-चानते न थे। . मेरा इतिहास जाननेके वाद तो कारकुनका काम देनेमे उन्हे जरा शर्म मालूम हुई, पर मैने उन्हे निश्चित कर दिया—"कहा मै

और कहा आप ! यह काम सौंपकर मुझपर तो आपने एहसान ही किया है, क्योंकि मुझे आगे चलकर काग्रेसमें काम करना है ।"

घोषालबाबू बोले, "सच पूछो तो यही सच्ची मनोवृत्ति है, परतु आजकलके नवयुवक ऐसा नही मानते । पर मै तो काग्रेसको उसके जन्मसे जानता हू । उसकी स्थापना करनेमे मि० ह्यूमके साथ मेरा भी हाथ था ।"

हम दोनोमें खासा सबध हो गया । दोपहरके खानेके समय वह मुझे साथ रखते । घोषालबाबूके बटन भी 'बेरा' लगाता । यह देखकर 'बेरा' का काम खुद मैंने लिया । मुझे वह अच्छा लगता । बडे-बूढोकी ओर मेरा बडा आदर रहता था । जब वह मेरे मनोभावोसे परिचित हो गये तब अपना निजी सेवाका सारा काम मुझे करने देते थे । बटन लगवाते हुए मुह पिचकाकर मुझसे कहते—"देखो न, काग्रेसके सेवकको बटन लगाने तक की फुरसत नही मिलती, क्योकि उस समय भी वे काममे लगे रहते है ।" इस भोलेपनपर मुझे मनमे हँसी तो आई, परतु ऐसी सेवाके लिए मनमें अरुचि बिलकुल न हुई ।"

बासती देवीका देशबन्धुकी मृत्युके बाद, जो चित्र गाधीजीने खीचा है वह बहुत ही मानवीय, बहुत ही करुण और बहुत ही यथार्थ है

"वैधव्यके बाद पहली मुलाकात उनके दामादके घर हुई । उनके आस-पास बहुतेरी बहने बैठी थी । पूर्वाश्रममे तो जब मैं उनके कमरेमें जाता तो खुद वही सामने आती और मुझे बुलाती । वैधव्यमे मुझे क्या बुलाती । पुतलीकी तरह स्तम्भित बैठी अनेक बहनोमेसे मुझे उन्हे पहचानना था । एक मिनिट तक तो मैं खोजता ही रहा । मागमे सिंदूर, ललाटपर कुकुम मुहमे पान, हाथमें चूडिया और साडी पर लैस, हँस-मुख चेहरा इनमेंसे एक भी चिह्न मैं न देखू तो वासन्ती देवीको किस तरह पहचानू ? जहा मैंने अनुमान किया था कि वे होगी वहा जाकर बैठ गया और गौरसे मुख-मुद्रा देखी । देखना असह्य हो गया । छातीको पत्थर बनाकर आश्वासन देना तो दूर ही रहा । उनके मुखपर सदा शोभित हास्य आज कहा था ?

मैंने उन्हे सात्वना देने, रिझाने और वातचीत करानेकी अनेक कोशिशें की। वहुत समयके वाद मुझे कुछ सफलता मिली। देवी जरा हँसी। मुझे हिम्मत हुई और मै वोला, "आप रो नही सकती। आप रोओगी तो सव लोग रोवेगे। मोना (वडी लडकी) को वड़ी मुश्किलसे चुपकी रखा है। देवी (छोटी लडकी) की हालत तो आप जानती ही है। सुजाता (पुत्रवधू) फूट-फूटकर रोती थी, सो वडे प्रयाससे शात हुई है। आप दया रखियेगा। आपसे अव वहुत काम लेना है।"

"वीरागनाने दृढतापूर्वक जवाव दिया—"मै नही रोऊगी। मुझे रोना आता ही नही।"

"मै इसका मर्म समझा, मुझे सतोप हुआ। रोनेसे दु खका भार हल्का हो जाता है। इस विधवा वहनको तो भार हल्का नही करना था, उठाना था। फिर रोती कैसे ! अव मै कैसे कह सकता हू—"लो चलो, हम भाई-वहन पेटभर रो ले और दु ख कम कर लें।"

× × ×

"वासती देवीने अवतक किसी के देखते, आसूकी एक वूद तक नही गिराई है। फिर भी उनके चेहरे पर तेज तो आ ही नही रहा है। उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है कि मानो भारी बीमारीसे उठी हो। यह हालत देखकर मैंने उनसे निवेदन किया कि थोडा समय वाहर निकलकर हवा खाने चलिए। मेरे साथ मोटरमे तो वैठी, पर वोलने क्यो लगी। मैंने कितनी ही वाते चलाई—वे सुनती रही, पर खुद उसमें वरायनाम शरीक हुई। हवा खोरीकी तो, पर पछताई। सारी रात नीद न आई। "जो वात मेरे पतिको अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनीने की। यह क्या शोक है।" ऐसे विचारोमे रात हो गई।

× × ×

"वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खौलते हुए तेलके कडाहमें भटकता था और मुझ जैसे दूर रहकर देखनेवाले

उसके दु ख की कल्पना करके कापते थे । सती स्त्रियो, अपने दु खको तुम सभालकर रखना । वह दु ख नही, सुख है । तुम्हारा नाम लेकर वहुतेरे पार उतर गए है और उतरेगे । वासती देवीकी जय हो !" (पृष्ठ ५५७)

भावनाकी अतिरजनाने इस करुण चित्रको कितना सशक्त वना दिया है । लेकिन जहा उन्होने अपने युगके महापुरुषोपर लिखा, वहा लुटावन, फकीरी और चार निडर युवक जैसे अनेक साधारण व्यक्तियोको भी नही छोडा है । ये कुछ वानगीके चित्र है । पुस्तक ऐसे चित्रोसे भरी है । ये चित्र किसी उद्घोषित साहित्यिकके द्वारा नही लिखे गए, वल्कि एक ऐसे मानव द्वारा लिखे गये है जिसका समस्त जीवन 'जीनेकी कला'के, सत्यके प्रयोग करनेमे वीता था, जिसने जीना सीखते-सीखते जिलाना (अहिंसाको) सीख लिया था, जो सवसे पहले और सवसे पीछे मात्र मनुष्य था और ऐसा मनुष्य ही मनुष्यको नही पहचानेगा तो कौन पहचानेगा ।

चित्र इतने ही नही है । प्रयत्न करनेपर जितनी सामग्री मिल सकी वह इस पुस्तकमे दे दी गई है, पर हम जानते है कि अभी वहुत शेष है । अपने पाठकोसे हमारी प्रार्थना है कि यदि वे ऐसी किसी सामग्रीके वारेमें जानते हो तो हमें सूचना देनेकी कृपा करे। उनके सुझावोका हम कृतज्ञता-पूर्वक स्वागत करेगे ।

इस पुस्तकके सकलनमे जिन मान्य व प्रिय वधुओने मुझे सहायता दी है, उनका मै हृदयसे आभारी हू । डा० युद्धवीर सिंह और जैन पुस्तकालय, दिल्लीका मै विशेष रूपसे आभारी हू । 'नवजीवन'के अनेक अलभ्य अक उनके पास न मिल जाते तो सग्रह एकदम अधूरा रह जाता ।

पो० वॉ० ११६७, दिल्ली
रवीन्द्र-जयती, ९ मई १९५१

—विष्णु प्रभाकर

मेरे समकालीन

: १ :

हकीम अजमल खाँ

हकीम साहब अजमलखाके स्वर्गवाससे देशका एक सबसे सच्चा सेवक उठ गया। हकीम साहबकी विभूतिया अनेक थी। वे महज कामिल हकीम ही नही थे जो गरीबो और धनियो, सबके रोगोकी दवा करता है। वे थे एक दरबारी देशभक्त, यानी अगर्चे कि उनका वक्त राजो-महाराजोंके साथमें बीतता था, मगर थे वे पक्के प्रजावादी। वे बहुत बड़े मुसलमान थे और उतने ही बडे हिन्दुस्तानी थे। हिन्दू और मुसलमान दोनोसे ही वे एक-सा प्रेम करते थे। बदलेमें हिन्दू और मुसलमान दोनो ही एक समान उनसे मुहब्बत रखते थे, उनकी इज्जत करते थे। हिन्दू मुसलमान एकतापर वे जान देते थे। हमारे झगडोके कारण उनके अन्तिम दिन कुछ दु खजनक हो गए थे, मगर अपने देश और देश-बन्धुओमे उनका विश्वास कभी नष्ट नहीं हुआ। उनका विचार था कि आखिर दोनो सम्प्रदायोको मेल करना ही पडेगा। यह अटल विश्वास लेकर उन्होंने एकताके लिए प्रयत्न करना कभी नही छोडा। हालाकि उन्हें सोचनेमें कुछ समय लगा, लेकिन अन्तमें वे असहयोग आन्दोलनमें कूद ही पडे, अपनी प्रियतम और सबसे बड़ी कृति तिब्बी कॉलेजको खतरेमें डालते वे झिझके नही। इस कॉलेजसे उनका इतना प्रबल अनुराग था, जिसका अन्दाजा सिर्फ वे ही लगा सकते है जो हकीमजीको भलीभांति जानते थे।

हकीमजीके स्वर्गवाससे मैने न सिर्फ एक बुद्धिमान और दृढ साथी ही खोया है, वल्कि एक ऐसा मित्र खोया है जिसपर मैं आडे अवसरोपर भरोसा कर सकता था। हिन्दू-मुसलिम एकताके वारेमें वे हमेशा ही मेरे रहवर थे। उनकी निर्णय-शक्ति, गभीरता और मनुष्य-प्रकृतिका ज्ञान ऐसे थे कि वे वहुत करके सही फैसला ही किया करते थे। ऐसा आदमी कभी मरता नही है। यद्यपि उनका शरीर अव नही रहा, मगर उनकी भावना तो हमारे साथ वरावर रहेगी और वह अव भी हमें अपना कर्तव्य पूरा करने-को वुला रही है। जवतक हम सच्ची हिन्दू-मुसलिम एकता पैदा नही कर लेते, उनकी याद वनाये रखनेके लिए हमारा वनाया कोई स्मारक पूरा हुआ नही कहा जा सकता। परमात्मा ऐसा करें कि जो काम हम उनके जीतेजी नही कर सके, वह उनकी मौतसे करना सीखें।

हकीमजी कोरे स्वप्नदृष्टा ही नही थे। उन्हे विश्वास था कि मेरा स्वप्न एक दिन पूरा होगा ही। जिस तरह तिव्वी कॉलेजके द्वारा उनका देशी चिकित्साका स्वप्न फला, उसी तरह अपना राजनैतिक स्वप्न भी उन्होने जामिया मिलियाके जरिए पूरा करनेकी कोशिश की। जवकि जामिया मरणासन्न हो रही थी, उस समय हकीम साहवने प्राय अकेले ही उसे अलीगढसे दिल्ली लानेका सारा भार उठाया। मगर जामियाको हटानेसे खर्च भी वढा। तवसे वे अपनेको जामियाकी आर्थिक स्थिरताके लिए खास तौरपर जिम्मेवार मानने लगे थे। उसके लिए धन जमा करनेमे सवसे मुख्य मनुष्य वे ही थे, चाहे वे अपने ही पाससे दे या अपने दोस्तोसे चन्दे दिलवाएँ। इस समय जो स्मारक देश तुरत ही वना सकता है, और जिसका वनाया जाना अनिवार्य है, वह है जामिया मिलियाकी आर्थिक स्थितिको पक्की कर देना। (हि० न०, ५ १ २८)

• • • • •

एक जमाना था, शायद सन् १५की सालमें, जव मैं दिल्ली आया था, हकीम साहवसे मिला और डाक्टर असारीसे। मुझसे कहा गया कि

हमारे दिल्लीके बादशाह अंग्रेज नहीं है, बल्कि ये हकीम साहब है। डाक्टर अंसारी तो बडे बुजुर्ग थे, बहुत बडे सर्जन थे, वैद्य थे। वे भी हकीम साहबको जानते थे, उनके लिए उनके दिलमें बहुत कद्र थी। हकीम साहब भी मुसलमान थे, लेकिन वे तो बहुत बडे विद्वान् थे, हकीम थे। यूनानी हकीम थे, लेकिन आयुर्वेदका उन्होने कुछ अभ्यास किया था। उनके यहा हजारो मुसलमान आते थे और हजारो गरीब हिंदू भी आते थे। साहूकार, धनिक मुसलमान और हिंदू भी आते थे। एक दिनका एक हजार रुपया उनको देते थे। जहातक मै हकीम साहबको पहचानता था, उन्हे रुपएकी नही पडी थी, लेकिन सबकी खिदमतकी खातिर उनका पेशा था। वह तो बादशाह-जैसे थे। आखिरमे उनके बाप-दादा तो चीनमे रहते थे, चीनके मुसलमान थे, लेकिन बडे शरीफ थे। जितने हिंदू लोग मेरे पास आए, उनने पूछा कि आपके सरदार यहा कौन है ? श्रद्धानदजी ? श्रद्धानदजी यहा बडा काम करते थे। लेकिन नही, दिल्लीके सरदार तो हकीम साहब थे। क्यो थे ? क्योकि उन्होने हिंदू-मुसलमान सबकी सेवा ही की। यह सन् '१५के सालकी बात मैंने कही। लेकिन बादमे मेरा ताल्लुक उनसे बहुत बढ गया और उनको और पहचाना। (प्रा० प्र०, १३ ६ ४७)

कल हकीम अजमल खा साहबकी वार्षिक तिथि थी। वह हिंदुस्तानके हिंदू, मुसलमान, सिख, क्रिस्टी, पारसी, यहूदी सबके प्रिय थे। वह पक्के मुसलमान थे, मगर वह इस खूबसूरत देशके रहनेवाले सब लोगोंकी समान सेवा करते थे। उनकी मेहनतकी सबसे बढिया यादगार दिल्लीका मशहूर तिब्बी कॉलेज और अस्पताल था। वहापर हर श्रेणीके विद्यार्थी पढते थे और वहा यूनानी, आयुर्वेदिक और पश्चिमी डाक्टरी सब सिखाई जाती थी। साप्रदायिकताके जहरके कारण यह सस्था भी, जिसमें किसी तरह साप्रदायिकताको स्थान न था, बद

हो गई है। मेरी समझमें इसका कारण इतना ही हो सकता है कि इस कालेजको बनानेवाले हकीम साहब मुसलमान थे, फिर वे चाहे कितने ही महान् और भले क्यो न रहे हो, और भले ही उन्होने सबका मान सपादन क्यो न किया हो। उस स्वर्गवासी देशभक्तकी स्मृति अगर हिंदू-मुस्लिम फिसादको दफन नही कर सकती तो कम-से-कम इस कालेजको तो नया जीवन दे ही दे। (प्रा० प्र०, २६ १२ ४७)

: २ :

सोराबजी शापुरजी अडाजनिया

नवीन वस्तीवाला कानून भी सत्याग्रहमें शामिल कर लिया गया। . . इस कानूनमे एक यह भी धारा थी कि ट्रासवालमें आनेवाले नवीन आदमीको यूरोपकी किसी भी एक भाषाका ज्ञान होना जरूरी है। इसलिए कमेटीने किसी ऐसे ही आदमीको ट्रासवालमे लानेको सोचा, जो अग्रेजी जानता हो, पर पहले कभी ट्रासवालमें न रहा हो। कितने ही भारतीय उम्मीदवार खडे हुए, पर कमेटीने उनमेंसे सोरावजी शापुरजी अडाजनियाकी प्रार्थनाको ही बतौर कसौटी (टेस्ट केस)के मान्य किया।

सोरावजी पारसी थे। नामसे ही स्पष्ट है। सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोकी जन-सख्या सौसे ज्यादा नही होगी। पारसियोके विषयमें दक्षिण अफ्रीकामें भी मेरा वही मत था जो मैने भारतवर्षमें प्रकट किया है। ससार भरमें एक लाखसे ज्यादा पारसी नही होगे, परन्तु इतनी छोटी-सी जाति अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर रही है, अपने धर्मपर दृढ है और उदारतामे ससारकी एक भी जाति उसकी बराबरी नही कर सकती। इस जातिकी उच्चताके लिए इतना ही प्रमाण काफी होगा।

अनुभवसे ज्ञात हुआ कि सोरावजी उसमें भी रत्न थे। जब वह लडाईमें शामिल हुए तब मैं उनको वैसे ही मामूली तौरपर जानता था। लडाईमें शामिल होनेके लिए उन्होंने पत्र-व्यवहार किया था और उससे मेरा खयाल भी अच्छा हो गया था। मैं पारसी लोगोंके गुणोंका तो पुजारी हू, परन्तु एक कौमकी हैसियतसे उनमें जो खामिया है उनसे मैं न तो अपरिचित था और न अब ही हू। इसलिए मेरे दिलमें यह सन्देह जरूर मौजूद था कि शायद सोरावजी परीक्षामें उत्तीर्ण नही हो सकेंगे। पर मेरा यह नियम था कि सामनेवाला मनुष्य जब इसके विपरीत बात कर रहा हो तब ऐसे शकपर अधिक ध्यान नही देना चाहिए। इसलिए मैंने कमेटीसे यह सिफारिश की कि सोरावजी अपने पत्रमे जो दृढता जाहिर कर रहे है उसपर हमें विश्वास कर लेना चाहिए। फल यह हुआ कि सोरावजी प्रथम श्रेणीके सत्याग्रही साबित हुए। लम्बी-से-लम्बी कैद भोगनेवाले सत्याग्रहियोमें वह भी एक थे। इतना ही नही, बल्कि उन्होंने तो सत्याग्रहका इतना गहरा अध्ययन कर लिया था कि उसके विषयमें वह जो कुछ भी कहते, सबको सुनना पडता। उनकी सलाहमें हमेशा दृढता, विवेक, उदारता, शान्ति आदि गुण प्रकट होते। विचार कायम करनेमें वह जल्दी तो कदापि नही करते थे और एक बार विचार कायम कर लेनेपर वह कभी उसे बदलते भी नही थे। जितने अशोमे उनमें पारसीपन था, और वह उनमें ठूस-ठूसकर भरा हुआ था, उतना ही भारतीयपन भी था। सकीर्ण जाति-अभिमान जैसी वस्तु तो उनमे किसी दिन भी नही पाई गई। लडाई खतम होनेपर डा० मेहताने अच्छे सत्याग्रहियोमेंसे किसीको इग्लैड भेजकर बैरिस्टर बनानेके लिए एक छात्रवृत्ति दी थी। उसके लिए योग्य छात्र चुननेका काम मुझपर ही रक्खा गया था। दो तीन सुयोग्य भारतीय थे। पर समस्त मित्र-मडलको, दृढता तथा स्थिरतामें सोरावजीके मुकाबलेमें खडा होने योग्य, कोई नही मिला, इसलिए उन्हीको चुना गया। ऐसे एक भारतीयको इग्लैड भेजनेमें मुख्य उद्देश्य यही था कि वह लौटकर

दक्षिण अफ्रीकामे मेरे बाद मेरा स्थान ग्रहण कर जातिकी सेवा कर सके। कौमका आशीर्वाद और सम्मान लेकर सोराबजी इग्लैड पहुचे। बैरिस्टर हुए। गोखलेसे तो उनका परिचय दक्षिण अफ्रीकामें ही हो चुका था। पर इग्लैड जानेपर उनका सबध और भी दृढ हो गया। सोराबजीने उनके मनको हर लिया। गोखलेने उनसे यह आग्रह भी किया कि जब कभी वह भारतमे आवे तब 'भारत-सेवक-समिति'के सभ्य जरूर होवे। विद्यार्थीवर्गमे वह बडे प्रिय हो गए थे। प्रत्येक मनुष्यके दुखमें वह भाग लेते। इग्लैडके न तो आडम्बरकी उनपर जरा भी छाप पडी और न वहाके ऐशो-आरामकी। वह जब इग्लैड गये तब उनकी उम्र ३० सालसे ऊपर थी। उनका अग्रेजीका अध्ययन ऊचे दर्जेका न था। व्याकरण वगैरह सब भूलभाल गये थे। पर मनुष्यके उद्योगके सामने ये कठिनाइया कब खडी रह सकी है ? शुद्ध विद्यार्थी-जीवन व्यतीतकर, सोराबजी परीक्षाओमें उत्तीर्ण होते गये। मेरे जमानेकी बैरिस्टरीकी परीक्षा आजकलकी परीक्षाकी तुलनामें कुछ आसान थी। इसलिए आजकलके बैरिस्टरोको अधिक अभ्यास करना पडता है, पर सोराबजी पीछे नही हटे। इग्लैडमे जब एम्ब्युलैन्स कोरकी स्थापना हुई तब उसका आरभ करनेवालोमे वह भी थे और आखिर तक उसमें रहे। इस दलको भी सत्याग्रह करना पडा था। उसमेंसे कई फिसल गये थे, पर फिर भी जो अटल रहे, उनमें सोराबजी अग्रगण्य थे। यहापर मुझे यह भी कह देना चाहिए कि इस दलको सत्याग्रहमें भी विजय ही मिली थी।

इग्लैडमे बैरिस्टर होकर सोराबजी जोहान्सबर्ग गये। वहापर उन्होने सेवा और वकालत दोनो साथ-ही-साथ शुरू कर दी। दक्षिण अफ्रीकासे मुझे जो पत्र मिले उनमें सोराबजीकी तारीफ सभी करते थे। वह अब भी वैसे ही सादा मिजाज है, जैसे पहले थे, आडम्बर जरा भी नही है। छोटे-से-बडेतक सबसे हिल-मिलकर रहते है। मालूम होता है, परमात्मा जितना दयालु है, उतना ही शायद निठुर भी है। सोराबजीको

तीव्र क्षयने ग्रसा और कौमका नवीन प्रेम सम्पादनकर उसे दुखमे रोती हुई छोड़कर वह चल बसे। इस तरह परमात्माने कौमके दो पुरुष-रत्न छीन लिये—काछलिया' और सोराबजी !

पसन्दगी ही करनी हो तो मै इन दोमेंसे किसे प्रथम पद दू ? पर मै तो इस तरहकी पसन्दगी ही नही कर सकता। दोनो अपने-अपने क्षेत्रमें अप्रतिम थे। काछलिया शुद्ध मुसलमान और उतने ही शुभ भारतीय भी थे, उसी प्रकार सोराबजी भी शुद्ध पारसी और साथ ही उतने ही शुद्ध भारतीय थे।

यही सोराबजी पहलेपहल सरकारको नोटिस देकर केवल 'टेस्ट' अर्थात् कसौटीके लिए ट्रासवाल आये। सरकार इसके लिए जरा भी तैयार नही थी। इसलिए वह एकाएक यही निश्चय नही कर सकी कि सोराबजीके साथ क्या करना चाहिए। सोराबजी तो जाहिरा तौरपर सरहद लाघकर ट्रासवालमें आ धमके। परवाने जाचनेवाले सरकारी अधिकारी उनको जानते थे। सोराबजीने कहा—"मै केवल इसी हेतुसे ट्रासवालमें प्रवेश कर रहा हू कि देखू, सरकार मेरा क्या करती है। यदि आप मेरी अग्रेजीकी परीक्षा लेना चाहें तो सवाल कीजिए। और अगर गिरफ्तार करना हो तो यह खडा हू, गिरफ्तार कर लीजिए।" अधिकारीने कहा, "मुझे यह मालूम है कि आप अग्रेजी जानते है। इसलिए परीक्षा तो कुछ लेना-लिवाना है नही और न आपको गिरफ्तार करनेके लिए मेरे पास कोई हुक्म ही है। इसलिए जहा जाना हो, आप सुखपूर्वक जाइए। यदि आपको गिरफ्तार करना आवश्यक मालूम हुआ तो आप जहा कही जावेंगे, सरकार स्वय आपको गिरफ्तार कर लेगी।"

इस तरह सोराबजी तो अकल्पित रूपसे और अचानक जोहान्सबर्ग तक आ पहुचे। हम सबने उनका बडे हर्षके साथ स्वागत किया। किसीको

'परिचय पृष्ठ ५३ पर देखिए।

यह आशातक नही थी कि सरकार सोरावजीको ट्रासवालके सरहदी स्टेशन वाक्सरस्टसे जरा भी आगे वढने देगी ।

सरकारकी गफलतके कारण कहिए या जान-बूझकर निश्चित की हुई उसकी पहली नीतिके अनुसार कहिए, सोरावजी जोहान्स-बर्ग तक आ पहुचे । इधर न तो स्थानीय अधिकारीको इस विषयमें कुछ खयाल था कि सोरावजीके जैसे मामलेमें क्या करना चाहिए और न ऊपरसे ही उसे कोई सूचना मिली थी । सोराबजीके इस तरह एकाएक जोहान्सबर्ग पहुच जानेसे कौमका उत्साह खूब बढ गया । कितने ही युवक तो यही समझ गये कि सरकार हार गई और शीघ्र ही उसे सुलह भी करनी होगी । पर यह स्वप्न अधिक देरतक न टिका । शीघ्र ही उन्हे इस बातको ठीक विपरीत सिद्ध होते हुए देखना पडा; बल्कि उन्होने तो यह भी देख लिया कि सुलह होनेसे पहले शायद अनेक युवकोको अपना बलिदान देना होगा ।

सोरावजीने अपने पहुचते ही आनेकी खबर वहाके पुलिस सुपरिं-टेंडेंटको देकर लिखा—"नवीन वस्तीवाले कानूनके अनुसार मै अपनेको ट्रासवालमे रहनेका हकदार मानता हू ।" इसका कारण बताते हुए उन्होने अपना अग्रेजी भाषाका ज्ञान लिखाया । यह भी लिखा कि यदि अधिकारी उनकी अग्रेजीकी परीक्षा लेना चाहें तो उसके लिए भी वह तैयार है। इस पत्रका कोई उत्तर न मिला । पर इसके कई दिन वाद उन्हें एक समन मिला । मामला अदालतमें पेश हुआ । न्यायालय भारतीय दर्शकोसे खचाखच भर गया था । मामला शुरू होनेसे पहले, न्यायालयमें आये हुए भारतीयोको वही अहातेमे एकत्रकर उनकी एक सभा की गई, जिसमें सोरावजीने एक जोशीला भाषण दिया । भाषणके अतमें उन्होने यह प्रतिज्ञा की—"पूरी जीत होनेतक जितनी वार जेलमें जाना होगा, मैं जानेको तैयार हू और जितने भी सकट आवेंगे उन सबको झेलनेको तैयार हू ।" अबतक इतना समय गुजर चुका था कि मै सोरावजीको

अच्छी तरह जानने लग गया था। मैंने अपने मनमें यह भी समझ लिया था कि अवश्य ही सोरावजी एक शुद्ध रत्न सिद्ध होगे। मुकदमा शुरू हुआ। मै वकीलकी हैसियतसे खडा हुआ। समनमें कितने ही दोष थे। उन्हें दिखाकर मैंने सोरावजीपरसे समन उठा लेनेके लिए अदालतसे प्रार्थना की। सरकारी वकीलने अपनी दलीलें पेश की, पर अदालतने मेरी दलीलोको स्वीकार कर समन हटा लिया। कौम मारे हर्षके पागल हो गई। सच पूछा जाय तो उसके इस तरह पागल होनेके लिए कारण भी था। दूसरा समन निकालकर फौरन ही सोरावजीपर पुन मुकदमा चलाने की हिम्मत तो सरकारको किम तरह हो सकती थी? और हुआ भी यही। इसलिए सोरावजी सार्वजनिक कामोमें लग गये।

पर यह छुटकारा हमेशाके लिए नही था। कौमने सरकारकी खामोशीका अत देखनेके लिए एक ऐसा नवीन काम कर डाला जिससे उसे अपनी खामोशी अलग रखकर सोरावजीपर फिर मुकदमा चलाना पडा। (द० अ० स० १९२५)

: ३ :

माधव श्रीहरि अणे

ऊर्ध्वं बाहुर्विरोम्येष नैव कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च सधर्म किं न सेव्यते॥

"मै ऊचा हाथ करके पुकारता हू, पर मेरी कोई सुनता नही। धर्म में ही अर्थ और काम समाया हुआ है, ऐसे सरल धर्म का लोग क्यो सेवन नही करते?"

बापूजी अणे पिछले शनिवारको दिल्लीमें कुछ मिनटके लिए मेरे

पास आ गए थे। हम साथ-साथ काम कर रहे हो या देखनेमे विरोधी दिशामे जा रहे हो, बापूजी अणे मेरे प्रति हमेशा प्रेम-भाव रखते है, इसलिए जब कभी उन्हें समय मिलता है, राम-राम कर जाते है, विचारोका विनिमय कर जाते है और कभी-कभी तो उनके पास श्लोकोका जो भडार भरा पडा है उसमेंसे कुछ बानगी भी दे जाते है। दिल्लीमें जब वे मुझसे मिलने आये तब काग्रेसमेसे मेरे एकदम निकल जानेका उन्होने कुछ विरोध-सा किया, मगर दरअसल तो उन्होने मुझे इसपर बधाई ही दी। "काग्रेसको या किसीको भी अब आपको नाराज नही करना चाहिए। आप तो अपने रास्ते जाए। आपने अग्रेजोके प्रति जो लिखा है, वह मैंने देखा है। वे लोग सुननेवाले नही, पर आपको इससे क्या पडी है? आपका काम तो जिसको आप धर्म मानते है, वह सबको सुनानेका ही है। देखो न, अडीके समय काग्रेसने ही आपकी न सुनी। स्वय व्यासकी किसीने नही सुनी तो किसी दूसरेकी तो बात ही क्या है! महाभारत जैसा ग्रथ लिखकर अन्तमे उन्होने एक श्लोक लिखा है, जो 'भारत-सावित्री'के नामसे प्रख्यात है।" यह कहकर ऊपर लिखा श्लोक मुझे सुनाया। यह श्लोक सुनाकर उन्होने मेरी श्रद्धाको दृढ किया और बताया कि मैंने जो मार्ग पसन्द किया है वह दुर्गम है। (ह० से०, १३ ७ ४०)

: ४ :

डॉ० मुख्तार अहमद अंसारी

आगामी वर्षके लिए डा० असारीका महासभाके अध्यक्ष-स्थानके लिए चुनाव होना प्राय निश्चित-सा है। राष्ट्रीय क्षितिजपर इस चुनावमे आपत्ति करनेवाला कोई नही है। डा० असारी जितने अच्छे मुसलमान

है, उतने ही अच्छे भारतीय भी हैं। उनमे धर्मोन्मादकी तो किसीने शका ही नही की है। वर्षोतक वे एक साथ महासभाके सहमत्री रहे है। हाल हीमें एकताके लिए किये गए उनके प्रयत्नोको तो सब कोई जानते हैं और सच्ची बात तो यह है कि अगर बेलगावमे मै, कानपुरमे श्रीमती सरोजिनी नायडू और गोहाटीमे श्रीयुत श्रीनिवास आयगार मार्गमे न आते तो इनमेंसे किसी भी अधिवेशनके अध्यक्ष डा० असारी ही चुने जाते, क्योकि जब ये चुनाव हो रहे थे तब उनका नाम प्रत्येक आदमीकी जबानपर था, परन्तु कुछ खास कारणोसे डा० असारीका हक आगे बढा दिया गया और अब ज्ञात होता है कि विधिने उनके चुनावको इसीलिए आगे ढकेल दिया था कि वे ऐसे मौकेपर आवे जब देशको उनकी सबसे अधिक जरूरत हो। अगर हिन्दू-मुसलिम एकताकी कोई योजना दोनो पक्षोको ग्रहण करने योग्य मालूम हो तो नि सन्देह डा० असारी ही उसे महासभाके द्वारा कर ले जा सकते है। अकेली यही बात (सर्व-सम्मतिसे और हृदयसे एक मुसलमानको अपना अध्यक्ष चुनना) हिन्दुओकी ओरसे इस बातका साफ प्रमाण होगा कि हिन्दू एकताको दिलसे चाहते है, और राष्ट्रीय विचारोवाले मुसलमानोमे डा० असारीकी अपेक्षा साधारणतया मुसलमान जनतामे अधिक आदृत कोई नही है। इसलिए मेरे खयालसे तो यही अच्छा है कि अगले सालके लिए डा० अंसारी ही राष्ट्रीय महासभाके कर्णधार हो, क्योकि केवल किसी योजनाको मजूर कर लेना ही हमारे लिए काफी नही है। दोनो पक्षो द्वारा उसे मजूर करानेकी बनिस्बत उसे कार्यमे परिणत करना शायद कही अधिक जरूरी है। और यदि हम मान लें कि दोनो पक्षोका समाधान करनेवाली एक योजना मजूर हो भी गई तो उसपर अमल करते समय बराबर सावधानीकी आवश्यकता होगी। डा० अंसारी ही ऐसे कामके लिए सबसे अधिक योग्य पुरुष है। इसलिए मै आशा करता हू कि सभी प्रान्त एकमतसे डा० असारीके नामको ही उस सर्वोच्च सम्मानके लिए

सूचित करेगे जो कि राष्ट्रीय महासभाके अधीन है। (हि न , २१ ७ २७)

• •

'हरिजन'में उन सब महान् पुरुषोकी मृत्युपर, जो इस ससारसे सिधार जाते है, साधारणतया मै लिखता नही हू । 'हरिजन' एक विशेष प्रवृत्तिसे सबध रखनेवाला पत्र है । आम तौरपर उन्ही व्यक्तियोके स्वर्गवासके विषयमें इसमें लिखा जाता है जिनका कि हरिजनकार्यके साथ विशेष-रूपसे सम्बन्ध होता है । श्री कमला नेहरूके स्वर्गवासपर मैने 'हरिजन'में जो नही लिखा उसमें मुझे खास तौरपर अपने ऊपर पावदी लगानी पडी । ऐसा करके मैने करीब-करीव अपने साथ जुल्म किया । मगर डॉ० असारीके स्वर्गवासपर मुझे कोई ऐसा आत्मनिग्रह करनेकी जरूरत नहीं । कारण यह है कि वे निस्सदेह हकीम अजमल खाकी तरह ही हिंदू-मुस्लिम-ऐक्यके एक प्रतिरूप थे । कडी-से-कडी परीक्षाके समय भी वे अपने विश्वाससे कभी डिगे नही । वे एक पक्के मुसलमान थे । हजरत मुहम्मद साहबकी जिन लोगोने जरूरतके वक्त मदद की थी, वे उनके वशज थे और उन्हें इस वातका गर्व था । इस्लामके प्रति उनमे जो दृढता थी और उसका उन्हें जो प्रगाढ ज्ञान था उस दृढता और उस ज्ञानने ही उन्हें हिंदू-मुस्लिम-ऐक्यमे विश्वास करनेवाला वना दिया था । अगर यह कहा जाय कि जितने उनके मुसलमान मित्र थे उतने ही हिन्दू मित्र थे तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी । सारे हिन्दुस्तानके काविल-से-काबिल डॉक्टरोमें उनका नाम लिया जाता था । किसी भी कौमका गरीब आदमी उनसे सलाह लेने जाय, उसके लिए बेरोकटोक उनका दरवाजा खुला रहता था । उन्होने राजा-महाराजाओ और अमीर घरानोसे जो कमाया वह अपने जरूरतमद दोस्तोमें दोनो हाथोसे खर्च किया । कोई उनसे कुछ मागने गया तो कभी ऐसा नही हुआ कि वह उनकी जेव खाली किये वगैर लौटा हो । और उन्होने जो दिया उसका कभी हिसाब नही रखा । सैकडो पुरुषो और स्त्रियोके लिए वह एक भारी सहारा थे । मुझे इसमें

तनिक भी सदेह नही कि सचमुच वह अनेक लोगोको रोते-विलखते छोड गये है। उनकी पत्नी बेगम साहिबा तो ज्ञानपरायणा है, यद्यपि वह हमेशा वीमार-सी रहती है। वह इतनी वहादुर है और इस्लामपर उनकी इतनी ऊची श्रद्धा है कि उन्होने अपने प्रिय पतिकी मृत्युपर एक आसू भी नही गिराया। पर जिन अनेक व्यक्तियोकी मै याद करता हू वे ज्ञानी या फिलॉसफर नही है। ईश्वरमें तो उनका विश्वास हवाई है, पर डॉ० असारीमें उनका विश्वास जीवित विश्वास था। इसमें उनका कोई कसूर नही। डॉक्टर साहवकी मित्रताके उनके पास ऐसे अनेक प्रमाण थे कि ईश्वरने जव उन्हें छोड़ दिया तव डॉक्टर साहवने उन्हें सहायता पहुचाई। पर उन्हें यह क्या मालूम था कि डॉक्टर साहव भी उनकी मदद तभीतक कर सके, जवतक कि सिरजनहारने उन्हें ऐसा करने दिया। जिस कामको वह जीवित अवस्थामें पूरा नही कर सके, ईश्वर करे, वह उनकी मृत्युके वाद पूरा हो जाय। (ह० से०, १६ ५ ३६)

: ५ :

ख्वाजा अब्दुल मजीद

ख्वाजा अब्दुलमजीद आज मुझसे मीठा झगडा करनेके लिए आए थे। वह अलीगढ यूनिवर्सिटीके ट्रस्टी है। उनके पास काफी वडी जायदाद है, फिर भी उनका मन तो फकीर है। मै जव वहा जाता था उन्हीके यहा खाना खाता था। उस जमानेमें स्वामी सत्यदेव (परि-व्राजक) मेरे साथ रहते थे। उन्होने हिमालयकी यात्रा की थी। ईश्वरने आज उनकी आखें छीन ली है। उस समय वह वहुत काम करनेवाले थे। उन्होने मुझसे कहा, "मै तेरे साथ भ्रमण करूगा, पर तू

मुसलमानके साथ खाता है, तो मै तो नही खाऊगा ।" यह सुनकर ख्वाजा साहबने कहा, "अगर उनका धर्म ऐसा कहता है तो मै उनके लिए अलग इतजाम करूगा ।" ख्वाजा साहबके दिलमें यह नही आया कि यह स्वामी गाधीके साथ आया है तो क्यो नही मेरे यहा खाया । पुराने दिन फिर वापस आएगे, जब हिंदू-मुसलमानोके दिलोमे एकता थी । ख्वाजा साहब अब भी राष्ट्रीय मुसलमानोके प्रेसीडेट है । दूसरे भी जो राष्ट्रीय भावनावाले मुसलमान लडके उन दिनोमे अलीगढसे निकले थे वे आज जामियाके अच्छे-अच्छे विद्यार्थी और काम करनेवाले बने हुए है । यह सब सहाराके रेगिस्तानमें द्वीप समान है । ख्वाजा साहब ऐसे है कि उनको कोई मार डालेगा तो भी उनके मुहसे बद्दुआ न निकलेगी । ऐसे लोग भले ही थोडे हो, पर हमे तो अपनापन कायम रखना ही चाहिए । (प्रा० प्र०, ६ ४ ४७)

आप लोग देख रहे है कि मेरी दाहिनी ओर ख्वाजा साहब बैठे हुए है । इनके बारेमे एक बार मै आपको पहले सुना चुका हू कि किस प्रकार मै स्वामी सत्यदेवके साथ इनके घर पहुचा था और सत्यदेवजी मुसलमानके हाथका पानीतक नही पी सकते थे । लेकिन तब भी ख्वाजा साहबने बुरा नही माना और उदार स्वागत किया । उस समय ये अलीगढ यूनि-र्वासटीके ट्रस्टी थे । बादमे असहयोग आदोलनमें शरीक होनेके लिए इन्होने ट्रस्टीपन छोड दिया । जहातक मुझे याद है, जब मै वहा गया तब वहा लीगकी मीटिंग हो रही थी । मैने वहा पूछा था कि यहा भी कोई सत्याग्रही मिलेगा या नही ? मौ० मुहम्मदअली और मौ० शौकत-अली तब नजरबद थे और उनके कैद होनेके बारेमे वहा सब मायूस हो रहे थे । तब ख्वाजा साहबने मुझसे कहा था कि आपको ढाई सत्याग्रही मिल सकते है । उनमें एक तो थे ख्वेब कुरेशी, जो काफी प्रख्यात और बहादुर जवान थे । दूसरे साहब भी जो वहा मौजूद थे, पक्के सत्याग्रही थे । एक बार लोगोने उन्हे मारा और उनके हाथमें दो जगह चोटें आईं, तब

भी वे शात रहे और ताकत होनेपर भी मार सहन की, लेकिन जवावमे हमला नही किया । इन दोनोका परिचय करानेके वाद ख्वाजा साहवने कहा था कि आधा सत्याग्रही मै हू । और तवसे ख्वाजा साहव मेरे सगे भाईकी तरह वनकर रहे है । (प्रा० प्र०, १२ ६ ४७)

: ६ :

शेख अब्दुल्ला

(काश्मीरमे) शेख अब्दुल्ला साहव है । 'शेरे-काश्मीर' उसको कहते है, याने वाघ है, सिंह है । वह वडा तगडा है । आपने उसका चित्र तो देखा ही होगा । मै तो उसको पहचानता भी हू । उसकी वेगमको भी पहचानता हू । वेगम तो आज यहा पडी है । एक आदमीसे जितना हो सकता है वह वे कर रहे है । वे कोई लड़नेवाले तो है नही । यो तो काश्मीरमे तगडे मुसलमान पडे है, तगडे हिंदू भी पडे है, राजपूत और सिख भी पडे है । तो उसने तय कर लिया है कि जितना हो सकता है वह करूगा । वह तो मुसलमान है । काश्मीरमें मुसलमानोकी वडी आवादी है । यहासे तो ये लोग वदूक लेकर जाते है, लेकिन वहाके मुसलमान क्या करें और क्या न करें । मानाकि हम तो यहा जाहिल वन गए है, यहा कहो या पाकिस्तानमें कहो, कोई पागलपन वाकी नही रखा है । क्या वहा वे लोग भी जाहिल वन जाय और जिनको काटना है उनको काटें, औरतोको काटें, वच्चोको काटें, इस वुरे हालसे मरे ? यह हाल काश्मीरका हो तो प० जवाहरलाल नेहरू और मन्त्रिमडलके सभी सदस्योने सोचा कि कुछ-न-कुछ तो किया जाय, तो इतने आदमी भेज दिये । वे क्या करे? इतना ही करे कि आखिरी दमतक लडते रहें और लड़ते-लडते मर जाय । जो लडनेवाले

या शस्त्रधारी होते है उनका यही काम होता है कि वे आगे वढते है और हमला करनेवालोको रोक लेते है। वे मर जाते है, लेकिन पीछे तो कभी हटते नही है। इसका क्या परिणाम होगा, वह तो ईश्वर ही जानता है। लेकिन पुरुषार्थ करना तो हमारा काम है। वह हम करे। तो इन १५०० आदमियोने पुरुषार्थ किया। लेकिन कब, जब वे श्रीनगरके बचानेमें सारे-के-सारे कट जाते है। पीछे श्रीनगरके साथ काश्मीर भी बच जायगा। इसके बाद क्या होगा ?

यही होगा न, कि काश्मीर काश्मीरियोका होगा। शेख अब्दुल्ला जो कहते है वह तो मै सपूर्णतया मानता हू कि काश्मीर काश्मीरियोका है, महाराजाका नही। लेकिन महाराजाने इतना तो कर लिया है कि उन्होने शेख अब्दुल्लाको सब कुछ दे दिया और कह दिया है कि तुमको जो कुछ करना है सो करो। काश्मीरको बचाना है तो बचाओ। आखिर महाराजा तो काश्मीरको बचा नही सकते। अगर काश्मीरको कोई बचा सकता है, तो वहा जो मुसलमान है, काश्मीरी पडित है, राजपूत है और सिख है वे ही बचा सकते है। उन सबके साथ शेख अब्दुल्लाकी मोहब्बत है, दोस्ती है। हो सकता है कि शेख अब्दुल्ला काश्मीरका बचाव करते-करते मर जाते है, उनकी जो बेगम है वह मर जाती है, उनकी लडकी भी मर जाती है और आखिरमे काश्मीरमें जितनी औरतें पडी है, वे सब मर जाती है, तो एक भी बूद पानी मेरी आखोमेंसे आनेवाला नही है। अगर लडाई होना ही हमारे नसीब मे है तो लडाई होगी। दोनोको ही लड़ना है या किस-किसके बीच होगी, यह तो भगवान ही जानता है। हमलावरोकी पीठपर अगर पाकिस्तानका बल नही है या पाकिस्तानका उसमें कोई उत्तेजन नही है, तो वे वहा कैसे टिक सकते है, यह मै नही जानता। लेकिन माना कि पाकिस्तानकी उत्तेजना नही है, तो नही होगी। जब काश्मीरके लोग लडते-लडते सब मर जायगे तो काश्मीरमे कौन रह जायगा ? शेख अब्दुल्ला भी चले गए, क्योकि उनका सिहपन, बाघपन तो इसीमें

है कि वे लडते-लडते मर जाते है और मरते दमतक उन्होंने काश्मीरको बचाया, वहाके मुसलमानोको तो बचाया ही, उसके साथ वहाके सिख और हिंदुओको भी। वे ठेठ मुसलमान है। उनकी बीबी भी नमाज पढती है। उन्होने मधुर कठसे मुझे 'ओज अबिल्ला' सुनाया था। मै तो उनके घर पर भी गया हू। वे मानते है कि जो हिंदू और सिख यहा है वे पहले मरें और मुसलमान पीछे, यह हो नही सकता। वहा हिंदू और सिखकी तादाद कम है, तो भी क्या हुआ। अगर शेख अब्दुल्ला ऐसे है और उनका असर मुसलमानोपर है तो हमारा सबका क्षेम है। (प्रा० प्र०, २६.१०.४७)

•

आपने यह भी देख लिया होगा कि शेख अब्दुल्ला साहब भी यहा आ गए है। जितने काश्मीरके लोग है वे तो सब उनको 'शेरे-काश्मीर' कहते है। और वह है भी ऐसा ही। बहुत काम उन्होने कर लिया है और सबसे आला दर्जेका काम तो उन्होने यह किया कि काश्मीरमें जितने हिंदू, मुसलमान और सिख रहते है उन सबको अपने साथ ले लिया है। तादादमें तो मुसलमान बहुत अधिक है और हिंदू और सिख तो मुट्ठीभर है, ऐसा हम कह सकते है, लेकिन तो भी उनको अपने साथ लेकर वे चलते है। वे खुश न रहें ऐसा कोई काम वे नही करते। पीछे हमने देखा कि वे यहा आते हुए जम्मू भी चले गए थे। जम्मूमें हिंदुओकी तरफसे ज्यादतिया हुई है और काफी ज्यादतिया हुई है। उनका पूरा-पूरा बयान तो हमारे अखबारोमें नही आया। महाराजा साहब भी वहा चले गए थे और उनके नए प्रधान मत्री भी। तब वहा दो प्रधान मत्री है क्या, या कुछ और है, मजाकमे मैं उनसे पूछ रहा था। उन्होने कहा कि मुझको भी यह पता नही, मगर इतना तो है कि मै वहाका इतजाम कर रहा हू, दो हो या एक हो। तो वे भी जम्मूमें चले गए थे। जम्मूमें जो कुछ हुआ, वह महाराजाने करवाया या उनके जो नए प्रधान मत्री है उन्होने करवाया, इसका तो मुझको पता नही, लेकिन वहा हुआ और हमारे लिए यह बडी शर्मनाक

वात है कि हम ऐसा करे। शेख अब्दुल्लाने यह सव देखकर भी अपना दिमाग बिगडने नही दिया और जम्मूमें जो हिंदू पडे है उन्होने भी उनका साथ दिया। (प्रा० प्र०, २७.११.४७)

: ७ :

डा० भीमराव अम्बेडकर

डा० अम्वेडकरके प्रति और अछूतोका उद्धार करनेकी उनकी इच्छाके प्रति मेरा सद्भाव और उनकी होशियारीके प्रति आदर होनेके बावजूद मुझे कहना चाहिए कि वे इस मामलेमें वडी भयकर भूल कर रहे है। उन्हें कडवे अनुभवोमेंसे गुजरना पडा है, शायद इस कारण अभी उनकी विवेक-बुद्धि इस चीजको नही समझ पा रही है। ऐसे शब्द कहते हुए मुझे दु ख होता है। मगर यह न कहू तो प्राणोसे प्यारे इन 'अछूतो' के हितोके प्रति मै वफादार नही रह सकता। सारी दुनियाके राज्यके लिए भी मै उनके हकोकी कुरबानी नही करूगा। डा० अम्बेडकर तमाम हिंदुस्तानके 'अछूतो' की तरफसे वोलनेका दावा करते है, मगर उनका यह दावा सही नही है, यह वात मै पूरी जिम्मेदारीके साथ कहता हू। उनके कहनेके अनुसार तो हिंदू-समाजमे फूट पड जायगी। इसे शातिसे देखते रहना मेरे लिए सभव नही है। (१३ ११ ३१ को लदनमे अल्पमत समितिकी आखिरी बैठकमें दिये गए भाषणसे)

•

वातें उसने वहुत मीठी की। उसमें सिद्धात तो नही है, मगर ये सारी वाते सीधे ढगसे की। उसने यह भी कहा कि मुझे राजनैतिक सत्ता चाहिए थी सो मिल गई। अव मुझे तो राष्ट्रीय काम करना है। अव मै आपके

काममें रोडे नही अटकाऊगा । एम० सी० राजा यहासे जाकर आर्डिनेंस बिलका समर्थन करें, वैसा मुझसे नही हो सकता । मैंने तो अपने आदमियोसे कह दिया—अब तुम मुझसे इस काममे बहुत आशा न रखना । अब मुझे अपनी शक्ति देशके काममें खर्च करनी होगी । मगर आप बाहर निकलकर देशका काम शुरू करें तब हो । योही कुछ नही हो जायगा ।

अपने बारेमें कहा—कहा जाता है कि सरकार मुझे रुपया देती है । मेरे जैसा भिखारी कोई नही । तीन सालसे मेरी कुछ भी कमाई नही । यह काम करते हुए मुझे अपना रुपया खर्च करना पडता है और मेरे मुकदमोका काम कम होता है । सार्वजनिक कामके लिए समय भी जाता है और रुपया भी खर्च होता है । थोडे-थोडे मुकदमे मिलते है, उनसे अपना गुजर चलाता हू । आज भी सावतवाडीमें एक मुकदमा है । वहा जाते हुए रास्तेमे उतर गया हू । (म० डा०, भाग २, १७ १० ३२)

इसमें (अम्बेडकरमें) त्यागशक्ति है । कुरबानी करनेकी शक्ति है । यह दावानल तो सुलगेगा ही । हम हिंदू यदि सच्चे होगे तो यरवदा-समझौतेकी तो स्वर्णभस्म बना सकेंगे, नही तो चार करोड अस्पृश्य सारे हिंदुस्तानका भक्षण कर जायगे । (म० डा०, भाग २, ३ १२ ३२)

• •

गत मई मास (सन् १९३६) में लाहौरके 'जात-पात-तोडक मडल' का वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था और डा० अम्बेडकर उसके सभापति चुने गये थे । लेकिन डा० अम्बेडकरने उसके लिए जो भाषण तैयार किया वह स्वागत-समितिको अस्वीकार्य प्रतीत हुआ, जिसके कारण वह अधिवेशन ही नही किया गया । यह बात विचारणीय है कि स्वागत-समितिका अपने चुने हुए सभापतिको इसलिए अस्वीकार कर देना कहातक उचित है कि उनका भाषण उसे आपत्तिजनक मालूम पडा । जाति-प्रथा और हिंदू-शास्त्रोके विषयमें डा० अम्बेडकरके

जो विचार है उन्हे तो समिति पहलेसे ही जानती थी । यह भी उसे मालूम था कि वह हिंदू-धर्म छोडनेका बिलकुल स्पष्ट निर्णय कर चुके है । डा० अम्बेडकरने जैसा भाषण तैयार किया उससे कमकी उनसे उम्मीद ही नही की जा सकती थी । लेकिन समितिने, ऐसा मालूम पडता है, एक ऐसे व्यक्तिके मौलिक विचार सुननेसे जनताको वचित कर दिया, जिसने कि समाजमे अपना एक अद्वितीय स्थान बना लिया है । भविष्यमें वह कोई भी वाना क्यो न धारण करे, मगर डा० अम्बेडकर ऐसे आदमी नही है जो अपनेको भूल जाने देगे ।

डा० अम्बेडकर स्वागत-समितिसे यो हार जानेवाले नही थे । उसके इन्कार कर देनेपर, उसके जवाबमें उन्होने उस भाषणको अपने ही खर्चेसे प्रकाशित किया है । उन्होने आठ आने उसकी कीमत रखी है, लेकिन मैं उनसे कहूगा कि वह उसे घटाकर दो आना या कम-से-कम चार आना कर दे तो ठीक होगा ।

यह भाषण ऐसा है कि कोई सुधारक इसकी उपेक्षा नही कर सकता । रुढिचुस्त लोग भी इसे पढकर लाभ ही उठायेगे । लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि भाषणमे ऐतराज करने लायक कोई बात नही है । इसे तो पढना ही इसलिए चाहिए, क्योकि इसमें गहरे ऐतराजकी गुजाइश है । डा० अम्बेडकर तो हिन्दू-धर्मके लिए मानो एक चुनौती है । हिंदूकी तरह पलने और एक जबरदस्त हिंदू द्वारा शिक्षित किये जानेपर भी, सवर्ण कहे जानेवाले हिंदुओ द्वारा अपने और अपनी जातिवालोके साथ होने-वाले व्यवहारसे वह इतने निराश हो गये है कि वह न केवल उन्हें, बल्कि उस धर्मको भी छोडनेका विचार कर रहे है जो उनकी तथा और सबकी सयुक्त विरासत है । उस धर्मको माननेका दावा करनेवाले एक भागके कारण सारे धर्मसे ही वह निराश हो गये है ।

लेकिन इसमें अचरजकी कोई बात नही है, क्योकि किसी प्रथा या सस्थाका निर्णय कोई उसके प्रतिनिधियोके व्यवहारसे ही तो कर सकता

है। अलावा इसके, डा० अम्बेडकरको मालूम पडा है कि सवर्ण हिंदुओंके विशाल बहुमतने अपने उन सहधर्मियोंके साथ, जिन्हे उन्होंने अस्पृश्य शुमार किया हैं, न केवल निर्दयता या अमानुषिकताका ही व्यवहार किया है, बल्कि अपने व्यवहारका आधार भी अपने शास्त्रोंके आदेशको बनाया हैं और जब उन्होंने शास्त्रोंको देखना शुरू किया तो उन्हें मालूम पडा कि सचमुच उनमें अस्पृश्यता और उसके लगाये जानेवाले तमाम अर्थोंकी काफी गुंजाइश हैं। शास्त्रोंके अध्याय और श्लोक उद्धृत कर-करके उन्होंने तिहेरा दोषारोप किया है (१) उनमें निर्दय व्यवहार करनेका आदेश है, (२) ऐसा व्यवहार करनवालोंके व्यवहारका धृष्टता-पूर्वक समर्थन किया गया है, और (३) परिणामस्वरूप यह अनुसधान किया गया है कि यह समर्थन शास्त्र-विहित है।

ऐसा कोई भी हिंदू, जो अपने धर्मको अपने प्राणोसे अधिक प्यारा समझता हैं, इस दोषारोपकी गभीरताकी उपेक्षा नही कर सकता, और फिर इस तरह निराश होनेवाले अकेले डा० अम्बेडकर ही नही है। वह तो उनमेंके एक ऐसे व्यक्तिमात्र है जो इस बातके प्रतिपादनमें कोई समझौता नही करना चाहते और ऐसे लोगोमे वे सबसे योग्य है। निश्चय ही इन लोगोमें वह अत्यत जिद्दी स्वभावके है। ईश्वरकी कृपा समझो जो बडे नेताओंमे ऐसे विचारके वही अकेले है और अभी भी वह एक बहुत छोटे अल्पमतके ही प्रतिनिधि हैं। मगर जो कुछ वह कहते है, कम या ज्यादा जोशके साथ वही बाते दलित जातियोंके और नेता भी कहते है। फर्क सिर्फ इतना है कि दूसरे—जैसे, रावबहादुर एम० सी० राजा और दीवान-बहादुर श्रीनिवासन्—हिन्दू-धर्म छोडनेकी धमकी नही दते, पर उसीमें इतनी गुंजाइश देखते हैं कि जिससे हरिजनोंके विशाल जन-समूहको जो शर्मनाक कष्ट भोगना पड रहा है उसकी क्षति-पूर्ति हो जायगी।

पर उनके अनेक नेता हिंदू-धर्मको नही छोडते, इसी बातमे हम डॉ० अम्बेडकरके कथनकी उपेक्षा नही कर सकते। सवर्णोंको अपने विश्वास

और आचरणमें सुधार करना ही पडेगा। इसके अलावा, सवर्णोंमें जो लोग अपने ज्ञान और अनुभवके आधारपर शास्त्रोंकी प्रामाणिक व्याख्या कर सकें उन्हें शास्त्रोंके यथार्थ आशयका भी स्पष्टीकरण करना होगा। डॉ० अम्बेडकरके दोषारोपसे जो प्रश्न उठते है, वे ये है

(१) शास्त्र क्या हैं ?

(२) आज जो-कुछ छपा हुआ मिलता है वह सभी क्या शास्त्रोंका अभिन्न भाग है, या उनके किसी भागको अप्रामाणिक क्षेपक मानकर छोड देना चाहिए ?

(३) इस तरह काट-छाटकर जिस अशको हम स्वीकार करें वह अस्पृश्यता, जाति-प्रथा, दर्जेकी समानता, सहभोज और अतर्जातीय विवाहो-के सबधमे क्या कहता है ? इन सब प्रश्नोकी अपने निबधमें डॉ० अम्बेडकरने योग्यतापूर्वक छानबीन की है। (ह० से०, ११.७.३६)

•

अम्बेडकर साहबसे तो दूसरी आशा ही नही थी। वह मेरा हमेशा विरोधी रहा है। वह मुझे मार भी डाले तो मुझे अफसोस न होगा। (का० क०, २० ६ ४२)

: ८ :

बी अम्मा

यह मानना मुश्किल है कि बी अम्माका देहात हो गया है। बी अम्माकी उस राजसी मूर्त्तिको या सार्वजनिक सभाओमे उनकी बुलद आवाजको कौन नही जानता। बुढापा होते हुए भी उनमें एक नवयुवककी

शक्ति थी। खिलाफत और स्वराज्यके लिए उन्होने अथक यात्राए की। इस्लामकी कट्टर अनुयायिनी होते हुए भी उन्होने देख लिया था कि इस्लामका कार्य, जहातक मनुष्यके वस की बात है, भारतकी आजादीपर आधारित है। इसी निश्चयके साथ उन्होने यह भी महसूस कर लिया था कि हिन्दुस्तानकी आजादी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और खादीके विना असम्भव है। इसलिए वे अविराम एकताका प्रचार करती थी। यह उनके लिए एक अटल सिद्धांत हो गया था। उन्होने अपने तमाम विदेशी और मिलके कपडोका परित्याग कर दिया था और खादी इस्तेमाल करती थी। मौलाना मुहम्मदअली मुझसे कहते है कि वी अम्माने उन्हें यह हुक्म दे रक्खा था कि मेरे जनाजेपर सिवा खादीके और कुछ न होना चाहिए। जव-जव मुझे उनके विछौनेके नजदीक जानेका सौभाग्य प्राप्त होता तव-तव वे स्वराज्य और एकताकी वातें पूछती। उनके वाद ही प्राय वे खुदा-तालासे दुआ करती—"या खुदा, हिंदुओ और मुसलमानोको ऐसी अक्ल वख्श कि जिससे ये एकताकी जरूरतको समझें और रहम करके स्वराज्य देखनेके लिए मुझे जिंदा रहने दें।" इस वहादुर और भद्र आत्माकी याद-गारको वनाए रखनेकी सवसे अच्छी रीति यही है कि हम सर्व-सामान्य कार्योके प्रति उनके उत्साह और उमगका अनुकरण करे। हिंदू धर्म भी विना स्वराज्यके उतना ही सकटमें है जितना कि इस्लाम। परमात्मा करें कि हिंदुओ और मुसलमानोको इस प्रारभिक वातकी कदर करनेकी वी अम्मा जैसी वुद्धि दें। परमात्मा उनकी आत्माको शाति और अली-भाइयोको उनके सौंपे कार्यको जारी रखनेकी शक्ति दें।

वी अम्माकी मृत्युकी रातके उस गभीर और प्रभावकारी दृश्यका वर्णन किये विना मै नही रह सकता। उस समय मुझे उनके पास ही रहने-का सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। यह सुनते ही कि अव वे अपने जीवनकी अन्तिम सासें ले रही है मै और सरोजिनी देवी वहा दौडे गये। उनके कुटुवके कितने ही लोग आसपास जमा थे। उनके डाक्टर और हितचिंतक

डा० असारी भी मौजूद थे। वहा रोनेकी आवाज नही सुनाई देती थी, अलबत्ते मौ० मुहम्मदअलीके गालोपरसे आसू जरूर टपक रहे थे। बडे भाईने बडी कठिनाईसे अपने शोकावेगको रोक रक्खा था। हा, उनके चेहरेपर एक असाधारण गभीरता अलबत्ते थी। सब लोग अल्लाका नामोच्चार कर रहे थे। एक सज्जन अत समयकी प्रार्थना गा रहे थे। 'कामरेड प्रेस' बी अम्माके कमरेके इतना पास है कि आवाज सुनाई दे सकती है। परतु एक मिनिटके लिए वहाके काममे गडबड नही हुई और न मौलानाने ही अपने सपादकीय कर्तव्योमे रुकावट आने दी। और सार्वजनिक काम तो कोई भी मुल्तवी नही किया गया। मौलाना शौकतअलीने तो सपने तकमें न सोचा था कि मै अपना रामजस कालेज जाना मुल्तवी करूगा। वे एक सच्चे सिपाहीकी तरह मुजफ्फरनगरके हिंदुओको दिये गए निश्चित समयपर उनसे मिले हालाकि बी अम्माकी मृत्युके बाद उन्हें तुरत ही वहासे चला जाना पडा था। यह सब जैसा कि होना चाहिए था वैसा ही हुआ। जन्म और मरण, ये दो भिन्न-भिन्न दशाए नही है, बल्कि एक ही दशाके दो भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। न मृत्युसे दुखी होनेकी जरूरत है, न जन्मसे खुशी मनानेकी। (हि० न०, २३.११.२४)

: ९ :

राजकुमारी अमृतकौर

आज मै सोचता हू और यह समझनेकी बात है कि एक क्रिस्टी बहन—उसे आप जानते हैं—राजकुमारी अमृतकौर, वह तो हेल्थ मिनिस्टर (स्वास्थ्य-मन्त्री) है, जितने लोग कैंपोमें पडे हैं, हिंदू-मुसलमान, सबके लिए वह कुछ करना चाहती है। मगर उसे किसीका सहारा न मिले तो

वह क्या कर सकती है? वह पक्षपात तो कर नही सकती। जो कुछ हो सकता है सबके लिए करती है। वह थोड़ी क्रिस्टी भी है, थोड़ी मुसलमान भी है, थोडी हिंदू भी, इसलिए उसके सामने सब धर्म एक समान है। वह चली गई और उसके साथ लडकिया भी गई, वे सब तो सेवाके लिए गई थी। सेवामें डर क्या? लेकिन उन्होने मुझको सुनाया कि वहा जो हिंदू, सिख पडे है वे कहते है कि खबरदार, तुम मुसलमानोकी सेवा करनेके लिए जाती हो तो यहासे भागना होगा। जब मैंने यह सुना तो हँस दिया। वह कहनेकी बात थी, कुछ करना थोडे ही था। (प्रा० प्र० २७ ६ ४७)

: १० :

अरविन्द घोष

अरविन्दबाबूके बारेमें मै कुछ भी कहनेमें असमर्थ हू। .. इतना तो अवश्य कबूल करना पडेगा कि अरविन्दबाबूकी छायाके नीचे रहनेवाले दो सौ आदमियोंमें ऐसे लोग है जिनके जीवनमें उनके सहवासके कारण बडे परिवर्तन हुए है। प्रत्येक अपने-अपने स्वभावके अनुसार अनुकरण करता है। (२८ ५ ३५को बोरसदसे लिखे एक पत्रसे)

. . . . . .

अरविंदका आश्रम क्या चीज है यह भी तो आपको जानना चाहिए। यो तो वहा लोगोकी एक धारा चल रही है। वहा हमेशा काफी लोग जाते है। उनके काफी भक्त है, हिंदू क्या, मुसलमान क्या, किसीके लिए वहा घृणा तो है ही नही। सर अकबर हैदरी, अब तो वह मर गए,

प्रतिवर्ष वहा जाते थे, उसका तो मै गवाह हू । श्रीअरविंद तो दीनभक्त है, किसीसे मिलते नही है । ऊपरसे उनका दर्शन हुआ तो हुआ, नही हुआ तो नही, लेकिन लोग जाते थे । उनके पास यह रहते है । इनके दिलमें भी ऐसी कोई घृणा नही है । तो इतना तो हम सीख लें कि हमारे दिलमें क्यो घृणा होनी चाहिए । (प्रा० प्र०, २९.१०.४७)

: ११ :

लार्ड अर्विन

आज अर्विनपर हॉर्निमैनका लेख है । इसने उसे चालाक मौकापरस्त बताया है ।

["यह चालाक अवसरवादी है। अपनी असंगतताओ तथा सिद्धांतो और नीतिके परिवर्त्तनोको सच्चेपनके आग्रह और सचाईके दंभी स्वागके मोटे पर्देके नीचे ढंकना चाहता है ।

"वह एक बार साइमन कमीशनके हिमायतीके रूपमें खड़ा हुआ, फिर नरम दलवालोका विरोध देखकर झुक गया। एक बार उसने सविनयभंगकी लड़ाईको लाठी और आर्डिनेंससे कुचलनेकी कोशिश की। बादमें कांग्रेसका जोर देखा तो झुक गया। उसकी सचाईकी बातोंसे अरुचि होती है । अब ये बंद हो जायं तो ही अच्छा । अगर वह गोलमेज परिषदको फिर जिंदा करा दे तो जरूर उसकी सचाईके बारेमें विचार किया जायगा ।"]

मै इस विचारका नही । इस आदमीमे सचाई है, इस अर्थमें कि उसमें उखाड-पछाड नही, दावपेंच नही । वह सीधी-सादी बात करनेवाला है । साइमनके समय उसे वह बात अच्छी नही लगती थी, मगर

उसने विचार कर लिया कि अनुदार दलके नाते जो नीति अपना ली गई है उसके खिलाफ न जाया जाय। उसके खरेपनकी भी हद है और वह हद यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य अखण्ड रहे। उसे खतरा हो तो वह वचनभगका भी विरोध नही करेगा। वह ब्रिटिश साम्राज्यको ईश्वरकी एक अद्भुत कृति माननें वाला है—जैसा कि हरएक अनुदार दलवाला मानता है—और उसी दृष्टिसे वह सब चीजोको देखता है। मगर वह खरा हो या न हो इससे क्या सरोकार? हमारा तो वास्ता इस बातसे है कि हमें जो चाहिए वह मिलता है या नही। (म० डा०, भाग १, १९ ७ ३२)

: १२ :

अली-बन्धु

(मौलाना शौकत अली और मुहम्मद अली)

शौकतअली सरल और मिलनसार आदमी है, पर कट्टर है और किसीका उन्हें भय या दवाव नही है। (य० इ०, २३.६.२०)

• . . . .

मौ० शौकतअली तो वड़े-से-वडे शूरवीरोमेंसे एक है। उनमें वलिदान-की अद्भुत योग्यता है और उसी तरह खुदाके मामूली-से-मामूली जीवको चाहनेकी उनकी प्रेम-शक्ति भी अजीव है। वे खुद इस्लामपर फिदा है, पर दूसरे धर्मोसे वे घृणा नही करते। मौ० मुहम्मदअली इनका दूसरा शरीर है। मौ० मुहम्मदअलीमें मैंने वड़े भाईके प्रति जितनी अनन्य निष्ठा देखी है उतनी कही नही देखी। उनकी बुद्धिने यह वात तय कर ली है कि हिंदू-मुसलमान एकताके सिवा हिंदुस्तानके छुटकारेका कोई रास्ता नही।

उनका 'पैन इस्लामवाद' हिंदू विरोधी नही है। इस्लाम भीतर और बाहरसे शुद्ध हो जाय और बाहरके हर किस्मके हमलोसे सगठित होकर टक्करें ले सके ऐसी स्थिति देखनेकी तीव्र आकाक्षापर कोई कैसे आपत्ति कर सकता है ? कोकोनाडाके उनके भाषणका एक हिस्सा बहुत ही आपत्तिजनक बताकर मुझे दिखाया गया था। मैंने मौलानाका ध्यान उसपर खीचा। उन्होने उसी दम स्वीकार किया कि हा, वास्तवमें यह भूल हुई। कुछ दोस्तोने मुझे सूचना दी है कि मौ० शौकतअलीके खिलाफत-परिषद्वाले भाषणमे कितनी ही बाते आपत्तिजनक है। यह भाषण मेरे पास है, परतु उसे पढनेका मुझे समय नही मिल पाया। यह मै जरूर जानता हू कि यदि उसमे सचमुच कोई ऐसी बात होगी जिससे किसीका दिल दुखी हो तो मौ० शौकतअली ऐसे लोगोमे पहले व्यक्ति है जो उसको ठीक करनेके लिए तैयार रहते है।

यह बात नही कि अलीभाई दोषोसे खाली हो। मै खुद भी दोषोसे भरपूर हू। इससे इन भाइयोकी दोस्तीकी खोज करने और उसकी कीमत समझनेमे हिचकिचाता नही। अगर उनके अदर कुछ ऐब है तो उनसे ज्यादा गुण भी है और मै उनके ऐबोके रहते हुए भी उन्हे चाहता हू।

यदि हममेसे बहुतेरे लोग पूर्णताको पहुचे हुए होते तो हमारे अदर झगडे होते ही क्यो ? पर हम सब अपूर्ण प्राणी है और इसीसे हम सबको एक दूसरेकी अनुकूल बाते खोजकर और ईश्वरपर भरोसा रखकर ध्येयके लिए मरना चाहिए। (हिं० न०, १.६.२४)

. . . .

जिस समय खेडाका आदोलन जारी था, उसी समय यूरोपका महा-समर भी चल रहा था। उसके सिलसिलेमे वायसरायने दिल्लीमें नेताओको बुलवाया था। मुझे भी उसमें हाजिर रहनेका आग्रह किया था। मै यह पहले ही लिख चुका हू कि लार्ड चेम्सफोर्डके साथ मेरा मैत्री-सबध था।

मैंने आमत्रण मजूर किया और दिल्ली गया, किंतु इस सभामें शामिल होनेमें मुझे एक सकोच था। इसका मुख्य कारण यह था कि उसमे अली-भाइयो, लोकमान्य तथा दूसरे नेताओंको नही बुलाया गया था। उस समय अली-भाई जेलमे थे। उनसे मै एक-दो बार ही मिला था। सुना उनके बारेमें बहुत-कुछ था। उनके सेवा-भाव, बहादुरीकी स्तुति सभी कोई किया करते थे। हकीम साहबके साथ भी मेरा परिचय नही हुआ था। स्व० आचार्य रुद्र और दीनबधु एड्रूजके मुहसे उनकी बहुत प्रशसा सुनी थी। कलकत्तावाले मुस्लिम-लीगके अधिवेशनमें श्वेब कुरेशी और वैरिस्टर ख्वाजासे मेरी मुलाकात हुई थी। डाक्टर असारी और डाक्टर अब्दुर्रहमानसे भी परिचय हो चुका था। भले मुसलमानोकी सोहबत मैं ढूढता था और उनमे जो पवित्र तथा देशभक्त समझे जाते थे उनके सपर्कमें आकर उनकी भावनाए जाननेकी मुझे तीव्र इच्छा रहती थी। इसलिए मुझे वे अपने समाजमें जहा कही ले जाते, मै बिना कोई खीच-तान कराए ही चला जाता था। यह तो मैं दक्षिण अफ्रीकामें ही समझ चुका था कि हिंदुस्तानके हिंदू-मुसलमानोंमें सच्चा मित्राचार नही है। दोनोंके मन-मुटावको मिटानेका एक भी मौका मैं योही जाने नही देता था। झूठी खुशामद करके या स्वत्व गवाकर किसीको खुश करना मै जानता ही नही था, किंतु मैं वहीसे यह भी समझता आया था कि मेरी अहिंसाकी कसौटी और उसका विशाल प्रयोग इस ऐक्यके सिलसिलेमें ही होनेवाला है। अब भी मेरी यह राय कायम है। प्रतिक्षण मेरी कसौटी ईश्वर कर रहा है। मेरा प्रयोग आज भी जारी है।

इन विचारोको साथ लेकर मै बबईके बदर पर उतरा था। इसलिए इन भाइयोंका मिलाप मुझे अच्छा लगा। हमारा स्नेह बढता गया। हमारा परिचय होनेके बाद तुरत ही सरकारने अली-भाइयोको जीते-जी ही दफन कर दिया था। मौलाना मुहम्मदअलीको जब-जब इजाजत मिलती, वह मुझे बैतूल जेलसे या छिंदवाडा जेलसे लबे-लबे पत्र लिखा

करते थे। मैंने उनसे मिलने जानेकी प्रार्थना सरकारसे की, मगर उसकी इजाजत न मिली।

अली-भाइयोके जेल जानेके बाद मुस्लिम-लीगकी सभामें मुझे मुलसमान भाई ले गये थे। वहा मुझसे बोलनेके लिए कहा गया था। मैं बोला। अली-भाइयोको छुडानेका धर्म मुसलमानोको समझाया।

इसके बाद वे मुझे अलीगढ कालेजमे भी ले गये थे। वहा मैंने मुसलमानोको देशके लिए फकीरी लेनेका न्यौता दिया था।

अली-भाइयोको छुडानेके लिए मैंने सरकारके साथ पत्र-व्यवहार चलाया। इस सिलसिलेमे इन भाइयोकी खिलाफत-सबधी हलचलका अध्ययन किया। मुसलमानोके साथ भी चर्चा की। मुझे लगा कि अगर मैं मुसलमानोका सच्चा मित्र बनना चाहू तो मुझे अली-भाइयोको छुडानेमे और खिलाफतका प्रश्न न्यायपूर्वक हल करनेमे पूरी मदद करनी चाहिए। खिलाफतका प्रश्न मेरे लिए सहल था। उसके स्वतत्र गुण-दोष तो मुझे देखने भी नही थे। मुझे ऐसा लगा कि उस सबधमें मुसलमानोकी माग नीति-विरुद्ध न हो तो मुझे उसमें मदद देनी चाहिए। धर्मके प्रश्नमे श्रद्धा सर्वोपरि होती है। सबकी श्रद्धा एक ही वस्तुके बारेमें एक ही-सी हो तो फिर जगत्मे एक ही धर्म हो सकता है। खिलाफत-सबधी माग मुझे नीति-विरुद्ध नही जान पडी। इतना ही नही, बल्कि यही माग इग्लैडके प्रधानमत्री लॉयड जार्जने स्वीकार की थी, इसलिए मुझे तो उनसे अपने वचनका पालन कराने भरका ही प्रयत्न करना था। वचन ऐसे स्पष्ट शब्दोमे थे कि मर्यादित गुण-दोषकी परीक्षा मुझे महज अपनी अतरात्माको प्रसन्न करनेकी ही खातिर करनी थी। (आ०, १९२७)

•

उन्हें (मौ० शौकतअलीको) उर्दू कवियोके बढिया वचन जबानी याद हैं। जब वे ये वचन सुनाते थे और उस जमानेमे जो बातें करते थे, उस

वक्त भी वे ईमानदार थे। आज भी ईमानदार है। मुझे कभी ऐसा नही लगा कि वे झूठ वोलते या धोखा देते थे। आज वे मानते है कि हिन्दू विश्वासपात्र नही है और उनके साथ लड लेनेमें ही कौमका भला है। यह मनोदशा बुरी है। मगर कौमकी सेवा उनके दिलमें है, उनका कोई स्वार्थी हेतु नही है। ऐसे ईमानदार आदमी बहुत मौजूद है।

(म० डा०, भाग १, ४७ ३२)

... .. .

स्व० मौलाना शौकतअलीके स्मारकके वारेमें मैंने कई तजवीजें पढी है। ज्योही मुझे मौलानाकी मृत्युके वारेमें मालूम हुआ, जिसकी कि अभी विल्कुल ही आशा नही थी, मैंने कुछ मुसलमान मित्रोको उनके साथ अपने अन्तस्तलकी समवेदना प्रकट करते हुए लिखा। उनमेंसे एक मित्रने लिखा है .

"...मै यह जानता हू कि मौ० शौकतअली अपने खास ढंगसे सच्चा हिंदू-मुस्लिम समझौता करानेके लिए सचमुच चिंतित थे। स्वर्गमें उनकी आत्माको यह जानकर कि उनका एक जीवन उद्देश्य आखिरकार पूरा हो गया, जितनी शांति मिलेगी उतनी किसी दूसरे कामसे नहीं। ऐसे भी लोग हो सकते है, जिन्हें कि इसमें संदेह हो, लेकिन मौलानाको और उनका दिमाग किस तरह काम करता था इसको अच्छी तरह जानकर, जैसा कि मै उन्हें, जानता था, मै भरोसेके साथ इस वातकी ताईद कर सकता हूं।"

कभी-कभी जो वे जोशमें आकर खिलाफ वोल जाते थे, उसके वावजूद मौलानाके दिलमें एकता और शातिके लिए वही तमन्ना थी जिसके लिए कि वह खिलाफतके दिनोंमें वड़े मोहक ढगसे वोलते व काम करते थे। मुझे इसमें कोई शक नही कि उनकी यादगारमें हिंदू और मुसलमान दोनो ही कौमोका एकताके लिए हुआ सयुक्त निश्चय ही सवसे सच्चा स्मारक होगा। खाली कागजी एकताका निश्चय नही, वल्कि दिली एकता-

का, जिसका आधार शक और बेऐतबारी नही, बल्कि आपसका विश्वास होगा। कोई दूसरी एकता हमे नही चाहिए और इस एकताके बिना हिंदुस्तानके लिए सच्ची स्वतत्रता प्राप्त नही हो सकती।

(ह० से०, १७ १२.३८)

•

आप लोगोने जो इतनी शाति रखी इसके लिए आपको धन्यवाद है। पहले इतनी शाति नही हुआ करती थी। इससे साफ है कि पिछले तीन दिन जो हुआ उससे हमने धर्म नही खोया है। यदि आदमी शातिसे न रहे, कभी अपने विचारोको भीतरसे न देखे, जीवनभर दौड-दगलमें ही रहे और हर वक्त गरम बना रहे तो वह उस शक्तिको पैदा नही कर सकता, जिसे शौकतअली साहब 'ठडी ताकत' कहा करते थे। मुहम्मदअली साहब भी कहते थे कि हमे अग्रेजोसे लडकर स्वराज्य लेना है और हमारी लडाई होगी तकलीकी तोपोसे और कुकुडियोके गोलोसे। वह तो जितना विद्वान था, उतना ही कल्पनाए दौडानेवाला था। (प्रा० प्र०, ५ ४ ४७)

: १३ :

हाजी वजीर अली

हाजी वजीर आधे मलायी कहे जा सकते है। उनके पिता भारतीय मुसलमान थे और माता मलायी थी। उनकी मादरी जबानको डच कह सकते है, पर उन्होने अग्रेजी शिक्षा भी यहाँतक प्राप्त कर ली थी कि वे अग्रेजी और डच दोनो अच्छी तरह बोल सकते थे। अग्रेजीमे भाषण करते वक्त उन्हे कही भी ठहरना नही पडता था। अखबारोमें पत्र वगैरह लिखनेकी आदत भी उन्होने कर ली थी। ट्रान्सवाल ब्रिटिश एसोसियेशनके

वे मेम्बर थे और बहुत दिनसे सार्वजनिक हलचलोमें भाग लेते आए थे। हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह बोल सकते थे। एक मलायी महिलाके साथ उनका विवाह हुआ था और उससे उनकी प्रजाका बडा विस्तार था।

(द० अ० स०, पृष्ठ १७१)

: १४ :

सी० पी० रामस्वामी अय्यर

मैंने अखबारोमे सर सी० पी० रामस्वामीका ऐलान देखा। वे बडे विद्वान व्यक्ति है। ऐनी बेसेंटके शिष्य रहे है। जब मै हरिजन-यात्रामें था तब उनके निमत्रणपर उनके यहा त्रावनकोरमें मेहमान बनकर गया था। लड़ने नही, पर मिलकर काम करनेको गया था। उनसे यह बात सुनकर अच्छी नही लगती। अगर अखबारमें गलती हो तो वे मुझे माफ करें, सही हो तो मेरी बातपर गौर करें। उन्होने कहा है कि पद्रह अगस्तसे जब हिंदुस्तान स्वतत्र होगा तब त्रावनकोर आजाद हो जायगा। और उनकी वह आजादी ऐसी है कि आजसे ही त्रावनकोरकी स्टेट कांग्रेसके लिए सभाबदी कर दी गई है। खबर यहातक है कि सी० पी० रामस्वामीने उन लोगोको त्रावनकोर छोडकर चले जानेके लिए कहा है जो त्रावनकोरकी स्वतत्रताकी मुखालफतमे हो। और यह आज्ञा वे सज्जन दे रहे है जो खुद त्रावनकोरके नही, बल्कि मद्रासके रहनेवाले है। वे किस तरह ऐसा कहते है!

ब्रिटिश राजमें आजतक त्रावनकोरको अग्रेज शाहशाहीको सलामी देनी पडती थी तो अब हिंदुस्तानके प्रजातत्र सघमें वह मनमानी कैसे कर सकता है? वह अब हमारा राज्य है यानी भारतके प्रजाकीय राज्यको उसे (त्रावनकोरको) अपना ही राज्य समझना चाहिए। मैंने बताया है

कि प्रजाकीय राजमे राजा और मेहतरकी कीमत एक-सी रहनेवाली है। मनुष्यके नाते दोनोकी कीमत एक ही रहेगी, पर दोनोकी बुद्धिमत्तामें भेद हो सकता है। अगर त्रावनकोरके महाराजाके पास वडी अकल है तो उन्हे उसे लोगोकी सेवामे लगाना चाहिए। अगर प्रजाको कुचलनेमें वे अपनी बुद्धि दौड़ाते है तो उनकी वह अकल फिजूलकी है। अपनी सारी रैयतको कुचलकर और मार डालकर क्या त्रावनकोर नरेश निरी जमीन-पर राज करेगे? (प्रा० प्र०, १३.६ ४७)

•

कल मैंने त्रावनकोरके दीवान सर सी० पी० रामस्वामीकी वात आप लोगोको सुनाई थी। आजकल तो तार और रेडियोका जमाना है। उनके कानोतक मेरी वह वात पहुच गई और उन्होने एक लवा-चौडा तार मेरे पास भेज दिया है। उन्होने बहुतसे खुलासे किये है, पर त्रावनकोर-काग्रेस-कमेटीको सभा करने और जुलूस निकालनेकी इजाजत नही दी है। उसके वारेमे वे कुछ नही वोले है। इसमें मुझे वुराई नजर आती है। यह लक्षण अच्छे नही है। वे कहते है कि त्रावनकोर तो सदासे आजाद रहा है।

सर सी० पी० रामस्वामी तो मेरे दोस्त रहे है, सव वात सही, लेकिन मेरा लडका ही क्यो न हो, सही वात कहनेसे मैं क्यो रुकू? हिंदुस्तान जव आजाद होता है तव अगर वे यही कहते है कि त्रावनकोर आजाद है तो इसका मतलव यह है कि वे आजाद हिंदसे लडना चाहते है।

मैं तो उनसे कहूगा कि आप तख्तपरसे नीचे उतरिए और त्रावन-कोरके लोगोके खादिम वनकर रहिए। जव अग्रेजोने आपसे एक वार राज्य छीन लिया और कुछ पैसे लेकर तथा अपनी रैयतको कुचलनेका आपको अधिकार देकर वह राज आपको लौटा दिया तो उसमें इतनी फख्रकी वात क्या थी? फख्रकी वात तव है जव आप जनताको अपना मालिक मानें। वैसे तो हिंदुस्तान गिरा नही है और अगर वह अपनी

परेशानीमें पड़ा है तो यह शराफतकी बात नही है कि आप जो आदमी गिर पडा है उसको ऊपरसे लात धर दें। हिंदुस्तानके एक-चौथाई और तीन-चौथाई ऐसे दो टुकडे होते है तो उन टुकडोकी बातसे आपका कोई सबध नही। आप शरीफ बनें और समझें। (प्रा० प्र०, १४.६ ४७)

आज फिर मेरे पास त्रावनकोरके दीवान सर रामस्वामीका लबा-चौडा तार आया है, जिसमें मुझे समझानेकी कोशिश की गई है कि उनके साथ वहाके ईसाई आदि भी है। पर ऐसे तारसे मुझे बुरा लगता है। कडवी चीजको मीठी बनानेसे वह मीठी नही बन जाती। मूलसे ही इनकी बात बुरी है। 'आ जाओ, हम तो आजाद है।' 'आप किससे आजाद है ?' रैयतसे ? लोग इस तरह भारतसे आजाद होकर करेंगे क्या ? आप इस तरह घुमा-फिराकर बात न करें। सीधी बात करे कि हिंदुस्तानके साथ हम है, तब ही आप अपने राजाके प्रति सच्चे वफादार है, नही तो बेवफा है। (प्रा० प्र०, १७ ६.४७)

. . . . . .

सर सी० पी० कहते है कि गाधी और काग्रेस सरहद्दी सूबेको तो आजादी देनेको तैयार है, परतु त्रावनकोरको नही। इतना बडा विद्वान होकर भी वह कितनी गलत बात करता है। यदि त्रावनकोर अलग हुआ तो हैदराबाद, काश्मीर और इदौर आदि सब अलग हो जायगे। इस तरहसे तो हिंदुस्तानके अनेक टुकडे हो जायगे। इसके अलावा फ्राटियरके खान हिंदुस्तानसे पृथक् नही होना चाहते। वे कहते है कि हम पाकिस्तानमें नही जायगे। तब फिर क्या वे हिंदुस्तानमें हिंदुओकी गुलामी करेंगे ? उनपर काग्रेससे पैसा खानेका इल्जाम लगाया जाता है। काग्रेस यदि इस तरहसे किसीको पैसा देकर अपनी तरफ करे तो वह अबतक जिंदा नही रहती। बादशाह खानने हमें विश्वास दिलाया है कि हिंदुस्तान पहले अपना विधान बना ले। इस दौरानमें वह किसी फैसलेपर पहुंच जायगे। मगर रामस्वामी जो कहते है वह बिल्कुल गलत है। फ्राटियरमें

वहा रहनेवाली प्रजाकी आवाज है, जबकि त्रावनकोरमे तो एक राजा और उसका सचिव ही सारी प्रजाकी तरफसे बोल रहा है ।

आजकी हालतमे राजा और प्रजा दोनोका एक हक है, यह मेरा दावा है । फ्राटियरकी मिसाल देकर सर सी० पी० लोगोकी आखोमे धूल नही झोक सकते । इस तरहसे न तो धर्म रहता है और न कर्म रहता है । मै तो रामस्वामीसे यही कहूगा कि सही चीज यही है कि त्रावनकोर राज्य विधान-परिषद्में आ जाए। (प्रा० प्र०, २४ ६ ४७)

• • •

मुझसे यह पूछा गया है कि दक्षिण भारतमें तो हरिजनोके लिए इतना काम हो गया और तामिलनाड तथा आध्रके सब बडे-बडे मदिर हरिजनोके लिए खोल दियें गये, परतु युक्तप्रातका क्या हुआ ? युक्त-प्रातमे हरिद्वार पडा है । क्या हरिद्वारके मदिरोमें अछूत जा सकते है ? दक्षिण भारतकी त्रावनकोर रियासतमे तो बहुत पहलेसे ही यह सब हो गया था । वहाके दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर आज तो हमसे बिगडे हुए है, और बिगडे हुए है भी या नही, यह आज तो मै नही जानता । मगर तब उन्होने वहाके महाराजाको समझाकर अबसे बहुत पहले ही कानून द्वारा अपनी रियासतमे अछूतपनको मिटा दिया था। युक्तप्रातमे हरिद्वारके अलावा काशी विश्वनाथ भी है जहा गगाजीमें स्नान करनेसे मोक्ष मिलता बताया जाता है । वहाके मदिरोमे हरिजन जा सकते है, ऐसा मै नही कह सकता, परतु मै तो यही कहूगा कि जहा हरिजन नही जा सकते वे मदिर नापाक है । (प्रा० प्र०, १९.७.४७)

: १५ :

जनरल यू आंग-सांग

ब्रह्मदेश भी हिंदुस्तानकी तरह आजाद हो रहा है। वहाके नेता जनरल यू आग-सागने आधुनिक वर्माको जन्म दिया और उसे आजादीके दरवाजेपर लाकर छोड दिया। वह सत्याग्रही नही था तो उससे क्या हुआ ? वह एक बहादुर लडाका था और उसीके फलस्वरूप आज वर्मा आजाद होने जा रहा है। एक सशस्त्र गिरोहने उनको और उनके चार अन्य साथियोको कत्ल कर दिया, यह कोई छोटी वात नही है। हम चाहे उनसे कितनी ही दूर हो, मगर हमारे लिए यह वडे रजकी वात है। अगर ऐसी घटनाए होती रही तो दुनियाका क्या हाल होगा ? हत्यारे सचमुच लुटेरे थे, ऐसा मुझे नही लगता। मै वर्मामें काफी रहा हू। रगून और माडले आदि स्थान सव मेरे देखे हुए है। वहा वृद्ध-धर्म चलता है। वर्माके लोग अधिकाश वुद्ध-धर्मको मानते हैं। जहा वुद्ध-धर्म प्रचलित है वहा ऐसा खून-खच्चर क्यो ? इन हत्याओमे लुटेरूपन नही, वल्कि उनके पीछे कुछ पार्टीवाजी रही है। इस तरहकी लडाइयोनें दुनियाका सत्यानाश कर दिया है। इस तरहसे तो जो हमारे मुखालिफ है वे आकर हमारा खून करने लगे तो कैसे काम चलेगा। वर्मा जव आजादीके दरवाजेमे दाखिल हो गया है तव ऐसा होना वहुत दु खदायी वात है। हम ऐसे जाहिल क्यो वन जाते है ?

मुझे आशा है कि हिंदुस्तान इससे सवक लेगा, क्योकि यह न केवल वर्माके लिए, वल्कि सारे एशिया और ससारके लिए एक दु खद घटना हुई है। हम सव यह प्रार्थना करें कि हे भगवान, वर्माके जो लोग है वे हमारी ही तरहसे आजादीके लिए तडप रहे है, उनको तू इस दु खमें सात्वना दे और मृत व्यक्तियोके परिवारोको शोक सहन करनेकी शक्ति

दे । जिन लोगोने खून किया है उनके दिलोकी भी तबदीली कर । (प्रा० प्र०, २०.७ ४७)

: १६ :

मौलाना अबुलकलाम आजाद

काग्रेसमे अनेक विचारक पडे हुए है । मौलाना स्वय एक महान् विचारक है । वह तीव्र बुद्धिके है । उनका अध्ययन विस्तृत है । अरबी, फारसीके अध्ययनमे उनके जोडका विद्वान मिलना कठिन है । अनुभवने उन्हे सिखाया है कि अहिंसासे ही हिंदुस्तान आजाद होगा । (ह० से०, १० ८ ४०)

: १७ :

श्रीनिवास आयंगर

श्री श्रीनिवास आयगरके आगामी काग्रेसके लिए सभापति चुने जानेकी बात पहलेसे ही पक्की थी । काग्रेस कमेटिया एक कट्टर स्वराजीको ही चुननेके लिए बाध्य थी। श्रीनिवास आयगर एक लडैये है और साथ-ही-साथ वे आदर्शवादी भी है । वे बेसब्र है और उनका बेसब्रीसे भरा हुआ जोश उनको प्राय बडे गहरेमे ले उतारता है, जहाकि मामूली आदमीकी गति नही । वे किसी काममें बिना दुबारा सोचे ही कूद पडते है । ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदपर उनका चुना जाना ऐसे सकटके अवसरपर हुआ है कि जैसा उससे पहले कभी न आया होगा । लेकिन श्री आयगर-

को अपनेमें तथा अपनी शक्तिमें विश्वास है। यह बात सर्वविदित है कि अपनेमें विश्वास रखनेवालोकी ईश्वर सहायता करता है। हम आशा करें कि ईश्वर श्री आयगरकी सहायता करेगा। श्री आयगरको उस तमाम मददकी आवश्यकता है, जो कि काग्रेसवाले उन्हें दे सकते हो। हमने निष्क्रिय भक्तिकी विद्या तो सीख ली है, लेकिन अब समय आ पहुचा है, जबकि हमको सक्रिय भक्ति दिखाना सीखना चाहिए। अगर काग्रेस-वाले अपनी नीति और अपने प्रस्तावोका, जिनके स्वीकृत किये जानेमे उनका हाथ रहता है, पालन करेंगे तो श्री आयगरका काम कठिन होते हुए भी आसान बन जायगा। जिस सस्थाको उन्नति करना है उसके सदस्योको कम-से-कम इतना तो करना ही चाहिए। मै श्री आयगरको उस बडी प्रतिष्ठाके लिए बधाई देता हू, जो कि उनको मिली है और मैं उन साधारण कठिनाइयोपर उनके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करता हू, जो कि उनके सामने है। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हू कि वह उन्हें उन कठिनाइयोपर विजय पानेकी बुद्धि और बल दे। (हिं० न०, १६ ९ २६)

: १८ :

एस० रंगास्वामी आयंगर

'हिंदू'के भूतपूर्व सपादक श्री एस० रगास्वामी आयगरकी मृत्यु हो गई है। उनके कुटुब तथा 'हिंदू'के कर्मचारियोके साथ जो समवेदना प्रकट की जा चुकी है, उसमें मैं भी आदरपूर्वक शरीक होता हू। उनकी मृत्यु श्री कस्तूरी रगा आयगरकी मृत्युके कुछ ही बाद होनेसे सपादक-ससारकी भारी क्षति हुई है। (हिं० न०, २८.१०.२६)

: १६ :

मीर आलम

एक शख्स मीर आलम था। सरहदी गाधीके मुल्कका। जैसे ये पहाडके-से है, वह उनसे भी ऊचा था। पहले वह मेरा मित्र था। पर पठान तो भोले ही होते है। इसी कारण वे वादशाह है। उसको किसीने वहका दिया कि गाधीने पद्रह हजार पौड जनरल स्मट्ससे ले लिए है और कौमको वेच डाला है। वस, एक दिन वह मीर आलम मेरा दुश्मन वनकर आया। उसके हाथमें वडी-सी लाठी थी और उसपर सीसेकी मूठ लगी थी। उसने ठीक मेरी गर्दनपर वह लाठी मारी। मै गिर पडा। नीचे पत्थरका फर्श था। मेरे दात टूट गए। ईश्वरको मजूर था, इसलिए मै वच गया। मीर आलमको दो-तीन अग्रेजोने, जो उस रास्तेसे जा रहे थे, पकड लिया, लेकिन मैने उसे यह कहकर छुडवा दिया कि वह वेचारा दूसरेके धोखेमे आ गया कि मै लालची हू और इसपर फौजी पठानका खून खौल उठे और वह मारनेको उतारू हो जाय तो कोई आश्चर्यकी वात नही है। इस तरहसे मीर आलमको मैने कैद कर लिया। वह मेरा पक्का दोस्त वन गया।
(प्रा० प्र०, ३१ ५ ४७)

: २० :

अरुणा आसफअली

श्रीमती अरुणा मेरी लडकी है, क्या हुआ कि उन्होने मेरे घरमें जन्म नही लिया या कि वह विद्रोही वन गई है। जव वह छिपकर रहती थी

तव भी मैं कई वार उनसे मिला हू । मैंने उनकी वहादुरी, नये-नये रास्ते खोजनेकी शक्ति और गहरे देश-प्रेमकी सराहना की है । पर मेरी सराहना इससे आगे नही वढी । मैंने उनके छिपकर काम करनेको पसद नही किया । (ह० से०, ३ ३.४६)

: २१ :

डॉ. मुहम्मद इक़वाल

इकवालने कहा—"मजहव नहीं सिखाता आपसमें वैर करना।" इकवालने ऐसा कहा उस वक्त वह लदनमे रहता था । वह वडा कवि था । उस वक्त वह गोलमेज कान्फ्रेसमें आया हुआ था । वहा उसके लिए सवने एक खाना किया तो मुझको भी वुलाया गया । मैं चला गया । उसने कहा कि मै तो ब्राह्मण हू । क्यो ब्राह्मण हू ? क्योकि मेरे वाप-दादे ब्राह्मण थे । कहाके ? काश्मीरके । मैं तो काश्मीरका हू । ब्राह्मण हू और अव मै इस्लाममे आया हू । अभी नही, वहुत पीछे हम इस्लाममे आए । तो भी हममें ब्राह्मण खून पडा है और इस्लामका तमद्दुन (सस्कृति) हमारेमे पड़ा है । तो इक़वालने कहा—"मजहव नहीं सिखाता आपसमें वैर करना ।" पीछे उसने दूसरा-तीसरा भी लिखा है । वह दूसरी वात है । इकवाल तो चले गए, लेकिन हम इतना तो सीख ले कि हमको हमारा धर्म नही सिखाता है कि हम किसीसे वैर करे । इसलिए मैं कहूगा कि हम इन्सान वने । इन्सान वनें तो हम हिंदुस्तानको ऊचा ले जाते है । (प्रा० प्र०, ३० ६.४७)

: २२ :

जयचंद्र इंद्रजी

'नवजीवन' के एक पाठक खबर देते है.

"गुजरातके प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्र-भक्त श्री जयकृष्ण इंद्रजीका ता० ३ को कच्छमें देहांत हो गया। वह अपने पीछे एक विधवा छोड़ गये हैं। उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं है।"

पोरवदरमे श्री जयकृष्णसे मेरा परिचय हुआ था और उसी समय अपने विषयमे सर्वोपरि वननेकी उनकी दृढ इच्छा और वैसी ही उनकी सादगी देखकर मै आश्चर्यचकित वना था। वनस्पतियोकी खोजमें वह पर्वतीय प्रदेशोमे कई बार घूमे थे और अपने विशाल अनुभवके फलस्वरूप एक सुदर पुस्तक भी लिख गये है। अपने घर हीमें उन्होने अनेक प्रकार-की वनस्पतियोका एक सग्रहालय वना रक्खा था, जिसे हर मिलनेवालेको वह अभिमानके साथ वताया करते थे। उन्हे वनस्पतिकी शोध-खोजके सिवा और कोई वात ही नही सूझती थी। अपनी इस धुनमें वह इस लोक और परलोकका श्रेय देखते थे। यही वजह थी कि मै उन्हें एक आदर्श विद्यार्थी मानता था। कच्छकी यात्रामे मै फिर उनसे मिला था। वहा भी उनपर वही धून सवार थी। नये-नये पौधे लगानेका शौक बुढापेमें घटनेके वदले और भी बढ गया था। इस तरह अपने विषयमें अनन्य भक्ति रखनेवाले मनुष्य दुर्लभ है। श्री जयकृष्ण इद्रजी इनमेंसे एक थे। वह तो अपने कर्तव्यका पालन करते हुए निवटकर गये है, इसलिए उनकी आत्मा शात ही है। आइए, हम सब उनकी एकाग्रता और उनके आत्म-विश्वासका अनुकरण करे। (हि० न०, २६ १२ २६)

: २३ :

इमाम साहब

गिरफ्तार किये गए लोगोमें हमारे इमाम साहब भी थे। उनकी कैदका आरभ चार दिनसे हुआ था। वह फेरीमें पकडे गये। उनका शरीर ऐसा नाजुक था कि लोग उन्हे जेल जाते हुए देखकर हँसते थे। कई लोग आकर मुझसे कहते--"भाई, इमाम साहबको इसमें शामिल न करो तो अच्छा हो। वह कौमको लज्जित करेगे।" मैने इस चेतावनी-पर जरा भी ध्यान नही दिया। इमाम साहबकी शक्तिकी नाप-जोख करनेवाला मै कौन होता हू? यह सब सत्य है कि इमाम साहब कभी नगे पैर नही चलते थे। शौकीन थे। उनकी स्त्री मलायी महिला थी। घर बडा सजा हुआ रखते और बिना घोडा-गाडी लिये कही न जाते। पर उनके दिलको कौन जानता था? यही इमाम साहब चार दिनकी सजा भुगतकर फिर जेलमें गये। वहा एक आदर्श कैदीकी तरह रहे। पसीनेकी कमाई खाते, और उन्ही नित्य नये पकवान खानेकी आदत रखने-वाले इमाम साहबने मक्काके आटेकी लपसी पीकर खुदाका एहसान माना! वह हारे तो जरा भी नही। हा, उन्होने सादगी जरूर अख्तियार कर ली। कैदी बनकर पत्थर फोडे, झाड़ू-बुहारी की और अन्य कैदियोकी बराबरीमें एक कतारमे खडे रहे। अतमे फिनिक्समें पानी भरा और छापाखानेमें कपोजिग तक किया। फिनिक्स आश्रममे रहनेवालोके लिए कपोजिग सीख लेना अनिवार्य कर्तव्य था। उसे इमाम साहबने पूरा किया। आजकल भारतवर्षमे भी वह अपना हिस्सा दे रहे है, पर ऐसे तो कई लोग जेलमे शुद्ध हो गये। (द० अ० स०, १९२५)

• • • • • • •

इमाम साहबका अकेला ही मुसलमान कुटुब अनन्य भक्तिसे आश्रममें

वसा। उन्होने मृत्युसे हमारे और मुसलमानोके बीच न टूटनेवाली गाठ बाध दी है। इमाम साहब अपने आपको इस्लामका प्रतिनिधि मानते थे और इसी रूपमे आश्रममे आए। (य० म०, ३०.५.३२)

: २४ :

उर्मिला देवी

बगालमे आज यह आग किसने सुलगाई ? श्रीमती वसती देवी और उर्मिला देवीने। वे खुद गली-गली खादी बेचती फिरी। यह उनकी गिरफ्तारीका प्रभाव है जो बगालका ध्यान इस तरफ गया। देशबधु-दासके प्रचड आत्मत्यागने भी ऐसा चमत्कार नही दिखाया। मेरे पास एक पत्र वहासे आया है। उससे यही मालूम होता है। यह बात गलत नही हो सकती, क्योकि स्त्री क्या है, वह साक्षात त्यागमूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काममे जी-जानसे लग जाती है तो वह पहाडको भी हिला देती है। हमने अपनी स्त्रियोका बडा दुरुपयोग किया है। जहा तक हो सके हमने उनकी ओर ध्यान नही दिया। लेकिन परमात्मन्, तुझे धन्यवाद ! यह चरखा उनके जीवनको बदल रहा है। जरा सरकार हमारे रहे-सहे तमाम नेताओको जेलका सौभाग्य प्राप्त करा दे, फिर देखिए कि भारतकी देविया किस तरह मैदानमे आती है और पुरुषोके अधूरे कामको अपने हाथोमे लेकर उनसे भी अधिक अच्छाई और खूबीके साथ उनका सचालन करती है ! (हि० न०, २५.१२.२१)

: २५ :

सी० एफ० एंड्रूज

श्री एड्रूजका स्वयनिर्णित कार्य यह है कि उनसे जो कुछ भी बन पडे वह सेवा करना और फिर उसे भूल जाना। उनकी सेवाका रूप अक्सर शाति स्थापित करना होता है। अभी उन्होने उडीसामे दु खी और पीडित मनुष्यो और ढोरोके बीच और बबईके कष्ट-पीडित मिल-मजदूरोके सबधमे अपना काम पूरा किया ही न था कि उन्हें दक्षिण अफ्रीकामे जाकर वहाके भारतीयोकी, जो कष्टमे पडे हुए है, मदद करनेकी आवश्यकता महसूस होने लगी है। लेकिन वे वहा केवल भारतीयोकी ही मदद न करेंगे, यूरोपियनोकी भी सहायता करेगे। उनमे न द्वेष है, न क्रोध। वे हिंदु-स्तानियोके प्रति दया दिखानेको नही कहते है। वे तो सिर्फ न्याय ही चाहते है। श्री एंड्रूज दक्षिण अफ्रीकाके लिए कोई नये नही है। दक्षिण अफ्रीकाके राजनीतिज्ञ उन्हें जानते है और वे इस बातको स्वीकार करते है कि वे यूरोपियनोके भी उतने ही मित्र है जितने कि हिंदुस्तानियोके। भारतीयोका प्रश्न बडी विकट समस्या हो गया है। दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले भारतीयोके लिए तो वह जीवन-मरणका प्रश्न है। ऐसे विकट प्रसगपर श्री एड्रूजके उनके पास होनेसे उन्हे बड़ी शाति मिलेगी। पहले जिस प्रकार इन भले मित्रके प्रयत्नोका अच्छा फल हुआ है उसी प्रकार इस समय भी उनका प्रयत्न सफल हो। (हि० न०, १२ ११ २५)

यूनियन सरकारके भारतीयोके खिलाफ कानून बनानेके बिलका चाहे कुछ भी परिणाम क्यो न आवे, इस प्रश्नको हल करनेमे नि सदेह श्री एड्रूजका हिस्सा सबसे बढकर ही रहेगा। उनका श्रमहीन उत्साह, उनकी नित्य सावधानी और सुशील समझानेकी शक्तिने हमें सफलताकी आशा

दिलाई है। वे स्वय यद्यपि आरभमे बडे निराश थे, परतु अब उन्हें आशा बधी है कि वह बिल, सभव है, कम-से-कम इस बैठकके लिए तो मुलतवी रहे। वे शातिके साथ पत्र सपादकोसे और सार्वजनिक कार्यकर्ताओंसे मुलाकात कर रहे हैं। वे पादरियोकी सहानुभूति प्राप्त कर रहे हैं और इस नए कानूनका उनसे जोरदार शब्दोमे विरोध करा रहे हैं। इस प्रकार उन्होने दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोकी रायको, जो इस कानूनके पक्षमें थी, हिला दिया है। इस प्रश्नका उनका अध्ययन गहरा होनेके कारण दक्षिण अफ्रीकाके कुछ नेताओको सतोषकारक रीतिसे वे यह समझा सके हैं कि उस कानूनसे स्मट्स-गाधी समझौतेका स्पष्ट भग होता है। उन्होने बिखरी हुई भारतीय शक्तियोको भी इस बिलपर आक्रमण करनेके लिए इकट्ठा किया है। इस प्रकार श्री एड्रूजने भारतकी और मनुष्य-समाजकी सेवामे बडी अच्छी वृद्धि की है। अग्रेज और भारतीयोके सबधको मधुर बनानेके लिए जितना प्रयत्न श्री एड्रूजने किया है उतना आज किसी भी जीवित अग्रेजने नही किया है। उनकी एक आशा इन दोनों राष्ट्रोके लोगोको एक ऐसे अभेद्य बधनमे बाध देना है, जिसका आधार परस्परका आदर और स्वतत्रता हो। उनका यह स्वप्न सच्चा हो। (हि० न०, ४ २ २६)

... .

कविवर, श्रद्धानदजी और श्री सुशील रुद्रको मैं एड्रूजकी 'त्रिमूर्ति' मानता था। दक्षिण अफ्रीकामें वह इन तीनोकी स्तुति करते हुए थकते नही थे। दक्षिण अफ्रीकामे हमारे स्नेह-सम्मेलनकी बहुत-सी स्मृतियोमें यह सदा मेरी आखोके सामने नाचा करती है कि इन तीन महापुरुषोके नाम तो उनके हृदयमें और ओठोपर रहते ही थे। सुशील रुद्रके परिचयमें भी एड्रूजने मेरे बच्चोको ला दिया था। रुद्रके पास कोई आश्रम नही था, उनका अपना घर ही था; परतु उस घरका कब्जा उन्होने मेरे इस परिवारको दे दिया था। उनके बाल-बच्चे इनके साथ

एक ही दिनमे इतने हिल-मिल गये थे कि ये फिनिक्सको भूल गये। (आ० १६२४)

. . . .

एड्रूजको लेलो। यह वात नही कि दिल-ही-दिल में एड्रूज भी यह न मानते हो कि अंग्रेजी राज्यने इस देशका कुछ-न-कुछ भला ही किया है।

(म० डा०, भाग २, ११ ३३)

. . . .

यहा आनेपर मेरे जीमें जो सवसे प्रवल भावनाए उठ रही है वे दीन-वधुके विपयमें है। शायद आप लोग न जानते होगे कि कल सुवह गाडीसे उतरते ही कलकत्तेमे पहला काम मैने यह किया कि उनसे अस्पतालमें जाकर मिला। गुरुदेव विश्वकवि है, पर दीनवधुमे भी कवि की-सी भावना और प्रकृति है। वे आज यहा होते तो उन्हें कितनी खुशी होती और गुरु-देवके साथ इस मुलाकातके अवसरपर एक-एक शब्द, एक-एक सकेत और एक-एक हरकतका वे किस तरह रसपान करते और उन्हें अपने स्मृति-भडारमें जमा करते। किंतु ईश्वरकी इच्छा और ही थी। आज वे कलकत्तेमें रोगशैय्यापर पड़े है—पूरी तरह वोल भी नही सकते। मै चाहता हूं कि आप सव लोग मेरी इस प्रार्थनामें शामिल हो कि भगवान् उन्हें जल्दी ही हमें वापस देदें और हर हालतमें उनकी आत्माको शाति प्रदान करें।

(ह० से० ३०.३.४०)

. . . . .

चार्ली एड्रूजको जितना मै जानता था उससे अधिक शायद और कोई नहीं जानता। गुरुदेव तो उनके लिए गुरु-तुल्य थे। पर हम जव दक्षिण अफ्रीकामें एक-दूसरेसे मिले तो भाई-भाईकी तरह मिले और अत तक वैसे ही वने रहे। हम दोनोमें कोई भेद नही था। हमारा सवध एक हिंदुस्तानी और एक अग्रेजके वीच मित्रताका नही, वल्कि सत्यके दो जिज्ञासुओ और सेवकोके वीच न टूटनेवाला एक प्रेम-वधन था। लेकिन यहा मैं

एड्रूजके सस्मरण नही लिख रहा हूं, जो कि बहुत पवित्र है।

ऐसे समय, जबकि एड्रूजकी स्मृति ताजी है, भारतीयो और अग्रेजोका ध्यान मै उस पवित्र विरासतकी ओर आकर्षित करता हू जिसे वे छोड गये है। इगलैण्डके प्रति किसी भी अग्रेज देशभक्तसे कम प्रेम उनके हृदयमें नही था। इसी प्रकार किसी भारतीयके देश-प्रेमसे कम प्रेम भारतके प्रति उनके हृदयमे नही था। उन्होने अपनी रुग्ण-शैय्यासे, जिसपर वे सदाके लिए सो गये, यह कहा था—"मोहन, स्वराज आ रहा है।" यदि अग्रेज और भारतीय दोनो मिलकर चाहे तो वह जरूर आ सकता है। वर्तमान शासको और जिनकी राय वजनदार मानी जाती है ऐसे अग्रेजोके लिए एड्रूज कोई अजनबी नही थे। इसी प्रकार राजनीतिसे दिलचस्पी रखनेवाला कोई भारतीय ऐसा नही जो उन्हे न जानता हो। इस समय मै अग्रेजोके उन बुरे कारनामोको याद नही करना चाहता जो उन्होने किए है। उन्हें हम भूल जा सकते है, पर एड्रूजने जो वीरता-पूर्ण प्रयत्न किए है उन्हे जबतक इगलैण्ड और भारत जीवित है भुलाया नही जा सकता। अगर हम एड्रूजसे स्नेह करते है तो हम अपने हृदयमे उन अग्रेजोके प्रति घृणाका भाव न आने देगे जिनमेसे एड्रूज महान् और सर्वोत्तम थे। भले अग्रेजो और भले भारतीयोके लिए यह सभव है कि वे एक-दूसरेसे मिले और तबतक अलग न हो जबतक कि दोनोके लिए सतोषजनक रास्ता न ढूढ निकाले। एड्रूज जो काम छोड गये है वह पूरा करनेके योग्य है। जब मै एड्रूजके दयापूर्ण चेहरे और उनके उन अगणित प्रेमपूर्ण प्रयत्नोकी याद करता हू जो भारतको ससारके राष्ट्रोके बीच स्वतत्र पद पानेके लिए उन्होने किये तो मेरे मनमे यही विचार रहा है।

(ह० से०, १३.४.४०)

सी० एफ० एड्रूजकी मृत्युके रूपमें न केवल भारतने, बल्कि मानवताने अपनी एक सच्ची सतान और सेवकको खो दिया। फिर भी उनकी मृत्यु पीड़ासे छुटकारा और ससारमे जिस मिशनको लेकर वे आये थे, उसकी

पूर्ति ही कही जायगी । वे उन हजारो लोगोके हृदयमें जीवित रहेंगे, जिन्होने उनकी रचनाओंको पढकर या उनके वैयक्तिक सपर्कमें आकर कुछ भी लाभ उठाया है। मेरी रायमे तो चार्ली एड्रूज महान् और सर्वोत्तम अग्रेजोमेंसे एक थे और चूकि वे इगलैण्डकी एक अच्छी सतान थे, भारतकी भी अच्छी सतान हुए। जो कुछ उन्होने यहा किया, सब मानवता और प्रभु ईसामसीहके लिए ही। अबतक मुझे सी० एफ० एड्रूजसे उत्तम मनुष्य या ईसाई नही मिला है। भारतने उन्हें 'दीनबंधु' की उपाधि दी, जिसके वे सभी तरहके दीन-दलितोके सच्चे मित्र होनेके कारण पूर्ण अधिकारी थे। (दी० अ०, पृष्ठ १०२)

जैसा सदा होता है, इस स्मारकके लिए भी अपने आप ही चदा नही आयेगा। उसके लिए सगठनकी जरूरत पडेगी। सबसे वाछनीय तो यह है कि दीनबधुके बहुसख्यक भक्तोको यह काम खुद अपने ऊपर उठा लेना चाहिए। इसलिए यह प्रकाशित करते हुए आनद होता है कि आगरामें यह काम वहाके छात्र करने जा रहे है। इससे अच्छा और क्या हो सकता है? उन्हें इस सग्रहके लिए, जो आखिरकार एक छोटी-सी रकम है, सर्वत्र सगठन करना चाहिए। चार्ली एड्रूज बहुत ऊचे दर्जेके शिक्षा-शास्त्री थे। शिक्षाशास्त्रीके रूपमें ही वह अपने मित्र और प्रधान प्रिंसिपल रुद्रकी मदद करने आए थे। अपने अतिम गृहके रूपमें उन्होने अतर्राष्ट्रीय ख्यातिकी एक शिक्षण-सस्थाको चुना था। उसके निर्माणके लिए उन्होने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। अगर एड्रूजके घनिष्ट सपर्कका खयाल छोड़ दिया जाये तो भी शातिनिकेतन खुद छात्र-ससारकी भक्ति पानेके योग्य है। इसलिए मै आशा करता हू कि हिंदुस्तानके छात्र चदा इकट्ठा करनेके काममें अग्र भाग लेंगे। इनके बाद दीन जनोकी बारी आती है जिन्होने कि एड्रूजकी सेवाओसे विशेष रूपसे फायदा उठाया है। यदि यह पाच लाख, हजारो छात्रो और दीन जनोकी भेंटोसे पूरा हो जाए तो बहुत

बडी, बहुत उचित, बात होगी, बनिस्वत इसके कि दीनबधुके कुछ ऐसे खास धनी मित्रोके दानसे उसकी पूर्ति कर ली जाए, जो उनके निकट सपर्कमे आए थे और जिन्हें उनके महत्त्वकी पूरी जानकारी थी ।

(ह० से०, १५ ६ ४०)

आज एड्रूज साहबकी सातवी पुण्य-तिथि है । उनके गुणोको हमें याद करना चाहिए । उनका जीवन बहुत सादा था । हम दोनो घने मित्र रहे हैं । उनकी चमडी गोरी थी, लेकिन वह इतने सादे थे और देहातियोसे मिलते-जुलते थे कि वह अग्रेज है, ऐसा पहिचानना कठिन हो जाता था । उनको कपडे पहननेका भी शऊर न था । मोटेसे बदनपर ढीली-ढाली धोती किसी तरह लपेट लेते थे । उनको ऊपरके दिखावेसे काम न था । उनका दिल सोनेका था ।　　　　(प्रा० प्र०, ५ ४ ४७)

: २६ :

वैद्यनाथ ऐयर

मदुराके एक सनातनी सज्जनने शिकायत करते हुए मुझे लिखा था कि वहा सुप्रसिद्ध मीनाक्षी-मदिर जिस तरीकेसे खोला गया वह ठीक नही था । मैने उस शिकायतको श्री वैद्यनाथ ऐयरके पास भेज दिया था और एक दूसरे मित्रको भी उसके बारेमे लिखा था । उन सज्जनने मेरे पास उक्त शिकायतका स्पष्ट प्रतिवाद भेजा और अपने पत्रमें उन्होने यह भी लिखा कि सनातनियोने श्री वैद्यनाथ ऐयरको इतना ज्यादा सताया है कि उनका हृदय विदीर्ण हो गया है । इसपर मैने उन्हे एक लबा तार भेजा कि उन्हे सतानेवाले उनके बारेमें चाहे जो कहे या करें, उन्हे उसपर ध्यान

नही देना चाहिए। एक धार्मिक सुधारकके रूपमे उन्हे तो पूरी अनासक्तिसे काम करना चाहिए और अत्याचारो तथा बुरी-से-बुरी स्थितिमें भी स्थिर चित्त रहना चाहिए। मेरे तारका उन्होने यह आश्वासनप्रद उत्तर दिया, "भगवती मीनाक्षीकी कृपा और आपके आशीर्वादसे स्वाभाविक शाति प्राप्त कर ली है। काम जारी है। आशा है कि दूसरे बडे-बडे मदिर भी जल्दी ही खुल जाएगे। आपका स्नेह और आशीर्वाद मुझे बडे-से-बडा सहारा दे रहे है।" यह उत्तर इस महान् सुधारकके अनुरूप ही है। अस्पृश्यता-निवारण प्रवृत्तिके अत्यत विनम्र और मूक कार्यकर्त्ताओमेसे श्री वैद्यनाथ ऐयर है। वे एक ईश्वरभीरु मनुष्य है।

दिल्लीके श्रीव्रजकृष्ण चादीवालाने, जो दक्षिणकी तीर्थयात्रा करने गये थे, अपने मदुराके अनुभवको इस प्रकार लिखा है

" श्री वैद्यनाथ ऐयरके घरपर मैंने अनुभव किया कि उनके जैसे सुधारकोको मंदिर-प्रवेशके कारण कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। मैंने अगर खुद अपनी आंखो न देखा होता कि श्री वैद्यनाथ ऐयरपर कैसी-कैसी बीत रही है तो मैं कभी विश्वास नहीं कर सकता था कि मनुष्य-स्वभाव इतना नीचे उतर सकता है, जैसा कि मैंने मदुरामें देखा। उनके प्रति सनातनियोका बर्ताव अत्यंत अनुचित रहा है। विरोधियोंने यह भी एक तरीका अख्त्यार किया है कि वैद्यनाथ ऐयरके बारेमें झूठी बातोका प्रचार किया जाये; किंतु वे तथा उनकी पत्नी दोनो ही इन तमाम अत्याचारोको बहादुरीसे बर्दाश्त कर रहे हैं।" (ह० से०, २३.१२ ३९)

: २७ :

कबीन

कबीन नामक एक व्यक्ति जोहान्सबर्गमे रहनेवाले चीनी लोगोके अगुवा भी थे। जोहान्सबर्गमें उनकी सख्या कोई तीन-चार सौ होगी। वे सभी व्यापार या छोटी-मोटी खेतीका काम करते थे। भारत कृषि-प्रधान देश है। पर मेरा यह विश्वास है कि चीनी लोगोने खेतीको जितना बढाया है उतना हम लोगोने नही। अमरीका आदि देशोमें खेतीकी जो प्रगति हुई है वह आधुनिक है और उसका तो वर्णन ही नही हो सकता। उसी प्रकार पश्चिमी खेतीको मै अभी प्रयोगावस्थामें मानता हू। पर चीन तो हमारे ही जैसा प्राचीन देश है और वहा प्राचीन कालसे ही खेतीमे तरक्की की गई है। इसलिए चीन और भारतकी तुलना करे तो हमे उससे कुछ शिक्षा मिल सकती है। जोहान्सबर्गके चीनियोकी खेती देखकर और उनकी बाते सुनकर तो मुझे यही मालूम हुआ कि चीनियो-का ज्ञान और उद्योग भी हम लोगोसे बहुत बढकर है। जिस जमीनको हम ऊसर समझकर छोड देते है, उसमें वे अपने खेतीके सूक्ष्म ज्ञानके कारण बीज बोकर अच्छी फसल पैदा कर सकते है। यह उद्यमशील और चतुर कौम भी उस खूनी कानूनकी श्रेणीमें आती थी। इसलिए उसने भी भारतीयोके साथ युद्धमें शामिल होना उचित समझा। फिर भी शुरूसे आखिरतक दोनो कौमोका हरएक व्यवहार अलग-अलग होता था। दोनो अपनी-अपनी सस्थाओके द्वारा झगड रही थी। इसका शुभ फल यह होता है कि जबतक दोनो जातिया अपने निश्चयपर दृढ रहती है तबतक तो दोनोको फायदा होता है, पर आगे चलकर यदि एक फिसल भी जाय तो इससे दूसरी जातिको कोई हानिकी सभावना नही रहती। वह गिरती तो हरगिज नही। आखिर बहुतसे चीनी तो फिसल गये, क्योकि उनके

नेताने उन्हें धोखा दिया। नेता कानूनके वश तो नही हुए, पर एक दिन किसीने आकर मुझसे कहा कि वे बिना हिसाब-किताब समझाए ही कही भाग गये। नेताके चले जानेके बाद अनुयायियोका दृढ रहना तो हमेशा मुश्किल ही पाया गया है। फिर नेतामें किसी मलिनताके पाए जानेपर तो निराशा दूनी बढ जाती है। पर जिस समय पकडा-धकडी शुरू हुई उस समय तो चीनी लोगोमें बडा जोश फैला हुआ था। उनमेंसे शायद ही किसीने परवाने लिए हो, इसीलिए भारतीय नेताओके साथ चीनियोके कर्त्ता-धर्त्ता मि० क्वीन भी पकडे गये। इसमें शक नही कि कुछ समयतक तो उन्होने बहुत अच्छी तरह काम किया था। (द० अ० स० १६२५)

: २८ :

अहमद मुहम्मद काछलिया

भारतीयोके भाषण शुरू हुए। इस प्रकारके, और सच पूछा जाय तो इस इतिहासके, नायकका परिचय तो मुझे अभी देना ही बाकी है। जो वक्ता खडे हुए उनमे स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे। उन्हें तो मै एक मवक्किल और दुभाषियेकी हैसियतसे जानता था। वे अभी-तक किसी आंदोलनमे आगे होकर भाग नही लेते थे। उनका अँग्रेजी भाषाका ज्ञान कामचलाऊ था। पर अनुभवसे उन्होने उसे यहातक बढा लिया कि जब वे अग्रेज वकीलोके यहा अपने मित्रोको ले जाते तब दुभाषियेका काम वे स्वय ही करते थे। वैसे उनका पेशा दुभाषियेका नही था। यह काम तो वे बतौर मित्रके ही करते थे। पहले वे कपडेकी फेरी लगाते थे। बादमे उन्होने अपने भाईके साझेमे छोटे पैमानेपर व्यापार शुरू किया। वे सूरती मेमन थे। उनका जन्म सूरत जिलेमें हुआ था। सूरती मेमनोमें उनकी

खासी प्रतिष्ठा थी। गुजरातीका ज्ञान भी मामूली ही था। हा, अनुभवसे उन्होने उसे खूब वढा लिया था। पर उनकी बुद्धि इतनी तेज थी कि वे चाहे जिस बातको बडी आसानीसे समझ लेते थे। मामलोकी उलझन इस प्रकार स्पष्ट करते कि मै तो कई बार चकित हो जाता। वकीलो के साथ कानूनी दलीले करनेमें भी जरा न हिचकते थे। उनकी कई दलीले तो ऐसी होती कि वकीलोको भी विचार करना पडता।

वहादुरी और एकनिष्ठामें उनसे वढकर आदमी मुझे न तो दक्षिण अफ्रीकामे मिला और न भारतमे। कौमके लिए उन्होने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी थी। उनके साथ जितनी बार मुझे काम पडा, उन सब प्रसगो-पर मैंने उन्हे एकवचनी ही पाया। स्वय चुस्त मुसलमान थे। सूरती मेमन-मसजिदके मुतवल्लियोमें वे भी एक थे। पर साथ ही वे हिंदू और मुसलमानोके लिए समदर्शी थे। मुझे ऐसा एक भी प्रसग याद नही आता जव उन्होने धर्मांध बनकर हिंदुओके खिलाफ किसी बातकी खीचातानी की हो। वे बिलकुल निडर और निष्पक्ष थे। इसलिए मौकेपर हिंदुओ और मुसलमानोको भी उनका दोष दिखाते समय उन्हे जरा भी सकोच न होता था। उनकी सादगी और निरभिमानता अनुकरणीय थी। उनके साथ मेरा जो बरसोका सबध रहा, उससे मुझे यह दृढ विश्वास हो चुका है कि स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया-जैसा पुरुष कौमको फिर मिलना कठिन है।

प्रिटोरियाकी सभामे वोलनेवालोमे एक पुरुष यह भी थे। उन्होने बहुत ही छोटा भाषण दिया। वे बोले—"इस खूनी कानूनको हरएक हिंदुस्तानी जानता है। उसका अर्थ हम सव जानते है। मि० हास्किनका भाषण मैंने खूब ध्यान लगाकर सुना। आपने भी सुना। मुझपर तो उसका परिणाम यही हुआ है कि मै अपनी प्रतिज्ञापर और भी दृढ हो गया हू। ट्रासवाल सरकारकी ताकतको हम जानते है, पर इस खूनी

कानूनसे और अधिक किस बातका डर सरकार हमें बता सकती है ? जेल भेजेगी, जायदाद बेच देगी , हमे देशसे बाहर कर देगी—फासीपर लटका देगी । यह सब हम बरदाश्त कर सकते हैं । पर इस कानूनके आगे सिर नही झुका सकते ।" मै देखता था कि यह सब बोलते हुए अहमद मुहम्मद काछलिया बडे उत्तेजित होते जा रहे थे । उनका चेहरा लाल हो रहा था । सिर और गर्दनकी रगे जोशके मारे बाहर उभड आई थी । बदन काप रहा था । अपने दाहिने हाथकी उगलिया गर्दनपर रखकर वे गरजे—"मै खुदाकी कसम खाकर कहता हू कि मै कत्ल हो जाऊगा, पर इस कानूनके आगे कभी अपना सर नही झुकाऊगा । और मै चाहता हू कि यह सभा भी यही निश्चय करे ।" यह कहकर वह बैठ गये । जब उन्होने गर्दनपर हाथ रक्खा तब मचपर बैठे हुए कितने ही लोगोके मुहपर मुस्कराहट दिखाई दी । मुझे याद है कि मै भी उन्हीमेंसे था । जितने जोरके साथ काछलिया सेठने ये शब्द कहे थे उतना जोर अपनी कृतिमे वे दिखा सकेंगे या नही, इस बातमें मुझे जरा सदेह था । पर जब-जब वह सदेह-वाली बात मुझे याद आती है तो आज यह लिखते समय भी मुझे अपने ऊपर लज्जा मालूम होती है । इस महान् युद्धमें जिन बहुत-से आदमियोने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षरश पालन किया था, काछलिया सेठ उनमें अग्रगण्य थे । मैंने कभी उन्हें अपना रग पलटते हुए नही देखा ।

सभाने तो इस भाषणका करतल-ध्वनिसे स्वागत किया । मेरी अपेक्षा अन्य सभासद उन्हें इस समय बहुत अधिक जानते थे, क्योकि उनमेंसे अधिकाशको इस 'गुदडीके लाल'से व्यक्तिगत परिचय भी था । वे जानते थे कि काछलिया जो करना चाहते है, वही करते है और जो कहते है उसे अवश्य ही पूरा करते है । और भी कई जोशीले भाषण हुए । काछलिया सेठके भाषणको उनमेंसे इसीलिए छाट लिया कि उनकी बादकी कृतिसे उनका यह भाषण भविष्यवाणी साबित हुआ । जोशीले भाषणोंके देने-वाले सभी अततक नही टिक सके । इस पुरुष-सिहकी मृत्यु अपने देश-

भाइयोकी सेवा करते-करते ही सन् १९१८में अर्थात् इस युद्ध (दक्षिण अफ्रीकाका) के खतम होनेके चार साल बाद हुई।

उनका एक और स्मरण है। उसे और कही नही दिया जा सकता, इसलिए यहीपर लिख देता हू। टॉल्स्टॉय फार्ममें सत्याग्रहियोके कुटुब रहते थे। वहा आपने अपने पुत्रोको भी बतौर उदाहरणके तथा सादगी और जाति-सेवाका पाठ पढनेके लिए रक्खा था और इसीको देखकर अन्य मुसलमान माता-पिताओने भी अपने बच्चे इस फार्मपर भेजे थे। जवान काछलियाका नाम अली था। उम्र १०-१२ सालकी होगी। अली नम्र, चपल, सत्यवादी और सरल लडका था। लडाईके बाद, पर काछलिया सेठके पहले, उसे भी फरिश्ते खुदाके दरबारमे ले गये, पर मुझे विश्वास है कि यदि वह भी जीता रहता तो अपने पिताकी कीर्तिको और भी पल्लवित करता।

. .

कई भारतीय व्यापारियोको अपने व्यापारके लिए गोरे व्यापारियोकी कोठियोपर अवलबित रहना पडता था। वे लाखो रुपयोका माल बिना किसी प्रकारकी रहनके केवल भारतीय व्यापारियोके विश्वासपर दे दिया करते है। सचमुच, भारतीय व्यापारकी प्रामाणिकताका यह एक सुदर नमूना है कि वे वहापर इतना विश्वास सपादन कर सके है। काछलिया सेठके साथ भी कई अग्रेजी फर्मोका इसी प्रकारका लेन-देनका सबध था। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे, किसी प्रकार सरकारकी ओरसे इशारा मिलते ही, ये व्यापारी काछलिया सेठसे अपनी वे सब मुद्राए मागने लगे, जो उनकी तरफ लेना निकलती थी। उन्होने तो काछलिया सेठको बुलवाकर यहातक कहा कि 'यदि आप इस युद्धसे अपनेको अलग रक्खें तब तो आपको उन मुद्राओके लिए कुछ भी जल्दी करनेकी आवश्यकता नही है। अगर आप यह न करें तो हमें यह भय हमेशा रहेगा कि सरकार आपको न जाने किस वक्त पकड ले और यदि ऐसा ही हुआ तो

फिर हमारी मुद्राओका क्या होगा ? इसलिए यदि इस युद्धमेंसे अपना हाथ हटा लेना आपके लिए किसी प्रकार असभव हो तो हमारी मुद्राए आपको इसी समय लौटा देनी चाहिए ।' इस वीर पुरुपने उत्तर दिया—"युद्ध तो मेरी व्यक्तिगत वस्तु है । मेरे व्यापारके साथ उसका कोई सवध नही है । अपने धर्म, अपनी जातिके सम्मान और स्वय मेरे स्वाभिमानकी रक्षाके लिए यह युद्ध छिडा हुआ है । आपने मुझे केवल विश्वासपर जो माल दिया है उसके लिए मै आपका जरूर एहसानमद हू । पर इसलिए मै न तो उस कर्जको और न अपने व्यापारको ही सर्वोपरि स्थान दे सकता हू । आपके पैसे मेरे लिए सोनेकी मुहरें हैं । अगर मै जिदा रहा तो अपने आपको वेचकर भी आपके पैसे लौटा दूगा । पर मान लीजिए कि मेरा और कुछ हो गया तो उस हालतमें आप यह विश्वास रक्खें कि मेरा माल और तमाम उगाही आपके हाथोमें ही है । आजतक आपने मेरा विश्वास किया है । मै चाहता हू कि आगेके लिए भी आप इसी प्रकार मेरा विश्वास करे ।" यह दलील विलकुल ठीक थी । काछलियाकी दृढताको देखते हुए गोरोको उनपर और भी विश्वास होना चाहिए था । पर वात यह थी कि इस समय उन लोगोपर इसका कोई असर नही हो सकता था । हम सोए हुए आदमीको तो जगा सकते हैं, पर सोनेका ढोग करनेवालेको नही । यही हाल उन गोरे व्यापारियोका भी हुआ । वे तो काछलिया सेठको दवाना चाहते थे, उनकी लेन-देन थोडे ही डूवने वाली थी !

मेरे दफ्तरमें लेनदारोकी एक मीटिंग हुई । मैंने उन्हें साफ-साफ शब्दोमें कह दिया कि आप इस समय जो काछलिया सेठको दवाना चाहते है उसमें व्यापार-नीति नही, राजनैतिक चाल है । व्यापारियोको यह काम शोभा नही देता । पर वे तो और भी चिढ गये । काछलिया सेठके माल और उगाही दोनोकी फेहरिस्त मेरे पास थी । उसे मैंने उन व्यापारियोको दिखाया । यह भी सिद्ध कर दिखाया कि उससे उन्हें अपना पूरा

धन मिल सकता है और कहा—"इतनेपर भी यदि आप इस तमाम व्यापारको किसी दूसरे आदमीके हाथ बेच देना चाहते हो तो काछलिया सेट अपना तमाम माल और उगाही खरीददारको सौपनेके लिए भी तैयार है। यदि यह भी आपको स्वीकार न हो तो दूकानमें जितना भी माल है, उसे मूल कीमतमे आप ले ले। केवल मालसे यदि काम न चले तो उसके वदलेमे उगाहीमेसे जिसे पसद करे ले ले।" पाठक सोच सकते है कि गोरे व्यापारी यदि इस प्रस्तावको मजूर कर लेते तो उनकी कोई हानि नही होती। (और कई मवक्किलोके सकट-समयमें मैने उनके कर्जकी यही व्यवस्था की थी) पर इस समय व्यापारी न्याय न चाहते थे। काछलिया नही झुके और वह दिवालिया देनदार सावित हुए।

पर यह दिवालियापन उनके लिए कलक-रूप नही, वल्कि भूषण था। इससे कौममे उनकी इज्जत कही वढ गई और उनकी दृढता और वहादुरीपर सवने उनको वधाई दी। यह वीरता तो अलौकिक है। सामान्य मनुष्य उसको भलीभाति नही समझ सकते। सामान्य मनुष्य तो यह कल्पना भी नही कर सकता कि दिवालियापन एक बुराई और वदनामीके वदले सम्मान और आदरकी वस्तु किस तरह हो सकती है। पर काछलियाको तो यही बात स्वाभाविक मालूम हुई। कई व्यापारियोने केवल इसी भयके कारण खूनी कानूनके सामने सिर झुका लिया कि कही उनका दिवाला न निकल जाय। काछलिया भी यदि चाहते तो इस नादारीसे छूट सकते थे। युद्धसे विमुख होकर तो वह अवश्य ही ऐसा कर सकते थे। पर इस समय मै कुछ और ही कहना चाहता हू। कई भारतीय काछलियाके मित्र थे जो उनको इस सकट-समयमे कर्ज दे सकते थे। पर यदि वह इस तरह अपने व्यापारको वचा लेते तो उनकी वहादुरीमे धव्वा नही लग जाता? कैदकी जोखिम तो उनकी भाति दूसरे सत्याग्रहियोके लिए भी थी। इसलिए यह तो उनसे हरगिज नही हो सकता था कि वे सत्याग्रहियोसे पैसे लेकर गोरे व्यापारियोका ऋण अदा कर दे।

पर सत्याग्रही व्यापारियोके समान ही अन्य भारतीय भी उनके मित्र थे, जिन्होने खूनी कानूनके सामने सिर झुका दिया था, और मै जानता हू कि उनकी सहायता भी काछलिया सेठको मिल सकती थी। जहातक मुझे याद है, एक-दो मित्रोने उन्हें इस विषयमें कहलाया भी था। पर उनकी सहायता लेनेका अर्थ तो यही न होता कि हमने इस बातको स्वीकार कर लिया कि खूनी कानूनको मानने ही मे बुद्धिमानी है। इसलिए हम दोनो इसी निश्चयपर पहुचे कि उनकी सहायता हमें कदापि स्वीकार नही करनी चाहिए। फिर हम दोनोने यह भी सोचा कि यदि काछलिया अपनेको नादार कहलाएगे तो उनकी नादारी दूसरोके लिए ढालका काम देगी, क्योकि अगर सौमें पूरी सौ नही तो निन्यानवे फीसदी नादारियोमें लेनदारको नुकसान उठाना पडता है। अगर उनके लेनेमेंसे फीसदी पचास भी मिल जाते है तो भी वे खुश होते है। जब फीसदी पिचहत्तर मिल जाय तब तो वे उसीको पूरे सौ ही मान लेते है, क्योकि दक्षिण अफ्रीकामें प्रतिशत ६) नही, बल्कि फी सैकडा २५) मुनाफा लिया जाता है। इसलिए अपनी लेनमेंसे फी सैकडा ७५ मिलनेतक तो वे उसे घाटेका व्यवहार नही मानते, किंतु नादारीमें पूरा-का-पूरा तो शायद ही कभी मिलता है। इसलिए कभी कोई लेनदार यह नही चाहता कि उसका कर्जदार दिवालिया हो जाय।

इसलिए काछलियाका उदाहरण दिखाकर गोरे लोग दूसरे व्यापारियोको धमकी नही दे सकते थे। और हुआ भी ऐसा ही। गोरे चाहते थे कि काछलियाको युद्धमे अपना हाथ हटा लेनेके लिए मजबूर करे और यदि काछलिया इसे मजूर न करें तो उनसे पूरे सौ-के-सौ वसूल करें। पर इन दोमेंसे उनका एक भी हेतु सिद्ध न हुआ। इसका तो उलटे एक विपरीत ही परिणाम हुआ। एक प्रतिष्ठित भारतीयको इस तरह नादारीका स्वागत करते हुए देखकर गोरे व्यापारी चकित हो गए और हमेशाके लिए शात हो गए। परतु इधर एक सालके अदर ही काछलियाके माल-

मेसे ही गोरे व्यापारियोको पूरे सौ-के-सौ मिल गए। दक्षिण अफ्रीकामें दिवालिया देनदारसे लेनदारको पूरे सौ-के-सौ मिल जाना अपनी जानकारीमें मेरा पहला ही अनुभव था। युद्ध शुरू हो गया था, पर फिर भी इससे गोरे व्यापारियोमे काछलियाका सम्मान बेहद बढ गया। आगे चलकर युद्ध-कालमें उन्ही व्यापारियोने काछलियाको मनमाना माल देनेके लिए अपनी तत्परता दिखाई। पर काछलियाका बल तो दिन-ब-दिन बढता ही जा रहा था। युद्धके रहस्यको भी वह भलीभाति समझ चुके थे। और यह तो कौन कह सकता था कि युद्ध शुरू होनेके बाद वह कितने रोज चलेगा। इसलिए नादारीके बाद हमने तो यही निश्चय कर लिया कि लबे-चौडे व्यापारकी झझटमे पडना ही नही। उन्होने भी निश्चय कर लिया कि अब, जबतक युद्ध समाप्त नही होता, उतना ही व्यापार किया जाय कि जिससे एक गरीब मनुष्य अपना निर्वाह कर सके, इससे ज्यादा नही। इसलिए गोरोने जो वचन दिया, उसका उपयोग उन्होने नही किया। काछलिया सेठके जीवनकी जिन घटनाओका वर्णन मै कर चुका हू, वे कमिटी को मीटिंगके बाद हुई हो सो बात नही, पर मैंने उन्हे यहापर इसीलिए लिख देना ठीक समझा कि उनको कही एक ही बार दे देना योग्य होगा। अगर तारीखवार देखा जाय तो दूसरा युद्ध शुरू होनेपर कितने ही समय बाद काछलिया अध्यक्ष हुए और नादार होनेके पहले, इसके बाद और भी कितना ही समय बीत गया।   (द० अ० स० १९२५)

: २६ :

अलबर्ट कार्टराइट

अलबर्ट कार्टराइट ('ट्रासवाल लीडर'के सपादक) बडे चतुर और अतिशय उदार हृदय सज्जन थे। वे अपने अग्रलेखो तकमें अक्सर भारतीयोका ही पक्ष लिया करते। मेरे और उनके बीच गहरा स्नेह-सबध हो गया था और मेरे जेल जानेके बाद वह जनरल स्मट्ससे भी मिले थे। जनरल स्मट्सने उन्हें सधिकर्ता स्वीकार किया तब मि० कार्टराइट कौमके अगुओंसे मिले। पर उन्होने यही उत्तर दिया कि हम लोग कानूनकी बारीकियोको नही जानते। गाधी जेलमें है। जबतक वह छोड नही दिये जाते इस विषयमें कोई सलाह-मशविरा करना हम अनुचित समझते है। हम सुलह तो चाहते है, पर यदि हमारे आदमियोको बिना छोडे ही सरकार सुलह करना चाहती हो तो गाधी जानें। आप गाधीसे मिलें। वह जो कहेगा, हम सब मजूर करेंगे। इसपर अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलनेके लिए आए। साथ ही जनरल स्मट्सका बनाया अथवा पसद किया हुआ समझौतेका मसविदा भी लाए थे। उसकी भाषा गोलमाल थी। वह मुझे पसद नही आई। फिर भी एक जगह कुछ दुरुस्ती करनेपर मै उसपर दस्तखत करनेके लिए तैयार हो गया। पर मैंने कहा कि बाहरवाले यदि इसे मानलें तो भी मै इसपर तबतक दस्तखत नही कर सकता जबतक जेलके साथियोकी आज्ञा अथवा सम्मति भी मै प्राप्त नही कर लेता। समझौतेका सार इस प्रकार था "भारतीय स्वेच्छापूर्वक अपने परवाने बदलवा लें। उनपर कानूनका कोई अधिकार न होगा। नवीन परवाना भारतीयोकी सलाहसे सरकार बनावे और यदि इसे भारतीय स्वेच्छापूर्वक ले लें तब तो खूनी कानून रद हो ही जायगा और स्वेच्छापूर्वक लिए गये नवीन परवानोको कानून, करार देनेके लिए सरकार एक नया कानून

बना लेगी।" खूनी कानूनको रद करनेकी बात इस मसविदेमें स्पष्ट नहीं लिखी गई थी। उसे स्पष्ट करनेके लिए मैंने अपनी समझके अनुसार एक सुधारकी सूचना की। पर अलबर्ट कार्टराइटने उसे पसन्द नही किया। उन्होनें कहा, "जनरल स्मट्सका यह आखिरी मसविदा है। स्वय मैंने भी इसे पसद किया है। और यह तो मै आपको विश्वास दिलाता हू कि अगर आप सब परवाने ले लें तब तो यह खूनी कानून रद हुआ ही समझिए।" मैंने कहा, "समझौता हो या न हो, लेकिन आपकी इस सहानुभूति और समझौतेकी कोशिशके लिए हम आपके सदाके लिए अनुग्रहीत होगे। मै एक भी अनावश्यक फेरफार करना नही चाहता। जिस भाषासे सरकारकी प्रतिष्ठाकी रक्षा होती हो उसका मै ख्वामख्वाह विरोध नही करूँगा। पर जहा अर्थके विषयमें स्वय मुझे शका है वहा तो मुझे अवश्य ही कुछ स्पष्टीकरणकी सूचना करनी चाहिए और अतमें यदि समझौता करना ही है तो दोनो पक्षोको कुछ परिवर्तन करनेका अधिकार जरूर ही होना चाहिए। जनरल स्मट्स पिस्तौल दिखाकर उसके बलपर कोई समझौता हमसे मजूर करानेकी व्यर्थकी कोशिश न करें। खूनी कानून-रूपी एक पिस्तौल तो पहले हीसे हमारे सामने है। अब इस दूसरे पिस्तौलका असर हमपर और क्या हो सकता है?" मि० कार्टराइट इसके उत्तरमें कुछ न कह सके। उन्होने यह मजूर किया कि मै आपका बताया यह परिवर्तन जनरल स्मट्सके सामने पेश कर दूगा। मैंने अपने साथियोसे भी मशविरा किया। भाषा तो उन्हे भी पसद नही आई, पर यदि उतने परिवर्तनके साथ जनरल स्मट्स समझौता करते हो तो हम भी उसे मजूर कर लें यह बात उन्हें पसद थी। बाहरसे जो लोग आए थे, वे भी अगुआओका यह सदेश लाए कि यदि उचित समझौता हो रहा हो तो कर लेना चाहिए। हमारी सम्मतिकी राह न देखी जाय। इस मसविदेपर मैंने मि० कवीन और थबी नायडूके भी दस्तखत लिए और तीनो दस्तखतोवाला मसविदा कार्टराइटको सौप दिया।

दूसरे या तीसरे दिन जोहान्सवर्गका पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट आया और मुझे जनरल स्मट्सके पास ले गया। उनकी मेरी बहुत-सी बातें हुई। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि मि० कार्टराइटके साथ मैंने चर्चा की थी। मेरे जेल जानेपर कौम दृढ रही, इसके लिए उन्होंने मुझे मुबारकबाद दिया और कहा—"आप लोगोके विषयमें मेरा कोई व्यक्तिगत दुर्भाव नही है। आप जानते ही है कि मै एक बैरिस्टर हू। मेरे साथ कितने ही भारतीय पढे भी है। मुझे तो यहा केवल अपना कर्तव्य-पालन करना है। गोरे लोग इस कानूनको चाहते है। आप यह भी स्वीकार करेगे कि उनमें भी अधिकाश बोअर नही, अंग्रेज ही है। आपने जो सुधार किया उसे मै मजूर करता हू। जनरल बोथाके साथ भी मै बातचीत कर चुका हू और मै आपको विश्वास दिलाता हू कि यदि आपमेंसे अधिकाश लोग परवाने ले लेंगे तो एशियाटिक एक्टको रद कर दूगा। स्वेच्छापूर्वक लिए जानेवाले परवानेको मजूर करनेवाले कानूनका मसविदा तैयार करनेपर उसकी एक नकल आपके पास नोटके लिए भेजूगा। मै नही चाहता कि यह आदोलन फिरसे जागे। आपके भावोका मै सम्मान करता हू।' (द०अ०स०१९२५)

: ३० :

राजासाहब कालाकांकर

राजासाहब कालाकाकर २० सितम्बरको असमय ही स्वर्ग सिधार गए। वे एक महान् हरिजन-सेवक थे। लगभग एक सालसे वे बीमार थे। मै पिछली बार जब कलकत्ते गया तो मै उन्हें मुश्किलसे पहचान सका। वहा वे अपना इलाज करा रहे थे। राजासाहब सयुक्त प्रातके एक अत्यत उदारहृदय तालुकेदार थे। उनके विषयमें निस्सदेह यह कहा

जा सकता है कि उन्होने यथाशक्ति अपना जीवन अपनी प्रजाके लिए बिताया। बडी सादी रहन-सहन थी। लोगोसे खूब दिल खोलकर मिलते थे। हरिजनोपर उनका उतना ही प्रेम था, जितना दूसरी जातियोपर। अपने प्रत्यक्ष आचरणके दृष्टातसे वे अपनी रियासतसे सवर्ण हिंदुओसे अस्पृश्यता छुडवाने और हरिजनो को भी वही सब अधिकार दिलवाने का प्रयत्न करते रहते थे, जो उनकी सवर्ण प्रजाको प्राप्त थे। राज्यके प्रबधाधीन तमाम विद्यालय, कुए और मदिर उन्होने हरिजनोके लिए खोल दिए थे। हमें आशा है कि रानीसाहिबा तथा कालाकाकरके अन्य राज-कुटुम्बी स्व० राजासाहबकी स्मृतिको अजर-अमर बनाए रखनेके लिए उनकी उस प्रेमपूर्ण उदारताका सदैव अनुसरण करते रहेंगे। (ह० से०, २६ १० ३१)

: ३१ :

हर्बर्ट किचन

हर्बर्ट किचन एक शुद्ध-हृदय अग्रेज थे। वे बिजलीका काम-काज करते थे। बोअरयुद्धमें उन्होने हमारे साथ काम किया। कुछ समय तक वे 'इंडियन ओपीनियन' के सपादक भी रहे थे। उन्होने मृत्यु समयतक ब्रह्मचर्यका पालन किया था। (द० अ० स० १९२५)

: ३२ :

जे० सा० कुमारप्पा

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन (राष्ट्रीय ऋण) के सबधमे जाच

करनेके लिए महासमिति (आल इंडिया कांग्रेस कमेटी) ने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्त्तमान अवसरपर एक अत्यंत महत्त्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रक्खे बिना न रहेगा। श्री बहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल-शाह और श्री कुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनंदनके अधिकारी हैं। समितिके संचालक श्री कुमारप्पा गुज-रात विद्यापीठके अध्यापक हैं, इसलिए उनके लिए इसमें कुछ विशेष त्याग नहीं है। वे तो राष्ट्र-सेवककी तरह नामांकित हैं, इसलिए उनका समय और श्रम तो राष्ट्रीय महासभाके चरणोंमें अर्पित हो ही चुका है। वे इस विशिष्ट कार्यके लिए पसंद किए गये, इसका कारण है उनका अर्थशास्त्रका सजग ज्ञान और संशोधन कार्यके प्रति उनकी लगन। रिपोर्टके लेखकोंका यह परिचय मैंने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोंका लिखा हुआ लेख नहीं, वरन् जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले हैं, और जो धावलीवाज उपदेशक नहीं, वरन् स्वयं जिस विषयके ज्ञाता हैं, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोंको तौल-तौलकर व्यवहारमें लाने वालोंकी यह कृति है। (हि० न०, ६. ८. ३१)

: ३३ :

आचार्य जे० बी० कृपलानी

मुजफ्फरपुरमें उस समय आचार्य कृपलानी भी रहते थे। उन्हें मैं पह-चानता था। जब मैं हैदराबाद गया था, उनके महात्यागकी, उनके जीवनकी और उनके द्रव्यसे चलनेवाले आश्रमकी बात डाक्टर चोइथ-रामके मुखसे सुनी थी। वह मुजफ्फरपुर कॉलेजमें प्रोफेसर थे, पर उस

समय वहा से मुक्त हो बैठे थे। मैंने उन्हें तार दिया। ट्रेन मुजफ्फरपुर आधीरातको पहुचती थी। वह अपने शिष्य-मडलको लेकर स्टेशन आ पहुचे थे, परतु उनके घरबार कुछ न था। वह अध्यापक मलकानीके यहा रहते थे। मुझे उनके यहा ले गए। मलकानी भी वहाके कालेजमें प्रोफेसर थे और उस जमानेमें सरकारी कालेजके प्रोफेसरका मुझे अपने यहा ठहराना एक असाधारण बात थी।

कृपलानीजीने बिहारकी और उसमे तिरहुत-विभागकी दीन-दशाका वर्णन किया और मुझे अपने कामकी कठिनाईका अदाज बताया। कृप-लानीजीने बिहारियोके साथ गाढा सबध कर लिया था। उन्होने मेरे कामकी बात वहाके लोगोसे कर रखी थी। (आ०, १९२७)

... ...

यह तो हुआ बिहारी-सघ। इनका मुख्य काम था लोगोके बयान लिखना। इसमें अध्यापक कृपलानी भला बिना शामिल हुए कैसे रह सकते थे? सिंधी होते हुए भी वह बिहारीसे भी अधिक बिहारी हो गये थे। मैंने ऐसे थोडे सेवकोको देखा है जो जिस प्रातमें जाते है वहीके लोगोमें दूध-शक्करकी तरह घुल-मिल जाते है और किसीको यह नही मालूम होने देते कि वे गैर प्रातके है। कृपलानी इनमें एक है। उनके जिम्मे मुख्य काम था द्वारपालका। दर्शन करने वालोसे मुझे बचा लेनेमे ही उन्होने उस समय अपने जीवनकी सार्थकता मान ली थी। किसीको हँसी-दिल्लगीसे और किसीको अहिंसक धमकी देकर वह मेरे पास आनेसे रोकते थे। रातको अपनी अध्यापकी शुरू करते और तमाम साथियोको हँसा मारते और यदि कोई डरपोक आदमी वहा पहुँच जाता तो उसका हौसला बढाते। (आ०, १९२७)

: ३४ :

वेंकटकृष्णय्या

छः वर्षके वाद आज आप लोगोसे मिलकर मुझे वडा आनंद हुआ है। आपको मालूम है कि पिछले दौरेके अवसरपर मेरा स्वास्थ्य वहुत गिर गया था और उसे सुधारनेके लिए ही मै आपके मैसूर राज्यमें आया था। इससे स्वभावत- उन दिनोकी स्मृतिया मेरे लिए अत्यत सुखद है। श्रीमान् महाराजा साहव, दीवान और अन्य अफसरोसे लेकर मैसूरकी प्रजातकके प्रगाढ़ प्रेमका मैने अनुभव किया था। अव आप लोग अच्छी तरहसे समझ सकते है कि आपके वीच आज पुन आनेसे मुझे कितनी अधिक खुशी न हुई होगी। मैसूरके पितामह स्व० श्री वेंकटकृष्णय्याके चित्रका मेरे हाथसे उद्घाटन कराके आपने मेरा आतरिक आनद और भी वढा दिया है। चित्रकारको उसकी कला-कुशलतापर मै वधाई देता हू। वड़ा ही सुदर और यथार्थ चित्रण किया है। कदाचित् आप सव यह न जानते होगे कि उस दिवगत महर्षिके सत्सगका आनद-लाभ मुझे उन दिनो कितना अधिक प्राप्त हुआ था। मैं उनके अनेक सद्गुणोसे काफी परिचित हो गया था। मैने तभी जान लिया था कि आप लोगोके हृदयोमे उनके लिए एक खास स्थान है। मुझे विश्वास है कि उनके अनेक गुणोका वखान करनेकी आप मुझसे आशा न करते होगे। आप तो यहाके निवासी ही ठहरे, इससे आपको मेरी अपेक्षा उनके गुणोका अधिक पता होगा। मै तो केवल यही आशा करता हू कि स्व० वेकटकृष्णय्याके जिन गुणोका हम लोग आज आदर कर रहे है, उन्हें हम स्वय अपने जीवनमे उतारने की चेष्टा करेंगे। इस आत्म-प्रशसासे सदा वचना ही अच्छा कि चलो, उस महान् आत्माके चित्रका उदघाटन गाधीके हाथसे करा दिया और उनकी स्मृतिमे एक अच्छा उत्सव भी हमने मना लिया! (ह० से०, १९ १ ३४)

: ३५ :

तात्यासाहब केळकर

दोस्तोने मुझसे कई बार पूछा कि तात्यासाहब केळकर जैसे महान देशभक्तकी मृत्युका उल्लेख क्यो नही किया, खासकर इसलिए कि वे मेरे राजनैतिक विरोधी थे और इससे भी ज्यादा इसलिए कि महाराष्ट्रके एक दलके लोगोमें मेरे बारेमें बहुत बडी गलतफहमी है। इन कारणोने मुझे अपील नही किया, हालाकि मेरे टीकाकारोके मुताबिक इन्ही कारणोको मुझे तात्यासाहबकी मृत्युका उल्लेख करनेके लिए प्रेरित करना चाहिए था।

मृत्यु जैसी बडी भारी घटनाका साधारण नियमके अनुसार उल्लेख कर देना मै बहुत अनुचित मानता हू। लेकिन देर हो जानेपर भी अपने पुराने-से-पुराने दोस्त हरिभाऊ पाठकके आग्रहके कारण अब मुझे ऐसा करना चाहिए।

यह बात मै एकदम स्वीकार कर लूगा कि अगर महत्त्वपूर्ण जन्मो और मृत्युओका उल्लेख करना 'हरिजन' के लिए साधारण नियम होता तो तात्यासाहबकी मृत्युका सबसे पहले उल्लेख किया जाना चाहिए। लेकिन 'हरिजन'-पत्रोको ध्यानसे पढनेवाले पाठकोने देखा होगा कि 'हरिजन' ने ऐसे किसी नियमको नही माना है। इस तरहकी घटनाओका उल्लेख करना मेरे अवकाश और किसी समयकी मेरी धुनपर निर्भर रहा है। पिछले कुछ अर्सेमे तो मै नियमसे अखबार भी नही पढ सका हू।

इसके खिलाफ कोई कुछ भी कहे, लेकिन मेरे राजनैतिक विरोधी होते हुए भी तात्यासाहबको मैने हमेशा अपना दोस्त माना था, जिनकी टीकासे मुझे लाभ होता था। स्व० लोकमान्यके माने हुए अनुयायीके

नाते मैं उन्हें जानता था और उनकी इज्जत करता था। मेरे खयालमें सन् १६१६ में अखिल भारत काग्रेस कमेटीकी एक बैठकमें मैंने यह सिफारिशकी थी कि काग्रेसका एक विधान तैयार किया जाय और कहा था कि अगर लोकमान्य, तात्यासाहबको और देशबधु श्री निशीथ सेनको मददके लिए मुझे दे दें तो मैं विधान तैयार करके काग्रेसके सामने पेश करनेकी जिम्मेदारी लेता हू। अपने साथ काम करनेवाले इन दोनो सज्जनोकी प्रशसामें मुझे यह कहना चाहिए कि हालाकि मैंने समयपर विधानका अपना मसविदा उनके सामने पेशकर दिया, लेकिन उन्होने कभी उसमें रुकावट नही डाली। विधानके मसविदेपर विचार करनेके लिए जो कमेटी बैठी, उसमें तात्यासाहबने हमेशा ऐसी टीका की, जिससे उसे सुधारने-सवारनेमें मदद मिली। इसके अलावा, मेरे सुझावपर ही तात्यासाहबको हमेशा काग्रेस वर्किंग कमेटीका सदस्य बनाया जाता था। मुझे ऐसा एक भी मौका याद नही आता, जब उनकी टीका—हालाकि वह कभी-कभी कड़वी होती थी—रचनात्मक न हुई हो। वह निडर थे, लेकिन सभ्य और मित्रता-भरे थे।

मुझे बहुत पहले यह मालूम हो चुका था कि वे मराठीके बडे विद्वान लेखक थे। मुझे इस बातका अफसोस रहा है कि मराठीके तात्यासाहब और स्व० हरिनारायण आप्टे जैसे आधुनिक लेखकोकी बुद्धिका अमृत-पान करनेके लिए मराठीका काफी अध्ययन करनेका मुझे कभी समय नही मिला। हिंदुस्तानी आकाशके श्री नरसोपत चिन्तामन केळकर-जैसे चमकीले तारेके अस्तकी उपेक्षा करना मेरे लिए असभ्य और अशोभन बात होगी। (ह० से०, ४१४८)

: ३६ :

केलकर (आइस डाक्टर)

डा० तलवलकर एक विचित्र प्राणीको लेकर आए। वह महाराष्ट्री है। उनको हिंदुस्तान नही जानता। पर मेरे ही जैसे 'चक्रम' है, यह मैंने उन्हें देखते ही जान लिया। वह अपना इलाज मुझपर आजमाने के लिए आए थे। बबईके ग्रेड मेडिकल कॉलेजमें पढते थे। पर उन्होने द्वारकाकी छाप—उपाधि—प्राप्त न की थी। मुझे बादमें मालूम हुआ कि वह सज्जन ब्रह्मसमाजी है। उनका नाम है केलकर। बडे स्वतत्र मिजाजके आदमी है। बरफके उपचारके बडे हिमायती है।

मेरी बीमारीकी बात सुनकर जब वह अपने बरफके उपचार मुझपर आजमानेके लिए आए तबसे हमने उन्हें 'आइस डाक्टर' की उपाधि दे रक्खी है। अपनी रायके बारेमे वह बडे आग्रही है। डिग्रीधारी डाक्टरोकी अपेक्षा उन्होने कई अच्छे आविष्कार किए है, ऐसा उन्हें विश्वास है। वह अपना यह विश्वास मुझमें उत्पन्न नही कर सके, यह उनके और मेरे दोनोके लिए दु खकी बात है। मै उनके उपचारोको एक हद तक तो मानता हू; पर मेरा खयाल है कि उन्होने कितने ही अनुमान बाधनेमे कुछ जल्दबाजी की है। उनके आविष्कार सच्चे हो या गलत, मैंने तो उन्हें उनके उपचारका प्रयोग अपने शरीरपर करने दिया। बाह्य उपचारोसे अच्छा होना मुझे पसद था। फिर ये तो बरफ अर्थात् पानीके उपचार थे। उन्होने मेरे सारे शरीरपर बरफ मलना शुरू किया। यद्यपि इसका फल मुझपर उतना नही हुआ, जितना कि वह मानते थे, तथापि जो मै रोज मृत्युकी राह देखता पडा रहता था सो अब नही रहा। मुझे जीनेकी आशा बधने लगी। कुछ उत्साह भी मालूम होने लगा। मनके उत्साहके साथ-साथ

शरीरमें भी कुछ ताजगी मालूम होने लगी। खुराक भी थोडी बढी। रोज पाच-दस मिनट टहलने लगा। "अगर आप अडेका रस पियें तो आपके शरीरमें इससे भी अधिक शक्ति आ जावेगी, इसका मैं आपको विश्वास दिला सकता हू, और अडा तो दूधके ही समान निर्दोष वस्तु होती है। वह मास तो हरगिज नही कहा जा सकता। फिर यह भी नियम नही है कि प्रत्येक अडेसे बच्चे पैदा होते ही हो। मैं साबित कर सकता हू कि ऐसे निर्जीव अडे सेये जाते है जिनमेंसे बच्चे पैदा नही होते।"—उन्होंने कहा। पर ऐसे निर्जीव अडे लेनेको भी मैं तो राजी न हुआ। फिर भी मेरी गाडी कुछ आगे चली और मैं आस-पासके कामोमें थोड़ी बहुत दिलचस्पी लेने लगा। (आ०, १९२७)

: ३७ :

केलप्पन

श्री केलप्पन मेरी रायमें भारतवर्षके अच्छे-से-अच्छे मूक सेवकोमेंसे एक है। उन्हें कभी भी प्रतिष्ठित पद मिल सकता था। मलाबारके वे प्रसिद्ध लोकसेवक है, परन्तु वे जानबूझकर 'दूरित' और 'अस्पृश्य' लोगोकी सेवामें कूद पडे है। वाईकोमके सत्याग्रहके समय मुझे उनके साथ काम करनेका आनद और सम्मान प्राप्त हुआ था। उसके पहले लबे समयस और उसके बाद से उन्होने दलित वर्गकी उन्नति में अपना जीवन लगाया है। जनता जानती है कि लबे समयतक राह देखनेके बाद गुरूवायुरका मदिर हरिजनोके लिए खुलवानेके प्रयत्नमें उन्होने प्राणार्पण करनेका अटल निश्चय कर लिया था। (म० डा०, ५.११.३२)

: ३८ :

हरमन कैलेनबेक

मि० कैलेनबेकका टॉल्स्टॉय फार्मपर और सो भी हमारे जैसा रहना एक आश्चर्यजनक वस्तु थी। गोखले सामान्य बातोसे आकर्षित होनेवाले पुरुष नही थे। कैलेनबेकके जीवनमें यह महान परिवर्तन देखकर वह भी अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो गए थे। मि० कैलेनबेकने कभी धूप-जाडा नही सहा था, न किसी प्रकारकी मुसीबत पहले उठाई थी। अर्थात् स्वच्छद जीवनको उन्होने अपना धर्म बना लिया था। ससारके आनदोका उपभोग लेनेमें उन्होने किसी प्रकारकी कसर नही रहने दी थी। धनसे जितनी भी चीजें खरीदी जा सकती है उन सबको प्राप्त करनेके लिए उन्होने कभी कुछ उठा नहीं रक्खा था।

ऐसे पुरुषका फार्मपर रहना, वही खाना-पीना, फार्मवासियोके जीवनके साथ अपनेको पूर्णतया मिला देना, कोई ऐसी-वैसी बात नही थी। भारतीयोको इस बातपर बडा आश्चर्य और आनद भी हुआ। कितने ही गोरोने तो उन्हें मूर्ख या पागल ही समझ लिया, कितनोंके दिलोमें उनकी त्याग-शक्तिके कारण उनके प्रति आदर बढ गया। कैलनबेकने अपने त्यागपर न तो कभी पश्चाताप किया और न उन्हें वह दु ख-रूप मालूम हुआ। अपने वैभवसे उन्हें जितना आनन्द प्राप्त हुआ था, उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक आनद वह अपने त्यागसे पा रहे थे। सादगीसे होनेवाले सुखोका वर्णन करते-करते वह तल्लीन हो जाते, यहातक कि कई बार तो उनके श्रोताओको भी इस सुखका आस्वाद करनेकी इच्छा हो जाती। छोटेसे लेकर बडे तक सबके साथ वह इस तरह प्रेम-पूर्वक हिलमिल जाते कि उनका छोटे-से-छोटा वियोग भी सबके लिए असह्य हो जाता। फल-पौधोका उन्हें बडा शौक था, इसलिए बागवानका काम

उन्होंने अपने अधीन रखा था और प्रतिदिन सुबह बालको और बडोसे उनकी काट-छाट, रक्षा वगैरहका काम लेते । मेहनत पूरी लेते, पर साथ ही उनका चेहरा इतना हँसमुख और स्वभाव ऐसा आनदमय था कि उनके साथ काम करते हुए सबको बडा आनद होता था । जब-जब कभी रातके २ बजेसे उठकर टॉल्स्टॉय फार्मसे कोई टोली जोहान्सबर्गको पैदल जाती तो कैनलबेक बराबर उसके साथ पाए जाते ।

उनके साथ धार्मिक सवाद हमेशा होते रहते थे । मेरे नजदीक अहिंसा, सत्य इत्यादि यमोको छोडकर तो और कौनसी बात हो सकती थी ? सर्पादि जानवरोको मारना भी पाप है, इस विचारसे जिस तरह दूसरे यूरोपियन मित्रोको आघात पहुचा ठीक उसी तरह पहले-पहल मि० कैलनबेकको भी पहुचा, पर अतमें तात्विक दृष्टिसे उन्होने इस सिद्धातको कबूल कर लिया । हम लोगोके साथ सबध होते ही इस बातको तो उन्होने पहले ही मान लिया था कि जिस बातको बुद्धि स्वीकार करे उसपर अमल करना भी योग्य और उचित है । इसी कारण वह अपने जीवनमें बडे-से-बड़े परिवर्तन बिना किसी प्रकारके सकोचके एक क्षणमें कर सकते थे ।

अब तो, चूकि सर्पादिको मारना अयोग्य पाया गया, इसलिए मि० कैनलबेकको उनकी मित्रता भी सपादन करनेकी इच्छा होने लगी । पहलेपहल तो उन्होने भिन्न-भिन्न जातिके सापोकी पहचान जाननेके लिए सापोसे सबध रखनेवाली किताबें इकट्ठी की । उनसे उनको पता चला कि सभी सर्प जहरीले नही होते; बल्कि कितने ही तो खेतीकी फसलकी रक्षा भी करते रहते है । हम सबको उन्होने सर्पोकी पहचान बताई और अतमें एक जबरदस्त अजगरको उन्होने पाला, जो फार्ममें ही उन्हें मिल गया था । उसे वह रोज अपने हाथोसे खिलाते थे । एक दिन नम्रता-पूर्वक मैंने मि० कैलनबेकसे कहा, "यद्यपि आपका भाव तो शुद्ध है तथापि अजगर शायद इसे समझ न सकता होगा; क्योकि आपका प्रेम

भयसे मिश्रित है। इसको छोडकर उसके साथ इस तरह क्रीडा करनेकी आपकी मेरी या किसीकी शक्ति नही है, और हम तो उसी हिम्मतको प्राप्त करना चाहते हैं। इसलिए इस सर्पके पालनमें सद्भाव तो देखता हू, पर अहिंसा नही देख सकता। हमारा कार्य तो ऐसा हो कि जिसे यह अजगर भी पहचान सके। यह तो हमारा हमेशाका अनुभव है कि प्राणिमात्र केवल भय और प्रीति इन दो ही बातोको समझते हैं। आप इस सर्पको जहरीला तो मानते ही नही। केवल इसका स्वभाव आदि जानने भरके लिए आपने इसे कैद कर रखा है। यह तो स्वच्छद हुआ। मित्रतामें तो इसके लिए भी स्थान नही है।

मि० कैलनबेक मेरी दलीलको समझ गए; पर उनको यह इच्छा नही हुई कि अजगरको जल्दी छोड दें। मैंने किसी प्रकारका दबाव तो डाला ही नही। सर्पके बर्तावमें मै भी दिलचस्पी ले रहा था। बच्चोको तो खूब आनद आ रहा था। सबसे कह दिया गया था कि उसे कोई सतावे नही; पर वह कैदी स्वय ही अपनी राह ढूढ रहा था। पिंजडेका दरवाजा खुला रह गया या शायद उसीने उसे किसी तरह खोल लिया—परमात्मा जाने क्या हुआ—दो-चार दिनके अदर ही, एक दिन सुबह जब मि० कैलन-बेक अपने कैदीको देखनेके लिए गए तो उन्होने पिंजडेको खाली पाया। वह और मै दोनो खुश हुए, पर इस प्रयोगके कारण सर्प हमेशाके लिए हमारी बातचीतका विषय हो गया। मि० कैलनबेक एक गरीब जर्मन को हमारे फार्मपर लाए थे। वह गरीब भी था और पगु भी। उसकी जाघ इतनी टेढी हो गई थी कि वह बिना लकडीके चल ही नही सकता था, पर वह बडा हिम्मतवर था। शिक्षित भी था, इसलिए सूक्ष्म बातोमें भी बडी दिलचस्पी लेता था। फार्मपर वह भी भारतीयोका साथी बनकर सबसे हिलमिलकर रहता था। उसने तो निर्भयतापूर्वक सर्पोके साथ खेलना तक शुरू कर दिया। छोटे-छोटे सर्पोको वह अपने हाथमें ले आता और अपनी हथेलीपर उन्हे खिलाता था। कौन कह सकता है कि फार्म

अधिक दिन तक चला होता तो इस जर्मनके प्रयोगका क्या परिणाम होता। इसका नाम आल्बर्ट था।

इस प्रयोगके कारण यद्यपि सापका डर तो कम हो गया था तथापि कोई यह न समझले कि फार्मके अदर किसीको सापका भय ही नही रहा अथवा सापको मारनेकी सबको मनाई थी। हिंसा-अहिंसा और पापका ज्ञान प्राप्त कर लेना एक बात है और उसके अनुसार आचरण करना दूसरी बात। जिसके दिलमें सापका डर है और जो प्राण त्याग करनेके लिए तैयार नही है, वह सकटके समयमें सापको कभी नही छोडेगा। मुझे याद है कि ऐसा ही एक किस्सा फार्मपर हुआ था। पाठकोने यह तो स्वय ही अदाजसे जान लिया होगा कि फार्मपर सर्पोका उपद्रव खूब रहा होगा, क्योकि हम लोग वहा गए उससे पहले वहा कोई बस्ती नही थी, बल्कि कितने ही समयसे वह निर्जन ही था। एक दिन मि० कैलनबेकके कमरेमें अचानक ऐसी जगह एक साप दिखाई दिया, जहासे उसे भगाना या पकडना भी करीब-करीब असभव था। पहलेपहल फार्मके एक विद्यार्थीने उसे देखा। उसने मुझे बुलाया और पूछा—अब क्या करना चाहिए ? उसे मारनेकी आज्ञा भी उसने चाही। वह बिना इजाजत भी सापको मार सकता था, परन्तु साधारणतया क्या विद्यार्थी और क्या दूसरे, मुझसे बिना पूछे ऐसी कोई बात नही करते थे। इस सापको मारनेकी इजाजत देना मैंने अपना धर्म समझा और आज्ञा दे भी दी। यह लिखते समय भी मुझे यह नही मालूम होता कि मैंने वह आज्ञा देनेमें कोई गलती की। सापको हाथमें पकड़ने जितनी अथवा अन्य किसी प्रकारसे फार्मवासियोको निर्भय कर देने जितनी शक्ति न तो मुझमें तब थी और न आज तक उसे प्राप्त कर सका हूं। (द० अ० स०, १९२५)

. . . .

बॉकसरस्टके लोगोंने दो दिन पहले ही सभा की थी। उसमें अनेक प्रकारका डर बताया गया था। कितने हीने तो यह कहा था कि यदि

भारतीय ट्रासवालमें प्रवेश करेंगे तो हम उनपर गोलिया चला देंगे। इस सभामें मि० कैलनवेक गोरोको समझानेके लिए गए थे, पर उनकी बात कोई सुनना ही नही चाहता था। कई तो उन्हें मारनेके लिए उठ खडे हो गये। मि० कैलनवेक स्वय कसरती जवान हैं। सैंडोसे उन्होने कसरत सीखी थी। उनको यो डराना मुश्किल था। एक गोरेने उन्हें द्वद्व युद्धके लिए आह्वान किया। कैलनबेकने कहा, "मैने शाति धर्मको स्वीकार किया है। इसलिए आपकी इच्छाकी पूर्ति करनेमें मै असमर्थ हू। पर मुझपर जिसे प्रहार करना हो, वह सुख-पूर्वक करे। मै तो इस सभामे बोलता ही रहूगा। आपने इसमें सभी गोरोको निमन्त्रित किया है। मै आपको यह सुनानेके लिए आया हू कि आपकी तरह सभी गोरे निर्दोष मनुष्योको मारनेके लिए तैयार नही हैं। एक ऐसा गोरा है, जो आपसे कह देना चाहता है कि आप भारतीयोपर जिन बातोका आरोप करते है, वे असत्य हैं। आप जो सोच रहे हैं वह भारतीय नही चाहते। उन्होने तो आपके राज्यकी आवश्यकता है और न वे आपके साथ लडना चाहते है। वे तो शुद्ध न्यायके लिए पुकार उठा रहे हैं। ट्रासवालमें हमेशा रहनेके हेतुसे वे प्रवेश नही कर रहे है, बल्कि उनपर जो अन्यायपूर्ण कर लादा गया है उसके खिलाफ सक्रिय पुकार उठानेके उद्देश्यसे वे यह कर रहे हैं। वे बहादुर है, हुल्लडबाज नही। वे आपके साथ लडेंगे नही, पर यदि आप उनपर गोलिया चलावेंगे तो उनको सहकर भी वे इसी तरह आगे बढते जावेंगे। आपकी बदूको या बल्लमके डरसे वे पीछे पैर नही हटावेंगे। वे तो स्वय दु ख सहकर आपके हृदयको पिघला देनेवाले लोग है। बस यही कहनेके लिए मै यहा आया हू। यह कहकर मैने तो आपकी सेवा ही की है। आप सावधान हो जाइए और अन्यायसे बचिए।" इतना कहकर मि० कैलनबेक शात हो गए। गोरे कुछ शरमा गए। वह द्वद्व युद्ध करने-वाला कसरती जवान तो अब उनका मित्र हो गया। (द० अ० स०, १९२५)

• • • • • •

हर्मन कैलनबेकसे मेरा परिचय युद्धके पहले ही हुआ था। वह जर्मन है और यदि जर्मन-अग्रजोका युद्ध न हुआ होता तो वह आज भारतमें होते। उनका हृदय विशाल है। वह बेहद भोले है। उनकी भावनाए बडी तीव्र है। वह शिल्पका धधा करते है। ऐसा एक भी काम नही कि जिसे करते हुए उन्होने ना की हो। जब मैंने जोहान्सबर्गसे अपना घरबार उठा लिया तब हम दोनो एक साथ ही रहते थे। मेरा खर्चा भी वही उठाते थे। घर तो खुद उन्हीका था। खाने वगैरहका खर्च देनेकी बात जब मै उठाता तब वह बहुत चिढ कर कहते कि उन्हें फिजूल-खर्चीसे बचानेवाला तो मै ही था और मुझे मना करते। उनके इस कथनमें कुछ सार अवश्य था। पर गोरोंके साथ मेरा जो व्यक्तिगत सबध था, उसका वर्णन यहा नही किया जा सकता। गोखले दक्षिण अफ्रीका आए तब जोहान्सबर्गमें कैलनबेकके बगलेमें ही ठहराए गये थे। गोखले इस मकानसे बडे प्रसन्न हुए। उनको पहुचानेके लिए कैलनबेक जजीबार तक मेरे साथ आए थे। पोलकके साथ वह भी गिरफ्तार हो गए थे और जेलकी सैर कर आए थे। अतमें जब दक्षिण अफ्रीका छोड़कर गोखलेसे विलायतमें मिलकर मै भारत लौट रहा था तब कैलनबेक भी साथमें थे। पर लडाईके कारण उन्हें भारत आनेकी आज्ञा नही मिली। अन्य जर्मनोके साथ इन्हें भी नजरबद रखा गया था। महायुद्धके समाप्त होते ही वह फिर जोहान्सबर्ग चले गए है और उन्होने अपना धधा शुरू कर दिया है। जोहान्सबर्गमें सत्याग्रही कैदियोके कुटुबोको एक साथ रखनेका विचार जब हुआ तब मि० कैलनबेकने अपना ११०० बीघेका खेत कौमको योही बिना किराया लिए सौंप दिया। (द० अ० स०, १९२५)

. . . . .

मेरी उनकी (मि० कैलनबेककी) मुलाकात अनायास हो गई थी। मि० खानके वह मित्र थे। मि० खानने देखा कि उनके अदर गहरा वैराग्यभाव था। इसलिए मेरा खयाल है कि उन्होने उनसे मेरी मुलाकात

कराई। जिन दिनो उनसे मेरा परिचय हुआ उन दिनोके उनके शौक और शाह-खर्चीको देखकर मै चौक उठा था, परतु पहली ही मुलाकातमें मुझसे उन्होने धर्मके विषयमें प्रश्न किया। उसमें बुद्ध भगवान्की बात सहज ही निकल पडी। तबसे हमारा सपर्क बढता गया, वह इस हद-तक कि उनके मनमे यह निश्चय हो गया कि जो काम मै करू वह उन्हें भी अवश्य करना चाहिए। वह अकेले थे। अकेलेके लिए मकान-खर्चके अलावा लगभग १२००) रुपये मासिक खर्च करते थे। यहासे अतको ठेठ इतनी सादगीपर आ गए कि उनका मासिक खर्च १२०) रुपये हो गया। मेरे घर-बार बिखेर देने और जेलसे आनेके बाद तो हम दोनो एकसाथ रहने लगे थे। उस समय हम दोनो अपना जीवन अपेक्षाकृत बहुत कडाईके साथ बिता रहे थे।

दूधके सबधमें जब मेरा उनसे वार्तालाप हुआ तब हम शामिल रहते थे। एक बार मि० कैलनबेकने कहा, "जब हम दूधमें इतने दोष बताते है तो फिर छोड क्यो न दें? वह अनिवार्य तो है ही नही।" उनकी इस रायको सुनकर मुझे बडा आनद और आश्चर्य हुआ। मैंने तुरत उनकी बातका स्वागत किया और हम दोनोने टाल्स्टाय-फार्ममें उसी क्षण दूधका त्याग कर दिया। यह बात १९१२की है। (आ०, १९२७)

• •

१९१४ ई०में जब सत्याग्रह-सग्रामका अत हुआ तब गोखलेकी इच्छासे मैंने इग्लैड होकर देश आनेका विचार किया था। इसलिए जुलाई महीनेमे कस्तूरबाई, कैलनबेक और मै, तीनो विलायत के लिए रवाना हुए। सत्याग्रह-सग्रामके दिनोमे मैंने रेलमे तीसरे दर्जेमे सफर शुरू कर दिया था। इस कारण जहाजमे भी तीसरे दर्जेके ही टिकट खरीदे, परतु इस तीसरे दर्जेमें और हमारे तीसरे दर्जेमें बहुत अतर है। हमारे यहा तो सोने-बैठनेकी जगह भी मुश्किलसे मिलती है और सफाईकी तो बात ही क्या पूछना! किंतु इसके विपरीत यहाके जहाजोमें जगह काफी रहती थी

और सफाईका भी अच्छा खयाल रखा जाता था। कपनीने हमारे लिए कुछ और भी सुविधायें कर दी थी। कोई हमको दिक न करने पाए, इस खयालसे एक पाखानेमें ताला लगाकर उसकी ताली हमें सौंप दी गई थी, और हम फलाहारी थे इसलिए हमको ताजे और सूखे फल देनेकी आज्ञा भी जहाजके खजाचीको दे दी गई थी। मामूली तौरपर तीसरे दर्जेके यात्रियोंको फल कम ही मिलते हैं और मेवा तो कतई नही मिलता। पर इस सुविधाकी वदौलत हम लोग समुद्रपर वहुत शातिसे १० दिन विता सके।

इस यात्राके कितने ही सस्मरण जानने योग्य है। मि० कैलनवेकको दूरवीनोंका वडा शौक था। दो-एक कीमती दूरवीनें उन्होंने अपने साथ रक्खी थी। इसके विपयमें रोज हमारी आपसमें वहस होती। मै उन्हें यह जचानेकी कोशिश करता कि यह हमारे आदर्शके और जिस सादगीको हम पहुचना चाहते है उसके अनुकूल नही है। एक रोज तो हम दोनोमे इस विपयपर गरमागरम वहस हो गई। हम दोनो अपनी कैविनकी खिड़कीके पास खडे थे।

मैंने कहा—"आपके और मेरे वीच ऐसे झगडे होनेसे तो क्या यह वेहतर नहीं है कि इस दूरवीनको समुद्रमे फेंक दे और इसकी चर्चा ही न करें?"

मि० कैलनवेकने तुरत उत्तर दिया—"जरूर, इस झगडेकी जडको फेंक ही दीजिए।"

मैंने कहा—"देखो, मै फेंके देता हू!"

उन्होंने वे-रोक उत्तर दिया—"मै सचमुच कहता हू, फेक दीजिए।"

और, मैंने दूरवीन फेंक दी। उसका दाम कोई सात पौड था, परतु उसकी कीमत उसके दामकी अपेक्षा मि० कैलनवेकके उसके प्रति मोहमे थी। फिर भी मि० कैलनवेकने अपने मनको कभी इस वातका दु:ख न

होने दिया। उनके मेरे बीच तो ऐसी कितनी ही बातें हुआ करती थी। यह तो उसका एक नमूना पाठकोको दिखाया है। (आ०, १९२७)

• • •

कैलनबेक मुझसे कहा करता था कि तुम इतनी तेजीसे आगे बढ रहे हो कि आखिर तुम्हें सब छोड देंगे, वे तुम्हारे साथ आगे बढ नही सकेंगे। मैंने कहा कि तुम भी छोड दोगे? तो कहने लगा, "मैं कैसे छोड सकता हू। हम तो एक जान दो शरीर जैसे हैं और मैंने तुमको अपनी गरजके लिए ढूढा है, तुमने मुझे नही ढूढा। मै तो तुम्हें कभी नही छोड सकता।" मगर अब तो वह भी छूट गया है। उसके विचार भी मुझसे अलग पड गए हैं। यहूदियोके बारेमें उसका इतना पक्षपात है कि क्या कहना! वह मानता है कि जर्मनी यहूदियोका दुश्मन है और जर्मनीसे लडनेवाले अग्रेजोके साथ मै लड रहा हू। उसका वह समर्थन नही कर पाया। जब वह यहा आया था तब मैंने उसे बहुत समझाया था कि क्यो मैंने यहूदियोको हिंसासे भरे हुए कहा है। आज तो वे हिंसाको ही अपने हृदयमें पोषण दे रहे है। मनमें हिंसा रहे तो बाहरकी अहिंसाका कोई अर्थ नही रहता। वह मेरी बात कुछ समझा भी सही। मैंने उसे इस आशयका एक खुला पत्र यहूदियोको लिखनेको कहा था। उसने लिखा भी, मगर उसे ऐसा लगता था कि इस बारेमें उसकी कौन सुनेगा। इसलिए अखबारोमें भेजा नही। मैंने कहा, "भले न सुनें, तुम अपना धर्म पूरा करो। भले ही फिलस्तीनमें जाकर लडो और मर जाओ, यह मै सहन करूगा, मगर आज जैसे यहूदियोका चल रहा है वह असह्य है। हृदयमे हिंसा है तो बाहर इससे उल्टा बतानेमें कोई अर्थ नही।" (का० क०, १९४२)

: ३६ :

कोट्स

दूसरे दिन एक वजे मै मि० वेकरके प्रार्थना-समाजमे गया। वहा कुमारी हैरिस, कुमारी गेव, मि० कोट्स आदिसे परिचय हुआ। सबने घुटने टेककर प्रार्थना की। मैंने भी उनका अनुकरण किया। प्रार्थनामे जिसका जो मन चाहता, ईश्वरसे मागता। दिन शातिके साथ वीते, ईश्वर हमारे हृदयके द्वार खोलो, इत्यादि प्रार्थना होती। उस दिन मेरे लिए भी प्रार्थना की गई। 'हमारे साथ जो यह नया भाई आया है, उसे तू राह दिखाना। तूने जो शाति हमें प्रदान की है, वह इसे भी देना। जिस ईसामसीहने हमें मुक्त किया है, वह इसे भी मुक्त करे। यह सब हम ईसामसीहके नामपर मागते हैं।' इस प्रार्थनामे भजन-कीर्तन न होते। किसी विशेष वातकी याचना ईश्वरसे करके अपने-अपने घर चले जाते। यह समय सबके दोपहरके भोजनका होता था, इसलिए सब इस तरह प्रार्थना करके भोजन करने चले जाते। प्रार्थनामे पाच मिनटसे अधिक समय न लगता।

कुमारी हैरिस और कुमारी गेवकी अवस्था प्रौढ थी। मि० कोट्स क्वेकर थे। ये दोनो महिलायें साथ रहती। उन्होने मुझे हर रविवारको ४ बजे चाय पीनेके लिए अपने यहा आमन्त्रित किया। मि० कोट्स जब मिलते तब हर रविवारको उन्हें मै अपना साप्ताहिक धार्मिक रोजनामचा सुनाता। मैंने कौन-कौन-सी पुस्तकें पढी, उनका क्या असर मेरे दिलपर हुआ, इसकी चर्चा होती। ये कुमारिकाएँ अपने मीठे अनुभव सुनाती और अपनेको मिली परम-शातिकी वाते करती।

मि० कोट्स एक शुद्ध भाववाले कट्टर युवक क्वेकर थे। उनसे मेरा

घनिष्ठ सबध हो गया। हम बहुत बार साथ घूमने भी जाते। वह मुझे दूसरे भाइयोके यहा ले जाते।

कोट्सने मुझे किताबोसे लाद दिया। ज्यो-ज्यो वह मुझे पहचानते जाते त्यो-त्यो जो पुस्तके उन्हे ठीक मालूम होती, मुझे पढनेके लिए देते। मैंने भी केवल श्रद्धाके वशीभूत होकर उन्हें पढना मजूर किया। इन पुस्तकोपर हम चर्चा भी करते।

ऐसी पुस्तकें मैने १८९३मे बहुत पढी। अब सबके नाम मुझे याद नही रहे है। कुछ ये थी—सिटी टेंपलवाले डा० पारकरकी टीका, पियर्सन की 'मेनी इनफॉलिबल प्रूफ्स', बटलर कृत 'एनेलाजी' इत्यादि। कितनी ही बाते समझमें न आती, कितनी ही पसद आती, कितनी ही न आती। यह सब मैं कोट्ससे कहता। 'मेनी इनफॉलिबल प्रूफ्स'के मानी है 'बहुतसे दृढ प्रमाण', अर्थात् बाइबिलमे रचयिताने जिस धर्मका अनुभव किया उसके प्रमाण। इस पुस्तकका असर मुझपर बिलकुल न हुआ। पारकरकी टीका नीतिवर्द्धक मानी जा सकती है, परतु वह उन लोगोकी सहायता नही कर सकती जिन्हे ईसाई-धर्मकी प्रचलित धारणाओपर सदेह है। बटलरकी 'एनेलाजी' बहुत क्लिष्ट और गभीर मालूम हुई। उसे पाच-सात बार पढना चाहिए। वह नास्तिकको आस्तिक बनानेके लिए लिखी गई मालूम हुई। उसमें ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेके लिए जो युक्तिया दी गई है, उनसे मुझे लाभ न हुआ, क्योकि यह मेरी नास्तिकता-का युग न था। और जो युक्तिया ईसामसीहके अद्वितीय अवतारके सबधमें अथवा उसके मनुष्य और ईश्वरके बीच सधि-कर्त्ता होनेके विषयमें दी गई थी, उनकी भी छाप मेरे दिलपर न पडी।

पर कोट्स पीछे हटनेवाले आदमी न थे। उनके स्नेहकी सीमा न थी। उन्होने मेरे गलेमे वैष्णवकी कठी देखी। उन्हें यह वहम मालूम हुआ और देखकर दुख हुआ। "यह अध-विश्वास तुम जैसोको शोभा नही देता। लाओ, तोड दू।"

"यह कठी तोडी नही जा सकती। माताजीकी प्रसादी है।"

"पर इसपर तुम्हारा विश्वास है?"

"मै इसका गूढार्थ नही जानता। यह भी नही भासित होता कि यदि इसे न पहनू तो कोई अनिष्ट हो जायगा, परतु जो माला मुझे माताजीने प्रेम-पूर्वक पहनाई है, जिसे पहनानेमें उसने मेरा श्रेय माना, उसे मै विना प्रयोजन नही निकाल सकता। समय पाकर जीर्ण होकर जव वह अपने-आप टूट जायगी तव दूसरी मगाकर पहननेका लोभ मुझे न रहेगा, पर इसे नही तोड़ सकता।"

कोट्स मेरी इस दलीलकी कद्र न कर सके, क्योकि उन्हे तो मेरे धर्मके प्रति ही अनास्था थी। वह तो मुझे अज्ञान-कूपसे उवारनेकी आशा रखते थे। वह मुझे यह वताना चाहते थे कि अन्य धर्मोमे थोडा-वहुत सत्याश भले ही हो, परतु पूर्ण सत्य-रूप ईसाई-धर्मको स्वीकार किए विना मोक्ष नही मिल सकता और ईसामसीहकी मध्यस्थताके विना पाप-प्रक्षालन नही हो सकता तथा पुण्य-कर्म सारे निरर्थक है। कोट्सने जिस प्रकार पुस्तकोसे परिचय कराया उसी प्रकार उन ईसाइयोसे भी कराया, जिन्हें वह कट्टर समझते थे। इनमें एक प्लीमथ व्रदर्सका भी परिवार था।

'प्लीमथ व्रदरन्' नामक एक ईसाई-सम्प्रदाय है। कोट्सके कराये वहुतेरे परिचय मुझे अच्छे मालूम हुए। ऐसा जान पड़ा कि वे लोग ईश्वर-भीरु थे; परतु इस परिवारवालोने मेरे सामने यह दलील पेश की—"हमारे धर्मकी खूवी ही तुम नही समझ सकते। तुम्हारी वातोंसे हम देखते है कि तुम हमेशा वात-वातमें अपनी भूलोका विचार करते हो, हमेशा उन्हे सुधारना पडता है, न सुधरे तो उनके लिए प्रायश्चित करना पडता है। इस क्रियाकाडसे तुम्हे मुक्ति कव मिल सकती है? तुमको शाति तो मिल ही नही सकती। हम पापी है, यह तो आप कवूल ही करते है। अव देखो हमारे धर्म-मन्तव्यकी परिपूर्णता।

मनुष्यका प्रयत्न व्यर्थ है। फिर भी उसे मुक्तिकी तो जरूरत है ही। ऐसी दशामें पापका बोझ उसके सिरसे उतरेगा किस तरह? इसकी तरकीब यह कि हम उसे ईसामसीहपर ढो देते हैं, क्योकि वह तो ईश्वरका एकमात्र निष्पाप पुत्र है। उसका वरदान है कि जो मुझे मानता है वह सब पापोसे छूट जाता है। ईश्वरकी यह अगाध उदारता है। ईसामसीह-की इस मुक्ति-योजनाको हमने स्वीकार किया है, इसलिए हमारे पाप हमें नही लगते। पाप तो मनुष्यसे होते ही है। इस जगत्मे विना पापके कोई कैसे रह सकता है? इसलिए ईसामसीहने सारे ससारके पापोका प्रायश्चित एकबारगी कर लिया। उसके इस वलिदानपर जिसकी श्रद्धा हो वही शाति प्राप्त कर सकता है। कहा तुम्हारी शाति और कहा हमारी शाति!"

यह दलील मुझे बिलकुल न जची। मैने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—"यदि सर्वमान्य ईसाई-धर्म यही हो, जैसा कि आपने वयान किया है, तो इससे मेरा काम नही चल सकता। मै पापके परिणामसे मुक्ति नही चाहता। मै तो पाप-प्रवृत्तिसे, पाप-कर्मसे, मुक्ति चाहता हू। जबतक वह न मिलेगी, मेरी अशाति मुझे प्रिय लगेगी।"

प्लीमथ ब्रदरने उत्तर दिया—"मै तुमको निश्चयसे कहता हू कि तुम्हारा यह प्रयत्न व्यर्थ है। मेरी बातपर फिरसे विचार करना।"

और इन महाशयने जैसा कहा था वैसा ही कर भी दिखाया—जान-बूझकर बुरा काम कर दिखाया।

परतु तमाम ईसाइयोकी मान्यता ऐसी नही होती, यह बात तो मै इनसे परिचय होनेके पहले भी जान चुका था। कोट्स खुद पाप-भीरु थे। उनका हृदय निर्मल था, वह हृदय-शुद्धिकी सभावनापर विश्वास रखते थे। वे बहने भी इसी विचारकी थी। जो-जो पुस्तके मेरे हाथ आई उनमे कितनी ही भक्ति-पूर्ण थी, इसलिए प्लीमथ ब्रदर्सके परिचयसे कोट्सको जो चिंता हुई थी उसे मैने दूर कर दिया और उन्हे विश्वास दिलाया कि प्लीमथ ब्रदरकी अनुचित धारणाके आधारपर मै सारे ईसाई-

धर्मके खिलाफ अपनी राय न बना लूगा। मेरी कठिनाइया तो बाइबिल तथा उसके रूढ अर्थके सबधमे थी। (आ०, १९२७)

: ४० :

मणिलाल कोठारी

हरिजन-आदोलन इतनी तेजीसे शुरू हुआ उसके पहलेसे ही मणिलाल कोठारीको मैं जानता था और जबसे मेरा उनसे परिचय हुआ तभी मैंने यह देख लिया था कि उनमें छूतछातकी जरा भी गध नही थी। हरिजनोंकी सहायता करते हुए जो जोखिम उठानी चाहिए उसे उठानेको वे हमेशा तैयार रहते थे। अगर यह कहा जाय कि अच्छे कामोंके लिए पैसा इकट्ठा करनेकी उनमें अद्वितीय शक्ति थी तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नही। उनमे यो तो बहुत-सी शक्तिया थी, किंतु पारमार्थिक कार्योंके लिए धन-सग्रह करनेकी उनमे जो शक्ति थी, उसके लिए तो लोग हमेशा ही उन्हें याद करेंगे। हरिजन-कार्यके लिए उन्होने काफी पैसा इकट्ठा किया था और हिम्मतके साथ मुझसे कहा था कि अगर मैं अच्छा हो जाऊ तो जितना पैसा आपको चाहिए उतना ला दूगा। पैसा इकट्ठा करा देनेके लिए जहा-तहासे उनके पास मागें आती ही रहती थी। मणिलाल तीव्र लगनके आदमी थे। कोई भी पारमार्थिक काम हो, वह उन्हें अपनी तरफ खीच सकता था। सेवा करनेका उनका लोभ उन्हें चाहे जिस जोखिममें उतार सकता था। उनकी कमी उनके कुटुबको तो खटकेगी ही हरिजनोंको भी खटकेगी, पर दूसरे अनेक सेवाक्षेत्रोमें उनके अभावकी बहुत समयतक याद रहेगी, इसमे सदेह नही।

ईश्वर उनकी आत्माको शाति प्रदान करे। (ह० से०, २३ १० ३७)

: ४१ :

धर्मानन्द कौसंबी

[बौद्ध विद्वान श्रीकौसबीकी मृत्युका समाचार देते हुए गाधोजीने कहा]

शायद आपने उनका नाम नही सुना होगा। इसलिए शायद आप दु ख मानना नही चाहेंगे। वैसे किसी मृत्युपर हमें दु ख मानना चाहिए भी नही, लेकिन इन्सानका स्वभाव है कि वह अपने स्नेही या पूज्यके मरनेपर दु ख मनाता ही है। हम लोग ऐसे बने है कि जो अपने कामकी डुग्गी पिटवाता फिरता है और राज्य-कारणमे उछाले भरता है, उसको तो हम आसमानपर चढा देते है, लेकिन मूक काम करनेवालोको नही पूछते।

कौसबीजी ऐसे ही एक मूक कार्यकर्त्ता थे। उनका जन्म गोवामें हुआ था। जन्मसे वह हिंदू थे, पर उनको ऐसा विश्वास बैठ गया था कि बौद्ध धर्ममें अहिंसा, शील आदि जितने बढे-चढे है, उतने दूसरे धर्ममें, वेद-धर्ममे भी नही है। इसलिए उन्होने बौद्ध धर्म स्वीकार किया और बौद्ध शास्त्रोके अध्ययनमे लग गए और उसमे इतने बडे विद्वान् हो गए कि शायद ही हिंदुस्तानमें उनकी बराबरीका और कोई हो। उन्होने गुजरात विद्यापीठ व काशी विद्यापीठमे पाली भाषा पढाई और अपनी अगाध विद्वत्ताका ज्ञान-दान किया था।

उन्होने मेरे पास १०००) भेज दिए, जो किसीने उनको दिए थे। उन्होने मुझको लिखा था कि किसीको पाली पढनेके लिए लका भेज देना। लेकिन मैंने उनसे पूछा कि क्या लका जाकर पढनेसे किसीको बौद्ध धर्म प्राप्त हो जायगा ? मैंने तो दुनियामें बौद्धोसे कहा है कि आपको अगर बौद्ध धर्म जानना है तो आप उसके जन्म-स्थान भारतमें ही उसे

पायेंगे। जहापर वेद-धर्मसे वह निकला है, वही आपको उसे खोजना है और शकराचार्य-जैसे अद्वितीय विद्वान्, जो प्रच्छन्न वुद्ध कहलाए, उनके ग्रथोको भी आप समझेंगे तव वौद्ध धर्मका गूढ रहस्य आप जान पायेंगे।

लेकिन कौसवीजीकी विद्वत्तासे मैं अपनी तुलना नही कर सकता। मै तो इग्लैंडमें भोज खाकर वना हुआ वैरिस्टर हू। मेरे पास सस्कृतका ज्ञान जरा-सा है। अगर आज मैं महात्मा वना हू तो इसलिए नही कि अग्रेजीका वैरिस्टर हू, पर इसलिए कि मैंने सेवा की है और वह सेवा सत्य और अहिंसाके द्वारा की है। इस सत्य और अहिंसाकी पूजामें जो थोडी-सी सफलता मुझे मिलती चली गई उसीके कारण आज मेरी थोडी-वहुत पूछ है।

कौसवीजीकी समझमे यह समा गया कि अव यह शरीर अधिक काम करनेके योग्य नही रहा है तो उन्होने अनशन करके प्राण-त्याग करनेकी ठानी। टडनजीके कहनेपर मैंने उनका अनशन उनकी (कौसवीजीकी) अनिच्छासे तुडवाया, पर उनका हाजमा वहुत खराव हो चुका था और कुछ भी खुराक ले ही नही सकते थे। तव दुवारा सेवाग्राममें चालीस दिनतक केवल जलपर ही रहकर उन्होने शरीरात किया। वीमारीमें नाममात्रकी सेवा और ओषधि भी नही ली। जन्म-स्थान गोवामें जानेका मोह भी उन्होने तजा और अपने पुत्र आदिको अपने पास न आनेकी आज्ञा दी। मृत्युके वादके लिए कह गए कि 'मेरा कोई स्मारक न वनाया जाय।' शरीरको जलाने या दफनानेमें जो सस्ता पडे वह किया जाय और इस तरह उन्होने वुद्धका नाम रटते-रटते अतिम गहरी निद्रा ली, जो हरेक जन्मनेवालेको कभी-न-कभी लेनी ही है। मृत्यु हरेकका परम मित्र है, वह अपने कर्मके मुताविक आवेगा ही। भले ही कोई यह वता दे कि अमुकका जन्म अमुक समय होगा, पर मौत कव आवेगी यह कोई भी आजतक नही वता पाया है। (प्रा० प्र० ५ ६ ४७)

• • • • • •

प्रोफेसर कोसबीजी जो वडे विद्वान थे और पाली भाषामें अग्रगण्य माने जाते थे। वे अभी-अभी सेवाग्राम आश्रममें चल वसे । उनके बारेमें वहाके सचालक वलवतसिहका पत्र है, जिसमे कहा गया है कि ऐसी मृत्यु आजतक मैंने नही देखी । यह तो विल्कुल ऐसी हुई जैसी कबीरजीने बताई है

दास कवीर जतन सो ओढी ,
ज्यो-की-त्यो धर दीनी चदरिया।

इस तरह हम सभी लोग मृत्युकी मैत्री साध ले तो हिंदुस्तानका भला ही होनेवाला है। (प्रा० प्र०, ८ ६ ४७)

: ४२ :

सरदार खडगसिंह

जेलकी चहारदीवारीसे बाहर अपने बीच सरदार खडगसिहको पुन राष्ट्रीय काम करते हुए देखकर प्रत्येक देशभक्तको आनद होगा। अपने दुर्दमनीय स्वभाव और छुटकारा पानेके लिए अधिकारियोके सामने अपना सिर झुकानेसे इन्कार करनेके कारण अपने देशभाइयोंके हृदयमें उन्होने बहुत ऊचा स्थान प्राप्त कर लिया है। परमात्मासे प्रार्थना है कि इस स्वाधीनताके युद्धमें वे वर्षोतक देशकी सेवा करें। (हिं० न०, २३ ६ २७)

: ४३ :

डा० एन० बी० खरे

पिछले सप्ताह डाक्टर खरे और उनकी हरिजन-सेवक-समितिने मेरे प्रवासके कार्यक्रमके सबधमें बडी ही सुदर व्यवस्था की थी। डाक्टर खरेको स्वेच्छासे काम करनेवाले अनेक सुयोग्य साथियोकी सहायता न मिलती तो यह कार्यक्रम पूरा ही नही हो सकता था। डाक्टर साहबने, हृदयकी पुरानी व्याधिसे पीडित होते हुए भी, इन कठिन दिनोमे परिश्रम करनेमें कोई कसर उठा नही रखी और अपने साथियोसे भी उन्होने खूब काम लिया। नागपुरकी विराट् सभामें बिजलीकी सैकडो बत्तिया लगाने और ऊचा पक्का मच तैयार करनेमें जो खर्च पडा वह कुछ सज्जनोने आपसमें ही इकट्ठा करके दे दिया था। दानकी थैलियोमेसे इस खर्चके लिए एक पैसा भी नही निकाला गया। उन दिनो श्रीगणपत राव टिकेकरका मकान, जहा मैं ठहरा हुआ था, एक तरहसे धर्मशाला बन गया था। टिकेकर-बधुओने हमारे बडे दलको तथा दूसरे कार्योंके सबधमें आए हुए अन्य लोगोको आराम और सुविधाए पहुचानेमें परिश्रम तथा खर्चमे जरा भी कमी नही रक्खी। मैंने देखा कि नागपुर और आसपासके गावोमें मेरे दौरेको सफल बनानेमे काग्रेसवालो एव दूसरे लोगोने पूरा सहयोग दिया। इसमे सदेह ही नहीं कि उन सबके सहयोगसे मेरा यह दौरा सफल हुआ। डाक्टर खरे और उनके साथियोने इस अवसरपर जो असीम परिश्रम किया उनके लिए मै उन्हें धन्यवाद देता हू। इस महान् शुद्धि-कार्यमे जो परिश्रम और सावधानी उन्होने दिखाई, वह आवश्यक ही थी।

(ह० से०, २४ ११ ३३)

: ४४ :

नारायण मोरेश्वर खरे

हाल हीमे स्थापित हुए सत्याग्रह-आश्रमके लिए एक अच्छा सगीत-शिक्षक देनेको जब मैंने स्वर्गीय मगनलाल गाधीको प० विष्णु दिगवरके पास भेजा तो पडित विष्णु दिगवरजी समझ गए कि मैं किस तरहका आदमी चाहता हू । पडित खरेका उन्होने जो चुनाव किया वह ठीक ही निकला, क्योकि जिस कामके लिए उन्हें लाया गया उसे उन्होने इतनी अच्छी तरह किया जिससे अच्छी तरह और किसीने न किया होता । उनकी मृत्युसे जो स्थान खाली हुआ है वह शायद खाली ही वना रहेगा, क्योकि जिन्होने कलाको अपनाया है, उनमे ऐसे वहुत कम है जिन्होने उसमें पडकर भी अपने जीवनको शुद्ध और निर्दोष वनाये रक्खा हो। वल्कि हम लोगोमे किसी कदर यह भावना-सी जम गई है कि कलाका व्यक्तिगत जीवनकी शुद्धतासे कोई सरोकार नही है । लेकिन अपने सारे अनुभवके आधारपर मै कह सकता हू कि इससे असत्य और कोई वात नही हो सकती। ज्यो-ज्यो मै अपने पार्थिव जीवनके अतपर आ रहा हू, मै यह कह सकता हू कि जीवनकी शुद्धता ही सबसे ऊची और सच्ची कला है। कृत्रिम आवाजसे सुदर सगीत पैदा करनेकी कला तो वहुत लोग हासिल कर सकते है, लेकिन शुद्ध जीवनकी एकरसतासे उस सगीतको पैदा करनेकी कला विरले ही प्राप्त करते है । पडित खरे उन्ही विरले व्यक्तियोमेंसे थे, जिन्होने सपूर्णताके साथ उस कलाको प्राप्त किया है । ऐसा कोई अवसर नही हुआ जवकि उनके जीवनकी शुद्धताके वारेमे मुझे जरा-सा भी सदेह हुआ हो ।

पडितजीने सगीतमें गुजरातका जो रस पैदा किया है उसे गुजरातको वरावर जारी रखना चहिए । मै आशा करता हू कि उनके दोनो वच्चे

उन्हीके योग्य सावित होंगे और उनकी वीर पत्नी अपने त्यागमय जीवनके द्वारा भारतीय विधवाका आदर्श उपस्थित करेंगी, इसमे मुझे कोई सन्देह नही है । रही पडितजीकी वात, सो यह तो ठीक है कि अपने जीवनके मध्यकालमे ही उनकी मृत्यु हो गई है, लेकिन उनकी मौत ऐसी मौत है कि हरएक उसके लिए ईर्षा करेगा, क्योकि इस पुण्यस्थान मे काम करते हुए उनकी मृत्यु हुई है और अपनी मृत्युका ज्ञान होजानेके कारण राम-नामका उच्चारण करते हुए तथा उसी पवित्र नामकी ध्वनि श्रवण करते हुए उनका अवसान हुआ है। ईश्वर करे कि गुजरात उनके मृदु स्मरणको सुरक्षित रखे ! (ह० से० १९ २ ३८)

तार माना जासकने जैसा नही है । जव तुमने वीमारीकी वात कही थी तव मनमें कुछ खटका हुआ था, लेकिन तुरत ही उसकी उपेक्षा करदी और यह मानकर वैठ गया कि उनका कुछ विगडेगा नही । दूसरे पडितजीका मिलना अशक्य समझता हू । सगीत और श्रेष्ठ नीतिका मेल कहा ढूढूगा ? (मृत्युपर दिया गया तार)

: ४५ :

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

खान अब्दुल गफ्फार खाके सपर्कमें आनेकी अभिलाषा तो मुझे हमेशा रही है, लेकिन गत वर्षके आखिरी महीनोसे पहले मुझे कभी ऐसा अवसर नही मिला कि मै कुछ समय तक उनके साथ रहता । परतु हजारीवाग जेलसे छूटनेके वाद, सौभाग्यवश शीघ्र ही, न केवल खान अब्दुल गफ्फार खा, वल्कि उनके भाई डा० खानसाहव भी मेरे पास आ गए । भाग्यकी वात

है कि २७ दिसबर तक सीमाप्रातमें उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया और काग्रसके आदेशके अनुसार वे आज्ञा भग कर नही सकते थे। अत उन्होने वर्धामे सेठ जमनालाल बजाजका आतिथ्य स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मुझे इन भाइयोके घनिष्ट सपर्कमे आनेका मौका मिल गया। जितना-जितना मैं उन्हे जानता गया, उतना ही अधिक मैं उनकी ओर आकर्षित होने लगा। उनकी पारदर्शी सचाई, स्पष्टवादिता और हद दर्जेकी सादगीका मुझपर बहुत प्रभाव पडा। साथ ही मैंने यह भी देखा कि सत्य और अहिंसामे केवल नीतिके तौरपर नही, वरन् ध्येयके रूपमें उनका विश्वास हो गया है। छोटे भाई खान अब्दुल गफ्फार खा तो मुझे गहरी धार्मिक भावनाओसे ओतप्रोत प्रतीत हुए, परतु उनके विचार सकीर्ण नही है। मुझे तो वह विश्वप्रेमी मालूम पडे। उनमें यदि कुछ राजनीतिकता है तो उसका आधार उनका धर्म है। और डाक्टर साहबकी तो कोई राजनीति है ही नही। ('दो खुदाई खिदमतगार' की भूमिका)

•

खुदाई खिदमतगार चाहे जैसे हो, या अतमें वे चाहे जैसे साबित हो, पर उनके नेताके बारेमें तो, जिसे वे बादशाह खान कहकर खुश होते है, कोई सदेह नही हो सकता। वह तो असदिग्ध रूपसे ईश्वर-भीरु पुरुष हैं। उसकी प्रतिक्षणकी अखड उपस्थितिमें उनकी परम श्रद्धा है और वह बखूबी जानते है कि उनका आदोलन तभी प्रगति करेगा जब ईश्वरकी वैसी इच्छा होगी। ईश्वरके इस कार्यमें अपनी सारी आत्माको उडेलकर, परिणामकी वह बहुत ज्यादा फिक्र नही करते। उनके लिए तो यह महसूस करना ही काफी है कि अहिंसाको उसके पूरे रूपमे स्वीकार किए बगैर पठानोकी मुक्ति नही। इस बातमें वह कोई गौरव अनुभव नही करते कि पठान अच्छे लडाका है। वह उनकी बहादुरीकी तो कद्र करते है, लेकिन उनका ऐसा खयाल है कि बहुत ज्यादा प्रशसासे उसे बिगाड दिया गया है। अपने पठानोको वह समाजके गुडोके रूपमे नही देखना चाहते। उनका यह विश्वास

है कि पठानोको अज्ञानमे रखकर उनसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि की गई है। वह पठानोको और अधिक वीर वनाना चाहते है और चाहते है कि उनकी वीरताके साथ सच्चे ज्ञानका भी समावेश होजाय। उनका खयाल है कि ऐसा केवल अहिंसाके द्वारा ही हो सकता है।

और चूकि खानसाहव अहिंसामें विश्वास करते है, इसलिए उन्होने चाहा कि खुदाई खिदमतगारोके वीच जितने अधिक समयतक मै रह सकू उतने अधिक समयतक रहू। मुझे तो वहा आनेके लिए किसी प्रलोभनकी जरूरत ही नही थी, क्योकि मै तो खुद ही उनसे परिचय प्राप्त करनेके लिए उत्सुक था और उनके दिलो तक पहुचना चाहता था। अब भी मै ऐसा कर सका हू या नही, यह मै नही जानता। वहरहाल, मैने प्रयत्न तो किया ही है।

लेकिन यह वतानेसे पहले कि यह मैने किस तरह और किस हदतक किया, मुझे एक शब्द खानमाहवकी मेजवानीके वारेमें भी जरूर कह देना चाहिए। इस सारे दौरेमें उन्हें इस वातकी वडी ही फिक्र रही कि मुझे जितनी भी सुविधा पहुचाई जा सकती हो उतनी पहुचाई जाय। मुझे किसी किस्मकी दिक्कत या कमी न होने देनेके लिए उन्होने कोई वात उठा नही रक्खी। मेरी सभी जरूरतोका वह पहलेसे ही अदाज लगा लेते थे, और उन्होने जो कुछ किया उसमें कोई दिखावा नही था; वल्कि उनके लिए वह सव विलकुल स्वाभाविक था। उन्होने जो कुछ किया, सव दिलसे किया। फरेव या वनावट तो उनमे है ही नही। दिखावेसे तो वह विलकुल दूर है। इसलिए वह जो भी देख-भाल रखते वह न तो अखरती और न उससे मेरे काममें कोई रुकावट ही पडती। यही कारण है कि तक्षशिलामे जव हम एक-दूसरेसे जुदा हुए तो हमारी आखें भर आईं। जुदाई मुश्किल थी, और इसी आशामें हम एक-दूसरेसे विदा हुए कि शायद अगले मार्चमें ही हम फिर मिलेंगे। सीमाप्रातका मेरे लिए ऐसी जगह वना रहना आवश्यक है, जहा मै

अक्सर जाता रहूं, क्योंकि शेष भारत सच्ची अहिंसाका प्रदर्शन करनेमें चाहे असफल रहे, सीमाप्रातसे यह आशा करनेकी काफी गुजाइश है कि वह इस अग्नि-परीक्षामे खरा उतरेगा। इसका कारण स्पष्ट है। वह यह कि बादशाह खानके अनुयायी, जिनकी सख्या एक लाखसे अधिक बतलाई जाती है, उनकी आज्ञाका स्वेच्छापूर्वक पालन करते है। उनके कहनेपर वे चलते है। जहा उन्होने कुछ कहा नही कि तुरत उसपर अमल होता है। पर खुदाई खिदमतगारोकी उनमें जो श्रद्धा है उसके होते हुए भी, खुदाई खिदमतगार रचनात्मक अहिंसाकी परीक्षामे पूरे उतरेंगे या नही, यह अभी देखनेकी ही बात है।

खानसाहब और मै यह शुरूमे ही तय कर चुके थे कि विभिन्न केन्द्रोमें तमाम खुदाई खिदमतगारोके सामने भाषण करनेके बजाय मुझे उनके नेताओ तक ही मर्यादा बना लेनी चाहिए। इससे मेरी शक्तिका क्षय नही होगा और उसका अधिक-से-अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग होगा। हुआ भी यही। पाच हफ्तेके अदर हम सारे केन्दोमे हो आए और हरएक केन्द्रमे कोई एक घटा या उससे कुछ अधिक समयतक बातचीत की। खानसाहब मेरे बहुत योग्य और विश्वस्त दुभाषिये साबित हुए। मैंने जो कुछ कहा उसमें उनका विश्वास था, इसलिए मेरी बातोका उल्था अपनी जबानमें करनेमें उन्होने अपनी सारी शक्ति लगा दी। वह एक जन्मजात वक्ता है और बडे शानदार और प्रभावकारी ढगसे बोलते है।

(ह० से०, १९ ११ ३८)

मिस म्यूरियल लेस्टर, जिनके यहा गोलमेज कानफ्रेसके समय ईस्ट-एण्ड (लदन) में मै ठहरा था और जो यह लिखते समय सीमाप्रातमें है, बादशाह खानसे मिलकर उनके बारेमे इस प्रकार लिखती है ·

"अब मै खान अब्दुल गफ्फार खांको पहचानने लगी हूं। मुझे ऐसा लगता है कि जहांतक अद्भुत व्यक्तियोसे मिलनेका सवाल है, अपने

जीवनमें ऐसा सम्मान और कहीं मिलनेकी कोई संभावना नही है । वह तो नये टेस्टामेंटकी सुजनताके साथ पुराने टेस्टामेंटके राजा ही है। कितने ऊंचे संत हैं वह ! आपको धन्यवाद है कि आपके द्वारा हमें उनके परिचयमें आना संभव हुआ।

"कल वह हमें उत्तमंजई ले जा रहे है । मीराको फिरसे देखनेमें बड़ा आनंद आयगा ।"

मैं अगर यह समझता कि यह एक असतुलित मस्तिष्ककी अतिशयोक्ति है तो मैं व्यक्तिगत रूपसे की गई इस प्रशसाको कभी प्रकाशित न करता । यह तो सच है कि म्यूरियल लेस्टर जिन लोगोसे मिलती है उनकी अच्छाइयोपर ही झट उनका ध्यान जाता है। लेकिन यह कोई बुरी वात नही, वल्कि एक सद्गुण है । बुराइयोसे खाली तो कोई नही है, यहातक कि ईश्वरसे डरकर चलनेवाले सत पुरुष भी नही वचे है । वे सत इसलिए नही है कि उनमें कोई बुराई नही है, वल्कि इसलिए है कि वे अपनी बुराइयोको जानते है, उनसे वचना चाहते है, उन्हें छिपाते नही और उनस मुक्त होकर अच्छे वननेके लिए हमेशा तैयार रहते है। ऐसे ही खानसाहव है, जो खुदाई खिदमतगार कहलानेमें ही फख्र समझते है । वह एक श्रद्धालु मुसलमान है, जो रोजे व नमाजमें कभी नही चूकते । कुरानकी उनकी व्याख्या इतनी उदार है कि उससे उदार व्याख्या मैं और नही जानता । खुदाई खिदमतगारोमें कताई वगैरह जारी करनेके लिए मैंने उन्हें अपना एक आदमी देनेके लिए कहा था, जिसका उन्हें चुनाव करना था । इसके लिए उन्होने जानवूझकर मीरावेनको चुना । अभी हालतक वह उन्हीके मकानमें रहती भी थी और अव उनके घरसे लगे हुए मकानमे रह रही है, जहा वह अपना कताई-वर्ग चलाती है । वह मुझे प्राय रोज पत्र लिखती है । मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि जिन लोगोसे वह प्रेम करती है उनकी आलोचना करनेसे कभी नही चूकती । फिर भी उनके पत्रोमें इस श्रेष्ठ फकीरके वारेमें ऐसे ही

भाव प्रदर्शित किए गए थे, जैसे म्यूरियल लेस्टरने अपनी पहली मुलाकातमे व्यस्त किए है। इतनेपर भी अग्रेज अधिकारी उनका कोई उपयोग नही करते। वे तो उनसे डरते है और उनमें अविश्वास करते है। इस अविश्वाससे अगर प्रगतिमे कोई रुकावट न पडती और भारत तथा इग्लैड और इसलिए सारे ससार को हानि न होती तो मै इस अविश्वासकी कोई परवा न करता (ह० से०, २८ १ ३९)

जहा हर तरफ 'शुद्ध अहिंसा' की होली जल रही है, वहा खानसाहवकी जीती-जागती अहिंसा कायम है। यह वात हमारे लिए चिराग जैसी रोशन है। खानसाहवका निवेदन[1] मनन करनेके काविल है। खानसाहवको शोभा भी यही देता है। खानसाहव पठान है। पठान तो तलवार-वदूक साथ लेकर पैदा हुए है, ऐसा कहा जा सकता है।

रौलट एक्टकी लड़ाईके जमानेमें जव खुदाई खिदमतगार आमादा हुए तव खानसाहवने उनके हथियार छुडवा दिए। सरकारके साथ तो लडना ही था, लेकिन खानसाहबने अहिंसाका सच्चा तजुरवा दूसरी जगह पाया। पठानोमें वदला लेनेका कानून ऐसा सख्त है कि अगर एक खान्दानमें खून हो गया हो तो उसका बदला खूनसे ही लेकर छुटकारा होता है। एक वार खूनका वदला लिया तो फिर उस खूनका वदला लेना होता है। इस तरह पीढी-दर-पीढी खूनका बदला खूनसे लेनेका कही अत ही नही आता था। यह भी हिंसाकी हद और हिंसाका दिवाला था, क्योकि इस तरह खूनका वदला लेते-लेते खान्दान बरवाद हो जाते थे। खानसाहवने पठानोकी ऐसी वरबादी देखी और अहिंसामे उनकी वेहतरी पाई। उन्होने सोचा कि अगर मै पठान लोगोको समझा सकू कि हमको न सिर्फ

[1] द्वितीय महायुद्धमें सहयोगके प्रश्नको लेकर खानसाहब कांग्रेससे अलग हो गए थे। ---संपादक

खूनका वदला नही लेना है, वल्कि खूनको भूल जाना है तो एक दूसरेसे वदला वद हो जाएगा, हम जीवित रह सकेंगे और जीवनको सफल भी वना सकेंगे। यह नकदका सौदा है। उनके अनुयायियोने उसपर अमल किया। अव ऐसे खुदाई खिदमतगार पाए जाते है, जो खूनका वदला लेना भूल गए है। यह शक्तिशालीकी अहिंसा या सच्ची अहिंसा कही जा सकती है।

अगर खानसाहव काग्रेसमे रहते तो उनकी जिंदगीका काम खाकमें मिल जाता। वह पठानोंसे किस मुहसे कहते कि 'तुम लडाईमें भरती हो जाओ? वह वदला न लेने का कानून अव रद हुआ समझो!' ऐसी भाषा पठान समझ ही नही सकते। वह तो तुरत यही जवाव देते कि जर्मनी अपना वदला ले रहा है, इगलैड मुकाविला कर रहा है, यह हार जाएगा तो खुद लड़ाईकी तैयारी करेगा। इसलिए इस लडाईमें और हमारे खूनका वदला खूनसे लेनेमें रत्तीभर भी फर्क नही। ऐसी दलीलोके सामने खान-साहवकी जवान वन्द हो जाती। इसलिए उन्होंने अपना ही काम जारी रखना पसंद करके काग्रेससे निकल जानेका फैसला किया। खानसाहवको अहिंसाका सदेश पहुचानेमें कहातक सफलता हुई है, वह मै नही जानता। इतना ही जानता हू कि खानसाहवकी श्रद्धा दिमागी नही, केवल दिलसे निकली हुई है, इसलिए वह हमेशा कायम है। अव कवतक उनके चेले उनकी तालीममें लगे रहेंगे, यह खुद खानसाहव भी नही कह सकते और न इसकी उनको परवाह है। उनको तो अपना कर्त्तव्य पूरा करना है। परिणाम खुदापर छोड दिया है। उनकी अहिंसाका आधार कुरान शरीफ है। खानसाहव पक्के मुसलमान है। वह मेरे साथ लगभग एक सालतक रहे। वावजूद वीमार होनेके, उन्होंने न कभी नमाज कज़ा की, न रोजा। खानसाहवके दिलमें दूसरे मजहवोके प्रति पूरा आदर है। उन्होने गीताका भी थोड़ा अभ्यास किया है। वह हमेशा वहुत कम पढते है; लेकिन जो पढते या सुनते है वह अगर अमलमें लानेके योग्य हो तो उसपर अमल करनेमें उन्हें देर नही लगती। वह लवी-चौड़ी दलीलोंमें नही पड़ते।

जरा समझा और तुरत 'हा' या 'ना' कह सकते हैं। अगर खानसाहबको स्पष्ट सफलता हासिल हुई तो उससे बहुत सारी उलझनें सुलझ सकती हैं। आज तो कुछ नही कहा जा सकता। चाकपर मिट्टी है, मटका उतरेगा या गागर, इस बातको तो खुदा ही ज्यादा अच्छी तरह जानता है।

(ह० से०, २०७४०)

'एसोसिएटेड प्रेस' ने बादशाह खानके विषयमे नीचे लिखा सवाद प्रचारित किया है

"सीमाप्रातकी प्रातीय काग्रेस-कमिटीने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया है :

'देशके कई समाचार-पत्रोमें पठानोके निर्विवाद नेता खान अब्दुल गफ्फार खाके विरुद्ध और खुदाई खिदमतगार आदोलनके विरुद्ध, जो प्रचार किया जा रहा है, उसके बारेमें हम जनताको सावधान करना चाहते हैं। कुछ इस ढंगका इशारा किया गया है कि सीमाप्रातके कार्यकर्त्ताओके बीच फूट पड़ गई है और दलबदियोने उनके बीच अपनी मनहूस शक्ल दिखानी शुरू की है। अभीतक एक भी खुदाई खिदमतगारने त्यागपत्र नहीं दिया है। वे सब खान अब्दुल गफ्फार खाके नेतृत्वमें एक अभेद्य दलकी नाई सगठित हैं। उनके दरमियान दलबदीकी सब बातें सर्वथा निर्मूल हैं। फूटकी ये सब दतकथाए कुछ ऐसे स्वार्थी और पदलोलुप व्यक्तियोके दिमागकी उपज हैं, जो समझते हैं कि इस तरह वे अपना उल्लू सीधा कर सकेंगे। इस सब प्रचारके पीछे सरकारकी प्रेरणा तो है ही; परंतु सीमाप्रांतकी जनतामें इन लोगोका कोई साथी नहीं है। वहांका हरएक राष्ट्रवादी बखूबी समझता है कि पदग्रहणकी बात तो दूर रही, आज भारतमें अग्रेज सरकारके साथ हमें कोई मतलब ही नहीं हो सकता। हिंदुस्तानके अन्य भागोमें पार्लमेंटरी कार्यक्रमके लिए चाहे जो आकर्षण हो, सीमाप्रांतमें तो उसके लिए कतई स्थान नहीं।

'खान अब्दुल गफ्फार खांने देहातोमें आतरिक सुव्यवस्था और अन्न-वस्त्रके स्वावलंवनके वारेमें जो शात, पारमार्थिक रचनात्मक कार्य किया है, उसने वहाकी जनतामें और खास तौरपर गरीव जनतामें उनकी लोकप्रियता और भी वढ़ा दी है। वे सरहदके आसपासवाले कवीलोमें सुलह और शातिके सदेशको पहुंचानेका स्वप्न देख रहे हैं।

'आनेवाले सकटके समयमें जनताकी सच्ची सेवा करनेवाली एक शात और अहिंसक सेनाको तैयार करनेमें उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। करोडो रुपये खर्च करके जो काम करनेमें सरकार असफल रही है, उसे वे जनताकी शुद्ध ऐच्छिक सहायता द्वारा करनेका प्रयत्न कर सहानुभूति और सहयोगके अधिकारी है। हम आशा करते है कि सीमा-प्रांतकी जनता उनके आह्वानका ठीक-ठीक जवाव देगी और देशके सव सच्चे हितैषी समाचार-पत्र और पत्रकार तमाम पूर्वाग्रहोको छोडकर उनके इस कार्यमें रस लेंगे।' "

सीमाप्रान्तीय समितिने यह प्रस्ताव पास करके और विज्ञप्तिके रूपमें इसे प्रचारित करके ठीक ही किया है, परतु वादशाह खानकी कीर्ति सीमाप्रातकी प्रातीय समितिके इस प्रस्तावकी अपेक्षा कही अधिक सवल आधारपर अवलम्वित है। उनकी कीर्तिका आधार चौथाई सदीसे भी अधिक कालतककी हुई उनकी नि स्वार्थ जनसेवा और उसके फल-स्वरूप प्राप्त उनकी लोकप्रियता है। अपने निंदकोकी सव कुचेष्टाओके वावजूद खानसाहव अवतककी सभी अग्नि-परीक्षाओमें उत्तीर्ण हुए है। मुझे इसमें जरा भी शक नही कि आगे चलकर जव फिर परीक्षाका समय आवेगा तो वे पहलेकी भाति ही अपनी लोकप्रियताका प्रमाण देंगे।

(ह० से०, ५ ७ ४२)

•

वादशाह खान मेरे दोस्त है। मौलाना आजाद तथा जवाहरलालके महल छोडकर मेरी झोपडीमें आकर टिकते है। यहा गोश्त नही मागते।

मेरे साथ ही रोटी-फल लेते हैं। वे पूरे फकीर हैं। उनके भाई डा० खान साहब विना उनकी मददके काम नही चला सकते। हम उन्हें सीमात गाधी कहते हैं, पर वहा गाधीको ही कोई नही जानता तो सीमात गाधीको कौन जाने ? वहा तो यह वादशाह कहलाते हैं और जिस झोपडीमें जाइए, वहा पठान अपने इस वादशाहपर खुश हो जाते हैं।

ऐसे वादशाहके इलाकेमे जनमत-सग्रह करनेकी वात तय कर दी गई है और वह भी तव जव पठानका खून अभी ठडा नही हुआ है, जिसका कि खून सदा गरम ही रहता आया है और वादशाहने अपनी जिंदगी उस खूनको ठडा करनेमे खपा रखी है। (प्रा० प्र०, ११ ६ ४७)

•

पठान तलवारवाज होता है। कोई पठान ऐसा नही होता जो तलवार और वदूक चलाना न जानता हो। पीढी-दर-पीढी पठान खूनका वदला लेता रहा है। पर वादशाह खानने देखा कि हथियारोकी वहादुरीसे भी ज्यादा वुलदी, मरकर स्वरक्षा करनेमें है। वादशाह खानका खयाल था कि पठान लोग यह ऊची वहादुरी अपना ले और एक होकर सवकी खिदमत करें, पर यह ख्वाव पूरा होनेसे पहले वहा यह जनमत-सग्रहका झगडा फैल गया।

कुछ कहेंगे कि हम पाकिस्तानके साथ रहेंगे, कोई कहेंगे कि काग्रेसके साथ रहेंगे, और काग्रेस तो आज वदनाम है कि वह हिंदुओकी हो गई। इस वातपर पठान अलग-अलग होगे और ऐसी यादवस्थली मचेगी कि जिसका दवाना दुश्वार होगा। वे आपसमे कट मरेंगे। वादशाह खान चाहते हैं कि किसी तरहसे जनमतसग्रहकी वलासे छूटकर पठान आजाद रहें। वे खुद अपने कानून वनावे और एक रहे, फिर चाहे वे पाकिस्तानमें रहें चाहे हिंदुस्तानमें मिले। वे कहते हैं कि हमारे पास पैसा नही है। हम तो मिस्कीन आदमी हैं। हम अपना स्वतन्त्र राष्ट्र

बनाना नही चाहते, पर किसमें मिलेंगे इसके बारेमे आपसी झगडा मिट जानेके बाद ही हम निश्चय करेंगे। (प्रा० प्र०, १७.६.४७)

• • •

लोगोकी आखें आज सरहदी सूबेमें होनेवाले जन-मतकी तरफ लगी हुई है, क्योकि सरहदी सूबा कानूनन काग्रेसका रहा है और आज भी है। बादशाह खान और उनके साथियोसे कहा जाता है कि पाकिस्तान या हिंदुस्तान, दोमेंसे किसी एकको चुनो। हिंदुस्तानका आज गलत अर्थ हो गया है—हिंदुस्तानका हिंदू और पाकिस्तानका मुसलमान। बादशाह खान इस कठिनाईमेंसे कैसे निकले ? काग्रेसने वचन दिया है कि डा० खानसाहबकी सीधी देख-रेखके नीचे सरहदी सूबेमे जनमत लिया जायगा। वह तो नियत तारीखपर ही होगा। खुदाई खिदमतगार मत नही देंगे। सो मुस्लिम लीगको सीधी जीत मिलेगी और खुदाई खिदमतगारोको अपनी आत्माकी आवाजके खिलाफ काम नही करना पडेगा, बशर्तेकि उनकी आत्माकी आवाज है, ऐसा माना जाय। ऐसा करनेमें क्या जन-मतकी शर्तोका भग होता है ? वही खुदाई खिदमतगार जिन्होने बहादुरीसे ब्रिटिश सरकारका सामना किया, अब हारसे डरनेवाले नही है। हार होगी, यह पक्की तरह जानते हुए अलग-अलग दल रोज चुनावमें हिस्सा लेते है। जब एक दल चुनावमें हिस्सा नही लेता तब भी तो हार निश्चित ही होती है।

पठानिस्तानकी नई माग पेश करनेके लिए बादशाह खानको ताना दिया जाता है। काग्रेसकी वजारत बननेसे पहले भी, जहातक मै जानता हू, बादशाह खानके सिरपर यही धुन सवार थी कि अपने घरमें पठानोको पूरी आजादी हो। बादशाह खान एक अलग स्टेट बनाना नही चाहते। अगर वह अपने घरमें अपना विधान बना सके तो वह खुशीसे दोमेंसे एक सघको कबूल कर लेंगे। मुझे तो समझमें नही आता कि पठानिस्तानकी इस मागके सामने किसीको क्या उज्र हो सकता है।

हा, पठानोको पाठ सिखाना हो और उन्हे किसी-न-किसी तरह झुकाना ही हो तो बात अलग है। बादशाह खानपर एक बडा इल्जाम यह लगाया जा रहा है कि वह अफगानिस्तानके हाथोमे खेल रहे है। मै समझता हू कि वह कभी किसी तरहकी धोखेबाजी कर ही नही सकते। वह सरहदी सूबेको अफगानिस्तानमे जज्ब होने नही देगे।

उनके दोस्त होनेके नाते मै मानता हू कि उनमे एक ही कमी है। वे बहुत ही शक्की है, खासकर अग्रेजोके काम और नीयतपर वह हमेशा शुबहा करते है। मै सबसे कहूगा कि वे उनकी इस कमजोरीको, जो कि खास उन्हीमें नही है, नजरअदाज कर दें। यह जरूर है कि इतने बडे नेताके लिए यह शोभा नही देता। अगर्चे मैने उसको एक कमजोरी कहा है और जो एक तरहसे ठीक ही है, मगर दूसरी प्रकारसे इसको एक खूबी मानना चाहिए, क्योकि वे चाहे भी तो अपने विचारोको छिपा नही सकते। (प्रा० प्र०, ३०.६ ४७)

: ४६ :

आदमजी मियां खान

यदि मै देश जाऊ तो फिर काग्रेसका और शिक्षा-मडलके कामका कौन जिम्मा ले ? दो साथियोपर नजर गई आदमजी मिया खान और पारसी रुस्तमजी। व्यापारी-वर्गमेंसे बहुतेरे काम करनेवाले ऊपर उठ आए थे, पर उनमें प्रथम पक्तिमें आने योग्य यही दो सज्जन ऐसे थे जो मत्रीका काम नियमित रूपसे कर सकते थे और जो दक्षिण अफ्रीकामें जन्मे भारतवासियोका मन हरण कर सकते थे। मत्रीके लिए मामूली अग्रेजी जानना तो आवश्यक था ही। मैने इनमेसे स्वर्गीय आदमजी

मिया खानको मत्री-पद देनेकी सिफारिश की और वह स्वीकृत हुई। अनुभवसे यह पसदगी वहुत ही अच्छी सावित हुई। अपनी उद्योगशीलता, उदारता, मिठास और विवेकके द्वारा सेठ आदमजी मिया खानने अपना काम सतोपजनक रीतिसे किया और सबको विश्वास हो गया कि मत्रीका काम करनेके लिए वकील वैरिस्टरकी अथवा पदवीधारी वडे अग्रेजीदाकी जरूरत न थी। (आ० १६२७)

: ४७ :

गंगावहन

हम कह सकते है कि गगावहनने जीकर आश्रमको सुशोभित किया और मरकर भी आश्रमको सुशोभित किया। (वडो गगावहनको भेजा पत्र)

गगावहनकी मृत्युके समाचार जानकर हम सबको दु ख हुआ। मुझे खुशी है कि उन्होने अमर श्रद्धाके साथ जीना जाना और मरना जाना। तोतारामजी आनदमें है, इसमें आश्चर्य नहीं। (आश्रमको दिया गया तार)

देखो, इस निरक्षर स्त्रीको! इसकी मौत कैसी है! दोनोने आश्रमको सुशोभित किया। तोतारामजी गिरमिटिया थे। वहा फीजीके किसी गिरमिटियेकी लड़कीसे शादी की होगी, इसलिए दोनो गिरमिटिये ही कहलायेंगे। मगर दोनोने कैसी जिंदगी गुजारी!

(म० डा०, ६.५ ३२)

.. .. ..

गगादेवीका चेहरा अब भी मेरी आखोंके सामने फिरा करता है, उनकी

बोलीकी भनक मेरे कानोमें पडती है। उनके स्मरणोकी याद करते अब भी मैं थका नही। उनके जीवनसे हम सबको और बहनोको खासतौरसे बहुत सबक सीखने है। वह लगभग निरक्षर होनेपर भी ज्ञानी थी। हवा, पानी बदलनेके लिए जाने लायक होने पर भी स्वेच्छासे जानेसे अततक इन्कार करती रहनेवाली वह अकेली ही थी। जो बच्चे उन्हे मिले, उनकी सम्हाल उन्होने अपने बच्चे मानकर की। उन्होने किसी दिन किसीके साथ तकरार की हो या किसीपर खफा हुई हो, इसकी जानकारी मुझे नही है। उनको जीनेका उल्लास न था, मरनेका भय न था। उन्होंने हँसते हुए मृत्युको गले लगाया। उन्होने मरनेकी कला हस्तगत कर ली थी। जैसे जीनेकी कला है, वैसे ही मरनेकी भी कला है।

(य० म०, ३० ५ ३२)

: ४८ :

लाला गंगाराम

एक मित्रके पत्रसे मुझे स्यालकोटके लाला गगारामके स्वर्गवासकी खबर मिली है। वे ६० वर्षकी अवस्थामे गत ४ नवबरको एकाएक दिलकी धडकन बद होनेसे परलोक सिधार गए । सन् १९१९में लाहौरमे स्वर्गीय रामभजदत्त चौधरीके मकान पर उनसे मिलनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे एक हरिजन-कार्यकर्त्ता थे। हरिजन-सेवाके अर्थ उन्होने अपना जीवन अर्पण कर दिया था। उन्होने हरिजनोकी नई बस्तिया बसवाई थी। हरिजन-कार्यको निश्चय ही उनके निधनसे हानि पहुची है। स्वर्गीय लाला गगारामके कुटुब तथा उनके प्यारे हरिजनोके प्रति मै समवेदना प्रकट करता हू। (ह० से०, ८ १२.३३)

: ४६ :

सर गंगाराम

मृत्युने सर श्रीगगारामको क्या उठाया, हमारे बीचसे एक सुयोग्य और व्यवहारदक्ष खेतीशास्त्रके जानकारको, एक महान दाताको और विधवाओंके बधुको, उठा लिया। सर गगाराम यो तो वयोवृद्ध थे, किंतु उनमें उत्साह युवकोंका-सा था। उनकी आशावादिता भी उतनी ही प्रबल थी जितना कि उनका अपने विचारोका आग्रह। इधर मुझे उनसे निकटका संबध प्राप्त करनेका सुअवसर मिला था और यद्यपि हम अनेक बातोमें एक-दूसरेसे भिन्न मत ही रखते थे तथापि मैंने देखा कि वे एक सच्चे सुधारक और महान कार्यकर्त्ता थे। और यद्यपि उनके अनुभव और वयोमानके कारण मैंने उनके विचारोंसे बार-बार आदरपूर्वक, किंतु दृढ विरोध प्रकट किया तथापि मेरे प्रति, जिसे वे अपनी तुलनामें कलका युवक समझते थे, उनका प्रेम तो बढता ही जाता था। साथ-ही-साथ भारतकी दरिद्रताके विषयमे उनके कुछ विचित्र विचारोंसे मेरा विरोध भी। वे मेरे साथ लबे वाद-विवाद करनेके लिए इतने उत्सुक थे तथा मुझे अपने विचारोंका कायल कर देनेकी उन्हे इतनी दृढ आशा थी कि उन्होंने उनके अपने खर्चेसे मुझे इगलैंड चलनेतकके लिए आग्रह किया और मेरे दिमागसे सब पागलपनकी बातोको निकाल देनेका विश्वास दिलाया। यद्यपि मैं उनकी इस बातको कबूल नही कर सका और यद्यपि उन्होने तो उसे सच्चे दिलसे ही पेश किया था, तथापि उनके इगलैंड जानेसे पहले उनसे मिलकर उन्हे चरखेका, जिसे वे केवल जला देने योग्य ही समझते थे, कायल कर देनेका मैंने वचन दिया था। अत पाठक अनुमान कर सकते हैं कि उनकी अकस्मात मृत्युकी यह वार्ता सुनकर मुझे कितना दुख हुआ होगा। पर यह तो ऐसी मृत्यु है, जिसे हम सब अपने लिए चाहेंगे,

क्योंकि वे इगलैंड किसी आमोद-प्रमोदके लिए नही गए थे, बल्कि ऐसे कार्यके लिए गए थे, जिसे वे अपना अत्यन्त जरूरी कर्त्तव्य समझते थे। इसलिए वे तो कर्त्तव्य क्षेत्रहीमे मर गए। भारतको हर तरहसे इस बातका अभिमान है कि सर गगारामके समान पुरुष उसके विख्यात सपूतोमेंसे एक है। दिवगत सुधारकके कुटुबी जनोको मै अपने धन्यवाद और सम-वेदना साथ-साथ भेजता हूं। (हि० न०, २१ ७ २७)

: ५० :

कस्तूरबा गांधी

मै जानता था कि बहनोको जेल[१] भेजनेका काम बहुत खतरनाक था। फिनिक्समे रहनेवाली अधिकतर बहनें मेरी रिश्तेदार थी, वे सिर्फ मेरे लिहाजके कारण ही जेल जानेका विचार करें और फिर ऐन मौकेपर घबराकर या जेलमें जानेके बाद उकताकर माफी वगैरह माग लें तो मुझे सदमा पहुचे। साथ ही, इसकी वजहसे लडाईके एकदम कमजोर पड जानेका डर भी था। मैंने तय किया था कि मै अपनी पत्नीको तो हरगिज नही ललचाऊंगा। वह इन्कार भी नही कर सकती थी और 'हा' कह दें तो उस 'हा'की भी कितनी कीमत की जाय, सो मै कह नही सकता था। ऐसे जोखिमके काममे स्त्री स्वय् जो निश्चय करे, पुरुषको वही मान लेना चाहिए और कुछ भी न करे तो पतिको उसके बारेमे तनिक भी दुखी नही होना चाहिए, इतना मै समझता था। इसलिए मैंने उनके साथ कुछ भी बात न करनेका इरादा कर रक्खा था। दूसरी बहनोसे मैंने चर्चा की। वे

---

[१] दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके सबधमें।

जेल-यात्राके लिए तैयार हुई। उन्होने मुझे विश्वास दिलाया कि वे हर तरहका दुख सहकर भी अपनी जेल-यात्रा पूरी करेंगी। मेरी पत्नीने भी इन सब बातोका सार जान लिया और मुझसे कहा,

"मुझसे इस बातकी चर्चा नही करते, इसका मुझे दुख है। मुझमें ऐसी क्या खामी है कि मैं जेल नही जा सकती। मुझे भी उसी रास्ते जाना है, जिस रास्ते जानेकी सलाह आप इन बहनोको दे रहे है।"

मैने कहा, "मै तुम्हें दुख पहुचा ही नही सकता। इसमें अविश्वासकी भी कोई बात नही। मुझे तो तुम्हारे जानेसे खुशी ही होगी, लेकिन तुम मेरे कहनेपर गई हो, इसका तो आभास तक मुझे अच्छा नही लगेगा। ऐसे काम सबको अपनी-अपनी हिम्मतसे ही करने चाहिए। मैं कहू और मेरी बात रखनेके लिए तुम सहज ही चली जाओ और बादमें अदालत के सामने खडी होते ही काप उठो और हार जाओ या जेलके दुखसे ऊब उठो तो इसे मैं अपना दोष तो नही मानूगा, लेकिन सोचो कि मेरा क्या हाल होगा। मैं तुमको किस तरह रख सकूगा और दुनियाके सामने किस तरह खडा रह सकूगा। बस, इस भयके कारण ही मैंने तुम्हें ललचाया नही।"

मुझे जवाब मिला, "मै हारकर छूट आऊ तो मुझे मत रखना। मेरे बच्चेतक सह सकें, आप सब सहन कर सकें और अकेली मैं ही न सह सकू, ऐसा आप सोचते कैसे है? मुझे इस लडाईमें शामिल होना ही होगा।"

मैने जवाब दिया, "तो मुझे तुमको शामिल करना ही होगा। मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो। मेरे स्वभावसे भी तुम परिचित हो। अब भी विचार करना हो तो फिर विचार कर लेना और भलीभाति सोचनेके बाद तुम्हें यह लगे कि शामिल नही होना है तो समझना कि तुम इसके लिए आजाद हो। साथ ही, यह भी समझ लो कि निश्चय बदलनेमें अभी शरमकी कोई बात नही है।"

मुझे जवाब मिला, "मुझे विचार-विचार कुछ नही करना है। मेरा निश्चय ही है।" (द० अ० स०, १६२५)

... .

जिन दिनो मेरा विवाह हुआ, छोटे-छोटे निबध—पैसे-पैसे या पाई-पाईके, सो याद नही पडता—छपा करते। इनमे दापत्य प्रेम, मितव्ययता, बाल-विवाह इत्यादि विषयोकी चर्चा रहा करती। इनमेंसे कोई-कोई निबध मेरे हाथ पडता और उसे मै पढ जाता। शुरूसे यह मेरी आदत रही कि जो बात पढनेमें अच्छी नही लगती उसे भूल जाता और जो अच्छी लगती उसके अनुसार आचरण करता। यह पढा कि एक-पत्नी-व्रतका पालन करना पतिका धर्म है। बस, यह मेरे हृदयमें अकित हो गया। सत्यकी लगन तो थी ही। इसलिए पत्नीको धोखा या भुलावा देनेका तो अवसर ही न था। और यह भी समझ चुका था कि दूसरी स्त्रीसे सबध जोडना पाप है। फिर कोमल वयमें एक-पत्नी-व्रतके भंग होनेकी सभावना भी कम रहती है।

परतु इन सद्विचारोका एक बुरा परिणाम निकला। 'यदि मै एक-पत्नी-व्रतका पालन करता हू तो मेरी पत्नीको भी एक-पति-व्रतका पालन करना चाहिए।' इस विचारसे मै असहिष्णु-ईर्ष्यालु पति बन गया। फिर 'पालन करना चाहिए'मेंसे 'पालन करवाना चाहिए' इस विचारतक जा पहुचा और यदि पालन करवाना हो तो फिर मुझे पत्नीकी चौकीदारी करनी चाहिए। पत्नीकी पवित्रतापर तो सदेह करनेका कोई कारण न था, परतु ईर्ष्या कही कारण देखने जाती है? मैने कहा—"पत्नी हमेशा कहा-कहा जाती है, यह जानना मेरे लिए जरूरी है। मेरी इजाजत लिये बिना वह कही नही जा सकती।" मेरा यह भाव मेरे और उनके बीच दुखद झगडेका मूल बन बैठा। बिना इजाजतके कही न जा पाना तो एक तरहकी कैद ही हो गई, परतु कस्तूरबाई ऐसी मिट्टीकी न बनी थी, जो ऐसी कैदको बरदाश्त करती। जहा जी चाहे, मुझसे बिना पूछे

जरूर चली जाती । ज्यो-ज्यो मै उन्हें दबाता त्यो-त्यो वह अधिक आजादी लेती और त्यो-ही-त्यो मै और बिगडता । इस कारण हम बाल-दपतीमें अबोला रहना एक मामूली बात हो गई । कस्तूरबाई जो आजादी लिया करती उसे मै बिलकुल निर्दोष मानता हू । एक बालिका, जिसके मनमें कोई बात नही है, देव-दर्शनको जानेके लिए अथवा किसीसे मिलने जानेके लिए क्यो ऐसा दबाव सहन करने लगी ? 'यदि मै उसपर दबाव रखू तो फिर वह मुझपर क्यो न रखे ?' पर यह बात तो अब समझमें आती है । उस समय तो मुझे पतिदेवकी सत्ता सिद्ध करनी थी ।

इससे पाठक यह न समझें कि हमारे इस गार्हस्थ्य-जीवनमें कही मिठास थी ही नही । मेरी इस वक्रताका मूल था प्रेम—मै अपनी पत्नीको आदर्श स्त्री बनाना चाहता था । मेरे मनमे एकमात्र यही भाव रहता था कि मेरी पत्नी स्वच्छ हो, स्वच्छ रहे, मै सीखू सो सीखे, मै पढू सो पढे और हम दोनो एक-मन दो-तन बनकर रहें ।

मुझे खयाल नही पडता कि कस्तूरबाईके भी मनमें ऐसा भाव रहा हो । वह निरक्षर थी । स्वभाव उनका सरल और स्वतत्र था । वह परिश्रमी भी थी, पर मेरे साथ कम बोला करती । अपने अज्ञानपर उन्हें असतोष न था । अपने बचपनमें मैंने कभी उनकी ऐसी इच्छा नही देखी कि 'वह पढते है तो मै भी पढू ।' इससे मै मानता हू कि मेरी भावना इकतरफा थी । मेरा विषय-सुख एक ही स्त्रीपर अवलबित था और मै उस सुखकी प्रतिध्वनिकी आशा लगाये रहता था । अस्तु, प्रेम यदि एक-पक्षीय भी हो तो वहा सर्वाशमें दु ख नही हो सकता ।

मुझे कहना चाहिए कि मै अपनी पत्नीसे जहातक सबध है, विषयासक्त था । स्कूलमें भी उसका ध्यान आता और यह विचार मनमें चला ही करता था कि कब रात हो और कब हम मिलें । वियोग असह्य हो जाता था । कितनी ही ऊट-पटाग बाते कह-कहकर मै कस्तूरबाईको देरतक सोने न देता । इस आसक्तिके साथ ही यदि मुझमें कर्त्तव्यपरायणता न

होती तो, मै समझता हू, या तो किसी बुरी बीमारीमें फसकर अकाल ही कालकवलित हो जाता अथवा अपने और दुनियाके लिए भारभूत होकर वृथा जीवन व्यतीत करता होता । 'सुवह होते ही नित्यकर्म तो हर हालतमें करने चाहिए' झूठ तो बोल ही नही सकते', आदि अपने इन विचारोकी बदौलत मै अपने जीवनमे कई सकटोसे बच गया हू ।

मै ऊपर कह आया हू कि कस्तूरबाई निरक्षर थी । उन्हे पढानेकी मुझे बडी चाह थी । पर मेरी विषय-वासना मुझे कैसे पढाने देती ? एक तो मुझे उनकी मर्जीके खिलाफ पढाना था, फिर रातमें ही ऐसा मौका मिल सकता था । बुजुर्गोंके सामने तो पत्नीकी तरफ देखतक नही सकते, बात करना तो दूर रहा ! उस समय काठियावाडमें घूघट निकालनेका निरर्थक और जगली रिवाज था, आज भी थोडा-बहुत बाकी है । इस कारण पढानेके अवसर भी मेरे प्रतिकूल थे । इसलिए मुझे कहना होगा कि युवावस्थामें पढानेकी जितनी कोशिशे मैने की वे सब प्राय बेकार गई और जब मै विषय-निद्रासे जगा तब तो सार्वजनिक जीवनमें पड चुका था । इस कारण अधिक समय देने योग्य मेरी स्थिति नही रह गई थी । शिक्षक रखकर पढानेके मेरे यत्न भी विफल हुए । इसके फलस्वरूप आज कस्तूरबाई मामूली चिट्ठी-पत्री व गुजराती लिखने-पढनेसे अधिक साक्षर न होने पाईं । यदि मेरा प्रेम विषयसे दूषित न हुआ होता तो, मै मानता हू, आज वह विदुषी हो गई होती । उनके पढनेके आलस्यपर मै विजय प्राप्त कर पाता, क्योकि मै जानता हू कि शुद्ध प्रेमके लिए दुनियामे कोई बात असभव नही ।

इस तरह अपनी पत्नीके साथ विषय-रत रहते हुए भी मै कैसे बहुत कुछ बच गया, इसका एक कारण मैने ऊपर बताया । इस सिलसिलेमे एक और बात कहने जैसी है । सैकडो अनुभवोसे मैने यह निचोड निकाला है कि जिसकी निष्ठा सच्ची है, उसे खुद परमेश्वर ही बचा लेता है । हिंदू-ससारमे जहा बाल-विवाहकी घातक प्रथा है वहा उसके साथ ही

उसमेंसे कुछ मुक्ति दिलानेवाला भी एक रिवाज है। वालक वर-वधूको मा-वाप वहुत समयतक एक साथ नही रहने देते। वाल-पत्नीका आवेमे ज्यादा समय मायकेमें जाता है। हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ। अर्थात् हम १३ और १८ सालकी उम्रके दरमियान थोडा-थोडा करके तीन सालसे अधिक साथ न रह सके होगे। छ -आठ महीने रहना हुआ नही कि पत्नीके मा-वापका वुलावा आया नही। उस समय तो वे वुलावे वडे नागवार मालूम होते, परतु सच पूछिए तो उन्हीकी वदौलत हम दोनो वहुत वच गए। फिर १८ सालकी अवस्थामे मै विलायत गया, लवे और सुदर वियोगका अवसर आया। विलायतसे लौटनेपर भी हम एक साथ तो छ महीने मुश्किलसे रहे होगे, क्योकि मुझे राजकोट-ववई वार-वार आना-जाना पडता था। फिर इतनेमें ही दक्षिण अफ्रीकाका निमत्रण आ पहुचा, और इस वीच तो मेरी आखे वहुत-कुछ खुल भी चुकी थी।

विलायत जाते समय जो वियोग-दु ख हुआ था, वह दक्षिण अफ्रीका जाते हुए न हुआ, क्योकि माताजी तो चल वसी थी और मुझे दुनियाका और सफरका अनुभव भी वहुत-कुछ हो गया था। राजकोट और ववई तो आया-जाया करता ही था। इस कारण अवकी वार सिर्फ पत्नीका ही वियोग दु खद था। विलायतसे आनेके वाद दूसरे एक वालकका जन्म हो गया था। हम दपतीके प्रेममें अभी विपय-भोगका अश तो था ही। फिर भी उसमें निर्मलता आने लगी थी। मेरे विलायतसे लौटनेके वाद हम वहुत थोडा समय एक साथ रहे थे और मै ऐसा-वैसा ही क्यो न हो, उसका शिक्षक वन चुका था। इधर पत्नीकी वहुतेरी वातोमें वहुत-कुछ सुधार करा चुका था और उन्हें कायम रखनेके लिए भी साथ रहनेकी आवश्यकता हम दोनोको मालूम होती थी। परतु अफ्रीका मुझे आकर्षित कर रहा था। उसने इस वियोगको सहन करनेकी शक्ति दे दी थी। 'एक सालके वाद तो हम मिलेगे ही'—कहकर और दिलासा देकर मैंने राजकोट छोडा और ववई पहुचा।

लड़ाईके कामसे मुक्त होनेके बाद मैंने सोचा कि अब मेरा काम दक्षिण अफ्रीकामें नही, बल्कि देशमें है। दक्षिण अफ्रीकामें बैठे-बैठे मैं कुछ-न-कुछ सेवा तो जरूर कर पाता था, परतु मैंने देखा कि यहा कही मेरा मुख्य काम धन कमाना ही न हो जाय।

देगसे मित्र लोग भी देश लौट आनेको आकर्षित कर रहे थे। मुझे भी जचा कि देश जानेसे मेरा अधिक उपयोग हो सकेगा। नेटालमे मि० खान और मनसुखलाल नाजर थे ही।

मैंने साथियोसे छुट्टी देनेका अनुरोध किया। बडी मुश्किलसे उन्होने एक शर्तपर छुट्टी स्वीकार की। वह यह कि एक सालके अदर लोगोको मेरी जरूरत मालूम हो तो मै फिर दक्षिण अफ्रीका आ जाऊगा। मुझे यह शर्त कठिन मालूम हुई, परतु मै तो प्रेम-पाशमें बधा हुआ था।

काचे रे तांतणे मने हरजीए बांधी
जेम ताणे तेम तेमरी रे
मने लागी कटारी प्रेमनी।[1]

मीराबाईकी यह उपमा न्यूनाधिक अशमे मुझपर घटित होती थी। पच भी परमेश्वर ही हैं। मित्रोकी बातको टाल नही सकता था। मैंने वचन दिया। इजाजत मिली।

इस समय मेरा निकट-सबध प्राय नेटालके ही साथ था। नेटालके हिंदुस्तानियोने मुझे प्रेमामृतसे नहला डाला। स्थान-स्थानपर अभिनदन पत्र दिए गए और हरएक जगहसे कीमती चीजें नजर की गईं।

१८९६में जब मैं देश आया था तब भी भेटें मिली थी, पर इस बारकी भेंटो और सभाओंके दृश्योसे मैं घबराया। भेंटमें सोने-चादीकी चीजें तो थी ही, पर हीरेकी चीजें भी थी।

---

[1] प्रभुजीने मुझे कच्चे सूतके प्रेम-धागेसे बाध लिया है। ज्यों-ज्यो वह उसे तानते है त्यो-त्यो मैं उनकी होती जाती हूं।

इन सब चीजोंको स्वीकार करनेका मुझे क्या अधिकार हो सकता है ? यदि मैं इन्हें मजूर कर लू तो फिर अपने मनको यह कहकर कैसे मना सकता हूं कि मैं पैसा लेकर लोगोकी सेवा नही करता था ? मेरे मवक्किलोकी कुछ रकमोंको छोडकर बाकी सब चीजें मेरी लोक-सेवाके ही उपलक्ष्यमे दी गई थी । पर मेरे मनमें तो मवक्किल और दूसरे साथियोमें कुछ भेद न था । मुख्य-मुख्य मवक्किल सब सार्वजनिक काममें भी सहायता देते थे ।

फिर उन भेंटोमें एक पचास गिनीका हार कस्तूरबाईके लिए था । मगर उसे जो चीज मिली वह भी थी तो मेरी ही सेवाके उपलक्ष्यमें । अतएव उसे पृथक् नही मान सकते थे ।

जिस शामको इनमेंसे मुख्य-मुख्य भेंटें मिली, वह रात मैंने एक पागल की तरह जागकर काटी । कमरेमें यहा-से-वहा टहलता रहा, परतु गुत्थी किसी तरह सुलझती न थी । सैकडो रुपयोकी भेंटे न लेना भारी पड़ रहा था; पर ले लेना उससे भी भारी मालूम होता था ।

मैं चाहे इन भेंटोंको पचा भी सकता, पर मेरे बालक और पत्नी ? उन्हें तालीम तो सेवाकी मिल रही थी । सेवाका दाम नही लिया जा सकता था, यह हमेशा समझाया जाता था । घरमे कीमती जेवर आदि मै नही रखता था । सादगी बढती जाती थी । ऐसी अवस्थामें सोनेकी घडिया कौन रखेगा ? सोनेकी कटी और हीरेकी अगूठिया कौन पहनेगा ? गहनोका मोह छोडनेके लिए मै उस समय भी औरोसे कहता रहता था । अब इन गहनो और जवाहरातको लेकर मै क्या करूगा ?

मै इस निर्णयपर पहुचा कि वे चीजें मै हरगिज नही रख सकता । पारसी रुस्तमजी इत्यादिको इन गहनोका ट्रस्टी बनाकर उनके नाम एक चिट्ठी तैयार की और सुबह स्त्री-पुत्रादिसे सलाह करके अपना बोझ हल्का करनेका निश्चय किया ।

मै जानता था कि धर्मपत्नीको समझाना मुश्किल पड़ेगा । मुझे

विश्वास था कि बालकोको समझानेमें जरा भी दिक्कत पेश न आवेगी। अत उन्हे वकील बनानेका विचार किया।

बच्चे तो तुरत समझ गए। वे बोले, "हमें इन गहनोसे कुछ मतलब नही। ये सब चीजें हमें लौटा देनी चाहिए और यदि जरूरत होगी तो क्या हम खुद नही बना सकेगे ?"

मै प्रसन्न हुआ। "तो तुम बाको समझाओगे न ?" मैने पूछा।

"जरूर-जरूर। वह कहा इन गहनोको पहनने चली है! वह रखना चाहेंगी भी तो हमारे ही लिए न ? पर जब हमे ही इनकी जरूरत नही है तब फिर वह क्यो जिद करने लगी ?"

परतु काम अदाजसे ज्यादा मुश्किल साबित हुआ।

"तुम्हे चाहे जरूरत न हो और लडकोको भी न हो। बच्चोका क्या ? जैसा समझा दें समझ जाते है। मुझे न पहनने दो, पर मेरी बहुओको तो जरूरत होगी। और कौन कह सकता है कि कल क्या होगा ? जो चीजे लोगोने इतने प्रेमसे दी है उन्हे वापस लौटाना ठीक नही।" इस प्रकार वाग्धारा शुरू हुई और उसके साथ अश्रु-धारा आ मिली। लडके दृढ रहे और मै भला क्यो डिगने लगा ?

मैने धीरेसे कहा—"पहले लडकोकी शादी तो हो लेने दो। हम बचपनमें तो इनके विवाह करना चाहते ही नही है। बडे होनेपर जो इनका जी चाहे सो करे। फिर हमे क्या गहनो-कपडोकी शौकीन बहुए खोजनी है ? फिर भी अगर कुछ बनवाना ही होगा तो मै कहा चला गया हू ?"

"हा, जानती हू तुमको। वही न हो, जिन्होने मेरे भी गहने उतरवा लिए है! जब मुझे ही नही पहनने देते हो तो मेरी बहुओको जरूर ला दोगे! लडकोको तो अभीसे वैरागी बना रहे हो! इन गहनोको मै वापस नही देने दूगी और फिर मेरे हारपर तुम्हारा क्या हक है ?"

"पर यह हार तुम्हारी सेवाकी खातिर मिला है या मेरी ?" मैंने पूछा ।

"जैसा भी हो तुम्हारी सेवामें क्या मेरी सेवा नही है ? मुझसे जो रात-दिन मजूरी कराते हो, क्या वह सेवा नही है ? मुझे रुला-रुलाकर जो ऐरे-गैरोको घरमें रखा और मुझसे सेवा-टहल कराई, वह कुछ भी नही ?"

ये सब वाण तीखे थे । कितने ही तो मुझे चुभ रहे थे । पर गहने वापस लौटानेका मैं निश्चय कर चुका था । अतको वहुतेरी वातोंमें मै जैसे-तैसे सम्मति प्राप्त कर सका । १८९६ और १९०१में मिली भेंटे लौटाईं । उनका ट्रस्ट वनाया गया और लोक-सेवाके लिए उसका उपयोग मेरी अथवा ट्रस्टियोकी इच्छाके अनुसार होनेकी शर्तपर वह रकम वैंकमें रखी गई । इन चीजोको वेचनेके निमित्तसे मै वहुत वार रुपया एकत्र कर सका हू । आपत्ति-कोषके रूपमें वह रकम आज भी मौजूद है और उसमें वृद्धि होती जाती है ।

इस वातके लिए मुझे कभी पश्चात्ताप नही हुआ । आगे चलकर कस्तूरवाईको भी उसका औचित्य जचने लगा । इस तरह हम अपने जीवनमें वहुतेरे लालचोंसे वच गए है ।

मेरा यह निश्चित मत हो गया है लोक-सेवकको जो भेट मिलती है, वे उसकी निजी चीज कदापि नही हो सकती ।

मेरे जीवनमें ऐसी अनेक घटनाए होती रही है, जिनके कारण मैं विविध धर्मो तथा जातियोंके निकट परिचयमें आ सका हू । इन सव अनुभवोपर यह कह सकते है कि मैंने घरके या वाहरके, देशी या विदेशी हिंदू या मुसलमान तथा ईसाई, पारसी या यहूदियोसे भेद-भावका खयाल तक नही किया । मै कह सकता हू कि मेरा हृदय इस प्रकारके भेद-भावको जानता ही नही । इसको मैं अपना एक गुण नही मानता हू, क्योकि जिस प्रकार अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहादि यम-नियमोंके अभ्यासका

तथा उनके लिए अब भी प्रयत्न करते रहनेका पूर्ण ज्ञान मुझे है उसी प्रकार इस अ-भेद-भावको बढानेके लिए मैंने कोई खास प्रयत्न किया है, ऐसा याद नही पडता ।

जिस समय डरबनमे मैं वकालत करता था, उस समय वहुत बार मेरे कारकुन मेरे साथ ही रहते थे । वे हिंदू और ईसाई होते थे, अथवा प्रातोके हिसाबसे कहें तो गुजराती और मद्रासी । मुझे याद नही आता कि कभी उनके विषयमें मेरे मनमें भेद-भाव पैदा हुआ हो । मैं उन्हें बिलकुल घरके ही जैसा समझता और उसमे मेरी धर्मपत्नीकी ओरसे यदि कोई विघ्न उपस्थित होता तो मैं उससे लडता था । मेरा एक कारकुन ईसाई था । उसके मा-बाप पचम जातिके थे । हमारे घरकी वनावट पश्चिमी ढगकी थी । इस कारण कमरेमें मोरी नही होती थी—और न होनी चाहिए थी, ऐसा मेरा मत है । इस कारण कमरोमें मोरियोकी जगह पेशावके लिए एक अलग वर्तन होता था । उसे उठाकर रखनेका काम हम दोनो—दपतीका था, नौकरोका नही । हा, जो कारकुन लोग अपनेको हमारा कुटुबी-सा मानने लगते थे वे तो खुद ही उसे साफ कर भी डालते थे, लेकिन पचम जातिमें जन्मा यह कारकुन नया था । उसका बर्तन हमें ही उठाकर साफ करना चाहिए था, दूसरे वर्तन तो कस्तूरबाई उठाकर साफ कर देती, लेकिन इन भाईका वर्तन उठाना उसे असह्य मालूम हुआ । इससे हम दोनोमें झगडा मचा । यदि मै उठाता हू तो उसे अच्छा नही मालूम होता था और खुद उसके लिए उठाना कठिन था । फिर भी आँखोसे मोतीकी बूदे टपक रही है, एक हाथ में वर्तन लिये अपनी लाल-लाल आखोसे उलहना देती हुई कस्तूरवाई सीढियोसे उतर रही है । वह चित्र मै आज भी ज्यो-का-त्यो खीच सकता हू ।

परतु मै जैसा सहृदय और प्रेमी पति था वैसा ही निष्ठुर और कठोर भी था । मै अपनेको उसका शिक्षक मानता था । इससे अपने अधप्रेमके अधीन हो मै उसे खूब सताता था । इस कारण महज उसके वर्तन उठा

ले जाने-भरसे मुझे सतोष न हुआ। मैंने यह भी चाहा कि वह हँसते और हरखते हुए उसे ले जाय। इसलिए मैंने उसे डाटा-डपटा भी। मैंने उत्तेजित होकर कहा—"देखो, यह वखेड़ा मेरे घरमें नही चल सकेगा।"

मेरा यह वोल कस्तूरवाईको तीरकी तरह लगा। उसने धधकते दिलसे कहा—"तो लो, रखो यह अपना घर! मै चली!"

उस समय मै ईश्वरको भूल गया था। दयाका लेशमात्र मेरे हृदयमें न रह गया था। मैंने उसका हाथ पकडा। सीढीके सामने ही बाहर जानेका दरवाजा था। मै उस दीन अवलाका हाथ पकडकर दरवाजेतक खीचकर ले गया। दरवाजा आधा खोला होगा कि आखोमें गगा-जमुना वहाती हुई कस्तूरवाई वोली, "तुम्हें तो कुछ शरम है नही, पर मुझे है। जरा तो लजाओ। मै वाहर निकलकर आखिर जाऊँ कहा? मा-वाप भी यहा नही कि उनके पास चली जाऊँ। मै ठहरी स्त्री-जाति! इसलिए मुझे तुम्हारी धौंस सहनी ही पडेगी। अव जरा शरम करो और दरवाजा वद कर लो। कोई देख लेगा तो दोनोकी फजीहत होगी।"

मैंने अपना चेहरा तो सुर्ख वनाये रखा, पर मनमें शरमा जरूर गया। दरवाजा वद कर दिया। जवकि पत्नी मुझे छोड नही सकती थी तव मै भी उसे छोडकर कहा जा सकता था? इस तरह हमारे आपसमें लडाई-झगडे कई वार हुए है, परतु उनका परिणाम सदा अच्छा ही निकला है। उनमें पत्नीने अपनी अद्भुत सहनशीलताके द्वारा मुझपर विजय प्राप्त की है।

ये घटनाए हमारे पूर्व-युगकी है, इसलिए उनका वर्णन मै आज अलिप्त-भावसे करता हू। आज मै तवकी तरह मोहाध पति नही हू, न उसका शिक्षक ही हू। यदि चाहें तो कस्तूरवाई आज मुझे धमका सकती है। हम आज एक-दूसरेके भुक्त-भोगी मित्र है, एक-दूसरेके प्रति

निर्विकार रहकर जीवन विता रहे है। कस्तूरबाई आज ऐसी सेविका वन गई है, जो मेरी वीमारियोमे बिना प्रतिफलकी इच्छा किये सेवा-शुश्रूषा करती है।

यह घटना १८९८की है। उस समय मुझे ब्रह्मचर्य-पालनके विषयमें कुछ ज्ञान न था। वह समय ऐसा था जबकि मुझे इस बातका स्पष्ट ज्ञान न था कि पत्नी तो केवल सहधर्मिणी, सहचारिणी और सुख-दु खकी साथिन है। मै यह समझकर बर्ताव करता था कि पत्नी विषय-भोगकी भाजन है, उसका जन्म पतिकी हर तरहकी आज्ञाओका पालन करनेके लिए हुआ है।

किंतु १९०० ई०से मेरे इन विचारोमे गहरा परिवर्तन हुआ। १९०६मे उसका परिणाम प्रकट हुआ, परतु इसका वर्णन आगे प्रसग आनेपर होगा। यहा तो सिर्फ इतना बताना काफी है कि ज्यो-ज्यो मै निर्विकार होता गया त्यो-त्यो मेरा घर-ससार शात, निर्मल और सुखी होता गया और अब भी होता जाता है।

इस पुण्य-स्मरणसे कोई यह न समझ लें कि हम आदर्श दपती है, अथवा मेरी धर्म-पत्नीमे किसी किस्मका दोष नही है, अथवा हमारे आदर्श अव एक हो गए है। कस्तूरबाई अपना स्वतत्र आदर्श रखती है या नही, यह तो वह बेचारी खुद भी शायद न जानती होगी। वहुत सभव है कि मेरे आचरणकी वहुतेरी बाते उसे अब भी पसद न आती हो, परतु अब हम उनके वारेमे एक-दूसरेसे चर्चा नही करते, करनेमें कुछ सार भी नही है। उसे न तो उसके मा-वापने शिक्षा दी है, न मै ही, जव समय था, शिक्षा दे सका, परतु उसमे एक गुण बहुत वडे परिमाण मे है, जो दूसरी कितनी ही हिंदू-स्त्रियोंमे थोडी-वहुत मात्रामे पाया जाता है। मनसे हो या बे-मनसे, जानमे हो या अनजानमें, मेरे पीछे-पीछे चलनेमे उसने अपने जीवनकी सार्थकता मानी है और स्वच्छ जीवन वितानेके मेरे प्रयत्नमें उसने कभी वाधा नही डाली। इस कारण यद्यपि हम दोनोकी बुद्धि-

शक्तिमें बहुत अतर है, फिर भी मेरा खयाल है कि हमारा जीवन संतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी है।

कस्तूरबाईपर तीन घातें हुई और तीनोमें वह महज घरेलू इलाजसे बच गई। पहली घटना तो तबकी है जब सत्याग्रह-सग्राम चल रहा था उसको बार-बार रक्त-स्राव हुआ करता था। एक डाक्टर मित्रने नश्तर लगवानेकी सलाह दी थी। बडी आनाकानीके बाद वह नश्तरके लिए राजी हुई। शरीर बहुत क्षीण हो गया था। डाक्टरने बिना बेहोश किये ही नश्तर लगाया। उस समय उसे दर्द तो बहुत हो रहा था, पर जिस धीरजसे कस्तूरबाईने उसे सहन किया उसे देखकर मैं दातो तले अगुली देने लगा। नश्तर अच्छी तरह लग गया। डाक्टर और उसकी धर्मपत्नीने कस्तूरबाईकी बहुत अच्छी तरह शुश्रूषा की।

यह घटना डरबनकी है। दो या तीन दिन बाद डाक्टरने मुझे निश्चित होकर जोहान्सबर्ग जानेकी छुट्टी दे दी। मैं चला भी गया, पर थोडे ही दिनमें समाचार मिले कि कस्तूरबाईका शरीर बिलकुल सिमटता नही है और वह बिछौनेसे उठ-बैठ भी नही सकती। एक बार बेहोश भी हो गई थी। डाक्टर जानते थे कि मुझसे पूछे बिना कस्तूरबाईको शराब या मास—दवामें अथवा भोजनमें—नही दिया जा सकता था। सो उन्होने मुझे जोहान्सबर्ग टेलीफोन किया, "आपकी पत्नीको मैं मासका शोरबा और 'बीफ टी' देनेकी जरूरत समझता हू। मुझे इजाजत दीजिए।"

मैंने जवाब दिया, "मैं तो इजाजत नही दे सकता। परतु कस्तूरबाई आजाद है। उसकी हालत पूछने लायक हो तो पूछ देखिए और वह लेना चाहे तो जरूर दीजिए।"

"बीमारसे मैं ऐसी बातें नही पूछना चाहता। आप खुद यहा आ जाइए। जो चीजें मैं बताता हू उनके खानेकी इजाजत यदि आप न दें तो मैं आपकी पत्नीकी जिंदगीके लिए जिम्मेदार नही हू।"

यह सुनकर मैं उसी दिन डरवन रवाना हुआ। डाक्टरसे मिलनेपर उन्होंने कहा—"मैंने तो शोरवा पिलाकर आपको टेलीफोन किया था।"

मैंने कहा—"डाक्टर, यह तो विश्वासघात है।"

"इलाज करते वक्त मै दगा-वगा कुछ नही समझता। हम डाक्टर लोग ऐसे समय बीमारको व उसके रिश्तेदारोको धोखा देना पुण्य समझते है। हमारा धर्म तो है जिस तरह हो सके रोगीको बचाना।" डाक्टरने दृढता-पूर्वक उत्तर दिया।

यह सुनकर मुझे वडा दु ख हुआ, पर मैंने शाति धारण की। डाक्टर मित्र थे, सज्जन थे। उनका और उनकी पत्नीका मुझपर वडा अहसान था। पर मै उनके इस व्यवहारको वरदाश्त करनेके लिए तैयार न था।

"डाक्टर, अव साफ-साफ बातें कर लीजिए। वताइए, आप क्या करना चाहते है? अपनी पत्नीको विना उसकी इच्छाके मास नही देने दूगा। उसके न लेनेसे यदि वह मरती हो तो इसे सहन करने के लिए मै तैयार हू।"

डाक्टर बोले, "आपका यह सिद्धात मेरे घर नही चल सकता। मै तो आपसे कहता हू कि आपकी पत्नी जवतक मेरे यहा है तवतक मैं मास, अथवा जो कुछ देना मुनासिव समझूगा, जरूर दूगा। अगर आपको यह मजूर नही है तो आप अपनी पत्नीको यहासे ले जाइए। अपने ही घरमे मैं इस तरह उन्हे नही मरने दूगा।"

"तो क्या आपका यह मतलव है कि मैं पत्नीको अभी ले जाऊ?"

"मैं कहा कहता हू कि ले जाओ? मै तो यह कहता हू कि मुझपर कोई शर्त न लादो तो हम दोनोसे इनकी जितनी सेवा हो सकेगी करेंगे और आप सो जाइए। जो यह सीधी-सी बात समझमे न आती हो तो मुझे मजवूरीसे कहना होगा कि आप अपनी पत्नीको मेरे घरसे ले जाइए।"

मेरा खयाल है कि मेरा लडका उस समय मेरे साथ था। उससे

मैंने पूछा तो उसने कहा—"हा, आपका कहना ठीक है। वाको मास कैसे दे सकते है ?"

फिर मै कस्तूरबाईके पास गया। वह बहुत कमजोर हो गई थी। उससे कुछ भी पूछना मेरे लिए दुखदाई था। पर अपना धर्म समझकर मैंने ऊपरकी बातचीत उसे थोडेमे समझा दी। उसने दृढतापूर्वक जवाब दिया—"मै मासका शोरबा नही लूगी। यह मनुष्य-देह बार-बार नही मिला करती। आपकी गोदीमें मै मर जाऊ तो परवाह नही, पर अपनी देहको मै भ्रष्ट नही होने दूगी।"

मैंने उसे बहुतेरा समझाया और कहा कि तुम मेरे विचारोके अनुसार चलनेके लिए बाध्य नही हो। मैंने उसे यह भी बता दिया कि कितने ही अपने परिचित हिंदू भी दवाके लिए शराब और मास लेनेमें परहेज नही करते। पर वह अपनी बातसे बिलकुल न डिगी और मुझसे कहा—"मुझे यहासे ले चलो।"

यह देखकर मै बडा खुश हुआ, किन्तु ले जाते हुए बडी चिंता हुई। पर मैंने तो निश्चय कर ही डाला और डाक्टरको भी पत्नीका निश्चय सुना दिया।

वह बिगडकर बोले, "आप तो बडे घातक पति मालूम होते है। ऐसी नाजुक हालतमे उस बेचारीसे ऐसी बात करते हुए आपको शरम नही मालूम हुई ? मै कहता हू कि आपकी पत्नीकी हालत यहासे ले जाने लायक नही है। उनके शरीरकी हालत ऐसी नही है कि जरा भी धक्का सहन कर सके। रास्ते हीमें दम निकल जाय तो ताज्जुब नही। फिर भी आप हठ-धर्मीसे न मानें तो आप जानें। यदि शोरबा न देने दें तो एक रात भी उन्हें अपने घरमें रखनेकी जोखिम मै नही लेता।"

रिमझिम-रिमझिम मेंह बरस रहा था। स्टेशन दूर न था। डरबनसे फिनिक्सतक रेलके रास्ते और फिनिक्ससे लगभग ढाई मीलतक पैदल जाना था। खतरा पूरा-पूरा था। पर मैंने यही सोच लिया कि

ईश्वर सब तरह मदद करेगा। पहले एक आदमीको फिनिक्स भेज दिया। फिनिक्समे हमारे यहा एक हैमक था। हैमक कहते हैं जालीदार कपड़ेकी झोली अथवा पालनेको। उसके सिरोको बाससे बाध देनेपर बीमार उसमें आरामसे झूला करता है। मैंने वेस्टको कहलाया कि वह हैमक, एक बोतल गरम दूध, एक बोतल गरम पानी और छ आदमियोको लेकर फिनिक्स स्टेशनपर आ जाय।

जब दूसरी ट्रेन चलनेका समय हुआ तब मैंने रिक्शा मगाई और उस भयकर स्थितिमें पत्नीको लेकर चल दिया।

पत्नीको हिम्मत दिलानेकी मुझे जरूरत न पडी, उल्टा मुझीको हिम्मत दिलाते हुए उसने कहा, "मुझे कुछ नुकसान न होगा, आप चिंता न करे।"

इस ठठरीमे वजन तो कुछ रही नही गया था। खाना पेटमें जाता ही न था। ट्रेनके डब्बेतक पहुचनेके लिए स्टेशनके लबे-चौडे प्लेटफार्मपर दूरतक चलकर जाना था, क्योकि रिक्शा वहातक पहुच नही सकती थी। मै सहारा देकर डब्बेतक ले गया। फिनिक्स स्टेशन पर तो वह झोली आ गई थी। उसमे हम रोगीको आरामसे घरतक ले गए। वहा केवल पानीके उपचारसे धीरे-धीरे उसका शरीर बनने लगा। फिनिक्स पहुचनेके दो-तीन दिन बाद एक स्वामीजी हमारे यहा पधारे। जब हमारी हठ-धर्मीकी कथा उन्होने सुनी तो हमपर उनको बडा तरस आया और वह हम दोनोको समझाने लगे।

मुझे जहातक याद आता है, मणिलाल और रामदास भी उस समय मौजूद थे। स्वामीजीने मासाहारकी निर्दोषतापर एक व्याख्यान झाडा, मनुस्मृतिके श्लोक सुनाए। पत्नीके सामने जो इसकी बहस उन्होने छेडी यह मुझे अच्छा न मालूम हुआ, परतु शिष्टाचारकी खातिर मैंने उसमें दखल न दिया। मुझे मासाहारके समर्थनमे मनुस्मृतिके प्रमाणोकी आवश्यकता न थी। उनका पता मुझे था। मै यह भी जानता था कि ऐसे लोग

भी है जो उन्हे प्रक्षिप्त समझते है । यदि वे प्रक्षिप्त न हो तो भी अन्नाहार-सबंधी मेरे विचार स्वतत्र-रूपसे बन चुके थे । पर कस्तूरबाईकी तो श्रद्धा ही काम कर रही थी। वह बेचारी शास्त्रोके प्रमाणोको क्या जानती ? उसके नजदीक तो परपरागत रूढि ही धर्म था । लड़कोको अपने पिताके धर्मपर विश्वास था, इससे वे स्वामीजीके साथ विनोद करते जाते थे । अतको कस्तूरबाईने यह कहकर इस बहसको बद कर दिया, "स्वामीजी, आप कुछ भी कहिए, मै मासका शोरवा खाकर चगी होना नही चाहती । अब बडी दया होगी, अगर आप मेरा सिर न खपावें । मैंने तो अपना निश्चय आपसे कह दिया । अब और बातें रह गई हो तो आप इन लडकोके बापसे जाकर कीजिएगा ।"

नश्तर लगानेके बाद यद्यपि कस्तूरबाईका रक्त-स्राव कुछ समयके लिए बद हो गया था, तथापि बादको वह फिर जारी हो गया । अबकी वह किसी तरह मिटाये न मिटा । पानीके इलाज बेकार साबित हुए । मेरे इन उपचारोंपर पत्नीकी बहुत श्रद्धा न थी, पर साथ ही तिरस्कार भी न था । दूसरा इलाज करनेका भी उसे आग्रह न था । इसलिए जब मेरे दूसरे उपचारोमें सफलता न मिली तब मैंने उसको समझाया कि दाल और नमक छोड़ दो । मैंने उसे समझानेकी हद कर दी, अपनी बातके समर्थनमें कुछ साहित्य भी पढकर सुनाया, पर वह नही मानती थी । अतको उसने झुझलाकर कहा—"दाल और नमक छोडनेके लिए तो आपसे भी कोई कहे तो आप भी न छोड़ेंगे ।"

इस जवाबको सुनकर, एक ओर जहा मुझे दु ख हुआ वहा दूसरी ओर हर्ष भी हुआ, क्योंकि इससे मुझे अपने प्रेमका परिचय देनेका अवसर मिला । उस हर्षमे मैंने तुरत कहा, "तुम्हारा खयाल गलत है, मै यदि बीमार होऊ और मुझे यदि वैद्य इन चीजोको छोडने के लिए कहें तो जरूर छोड दू । पर ऐसा क्यो ? लो, तुम्हारे लिए मै आज ही से दाल और नमक एक साल तक छोडे देता हूँ । तुम छोडो या न छोडो, मैंने तो छोड दिया ।"

यह देखकर पत्नीको बडा पश्चात्ताप हुआ। वह कह उठी, "माफ करो, आपका मिजाज जानते हुए भी यह वात मेरे मुहसे निकल गई। अब मै तो दाल और नमक न खाऊगी, पर आप अपना वचन वापस ले लीजिए। यह तो मुझे भारी सजा दे दी।"

मैने कहा, "तुम दाल और नमक छोड दो तो वहुत ही अच्छा होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हे लाभ ही होगा, परतु मै जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ वह नही टूट सकती। मुझे भी उससे लाभ ही होगा। हर किसी निमित्तसे मनुष्य यदि सयमका पालन करता है तो इससे उसे लाभ ही होता है। इसलिए तुम इस वातपर जोर न दो, क्योकि इससे मुझे भी अपनी आजमाइश कर लेनेका मौका मिलेगा और तुमने जो इनको छोडनेका निश्चय किया है, उसपर दृढ रहनेमें भी तुम्हें मदद मिलेगी।" इतना कहनेके वाद तो मुझे मनानेकी आवश्यकता रह नही गई थी।

"आप तो वडे हठी है, किसीका कहा मानना आपने सीखा ही नही।" यह कहकर वह आसू वहाती हुई चुप हो रही।

इसको मै पाठकोके सामने सत्याग्रहके तौरपर पेश करना चाहता हू और मै कहना चाहता हू कि मै इसे अपने जीवनकी मीठी स्मृतियोंमें गिनता हू।

इसके वाद तो कस्तूरवाईका स्वास्थ्य खूव सम्हलने लगा। अव यह नमक और दालके त्यागका फल है, या उस त्यागसे हुए भोजनके छोटे-वडे परिवर्तनोका फल था, या उसके वाद दूसरे नियमोका पालन करानेकी मेरी जागरूकताका फल था, या इस घटनाके कारण जो मानसिक उल्लास हुआ उसका फल था, यह मै नही कह सकता, परतु यह वात जरूर हुई कि कस्तूरवाईका सूखा शरीर फिर पनपने लगा। रक्त-स्राव वद हो गया और 'वैद्यराज' के नामसे मेरी साख कुछ वढ गई (आ०, १९२७)

कल एक आदमीने भूलसे उन्हे (वाको) मेरी मा समझ लिया था।

यह भूल हमारे और उनके बीच न सिर्फ क्षम्य ही है, बल्कि तारीफकी बात है; क्योंकि बहुत वर्षोंसे वह हम दोनोंकी सलाहसे मेरी पत्नी नही रह गई है। चालीस साल हुए मैं बेमा-बापका हो गया और तीस वर्षोंसे वह मेरी माका काम कर रही है। वह मेरी मा, सेविका, रसोइया, बोतल धोनेवाली सब कुछ रही है। अगर वह इतने सवेरे आपके दिए सम्मानमें हिस्सा लगाने आती तो मैं भूखा ही रह जाता और मेरे शारीरिक सुखकी कोई परवाह नही करता। इसलिए हमने आपसमें यह समझौता कर लिया है कि सभी सम्मान मुझे मिले और सभी मिहनत उसे करनी पडे। मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि उसके बारेमें जो-जो अच्छी-अच्छी बाते आपने कही है व सब मेरे कोई साथी उससे कह देगें और उसकी गैरहाजिरीके लिए आप मेरा जवाब मजूर कर लेंगे। (हि० न०, १ १२ २७)

आज (३१-३-३२) 'लीडर' की 'लंदनकी चिट्ठी' अच्छी थी। आम तौरपर पोलक नरम शब्दोमें ही लिखते है, मगर इस बार हिंदुस्तानकी घटनाओपर उन्होने काफी गरम होकर लिखा है। बाको 'सी' क्लास मिला, बादमें 'ए' मिला और कराचीकी एक ८० वर्षकी महिलाको पकड़ा गया, इन बातोपर उन्होंने अच्छा लिखा है। 'बा' तो गांधीकी पत्नी थीं, इसलिए उन्हें 'सी'से बदलकर 'ए'में रख दिया, नहीं तो ६० वर्षकी दूसरी कोई औरत होती तो 'सी'में ही रहती न ? यह उनकी दलील अच्छी है। मगर सबसे बढ़िया तो यह है। सेम्युअल होर के लिए वे लिखते हैं कि हिंदुस्तानमें जब यह सबकुछ हो रहा है तब सेम्युअल 'स्केट' करता है! कारवा और उसपर भौंकनेवाले कुत्तोंका इसका रूपक उलटा इसीपर चाहे लागू न हो, मगर यह देखना कि कहीं यहाका कारवा इतना आगे न बढ़ जाय कि फिर कुछ सुधारनेकी गुंजायश ही न रहे और सिर्फ कुत्ते ही भोकते रह जायं—यह कहकर उन्होने होरको 'सावधान' कहा है।

बापू—"बस, यह तो फिरोजशाह मेहता जैसी बात हुई। उन्हें

दक्षिण अफ्रीकाकी लडाईकी कोई परवाह नही थी, मगर जब बाको पकडनेकी खबर सुनी तो उन्हे आग लग गई और उन्होने टाउन हालका प्रसिद्ध भाषण दिया। पोलकसे बा वाली बात बर्दाश्त नही हुई, इसलिए यह लिखा है।"

वल्लभभाई—"बाकी बात ऐसी है, जो किसीको भी चुभेगी। बा तो अहिंसाकी मूर्ति है। ऐसी अहिंसाकी छाप मैंने और किसी स्त्रीके चेहरेपर नहीं देखी। उनकी अपार नम्रता, उनकी सरलता किसीको भी हैरतमें डालनेवाली है।"

बापू—"सही बात है, वल्लभभाई। मगर मुझे बाका सबसे बडा गुण उसकी हिम्मत और बहादुरी मालूम होती है। वह जिद करे, क्रोध करे, ईर्ष्या करे, मगर यह सब जाननेके बाद आखिर दक्षिण अफ्रीकासे आजतककी उसकी कारगुजारी देखे तो उसकी बहादुरी बाकी रहती है।" (म० डा०, भाग १, ३१ ३ ३२)

•

बापूकी थकान अभी चल रही है। बाका स्मरण उन्हें उसी तरह व्यथित करता रहता है। आज फिर कह रहे थे,

"बाकी मृत्यु भव्य थी। मुझे उसका बहुत हर्ष है। जो दुख है वह तो अपने स्वार्थके लिए। ६२ वर्षके साथके बाद उसका साथ छूटना चुभता है। कितनी ही कोशिश करू, अभी मैं उन स्मरणोको मनसे नही निकाल सकता। (का० क०, २७ २ ४४)

•

शामको घूमते समय बापू कुछ थके-से लगे। पूछनेपर कहने लगे,

"एक तो मेरे पत्रोके सरकारी जवाब नही आते हैं, इसलिए मनपर बोझ है। दूसरे, बाके जानेका धक्का अभीतक दूर नही हुआ। बुद्धि कहती है कि इससे अच्छी मृत्यु बा के लिए हो नही सकती थी। मुझे हमेशा यह डर रहता था कि बा अगर मेरे पीछे रह जायगी तो अच्छा नही।

मेरे हाथोमें ही चली जाय तो मुझे अच्छा लगे, क्योंकि बा मुझमे समा गई थी। मै शोकमें पड़ा रहता हूँ, ऐसा भी नही है। बाका विचार करता रहता हूं, वह भी नही। क्या है, उसका मै वर्णन नही कर सकता।" (का० क०, २३.३.४४)

. .. ..

बाका जाना एक कल्पना-सा लगता है। मै उसके लिए तैयार था, मगर जब वह सचमुच ही चली गई तो मुझे कल्पनासे अधिक एक नई बात लगी। मै अब सोचता हू कि बाके बिना मै अपने जीवनको ठीक-ठीक बैठा ही नही सकता हू। (का० क०, २ ३ ४४)

शामको बापू घूमते समय कनुसे बात कर रहे थे कि बाके स्मारकके लिए पैसा इकट्ठा करना है। बापूकी अगली जयंतीपर ७५ लाख रुपया इकट्ठा करनेकी बात पहलेसे ही चल रही थी। कनु बापूसे इस विषयपर पूछ रहा था। बापूने कहा,

"दोनो फड साथ मिला दो। बा मुझमे समा गई थी। कौन है ऐसी स्त्री, जो इस तरह अपने पतिकी गोदमे प्राण दे? अंतिम समयमें उसने मुझे बुलाया। तब मै नही जानता था कि वह जा रही है, और मै घूमने नही चला गया था, वह भी ईश्वरका ही काम था। पेनिसिलीनके कारण ही मै रुका। मृत्यु-शय्यापर पडी हुई को इन्जेक्शन क्या देना था? मगर जब, बा के पास बैठा तो समझ गया कि बा अब जाती है। बा के नामसे विश्व-विद्यालय खोलना मै एक निकम्मी बात समझता हू। उसे विश्वविद्यालयमें रस कहा था? चर्खा इत्यादिमें तो वह रस लेती थी। यह फड हम दोनोके निमित्त इकट्ठा हो तो लोगोपर बोझ नही पडेगा। बाका हिस्सा मेरी जयन्तीमें हमेशा रहा है। इस फडका उपयोग चर्खा और ग्रामोद्योगके लिए होगा। नारायणदासको उसके कारभारमें पूरी मेहनत और जिम्मे-दारी लेनी होगी।" (का० क०, ४.३ ४४)

... .

बाका जबरदस्त गुण महज अपनी इच्छासे मुझमें समा जानेका था। यह कुछ मेरे आग्रहसे नही हुआ था। लेकिन समय पाकर बाके अदर ही इस गुणका विकास हो गया था। मै नही जानता था कि बामें यह गुण छिपा हुआ था। मेरे शुरू-शुरूके अनुभवके अनुसार बा बहुत हठीली थी। मेरे दबाव डालनेपर भी वह अपना चाहा ही करती। इसके कारण हमारे बीच थोडे समय की या लबी कडुवाहट भी रहती, लेकिन जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे बा खिलती गईं और पुख्ता विचारोके साथ मुझमें यानी मेरे काममे समाती गईं। जैसे दिन बीतते गए, मुझमें और मेरे काममें—सेवामें—भेद न रह गया। बा धीमे-धीमे उसमें तदाकार होने लगी। शायद हिंदुस्तानकी भूमिको यह गुण अधिक-से-अधिक प्रिय है। कुछ भी हो, मुझे तो बाकी उक्त भावनाका यह मुख्य कारण मालूम होता है।

बामें यह गुण पराकाष्ठाको पहुचा, इसका कारण हमारा ब्रह्मचर्य था। मेरी अपेक्षा बाके लिए वह बहुत ज्यादा स्वाभाविक सिद्ध हुआ। शुरूमें बाको इसका कोई ज्ञान भी न था। मैने विचार किया और बाने उसको उठाकर अपना बना लिया। परिणामस्वरूप हमारा सबध सच्चे मित्रका बना। मेरे साथ रहनेमे बाके लिए सन् १९०६ से, असलमें सन् १९०१ से, मेरे काममें शरीक हो जानेके सिवा या उससे भिन्न और कुछ रह ही नही गया था। वह अलग रह नही सकती थी। अलग रहनेमें उन्हें कोई दिक्कत न होती, लेकिन उन्होने मित्र बननेपर भी स्त्रीके नाते और पत्नीके नाते मेरे काममे समा जानेमें ही अपना धर्म माना। इसमे बाने मेरी निजी सेवाको अनिवार्य स्थान दिया। इसलिए मरते दम तक उन्होने मेरी सुविधाकी देखरेखका काम छोडा ही नही।

अगर मै अपनी पत्नीके बारेमे अपने प्रेम और अपनी भावनाका वर्णन कर सकू, तो हिंदूधर्मके बारेमे अपने प्रेम और अपनी भावनाओंको

शक्तिमें बहुत अंतर है, फिर भी मेरा खयाल है कि हमारा जीवन संतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी है।

कस्तूरबाईपर तीन घातें हुईं और तीनोंमें वह महज घरेलू इलाजसे बच गईं। पहली घटना तो तबकी है जब सत्याग्रह-संग्राम चल रहा था उसको बार-बार रक्त-स्राव हुआ करता था। एक डाक्टर मित्रने नश्तर लगवानेकी सलाह दी थी। बड़ी आनाकानीके बाद वह नश्तरके लिए राजी हुई। शरीर बहुत क्षीण हो गया था। डाक्टरने बिना बेहोश किये ही नश्तर लगाया। उस समय उसे दर्द तो बहुत हो रहा था; पर जिस धीरजसे कस्तूरबाईने उसे सहन किया उसे देखकर मैं दांतों तले अंगुली देने लगा। नश्तर अच्छी तरह लग गया। डाक्टर और उसकी धर्मपत्नीने कस्तूरबाईकी बहुत अच्छी तरह शुश्रूषा की।

यह घटना डरबनकी है। दो या तीन दिन बाद डाक्टरने मुझे निश्चित होकर जोहान्सबर्ग जानेकी छुट्टी दे दी। मैं चला भी गया; पर थोड़े ही दिनमें समाचार मिले कि कस्तूरबाईका शरीर बिलकुल सिमटता नहीं है और वह बिछौनेसे उठ-बैठ भी नहीं सकती। एक बार बेहोश भी हो गई थीं। डाक्टर जानते थे कि मुझसे पूछे बिना कस्तूरबाईको शराब या मांस—दवामें अथवा भोजनमें—नहीं दिया जा सकता था। सो उन्होंने मुझे जोहान्सबर्ग टेलीफोन किया, "आपकी पत्नीको मैं मांसका शोरबा और 'बीफ टी' देनेकी जरूरत समझता हूं। मुझे इजाजत दीजिए।"

मैंने जवाब दिया, "मैं तो इजाजत नहीं दे सकता। परंतु कस्तूरबाई आजाद है। उसकी हालत पूछने लायक हो तो पूछ देखिए और वह लेना चाहे तो जरूर दीजिए।"

"बीमारसे मैं ऐसी बातें नहीं पूछना चाहता। आप खुद यहां आ जाइए। जो चीजें मैं बताता हूं उनके खानेकी इजाजत यदि आप न दें तो मैं आपकी पत्नीकी जिंदगीके लिए जिम्मेदार नहीं हूं।"

को मेरी अहिंसापर भरोसा है और जवतक मैं खुद गिरफ्तार होना न चाहूं वह मुझे पकडेगी नही। सचमुच उनके ज्ञानतंतुओको इतने जोरका धक्का वैठा कि उनकी गिरफ्तारीके वाद उन्हे दस्तकी सख्त शिकायत हो गई। अगर उस समय डा० सुशीला नैयरने, जो उनके साथ ही पकडी गई थी, उनका इलाज न किया होता तो मुझसे इस जेलमे आकर मिलनेसे पहले ही उनकी देह छूट चुकी होती। मेरी हाजिरीसे उन्हें आश्वासन मिला और विना किसी खास इलाजके दस्तकी शिकायत दूर हो गई। लेकिन मन जो खट्टा हुआ था, सो खट्टा ही वना रहा। इसकी वजहसे उनके स्वभावमें चिडचिडापन आ गया और इसीका नतीजा था कि आखिर कष्ट सहते-सहते क्रम-क्रमसे उनका देहपात हुआ। ('हमारी वा', पृ० २२)

• • • • • • •

वा राजकोटकी लड़ाईमें शामिल हुई, इसपर कुछ न लिखनेका मेरा इरादा था, लेकिन उनके उस लडाईमें शामिल होनेपर जो थोडी निष्ठुर टीकाए हुई हैं, वे खुलासा चाहती हैं। मुझे तो कभी यह सूझा ही न था कि वाको इस लडाईमे शरीक होना चाहिए। इसकी खास वजह तो यह थी कि इस तरहकी मुसीवतोके लिए वे वहुत वूढी हो चुकी थी। लेकिन वात कितनी ही अनोखी क्यो न मालूम हो, टीकाकारोको मेरे इस कथन पर इतना विश्वास तो रखना चाहिए कि अगरचे वा अनपढ थी, फिर भी कई सालोसे उन्हें इस वातकी पूरी-पूरी आजादी थी कि वे जो करना चाहें, करें। क्या दक्षिण अफ्रीकामें और क्या हिंदुस्तानमें, जव-जव भी वे किसी लडाईमें शरीक हुई हैं, अपने आप, अपनी आतरिक भावनासे ही। इस वार भी ऐसा ही हुआ था। जव उन्होने मणिवहनकी गिरफ्तारीकी वात सुनी तो उनसे न रहा गया और उन्होने मुझसे लड़ाईमें शामिल होनेकी इजाजत मागी। मैंने कहा, "तुम अभी वहुत ही कमजोर हो।" दिल्लीमें कुछ ही दिन पहले वह अपने नहानेके कमरेमें वेहोश हो गई थी। उस वक्त देवदासने हाजिरखयालीसे काम न लिया होता तो वे उसी समय

स्वर्गधाम पहुच गई होती। लेकिन वाने जवाब दिया, "शरीरकी मुझे परवाह नही।" इसपर मैंने सरदारसे पुछवाया। वे भी इजाजत देनेके लिए बिलकुल तैयार न थे।

लेकिन फिर तो वे पसीजे। रेजीडेंटकी सूचनासे ठाकुरसाहबने जो वचन भग किया था, उसके कारण मुझे होनेवाले क्लेशके वे साक्षी थे। कस्तूबाई राजकोटकी बेटी ठहरी। इसलिए उन्होने अतरकी आवाज सुनी। उन्होने महसूस किया कि जब राजकोटकी बेटिया राज्यके पुरुषो और स्त्रियोकी आजादीके लिए जूझ रही हो तब वे चुप बैठ ही नही सकती।

उनमें एक गुण बहुत बडा था। हरएक हिंदू पत्नीमें वह कमोवेश होता ही है। इच्छासे या अनिच्छासे अथवा जाने-अनजाने भी वह मेरे पदचिन्होपर चलनेमें धन्यता अनुभव करती थी।....

अगरचे मैं चाहता था कि उस तीव्र वेदनासे उन्हें छुटकारा मिले और जल्दी ही उनकी देहका अत हो जाय तो भी आज उनकी कमीको जितना मैंने माना था, उससे कही अधिक मैं महसूस कर रहा हू। हम असाधारण दंपती थे—अनोखे। हमारा जीवन सतोषी, सुखी और सदा ऊर्ध्वगामी था। ('हमारी बा', १८.२.४५)

: ५१ :

नारणदास गांधी

पास ही नारणदास जैसा साधु पुरुष है। नारणदासकी दृढता, सहन-शीलता, हिम्मत, त्यागशक्ति और विवेकबुद्धि वगैरह पर मुझ जैसेको भी ईर्ष्या करनेकी इच्छा होती है। इसने मुझे आश्रमकी तरफसे बिलकुल निश्चित कर दिया है।

. . ..

हम अदर रहकर ताप नही सह रहे है, तुम आतरिक और वाह्य दोनो तपश्चर्या कर रहे हो। (म० डा०, भाग १, २७ ५ ३२)

•

यहा वैठे-वैठे आश्रममें फेरवदल कराया करता हू। नारणदासकी अनन्य श्रद्धा, उसकी पवित्रता, दृढता, उसका उद्यम और कार्यदक्षता सवका लाभ ले रहा हू।

•

नारणदासके वारेमें मेरा पूरा विश्वास है। वह कहे कि मुझे शाति है तो मैं अशाति माननेको तैयार नही हू। मैंने उसे खूव चेता दिया है। दूर बैठा हुआ अब उसे तग नही करूगा। नारणदासमें अनासक्तिके साथ काम करनेकी वडी शक्ति है। अनासक्त हमेशा आसक्तसे वहुत ज्यादा काम करता है और फुर्सतमे हो, ऐसा दीखता है। वह सवसे वादमें थकता है। सच पूछो तो उसे थकावट मालूम ही नही होनी चाहिए। मगर यह तो हुआ आदर्श। तुम वहा मौजूद हो, इसलिए अगर तुम्हें अशाति दिखाई दे और यह लगे कि नारणदास अपने आपको धोखा देता है तो तुम्हारा धर्म मुझसे अलग होगा। तुम्हे तो नारणदासको सावधान करना ही चाहिए। मैं भी वहा होऊ और वह प्रत्यक्ष जो कहे उससे दूसरी ही वात देखू तो जरूर उसे चेतावनी दू। तुम्हारी चेतावनीके वावजूद वह तुम्हारा विरोध करे तो तुम्हें उसका कहना मानना चाहिए, जवतक तुम उसे सत्याग्रही मानती हो तवतक। कई वार हमें अपनी आखें भी धोखा दे देती है। मुझे तुम्हारे चेहरेपर उदासी दीखे, परतु तुम इन्कार करो तो मुझे तुम्हारी वात मान ही लेनी चाहिए। मुझे यह भय हो या शक हो कि मुझसे तुम छिपाती हो तो दूसरी वात है। फिर तो तुमसे पूछनेकी वात नही रह जाती। जाननेके लिए मुझे दूसरे साधन पैदा करने चाहिए। मगर आश्रमजीवन तो इसी तरह चलता है। उसकी वुनियाद

सचाईपर ही है। वहा अच्छे हेतुसे भी धोखा नही दिया जा सकता। (म० डा०, भाग १, २३ ६ ३२)

नारायणदाससे बढकर कोई आदमी इतना ही दृढ, विवेकी, समझदार और कर्तव्य-परायण मुझको मिलनेकी कोई उम्मीद नही है, और नारायणदास मिला है इसको मै ईश्वरका अनुग्रह मानता हू।

• •

तुम्हे मेरा आशीर्वाद अजलिया भर-भरकर है। क्यो न भेजू! मेरी सारी आशाए तुम सफल कर रहे हो और अपनी अनन्य और ज्ञान-मय सेवासे हम तीनोको ही आश्चर्य-चकित कर रहे हो। सारी अग्नि-परीक्षाओमेसे पार उतरनेकी शक्ति ईश्वरने तुम्हे बख्शी मालूम होती है। खूब जिओ और अहिसा-देवीके जरिए सत्यनाराणका साक्षात्कार करो और दूसरोको करनेमे सहायक बनो। (म० डा०, भाग २, ११ ६ ३२)

नारणदास गाधी लिखते है कि मै पाठकोको यह याद दिला दू कि 'चर्खा-जयती' के निमित्त जो लोग कताई-यज्ञमे भाग लेना चाहते हो उन्हे अपने नाम तुरत भेज देने चाहिए। गत ११ अक्तूबरसे यह यज्ञ आरभ हुआ है। जिन लोगोने अपने नाम अभीतक नही भेजे है, वे पिछड तो गए ही है; लेकिन कभी न करनेसे देरसे करना फिर भी अच्छा है। जो पीछे रह गए है वे निश्चित परिमाणसे अधिक कातकर साथ हो सकते है। नारणदास गाधी इस किस्मके खादी-कार्यके अच्छे विशेषज्ञ है। आकडोमे वे खूब रस लेते है और इस कामको तेजीसे करत है। यज्ञार्थ कातनेवालोके नाम और पतोका ठीक-ठीक हिसाब रखने और उनके सूतको रजिस्टरपर चढानेके कामसे वे कभी थकते ही नही; बल्कि उलटे इस काममे उन्हे आनद आता है। वे मानते है कि काम कोई भी हो नियमसे

होना चाहिए। उनका खयाल है कि इस तरह कामका ठीक-ठीक हिसाब रखनेसे ही नियमितता आती है और काम करनेवालोको प्रोत्साहन मिलता है। यदि खासी वडी तादादमें लोग यज्ञार्थ कातें तो वे खादीकी कीमतमें जरूर कमी कर सकते हैं। इस योजनामें वहुत सभावनाए है। इसलिए मै आशा करता हू कि यज्ञार्थ कताईकी इस सुदर योजनापर समुचित ध्यान दिया जायगा। (ह० से०, २५ ११ ३६)

: ५२ :

मगनलाल खुशालचन्द गान्धी

मेरे साथ मेरे जो-जो रिश्तेदार आदि वहा गए और व्यापार आदिमें लग गए थे उन्हे अपने मतमें मिलानेका और फिनिक्समें दाखिल करनेका प्रयत्न मैंने शुरू किया। वे सव तो धन जमा करनेकी उमगसे दक्षिण अफ्रीका आए थे। उनको राजी कर लेना वडा कठिन काम था, परतु कितने ही लोगोको मेरी वात जच गई। इन सवमेंसे आज तो मगनलाल गाधीका नाम मै चुनकर पाठकोंके सामने रखता हू, क्योकि दूसरे लोग जो राजी हुए थे, वे थोडे-वहुत समय फिनिक्समे रहकर फिर धन-सचयके फेरमें पड गए। मगनलाल गाधी तो अपना काम छोडकर जो मेरे साथ आए, सो अवतक रह रहे है और अपने वुद्धि-वलसे, त्यागसे, शक्तिसे एव अनन्य भक्ति-भावसे मेरे आतरिक प्रयोगोमें मेरा साथ देते है एव मेरे मूल साथियोमे आज उनका स्थान सवमें प्रधान है। फिर एक स्वय-शिक्षित कारीगरके रूपमे तो उनका स्थान मेरी दृष्टिमें अद्वितीय है।

. .

शातिनिकेतनमें मेरे मडलको अलग स्थानमें ठहराया गया था। वहा मगनलाल गाधी उस मडलकी देख-भाल कर रहे थे और फिनिक्स आश्रमके तमाम नियमोका बारीकीसे पालन कराते थे। मैने देखा कि उन्होने शातिनिकेतनमे अपने प्रेम, ज्ञान और उद्योग-शीलताके कारण अपनी सुगध फैला रखी थी (आ०, १९२७)

. .. .

जिसे मैने अपने सर्वस्वका वारिस चुना था वह अब नही रहा। मेरे चाचाके पोते मगनलाल खुशालचद गाधी मेरे कामोमे मेरे साथ सन् १९०४ से ही थे। मगनलालके पिताने अपने सभी पुत्रोको देशके काममें दे दिया है। वे इस महीनेके शुरूमें सेठ जमनालालजी तथा दूसरे मित्रोके साथ वगाल गए थे, वहासे विहार आए। वहीपर अपने कर्त्तव्यके पालनमें ही उन्हें कठिन ज्वर हो आया। नौ दिनकी बीमारीके वाद प्रेम और डाक्टरी ज्ञानसे जितनी सेवा सभव है, सभी कुछ होने पर भी वे वृजकिशोरप्रसाद-जीकी गोदमें से चले गए।

कुछ धन कमा सकनेकी आशासे मगनलाल गाधी मेरे साथ सन् १९०३ में दक्षिण अफ्रीका गए थे। मगर उन्हे दूकान करते पूरा साल भर भी न हुआ होगा कि स्वेच्छापूर्वक गरीवीकी मेरी अचानक पुकारको सुनकर वे फिनिक्स आश्रममें आ शामिल हुए और तबसे एक वार भी वे डिगे नही, मेरी आशाए पूरी करनेमें असमर्थ न हुए। यदि उन्होने स्वदेश-सेवामें अपनेको होम दिया तो अपनी योग्यताओ और अपने अध्यवसायके वलपर, जिनके वारेमें कोई सदेह हो ही नही सकता, वे आज व्यापारियोके सिरताज होते। छापाखानेमें डाल दिए जानेपर उन्होने तुरत ही मुद्रण-कलाके सभी भेदोको जान लिया। यद्यपि पहले उन्होने कभी कोई यत्र हाथमे नही लिया था तो भी इजिन-घरमे, कलोके वीच तथा कपोजीटरोके टेवल पर सभी जगह अत्यत कुशलता दिखलाई। 'इडियन ओपीनियन' के गुजराती अशका सपादन करना भी उनके लिए वैसा ही सहज काम था।

फिनिक्स आश्रममें खेतीका काम भी शामिल था और इसलिए वे कुशल किसान भी बन गए। मेरा खयाल है कि आश्रममें वे सर्वोत्तम बागवान थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अहमदाबादसे 'यग इडिया' का जो पहला अक निकला उसमे भी उस सकटकालमें उनके हाथकी कारीगरी थी।

पहले उनका शरीर भीम जैसा था, किंतु जिस काममें उन्होंने अपनेको उत्सर्ग किया, उसकी उन्नतिमें उस शरीरको गला दिया था। उन्होने बडी सावधानीसे मेरे आध्यात्मिक जीवनका अध्ययन किया था। जबकि मैंने विवाहित स्त्री-पुरुषोके लिए भी 'ब्रह्मचर्य ही जीवनका नियम है' का सिद्धात अपने सहकारियोंके सामने पेश किया था तब उन्होने पहले-पहल उसका सौंदर्य तथा उसके पालनकी आवश्यकता समझी और यद्यपि उसके लिए, जैसा कि मै जानता हू, उन्हें बडा कठोर प्रयत्न करना पडा था तो भी उन्होने इसे सफल कर दिखलाया। इसमें वे अपने साथ अपनी धर्मपत्नीको भी धीरतापूर्वक समझा-बुझाकर ले गए, उसपर अपने विचार जबरन डालकर नही।

जब सत्याग्रहका जन्म हुआ तब वे सबसे आगे थे। दक्षिण अफ्रीका-के युद्धका पूरा-पूरा मतलब समझानेवाला एक शब्द मै ढूढ रहा था। दूसरा कोई अच्छा शब्द न मिल सकनेसे मैंने लाचार उसे निष्क्रिय प्रतिरोध-का नाम दिया था, गोकि ये शब्द बहुत ही नाकाफी और भ्रमोत्पादक भी है। क्या ही अच्छा होता अगर आज मेरे पास उनका वह अत्यत सुदर पत्र होता जिसमें उन्होने बतलाया था कि इस युद्धको 'सदाग्रह' क्यों कहना चाहिए। इसी सदाग्रहको बदलकर मैंने 'सत्याग्रह' शब्द बनाया। उनका पत्र पढनेपर इस युद्धके सभी सिद्धातोपर एक-एक करके विचार करते हुए अतमें पाठकको इसी नामपर आना ही पडता था। मुझे याद है कि वह पत्र अत्यत ही छोटा और केवल आवश्यक विषयपर ही था, जैसे कि उनके सभी पत्र होते थे।

युद्धके समय वे कामसे कभी थके नही, किसी कामसे देह नही चुराई

और अपनी वीरतासे वे अपने आसपासमे सभी किसीके दिल उत्साह और आशासे भर देते थे। जबकि सब कोई जेल गए, जब फिनिक्समे जेल जाना ही मानो इनाम जीतना था तब भी, मेरी आज्ञासे, जेलसे भारी काम उठानेके लिए वे पीछे ठहर गए। उन्होने स्त्रियोके दलमे अपनी पत्नीको भेजा।

हिंदुस्तान लौटनेपर भी उन्हीकी बदौलत आश्रम, जिस सयम-नियम-की बुनियादपर बना है, खुल सका था। यहा उन्हे नया और अधिक मुश्किल काम करना पडा। मगर उन्होने अपनेको उसके लायक साबित किया। उनके लिए अस्पृश्यता बहुत कठिन परीक्षा थी। सिर्फ एक लहमे भरके लिए ऐसा जान पडा, मानो उनका दिल डोल गया हो। मगर यह तो एक सेकडकी बात थी। उन्होने देख लिया कि प्रेमकी सीमा नही बाधी जा सकती, और कुछ नही तो महज इसीलिए कि अछूतोके लिए ऊची जातिवाले जिम्मेवार है, हमें उन्हीके जैसे रहना चाहिए।

आश्रमका औद्योगिक विभाग फिनिक्सके ही कारखानेके ढगका नही था। यहा हमें बुनना, कातना, धुनना और ओटना सीखना था। फिर मैं मगनलालकी ओर झुका। गोकि कल्पना मेरी थी, किंतु उसे काममें लानेवाले हाथ तो उनके थे। उन्होने बुनना और कपासके खादी बनने तककी और दूसरी सभी क्रियाए सीखी। वे तो जन्मसे ही विश्वकर्मा, कुशल कारीगर थे।

जब आश्रममें गोशालाका काम शुरु हुआ तब वे इस काममें उत्साह-से लग गए, गोशाला-सबधी साहित्य पढा और आश्रमकी सभी गायोका नामकरण किया और सभी गोरुओंसे मित्रता पैदा कर ली।

जब चर्मालय खुला तब भी वे वैसे ही दृढ थे। जरा दम लेनेकी फुर्सत मिलते ही वे चमडेकी कमाईके सिद्धात भी सीखनेवाले थे। राज-कोटके हाईस्कूलकी शिक्षाके अलावा और जो कुछ वे इतनी अच्छी तरह जानते थे, उन्होने वह सब स्वानुभवकी कठिन पाठशालामें सीखा था।

उन्होने देहाती वढई, देहाती वुनकर, किसान, चरवाहो और ऐसे ही मामूली लोगोसे सीखा था।

वे चर्खा-सघके शिक्षण विभागके व्यवस्थापक थे। श्री वल्लभ-भाईने वाढके जमानेमें उन्हें विट्ठलपुरका नया गाव वनानेका भार दिया था।

वे आदर्श पिता थे। उन्होने अपने वच्चोको, दो लडकियो और एक लडकेको, जो अवतक अविवाहित है, ऐसी शिक्षा दी थी कि जिसमें वे देशके लिए उपहार वननेके लिए योग्य हो। उनका पुत्र केशव यत्र-विद्यामें वडी कुशलता दिखला रहा है। उसने भी अपने पिताके ही समान यह सव मामूली लुहार-वढइयोको काम करते देखकर सीखा है। उनकी सवसे वडी लडकी राधाने, जिसकी उम्र आज अठारह वर्ष है, अपने मत्थे विहारमे स्त्रियोकी स्वाधीनताके सवधमें एक मुश्किल और नाजुक काम उठाया था। सच ही तो, वे यह पूरा-पूरा जानते थे कि राष्ट्रीय शिक्षा कैसी होनी चाहिए और वे शिक्षकोको प्राय इस विषयपर गभीर और विचारपूर्वक चर्चामे लगाया करते थे।

पाठक यह न समझें कि उन्हें राजनीतिका कुछ ज्ञान ही नही था। उन्हें ज्ञान जरूर था, किंतु उन्होने आत्मत्यागका रचनात्मक और शात पथ चुना था।

वे मेरे हाथ थे, मेरे पैर थे और थे मेरी आखे। दुनियाको क्या पता कि मै जो इतना वडा आदमी कहा जाता हू, वह वडप्पन मेरे शान्त, श्रद्धालु, योग्य और पवित्र स्त्री तथा पुरुष कार्यकर्त्ताओके अविरल परिश्रम, और सेवापर कितना निर्भर है, और उन सवमें मेरे लिए मगनलाल सवसे वडे सवसे अच्छे और सवसे अधिक पवित्र थे।

यह लेख लिखते हुए भी अपने प्यारे पतिके लिए विलाप करती हुई उनकी विधवाकी सिसक मै सुन रहा हू। मगर वह क्या समझेगी कि उससे अधिक विधवा, अनाथ मै ही हो गया हू। अगर ईश्वरमें मेरा जीवत विश्वास न होता तो उसकी मृत्युपर, जो कि मुझे अपने सगे पुत्रोसे

भी अधिक प्रिय था, जिसने मुझे कभी धोखा न दिया, मेरी आशाएं न तोड़ी, जो अध्यवसायकी मूर्त्ति था, जो आश्रमके भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी अंगोंका सच्चा चौकीदार था, मैं विक्षिप्त हो जाता। उसका जीवन मेरे लिए उत्साहदायक है, नैतिक नियमकी अमोघता और उच्चताका प्रत्यक्ष प्रदर्शन है। उन्होंने अपने ही जीवनमें मुझे एक-दो दिनोंमें नहीं, कुछ महीनोंमें नहीं, बल्कि पूरे चौबीस वर्षों तक की बड़ी अवधिमें—हाय, जो अब घडी भरका समय जान पडता है—यह साबित कर दिखलाया कि देश-सेवा, मनुष्य-सेवा और आत्म-ज्ञान या ब्रह्मज्ञान आदि सभी शब्द एक ही अर्थके द्योतक हैं।

मगनलाल न रहे, मगर अपने सभी कामोंमें वे जीवित हैं, जिनकी छाप आश्रमकी धूलमेंसे दौडकर निकल जानेवाले भी देख सकते हैं।

(हि० न० जी०, २६ ४ २८)

... ...

गांधीजीका मौनवार था। अकल्पित संयोगोंमें किसीको सेवा करनेका प्रसंग उपस्थित हो और बोले बिना न चले तभी बोलनेका प्रसंग शायद ही कभी आता हो। गांधीजी तुरत ही मगनलालभाईके घर जाकर बालकोंको गोद ले बैठे। सारा आश्रम खबर पाते ही विह्वल हो उठा। किंतु आज्ञा हुई कि सबके एकत्र होनेकी कोई जरूरत नहीं है। जो काम चलते हैं उन्हें बंद करनेकी कोई जरूरत नहीं है। दृढ़व्रती, कर्मवीरके अवसानका शोक तो काम करके ही मनाना चाहिए न! वणाटशाला, शाला आदि बंद करनेका मन बहुतोंका हुआ, मगर हिम्मत किसे हो!

मगनलालभाईकी धर्मपत्नी श्री संतोकबहनने जैसे-तैसे किसी तरह अपना शोक दबाया। बापू घरमें बैठे हों तो शोकका प्रदर्शन कैसे किया जाय। और बापू बराबर यही कहते रहे, "मगनलाल होते तो ऐसे प्रसंगमें क्या करते।" मगनलालभाईके पुत्रने तो मुझ-जैसे बड़ोंसे भी अधिक साहस दिखलाया। सायंकालमें हमेशाके मुताबिक प्रार्थनाके

समय सभी कोई इकट्ठे हुए। पडितजीने धीरे गंभीर स्वरमें गाया :

"अब हम अमर भये न मरेंगे।"

उज्ज्वल यशसे यशस्वी मगनलालभाईके बारेमें यह भजन अतिशय उचित था; किंतु उनके बिना हम जो अपग लगते थे, हमें कौन आश्वासन दे। कुलका दीपक-रूप बड़ा लड़का जब मर जाता है तब दूसरे लड़कोको गोदमें बिठाकर अपनी छाती वज्रकी बनाकर, जिस भाति पिता उन्हें आश्वासन देता है उसी तरह गाधीजीने प्रार्थनाके बाद आश्वासन दिया। चौबीस वर्षका सबध क्रूर कालने तोड़ दिया। जैसी चोट पहले कभी न लगी थी, वैसी लगी। मगर तो भी छाती कठिन करके, मानो वियोग-वेदना हलकी करनेके लिए ही गाधीजीने कितने-एक उद्गार निकाले। ये उद्गार ऐसे नहीं है जो यहां दिये जा सकें। उनमें ऐसे-ऐसे वाक्य थे

"आश्रमके प्राण मगनलाल थे, मै नही।" "इनके तेजसे मै प्रकाशित हुआ।" "तुम्हारे आदर्श मगनलाल थे। मेरे आदर्श भी वही थे। उनके जैसा सरदार अगर मुझे मिला होता तो उन्होने जितनी मेरी सेवा की थी, उतनी मै अपने सरदारकी नही कर सकता। उनका जीवन सपूर्ण था। आश्रमके वे प्राण थे। मै तो केवल घूमता फिरा और आश्रमके प्रति बेवफा रहा। और उन्होने आश्रमकी सेवामें अपना शरीर गला दिया था।" "मै मीराबाईके समान जहरका प्याला पी सकता हू, मेरे गलेमे कोई सापोकी माला डाल दे तो उसे सहन कर सकता हू, किंतु यह वियोग उन दोनोसे भी अधिक कठिन है। तोभी छाती कठिन करके, उनका गुण-कीर्तन करते हुए मैने अपने हृदयमें उनकी मूर्त्ति स्थापित की है।"

(हि० न० जी०, ३ ५ २८)

. . . .

निकटसे और दूर-दूरसे मित्रोने अपने मीठे सदेशोसे मेरे लिए मेरी सबसे कडी परीक्षाके अवसरपर मुझे अत्यत अनुगृहीत किया है। मेरी यह मूर्खता थी, मगर मैने कभी यह सोचा ही नही था कि मगनलाल मुझसे

पहले मरेगे । व्यक्तियो, सस्थाओ और काग्रेस-सभाओके तारो और पत्रोसे मुझे वहुत आश्वासन मिला है । मै उन्हें विश्वास दिलाता हू कि उन्होने मुझपर जिस प्रेमकी वर्षा की है उसके तथा मगनलालने मेरे साथ जिन आदर्शोको माना और जिनके लिए शातिपूर्वक अपने आपको उत्सर्ग कर दिया, मै उनके योग्य वननेकी कोशिश करूगा। (हि० न० जी०, ३ ५ २८)

तुम शायद नही जानते होगे कि रुखीवहन विलकुल वच्ची थी, तवसे सतोकके जीतेजी भी मगनलालके हाथो पली थी । इसके जीनेकी शायद ही आशा थी । मुश्किलसे सास ले सकती थी । इस लडकीको मगनलाल नहलाते, वाल सवारते और पास वैठकर खिलाते थे और अपने दूसरे वच्चोकी भी देखभाल करते थे । फिर भी नौकरीमें सवसे ज्यादा काम करते थे । सुदर-से-सुदर वाडी उन्होने वनाई थी । फिनिक्समे पहला गुलावका फूल उन्होने उगाया था । फिनिक्सकी कितनी ही सख्त जमीनमें जव उनकी कुदालीकी चोट पडती थी तव धरती कापती मालूम होती थी । जो मगनलाल कर सके वह सव तुम कर सकते हो । इसमें मैंने कही भी मगनलालकी वडी कला-शक्ति या उनके पढे-लिखेपनकी वात नही कही है । मगनलालमें आत्म-विश्वास था । अपने कामके वारेमें श्रद्धा थी और भगवानने उन्हें वलवान शरीर दिया था । यह शरीर अतमें आश्रमके वोझसे और उनकी तपश्चर्यासे कमजोर हो गया था । लेकिन मै यह मानता हू कि मगनलालने अपने छोटे-से जीवनमें सौ वर्षके वरावर या सैकडो वरस जितना काम किया । मगनलालकी मिसाल तुम्हारे सामने इसलिए रखी है कि तुम मगनलालको जानते थे और उनके प्रेम-भावके कारण तुम्हारा आश्रमसे सवध हुआ था । मगनलालको याद करके भी भूल जाओ कि तुम अपग हो या अधेरेमें हो । मै मानता हू कि जो सुविधाए तुम्हे सहज ही मिली हुई है, वे इस देशमें लाखोमें एकको भी प्राप्त न होगी ।" (म० डा०, भाग १, ८ ७ ३२)

मगनलालके विषयमे क्या कहू ? उन्होने आश्रमके लिए जन्म लिया था। सोना जैसे अग्निमें तपता है वैसे मगनलाल सेवाग्निमें तपे और कसौटीपर सौ फीसदी खरे उतरकर दुनियासे कूच कर गए। आश्रममें जो कोई भी है वह मगनलालकी सेवाकी गवाही देता है। (य० म०, ३० ५ ३२)

• • •

मेरी रायमें स्वर्गीय मगनलाल गाधी इस तरहके एक आदर्श खादी-सेवक थे। उनसे जितनी आशाए मैंने रक्खी थी, उससे कही ज्यादा उन्होने करके दिखाया। कडी-से-कडी कठिनाइयोका सामना करके भी वह अपने कामकी चीज, जहा-कही भी वह मिल जाती थी, सीख लिया करते थे। कठिनाइयोसे वह न कभी घबराते थे, न थकते थे। अतिम समयतक वह अपने खादी-सबधी ज्ञानको बढाने हीमे लगे रहे। मै चाहता हू कि आप मगनलाल गाधीके इस आदर्शका अपने जीवनमें अनुकरण करें। (ह० से०, १५ ५ ४२)

• • • • • • • •

ऐसा ही यह भजन है—'अजहु न निकसे प्राण कठोर'। वह कहता है कि अबतक ईश्वरके दर्शन न हुए तो अबतक प्राण क्यो न निकले ? हमेशा तो इस भजनको गणेश शास्त्री गाते थे, लेकिन बाज दफा जब वह हाजिर न होता या बीमार पड जाता तो मगनलाल उसको गाता था। वह सगीत-शास्त्री तो नही था, लेकिन उसका कठ अच्छा था। उसका वह भजन अब भी मेरे कानोमें गूजता है। वह तो आश्रमका स्तभ था। आश्रमको चलानेमें वह पहाड-सा था, बहुत मजबूत। कुदाली अपने आप चलाता था तो सबसे आगे चला जाता था। दक्षिण अफ्रीकामें तो उसका शरीर बहुत मजबूत था। यहा उसको कोई बीमारी तो नही थी, लेकिन शरीर क्षीण हो गया था, क्योकि, उसपर सारा बोझ तो वहापर भी था; लेकिन यहा तो एक अनोखी चीज यह है कि करोडो आदमियोमें

काम करना पडता था। रचनात्मक कामका भी बोझ उसपर पडता था। रचनात्मक कामके विना हम रह भी कैसे सकते है ! उसके वगैर स्वराज चीज हो भी क्या सकती है ? आज स्वराज तो मिला, लेकिन उसकी कितनी कीमत है ? मिला तो भी क्या, आज हम सिद्ध करते है कि अगर हम रचनात्मक काम उस वक्त कर लेते तो हमें यह वक्त नही देखना पड़ता, जो हम आज प्रत्यक्षमे देख रहे है। स्वराज्यकी जो कल्पना हमने की थी और वह कल्पना वढ भी गई थी, क्या वह यही है ? अगर उस वक्त हम इतना कर लेते तो आज हिंदुस्तानका इतिहास अनोखा होनेवाला था, इसमें मुझे कोई शक नही। मगनलालका जो भगवान था वह तो स्वराज्यमें ही था। उसका स्वराज्य तो राम-राज्य था।

(प्रा० प्र०, १६.१०.४७)

: ५३ :

हरिलाल गांधी

हरिलालके जीवनमे वहुतेरी ऐसी वातें है जिन्हें मै नापसद करता हू। वह उन्हें जानता है, पर उसके इन दोषोंके रहते हुए भी मै उसे प्यार करता हू। पिताका हृदय है। ज्योही वह उसमें प्रवेश पाना चाहेगा, उसे स्थान मिल जायगा। फिलहाल तो उसने अपने लिए उसका द्वार वद रक्खा है। अभी उसे और जगल-झाडीमें भटकना है। मानवी पिताके सरक्षणकी भी एक निश्चित मर्यादा होती है; पर दैवी पिताका द्वार उसके लिए सदा खुला हुआ है। वह उसे खोजेगा तो जरूर स्थान पावेगा। (हि० न० जी०, १८ ६ २५)

हरिलालकी लाल प्याली रोज भरी रहती है। पीकर इधर-उधर भटकता है और भीख मागता है। वली और मनुको धमकाता है। इसमे भी नीयत रुपया ऐठनेकी दीखती है। मुझे भी बडी उद्धत धमकियोके पत्र लिखे है। मनुपर अधिकार करनेके लिए वलीपर नालिश करनेकी धमकी दी है। मुझे दुख नही होता, दया आती है। हसी भी आती है। ऐसे और वहुत लोग है, उनका क्या होगा? उनके लिए भी मुझे उतना ही खयाल होना चाहिए न? वे सब भी स्वभाव नियत कर्म करते है। क्या करे? हमारा बरताव सीधा होगा तो वह अतमें ठिकाने आ जायगा। हरिलाल जैसा है वैसा बननेमें मै अपना हाथ कम नही मानता। उसका बीज बोया तब मै मूढ दशामें था। जब उसका पालन हुआ, वह समय शृगारका कहा जा सकता है। मै शराबका नशा नही करता था। यह कमी हरिलालने पूरी कर दी। मै एक ही स्त्रीके साथ खेल खेलता था तो हरिलाल अनेकके साथ खेलता है। फर्क सिर्फ मात्राका है, प्रकारका नही। इसलिए मुझे प्रायश्चित्त करना चाहिए। प्रायश्चित्तका अर्थ है आत्मशुद्धि। वह बीरबहूटीकी गतिसे हो रही है। (म० डा०, भाग १, २३ ६ ३२)

• • • •

मै जब बिलकुल साहब था, हरिलाल उस समयका है। उसे क्या पता था कि साहब होते हुए भी मेरा दिल साहबीमें जरा भी नही था? उसने मेरा बाह्यरूप देखा और वैसी ही मौज-शौक करनेकी उसमे इच्छा हो गई। उसने मुझसे कहा—मुझे बैरिस्टर बना दीजिए। फिर देखिए, मै क्या-क्या करता हू। इतना त्याग करता हू या नही? (म० डा०, भाग २, ११ १०.३२)

तूने हरिलालके बारेमे पूछा है। वह पाडेचेरी गया था। वहा भी पैसोकी भीख मागकर खूब शराब पीता था। कुछ पैसे मिले भी। आजकल कहा है, पता नही। उसका योही चलेगा। ईश्वर जब उसे सुबुद्धि

दे तव सही। इसमें हमारे पाप-पुन्य भी तो काम करते ही है न ? हरि-लालके गर्भके समय मै कितना मूढ था ? जैसा मैने और तूने किया होगा, वैसा ही हमें भरना होगा। इस तरह वच्चोके आचरणके लिए मा-वाप जिम्मेदार है ही। अव तो हम यही कर सकते है कि हम शुद्ध वनें। सो वैसी कोशिश हम दोनो कर रहे है और उससे हम सतोष मानें। हमारी शुद्धिका प्रभाव जाने-अनजाने भी हरिलालपर पडता ही होगा। ('हमारी वा,' १३ २ ३४)

: ५४ :

डा० गिल्डर

महान् पारसी कौमने शरावबदीके बुरी तरह विरुद्ध होते हुए भी जो सयम रक्खा उसके लिए वह धन्यवादकी पात्र है। स्पष्ट ही उन्होने बुद्धिमानीसे काम लिया और उनके द्वारा कोई विरोधी प्रदर्शन हुआ मालूम नही पडता। मेरी यह आशा ठीक ही सिद्ध हुई मालूम पडती है कि पारसी कौमकी उदारताने उसके विरोध-भावको दवा दिया। शरावबदीकी पूरी सफलताके लिए पारसियोके दिली सहयोगकी आशा करना क्या कोई वहुत वडी वात है ? उन्हें यह याद रखना चाहिए कि वम्बईके इस प्रयत्नका असर न केवल सारे प्रातपर, वल्कि समस्त भारतवर्षपर पडेगा। मै तो यह कहनेका भी साहस करता हू कि अभी तो यद्यपि उन्हें ऐसा लगता है कि उनके साथ वेजा व्यवहार हुआ है, लेकिन पारसियोकी भावी सतति डॉ० गिल्डरको अपना सच्चा प्रतिनिधि और हितैषी मानकर उन्हें दुआए देगी। जैसे भारतको इस वातका गर्व है, उसी तरह पारसियोको भी सचमुच इस वातका फख्र होना चाहिए कि उन्होने डॉ० गिल्डर-जैसा

आदमी पैदा किया जो कि महाभयकर विरोध, यहातक कि वहिष्कार आदिकी बुरी-से-बुरी धमकियोके वावजूद चट्टानकी तरह दृढ रहा। (ह० से०, १२ ८ ३९)

आज अखबारमें वापू और वर्किंग कमेटीके साथवालोको छोड़कर बाकी कैदियोको महीनेमें एक मुलाकात मिलनेकी खबर थी। डा० गिल्डर-के लिए अवश्य ही एक समस्या खड़ी हो गई। मुलाकातकी इजाजतसे लाभ उठाना हो तो उनको वापस यरवदा जानेके लिए सरकारके साथ झगड़ा करना चाहिए। क्या ऐसा करना उचित है? यरवदा जाकर एक तो जेलकी जेल, दूसरे खर्च और तीसरे बापूका साथ छोड़ना। वैसे भी यहांका वातावरण उन्हें अनुकूल है। यह सब छोड़ना या मुलाकात छोड़ना? मैंने कहा, "खर्चकी उन्हें क्या परवाह है?" बापू कहने लगे

"ऐसा नही, कौन जाने कवतक यहा रहना है। वे प्रतिष्ठावाले आदमी है। अव काग्रेसको कभी छोडेंगे नही। यह भी जानते है कि मै लोगोको भिखारी वनानेवाला हू। सो जो धन है उसे सभालकर रखेगें ताकि वह उनकी लडकीको मिल सके।" (का० क०, २ ६ ४३)

: ५५ :

सतीशचन्द्र दास गुप्ता

वगालमें शुद्ध त्यागके दृष्टात देखकर मै तो आनद रसके घूट पीने लगा। एक जमीदारका सारा कुटुव खादीमय है। तमाम स्त्रिया कातती है। समस्त स्त्री-पुरुष खादी पहनते है। उन्होने अपनी जमीन और अपना घर खादी प्रतिष्ठानको उपयोगके लिए दे दिया है। प्रति-ष्ठानके प्राण सतीशवाबूका त्याग ऐसा-वैसा नही। डा० रायके रसायनके

कारखानेमे हर माह १५००) की उनकी आमदनी थी। वहा रहनेके लिए बगला भी था। अधिक मागनेमे और भी मिल सकता था। वहा रहकर भी वे खादीका काम तो करते ही थे; परतु इससे उन्हें सतोष न हुआ। उनके कोमल हृदयने अनुभव किया कि इस तरह दो काम करनेसे दोनोके बिगड जानेकी सभावना है। रसायनके कारखानेके तो वे प्राण ही थे। यदि उनके लिए पूरा समय न दें तो जरूर धक्का पहुचे, और इधर खादीके द्वारा गरीबोंकी सेवा होती है। फुरसतके समयमें इस कामको करना भी उन्हें अच्छा न मालूम हुआ। एक पुरुषका दो पत्नी रखना जिस तरह पाप है उसी तरह एक पुरुषका दो कामोको अपना प्राण बनाना भी अनर्थ-कर है। फिर खादीके लिए जितना त्याग किया, उतना कम ही है। ऐसी दलीलें अपने मनके साथ करके खुद जिस कारखानेको जमाया था उसीको उन्होंने एक क्षणमें छोड़ दिया और अपने पास जो कुछ थोडा द्रव्य रहा है उसीकी आमदनीसे अपना घर-खर्च चलाते हैं और चौबीसो घटे खादी-कार्यमें ही लगाते हैं। अपने कामकी अबतक वे ११ जगह शाखाए खोल चुके है। इनमें पाँच है खादी पैदा करनेवाली, अभी और भी खोलनेका इरादा कर रहे हैं। उनके द्वारा ५,०६० चरखे चल रहे हैं। शुद्ध खादीके करघे ५९७ चलते है।

उनके इस कार्यमे उनकी धर्मपत्नी भी उनका साथ देती है। जहा रुपयेकी कमी न थी तहा आज तगीसे काम चलाना पडता है, यह उस बाई-को खलता तो होगा, जहा रहनेके लिए अलहदा बगला था तहा आज एक छोटे-से मकानकी एक छोटी-सी मजिलपर सतोष मानना कठिन तो पडता होगा, किंतु ये बाई इन तमाम तकलीफोंको प्रफुल्ल वदन हो कर सह रही हैं। (हिं० न० जी०, २८५.२५)

... .

वह (सतीश बाबू) तो कुदन जैसा है। और कुदनके क्या कभी जेवर बने है ? सोनेके गहने बनते हैं, क्योंकि सोनेमें थोडी कुधातु मिली हुई

होती है। इस तरह काम देनेके लिए थोडी; कुधातुकी जरूरत पडती है, मगर सुधातु होना तो अपने आप ही शोभा देता है। (म० डा०, भाग२ २ १२ ३२)

• • • •

खादी प्रतिष्ठानके श्रीसतीशचन्द्र दास गुप्ता भारत-रक्षा कानूनकी २६ (१) धाराके अनुसार जारी किए गए हुक्मको न माननेके लिए गिरफ्तार किए गए है और उन्हें दो सालकी सजा दी गई है। उनका अपराध यह था कि उन्होने सकटग्रस्त लोगोको तबतक अपने घर वगैरह न छोडनेकी सलाह दी, जबतक कि खाली किए गए घरो आदिके बदलेमें वैसा ही दूसरा प्रबध सरकारकी ओरसे न कर दिया जाय। इस सबधमें 'हरिजन' में मैंने जो लेख लिखे है और हाल ही काग्रेसकी कार्य-समितिने जो प्रस्ताव पास किया है, श्रीसतीशबाबूका यह कार्य ठीक उसीके अनुरूप था।

इसमें कोई शक नही कि श्रीसतीशबाबूने जान-बूझकर हुक्मका अनादर किया था। जिला मजिस्ट्रेटके नाम लिखे गए पत्र से स्पष्ट ही यह मालूम होगा कि उन्होने यह अनादर मानवताके खातिर, उसके तकाजेसे, किया। उस प्रदेशमें श्रीसतीशबाबू और उनके आदमी बरसोसे काम कर रहे है और उन्होने उधरके कतवैयो व जुलाहोमें हजारो रुपये बतौर मजूरीके बाटे है। सतीश-बाबूके पत्रसे साफ ही यह मालूम होता है कि जनताकी शिकायत बिलकुल सच्ची है। जिस महान् युद्धके लिए यह दावा किया जाता है कि वह मानव-मन और मानव-शरीरकी मुक्तिके लिए लडा जा रहा है, वह उन लोगोका दमन करके कभी जीता नही जा सकता, जिनका स्वेच्छापूर्ण सहयोग चाहा जाता है और चाहने योग्य है। इसमें कोई शक नही कि हिन्दुस्तान-की आम जनता अज्ञानमें डूबी हुई है। वह स्वभावसे गरीब है और इति-हासकारोने उसे दुनियामे अधिक-से-अधिक भली और नम्र माना है। उनका पथ-प्रदर्शन आसानीसे किया जा सकता है। वह अपने नेताओके

वताए रास्तेपर चलती है। इसलिए उससे काम लेनेकी उचित रीति यह है कि उसके नेताओसे काम लिया जाय, उनसे वातचीत की जाय।

नेता दो तरहके होते है एक वे, जो अपनेको नेता मानकर अपने नेतृत्त्व द्वारा जनताका शोषण करते है, उसकी आडमें अपना मतलव गाठते है, और दूसरे वे, जो अपनी सेवाके वल जनताके नेता वनते है। वे विश्वासपात्र होते है और जनता उन्हें मानती है। इन दोनो प्रकारोको पहचानना वहुत आसान है। इन दूसरे प्रकारके नेताओको जनतासे अलग करना अनुचित है।

श्रीसतीशवावू दूसरे प्रकारकी श्रेणीमें आते है। गोकि वे राजनीति जानते है, पर राजनैतिक पुरुष नही है। वे व्यवसायी है और उन सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और आजीवन लोकसेवाव्रती आचार्य पी० सी० रायके प्रिय शिष्योमें से है, जिन्होने अपने लिए कभी एक पाई भी नही कमाई। सुप्रसिद्ध वगाल केमीकल वर्क्स, आचार्य रायकी अनेकानेक कृतियोमें एक कृति है और श्रीसतीशवावू उसके निर्माताओमें है। वे इस केमीकल वर्क्सके मैनेजर थे और वहा ऊचा वेतन पाते थे। उन्होने वह काम छोड दिया और खादीके कामको अपनाकर गरीवोकी तरह रहने लगे। उनकी धर्मपत्नीने उनका पूरा-पूरा साथ दिया और उनकी कठोर साधनामें वे उनके सुख-दुखकी साथिन वनी। उनके भाई और होनहार लडकोने भी यही किया। उनमेंसे एकका सेवा करते-करते ही देहात हो गया। श्रीसतीशवावूके भाई श्री क्षितीशचद्र दास गुप्ता भी एक केमिस्ट (रसायन-शास्त्री) है और उन्होने अपने आपको खादी प्रतिष्ठानकी सेवामे खपा दिया है। वे अपना सारा समय और सारी शक्ति मधुमक्खी पालने, हाथका कागज वनाने और इसी तरहके दूसरे गृह-उद्योगोमें लगा रहे है। श्रीसतीशवावूने अपने लड़कोको उस उच्च शिक्षासे वचित रक्खा, जो स्वय उन्होने प्राप्त की थी। अपने नए कार्यमें वे इतने उत्साह और शक्तिके साथ जुट गए कि खादी कार्यके विशेषज्ञ वन गए। उन्होने खादी-

प्रतिष्ठानको जन्म दिया, जो कि उधर लोकसेवाकी प्रवृत्तियोका एक महान् केन्द्र बन गया है। श्रीसतीशबाबू उन सच्चे-से-सच्चे और नम्र-से-नम्र लोगोमे है, जिनके साथ मुझे काम करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे अपनी सारी शक्तिके साथ सत्य और अहिंसाके आदर्शके अनुसार जीवन बितानेका यत्न करते रहते है। इन दोनोको उन्होने राजनैतिक उपयोगिताकी दृष्टिसे नही, बल्कि जीवनके एक ध्येयकी दृष्टिसे अपनाया है। अगर इस देशका शासन इसके विजेताओकी तरफसे जनताका शोषण करनेवाले कानूनो द्वारा न होकर देशके लोकप्रिय प्रतिनिधियो द्वारा होता तो जरूरतके वक्त श्रीसतीशबाबू-जैसे व्यक्तियोकी सरकारी अधिकारियोको बडी आवश्यकता रहती, और यह समय तो बहुत ही बडी जरूरतका समय है। लेकिन हमारे शासक उनका जो अधिक-से-अधिक उपयोग कर सकते है, सो यही है कि उन्हें उनके उन कानूनोका अनादर करनेके लिए सजा दे, जो समूचे राष्ट्रकी इच्छाको नही, बल्कि एक ऐसे आदमीकी इच्छाको व्यक्त करते है, जिसकी हुकूमत मुल्कपर जबरदस्ती लादी गई है। श्रीसतीशबाबूने वह जोत जलाई है, जो कभी बुझेगी नही। कानून झूठा है, जनताके सेवक सतीशबाबू सच्चे है। (ह० से० २८४२)

: ५६ :

गोपालकृष्ण गोखले

उनका जन्म सन् १८६६ में कोल्हापुरमें एक गरीब मराठा ब्राह्मण-कुटुबमें हुआ था। वहीके कालेजमें पढकर उन्होने एफ० ए० परीक्षा पास की। इसके बाद वे बबईके एलफिन्स्टन कालेजमें भरती हुए और

वहां से सन् १८८४ में उन्होने बी० ए० परीक्षा पास की ।

बी०ए० होने के वाद उन्हे किसी काम-धधेसे लगनेका विचार करना पडा और उन्होंने शिक्षकका धधा ही पसद किया । उस समय 'डेकन एजुकेशन सोसाइटी अच्छा काम कर रही थी। श्रीगोखले इस सस्थामें सम्मिलित हो गये । इस सस्थाने अपनी देख-रेखमें पूनामें चलनेवाले फर्ग्यूसन कालेजमें सत्तर रुपये मासिक पर उन्हें अर्थ-शास्त्र' और इतिहासका अध्यापक नियुक्त किया । श्रीगोखलेने यहा वीस वर्षोतक पढानेकी शपथ ली । इस प्रतिज्ञाका उन्होने पालन किया । इस प्रकारके सेवा-वृत्तिपरायण लोग जब शिक्षाके लिए अपना जीवन अर्पण करते है तभी शिक्षा फलदायी निकलती है और वालकोके सस्कार तभी गढे जाते है । श्रीगोखलेने फर्ग्यूसन कालेजमें वीस वर्ष विताए । इस वीच यद्यपि सभाओ और समाचारपत्रो द्वारा उनके दर्शन अधिक नही हुए , तथापि वहुतसे युवकोको अपने मनका विकास करने और अपने आचरणको दृढ करनेके लिए आगेका पोषण उन्ही वर्षोमें उन्हीसे प्राप्त हुआ ।

श्रीगोखले जब फर्ग्यूसन कालेजमें थे तव शिक्षाके कामके सिवा अन्य कार्यमें भी ध्यान दे रहे थे । जिस समय वे कालेजमें दाखिल हुए, उस समय स्वर्गीय श्रीमहादेव गोविन्द रानडेके सपर्कमें आए थे और विशेषकर उन्हीकी देख-रेखमें उनका चारित्र्य गढा गया था । न्यायमूर्ति रानडेके प्रवीण हाथके नीचे वारह वर्षो या इससे भी अधिक समय तक श्रीगोखलेने अर्थ-शास्त्रका अध्ययन किया था । परिणाम-स्वरूप श्रीगोखले उन थोडेसे लोगोमें से है, जिनके शब्द हिन्दुस्तानमें आर्थिक प्रश्नोपर आधारभूत माने जाते है । श्रीगोखलेका स्वर्गीय श्रीरानडेके प्रति वहुत ही पूज्य भाव है और वे उन्हें गुरुके रूपमें मानते है । १८८७ में श्रीरानडेकी इच्छासे पूना सार्वजनिक सभाकी ओरसे प्रकाशित होनेवाले 'क्वार्टर्ली जरनल' का सचालकत्व उन्होंने स्वीकार कर लिया । इसके वाद शीघ्रही वे डेकन

सभाके अवैतनिक मत्री नियुक्त किये गए। पूनाके अग्रेजी-मराठी साप्ताहिक 'सुधारक' के भी वे सचालक थे। बवईकी प्रातीय कान्फ्रेन्सके वे चार साल तक मत्री थे। १८९५ मे पूनामें हुई काग्रेसके भी वे मत्री नियुक्त किये गए थे। सार्वजनिक कार्योमें उनकी रुचि और उत्कठाने इतनी अधिक ख्याति प्राप्त की कि उन्हें 'दक्षिणके उदीयमान् तारे' की उपमा दी जाती। उनकी प्रसिद्धि इतनी फैली कि भारतके खर्चके सबधमे विचार करनेके लिए विलायतमे नियुक्त किये गए वेल्बी-कमीशनके सामने गवाही देनेके लिये बबईकी जनताने श्री वाच्छाके साथ उन्हें भी चुना था। वहा उन्होने कीमती बयान दिया था।

जिस समय वे इगलैंडमे थे, उस समय उन्होने हिंदुस्तानके मामलेके बारेमे कई भाषण दिए थे। प्लेगके सबधमें बबई सरकार जिस ढगसे काम कर रही थी और कामपर रोके गए सैनिकोने जो थर्रा देनेवाले काम किए थे, उनकी कडी टीका छपवाकर उन्होने वहा निकाली थी। इसके कुछ समय बाद वे बबईकी धारासभाके सदस्य चुने गए। १९०२ में २५) की पेन्शन लेकर वे फर्ग्यूसन कालेजसे पृथक् हुए। उसी समय बबईके प्रतिनिधि सर फीरोजशा मेहताकी बीमारीके कारण केन्द्रीय धारासभामें उनकी जगह श्रीगोखले चुने गए। यह काम उन्होने इतनी सुदरतासे किया कि उस समयसे लेकर अबतक उस जगहके लिए वे बार-बार चुने जाते रहे हैं।

बडी धारासभामें चुने जानेके बादसे उनकी कार्य-कुशलताका नया प्रकरण आरभ हुआ। स्वदेश-सेवामें उनकी भारी-से-भारी जीतके इतिहास-रूपमे वह बना हुआ है। बजटके समयका उनका पहला ही भाषण प्रेरणाप्रद माना जाता है। उस समयसे बजटके अवसरपर उनके भाषणोके बारेमें सब लोगोको बडी आतुरता रहती है। साल-दरसाल वे बताते रहे है कि साल-भरके हिसाबमे जो रकम शेष बताई जाती है, वह कितनी गलत होती है और उससे जनसख्या कितनी अप्रामाणिक हो जाती है।

साल-दरसाल वे यह माग करते रहे है कि सरकारी विभागोमें अधिक परिमाणमें भारतीयोको नौकरी दी जाय। साल-दरसाल फौजी खर्च घटानेकी वे हिमायत करते रहे है। साल-दरसाल नमक-कर रद करने और कृषि तथा उद्योग-धधोंकी शिक्षाके प्रसारकी वे माग करते रहे है और नि शुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा जारी करने एव इसी प्रकारके अन्य सुधार करनेका वे साल-दरसाल आग्रह करते रहे है। नमक-करमे जो कमी हुई है, वह अधिकाशत उनकी हिमायतसे ही हुई है।

हिंदुस्तानके अनेक उच्च-से-उच्च पदाधिकारियोकी उनसे मित्रता है और मिजाज के तेज वाइसराय लार्ड कर्जन भी उन्हें अपने वरावरीके प्रतिस्पर्द्धीके रूपमें मानते थे। उन्होने कहा था कि श्रीगोखलेके साथ पटाना एक आनददायक वात है। उन्हें यह भी कहते सुना गया है कि उनके सपर्कमे आये मनुष्योमें श्रीगोखले सवसे वलवान है। यद्यपि श्रीगोखले कौन्सिलमें लार्ड कर्जनके ऐसे विरोधी थे जो कभी उन्हें ढील न देते थे, तथापि उनकी योग्यता और सुदर व्यवहारके प्रति सम्मानके प्रतीक-स्वरूप उन्हें सी० आई० ई० का खिताव दिया था और खिताव दिए जानेके अवसरपर उन्हें वधाईका एक व्यक्तिगत पत्र भी लिखा था।

श्रीगोखले काग्रेसकी गति-विधिमें शुरूसे ही शामिल थे। काग्रेस-की वहुत-सी सभाओमें वे उपस्थित रहे है और उन्होने भाषण दिए है। उनका सवसे अधिक उल्लेखनीय भाषण ववईकी काग्रेसके अदर हिंदुस्तानके कोपकी सिलकके वारेमें दिया गया भाषण था। सर हेनरी काटनके कथनानुसार वह भाषण आम सभा (हाउस आव कामन्स) में सुने गए सुदर-से-सुदर भाषणकी वरावरी करनेवाला था।

हिंदुस्तानकी राजनैतिक स्थितिसे विलायतकी जनताको अवगत करनेके लिए ववईकी जनताने एक प्रतिनिधिके रूपमें उन्हें १९०५ में वहा भेजा था। वह काम उन्होने वहुत सतोषजनक रूपमें पूरा किया

था। पचास दिनोमें कुछ नही तो पैंतालीस भाषण दिए। हिंदुस्तानके ब्रिटिश राज्यके विषयमें लोकमत प्रकट करनेकी उनकी खूबीसे वहुतसे चालाक अग्रेज भी आश्चर्यचकित रह गए थे। वे इगलैडसे रवाना हुए, उसके पहले ही बनारसकी पुण्य-भूमिमें होनेवाली काग्रेसके अध्यक्ष चुने जा चुके थे। बनारसमें काग्रेसमें अध्यक्षपदसे दिया गया उनका भाषण अत्यन्त स्पष्ट और प्रवीणताका नमूना था। बनारस काग्रेसके बाद शीघ्र ही वे फिर विलायत गए और इस बार लार्ड मार्लेके साथ उनकी बहुत बार मुलाकातें हुईं। लार्ड मिन्टोकी नए सुधारोकी योजनाके सबधमें १९०९ में वे फिर विलायत गए थे।

श्रीगोखलेने बार-बार जोर देकर कहा है कि इस बातकी अत्यत आवश्यकता है कि राजनैतिक कामके लिए शरीर अर्पण कर देनेवाले थोडे-बहुत लोग हर प्रातमेंसे निकल पडें। सच तो यह है कि ऐसे राज-नैतिक सन्यासियोका मार्ग रचनेकी उनकी दीर्घकालीन अभिलाषा थी, जिनका ध्येय ही स्वदेश-सेवा हो। यह अभिलाषा हालमें ही प्रकट हुई है। 'भारत-सेवक-समिति' से हिंदुस्तानकी जनता वाकिफ हो गई है। इस समिति हेतु बहुत अच्छे है और हम सबकी कामना है कि भविष्यमे इस देशकी बडी-से-बडी सेवा करनेमे वह अधिक-से-अधिक शक्तिमान होती जाय।

श्रीगोखलेकी भाषण देनेकी पद्धतिके बारेमें दो शब्द कह दू। वे कोई वक्ता नही हैं। श्रोताओंकी भावनाओंको उभाडनेकी ओर उनका विशेष लक्ष्य नही रहता। अपनी बात सामनेवालेके मनमें पूरी तरह उतारना ही उनका उद्देश्य रहता है। वे शीघ्रतासे बोलते हैं। भर-पूर आकडे और विवरण उनका सरजाम है। उनकी समझनेकी शक्ति बहुत तीक्ष्ण और उत्साहपूर्ण है। उनका बोलनेका ढग सादा, किंतु स्पष्ट और जोरदार है।

श्रीगोखले बहुत उत्साही सुधारक है। वे पूनासे प्रकाशित होने वाले

मराठी दैनिक 'ज्ञानप्रकाश' को भी चलाते है और उसके द्वारा अपने सामाजिक और राजनैतिक विचारोका प्रचार करते है। ऐसा कहा जा सकता है कि उनका रहन-महन अत्यत सादा और उग्र तपवाला है। सच कहें तो, जैसा कि प्रसिद्ध पत्रकार श्री नेविन्सनने कहा है, एक सच्चे ब्राह्मणके रूपमें उन्होने अपना जीवन गरीबी और ज्ञानमें होम दिया है। अत्यत प्राचीन भारतीय रीति, सादा जीवन और उच्च विचारका इससे अच्छा नमूना दूसरा नही मिल सकता।

श्रीगोखलेके अतिम बडे कार्योमे शिक्षाका बिल और भारतीय मजदूरोकी अनिवार्य गुलामीको बद करनेका प्रयास है। शिक्षाका बिल वाइसरायकी धारासभाके सामने पेश किया गया था। अन्य प्रजाकीय बिलोकी जो दशा होती है, वही दशा श्रीगोखलेके बिलकी हुई है, फिर भी उन्हें हिंदके सभी भागो और सभी जातियोकी ओरसे इतना अधिक सहयोग प्राप्त हुआ है कि उस एकत्र बलके सामने सरकार ज्यादा दिनो तक टिक नही सकेगी।

इस देशमें 'गिरमिट'[1] बद हो गया, इसके लिए हम श्रीगोखलेके बहुत आभारी है। स्वय अनेक कार्योमे फसे रहने और बीमार रहनेपर भी इस प्रश्नका उन्होने कितना गहरा अध्ययन किया है, यह जाननेके लिए हिंदकी धारासभामें दिया गया उनका भाषण आईनेकी तरह है।

गिरमिटके प्रश्नके उपरात हमारी तकलीफोकी ओर उन्होने हार्दिकतासे नजर रखी है और सत्याग्रहकी लडाईमें कीमती मदद दी है। हमारे प्रति उनकी सहानुभूति बढकर इस सीमातक पहुच गई है कि उन्होने इस देशमें (दक्षिण अफीकामें) आकर हमारी स्थितिको जाननेका निश्चय किया है।

---

[1] मजदूरीके लिए विदेश जानेवाले भारतीयोसे करवाया जानेवाला इकरार।

मातृभूमिकी सेवामें अपनी पूरी जिंदगी अर्पण करनेवाले माननीय गोखले जैसा बुद्धिमान और तेजस्वी बनना हमारे बसकी बात नही, किंतु उनकी भांति अपने काममें एकरस हो जाना हममेंसे प्रत्येकके बसकी बात है। श्रीगोखले स्वय जो कुछ मानते है, उसमें एकरस है, इसीलिए सारा देश और मित्र और सब लोग समान रूपसे उनका सम्मान करते हैं।... वे दीर्घायु हो और हम कामना करेंगे कि उनकी छाप हमारे हृदयमें कभी मदी न पडे। (इ० ओ०, १९१२)

... .

श्रीगोखलेके उद्देश्यको मै पवित्र मानता हू। किंबरलीमें प्रमुख-से-प्रमुख गोरे और भारतीय मिलकर भोजन करने एक मेजपर बैठे, इस प्रसगमें श्रीगोखले कारणरूप बने, यह मेरे मनमें गर्वका विषय है। टाल्स्टायके जीवन और शिक्षणके एक नम्र अभ्यासीके रूपमें मुझे ऐसा भी लगता है कि ऐसे समारोह अनावश्यक है और अनेक बार इससे बहुतसे नुकसान—कुछ नही तो पाचन-क्रियामें खलल डालनेका नुकसान—होने लगता है; किंतु मै टाल्स्टायके जीवनका अभ्यासी हू, फिर भी यदि इससे एक-दूसरेको अधिक अच्छी तरह पहचाननेका अवसर मिलता हो तो इसमें खामी निकालनेके लिए मै तैयार नही। इस प्रसगपर मुझे एक सुदर अग्रेजी भजन—वी शैल नो ईचअदर व्हेन दि मिस्ट्स हैव् रोल्ड अवे (We shall know each other when the mists have rolled away)—याद आता है। हममेंसे अज्ञान दूर हो जाय, हम एक-दूसरेके बीच मतभेद होनेपर भी एक-दूसरेके भाव अधिक समझ सकें। मेरे प्रख्यात देशी भाई यहा जो आए है, सो इस अज्ञानकी आधीको दूर करनेके लिए ही आए है। कीमती-से-कीमती जवाहरके रूपमें, हिंद जिसे यहा भेज सकता था, वे यहा आए है। मै जानता हू कि जब श्रीगोखलेके कार्योंके बारेमें मै कुछ कहता हू तो उनकी भावनाओको ठेस पहुचती है, फिर भी मुझे कर्त्तव्यका पालन करना चाहिए। हिंदुस्तानमें श्रीगोखलेने राजनैतिक

क्षेत्रमें जो कीर्त्ति प्राप्त की है, उसके विषयमे यहा मेरे बराबर और कोई कह सके, ऐसा नही है । हिंदुस्तानके वाइसराय तो सिर्फ पांच बरसतक ही हिंदुस्तानकी सल्तनतका बोझ अपने सिरपर उठाते है (कभी-कभी लार्ड कर्जन-जैसे सात बरस तक उठाते है) और सो भी अनगिनत अफसरोकी मददसे, किंतु ये मेरे एक विख्यात देशी भाई इस प्रकार की किसी भी सहायताके बिना, नौकरोके बिना और मान-पदके बिना, सल्तनतका बोझ अकेले उठाए हुए है । यह सही है कि इनके पास सी० आई० ई० का खिताब है, किंतु मेरे मतसे उससे बहुत अधिक बड़े-बडे पदोके वे पात्र हैं । श्रीगोखले जिस पदको चाहते है, वह उनके देशी भाइयोके प्रति प्रेम और अपनी अतरात्माकी सम्मति है । पश्चिमकी शिक्षा पाए हुए भारतीयोके लिए वे नम्रता और भलमनसाहतके उदाहरण-स्वरूप है ।*. . .

. . . . .

माननीय गोखलेजीकी 'गिरमिट'-सबधी प्रवृत्ति उनकी तन्मयताकी जैसी झाकी कराती है, वैसी दूसरी कोई प्रवृत्ति नही कराती । उनका दक्षिण अफ्रीकाका प्रवास और उसके बाद हिंदमें की जानेवाली उनकी गतिविधि, अपने कार्यमें ओतप्रोत हो जानेकी उनकी शक्तिका हमें अच्छा दिग्दर्शन कराती है, और उनकी इस शक्तिके कारण ही अनेक बार मैंने कहा है कि उनके कार्योमे हम छिपी हुई धर्मवृत्तिको देख सकते थे ।

अब हम उनके दक्षिण अफ्रीकाके कार्यको जरा देखे । जब उन्होने दक्षिण अफ्रीका जानेके विषयमें अपना मत प्रकट किया तब हिंदुस्तानकी सरकारके अफसरोमें खलबली मच गई । दक्षिण अफ्रीकामें गोखलेजी-जैसे मनुष्यका अपमान हो तो उसे क्या कहा जायगा ? दक्षिण अफ्रीका

---

* महात्मा गोखलेका सम्मान करनेके लिए किंबरलीके मेयरके सभापतित्वमें नवंबर १९१२में हुए भारी समारोहके अवसरपर गाधीजी द्वारा दिए गए भाषणका अंश ।

जानेका विचार यदि वे छोड दे तो कितना अच्छा हो ? किंतु उनसे इस बारेमे कहनेकी कौन हिम्मत करे ? दक्षिण अफ्रीका जाना क्या है, इसका अनुभव गोखलेजीको इंग्लैंडमें ही हुआ। उन्होने अपने लिए टिकट मगवाया, किंतु यूनियन केसल कपनीके अधिकारियोने कुछ भी ध्यान न दिया। यह खबर इडिया आफिसमें पहुची। इडिया आफिसने सर ओवन टयूडरको, जो यूनियन केसल कपनीके मैनेजर थे, सख्त ताकीद की कि कपनीको गोखलेजीका उनके पदके योग्य सम्मान करना चाहिए। परिणाम यह निकला कि गोखलेजी एक सम्मानित अतिथिके रूपमें स्टीमरमें प्रवास कर सके। इस प्रसगका वर्णन करते हुए उन्होने मुझसे कहा, "मुझे अपने व्यक्तिगत सम्मानकी आवश्यकता नही, किंतु अपने देशका सम्मान मेरे लिए प्राणके समान है और इस समय मै एक प्रमुख व्यक्तिके रूपमें आ रहा था, इसलिए मेरा अपमान हुआ तो वह हिंदका अपमान होनेके समान है, यह मानकर मैंने स्टीमरमें अपने मानके योग्य सुविधा प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न किया।" उपर्युक्त घटनाके फलस्वरूप इडिया आफिसने कोलोनियल आफिसके मार्फत ऐसी तजवीज की थी कि दक्षिण अफ्रीकामे भी गोखलेजीका पूरा-पूरा सत्कार हो। इसलिए यूनियन सरकारने पहलेसे ही उनके सत्कारकी व्यवस्था कर रक्खी थी। उनके लिए एक सैलून तैयार करवा रक्खा था और यात्राके समय रसोइये आदि रखनेका भी इतजाम किया था। उनकी सार-सभालके लिए एक अफसर तैनात किया गया था। भारतीय जनताने तो स्थान-स्थानपर ऐसा सम्मान करनेकी तजवीज कर रक्खी थी, जो बादशाहको भी न मिल सके। गोखलेजीने यूनियन सरकारका आतिथ्य केवल यूनियनकी एक राजधानी प्रिटोरियामें ही स्वीकार किया। शेष सभी स्थानोपर वे भारतीयोके अतिथि रहे। केपटाउनमें दाखिल हुए कि तुरत उन्होने दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नका विशेष अध्ययन शुरू कर दिया। इस विषयका जो सामान्य ज्ञान लेकर

वे केपटाउनमें उतरे थे, वह भी ऐसा-वैसा नही था, किंतु उनके हिसाबसे वह पर्याप्त न था। दक्षिण अफ्रीकाके अपने चार सप्ताहके प्रवासमें उन्होने वहाके भारतीयोकी समस्याका इतना गहरा अध्ययन किया कि जो लोग भी उनसे मिलते, वे उनके ज्ञानसे आश्चर्यचकित हो जाते। जव जनरल वोथा और जनरल स्मट्ससे मिलनेका समय आया तव उन्होने इतने अधिक विवरण तैयार करवाये कि मुझे लगा कि इतना परिश्रम वे किस लिए कर रहे हैं। उनकी तवीयत वरावर वहुत खराव थी, अत्यत सार-सभाल रखनेकी जरूरत थी। लेकिन ऐसी तवीयत रहनेपर भी रातके वारह-वारह वजे तक काम करते और फिर दो वजे या चार वजे उठ जाते और कासिदको वुलाने लगते। परिणाम-स्वरूप जनरल वोथा और जनरल स्मट्ससे हुई उनकी मुलाकातमेंसे गिरमिटके तीन पौंडके वार्षिक करकी सत्याग्रहकी लडाई पैदा हुई। यह कर १८९३ से गिरमिट-मुक्त पुरुषो, उनकी स्त्रियो और उनके लडके-लडकियोपर लगाया जाता था। यदि गिरमिट मुक्त-व्यक्ति कर न देना चाहता तो कानून द्वारा उसका भारत वापस जाना अनिवार्य वना रक्खा था। इसलिए गिरमिटमें, वास्तवमें, गुलामीमें पडे हुए भारतीयोकी दशा वहुत ही सकटपूर्ण वनी हुई थी। सर्वस्व त्यागकर वाल-वच्चोतकके साथ दक्षिण अफ्रीका आया हुआ भारतीय हिंदुस्तान वापस जाकर क्या करे? यहा तो उसके भाग्यमें भुखमरी ही रही। जीवन-पर्यंत गिरमिटमें भी कैसे रहा जा सके? उसके आस-पासके स्वतत्र मनुष्य हर महीने चार पौंड, पाच पौंड, १० पौंड कमाते हों तो स्वय १४ से १५ शिलिंग मासिक लेकर कैसे सतुष्ट रह सके? और अलग होना चाहता हो तो मान लीजिए कि उसके एक लडका और एक लडकी हो तो स्त्री-सहित सव मिलाकर उसे हर साल १२ पौंडका कर देना चाहिए। यह भारी कर वह किस प्रकार दे? जवसे यह कर चालू हुआ तवसे भारतीय कौम उसके विरुद्ध भारी लडाई चला रही थी ... भी

उसकी प्रतिक्रिया हुई थी , किंतु अभी तक यह कर समाप्त न हो सका था। गोखलेजीको बहुत-सी मागोमें इस करको उठानेकी भी माग करनी थी। वे इस प्रकार व्यथित हो उठे थे, जैसे अपने गरीब भाइयो-के ऊपरका यह बोझ स्वय उन्ही पर हो। जनरल बोथाके सामने उन्होने अपने आत्माकी सपूर्ण शक्तिका प्रयोग किया। उनके बोलनेका प्रभाव जनरल बोथा और जनरल स्मट्सपर ऐसा पडा कि वे पिघल गए और उन्होने वचन दिया कि आगामी यूनियन पार्लामेंटमें यह कर रद कर दिया जायगा । गोखलेजीने यह खुशखबरी बहुत हर्ष-पूर्वक मुझे दी। इन अधिकारियोने और भी वचन दिए थे, किंतु अभी हम गिरमिटके विषयपर ही विचार कर रहे है, अत यूनियन सरकारके साथके उनके मिलापका इतना ही अश मै यहा देता हू। पार्लमेंट बैठी। गोखलेजी तो दक्षिण अफ्रीकामें थे नही और दक्षिण अफ्रीकामें बसे भारतीयोको मालूम हुआ। कि तीन पौडका कर तो नही उठाया जा सकता। जनरल स्मट्सने नेटालके सदस्योको समझानेका थोडा-बहुत प्रयत्न किया था। मेरे हिसाबसे यह काफी न था। भारतीय कौमने यूनियन सरकारको लिखा कि तीन पौड वाला कर, चाहे जैसे हो, उठानेको यूनियन सरकार गोखलेजीके साथ वचनबद्ध थी। अत यदि उसने यह कर नही उठाया तो जो सत्याग्रह १९०६ से चल रहा था, उसके अदर इस करकी बात भी दाखिल हो जायगी। दूसरी तरफ तारसे गोखलेजीको खबर दी गई । उन्होने यह कदम पसद किया। यूनियन सरकारने भारतीय कौमकी चेतावनीपर ध्यान नही दिया। उसका परिणाम सब लोग जानते है। गिरमिटमे रहनेवाले ४० हजार भारतीय सत्याग्रहकी लडाईमें शामिल हुए। उन्होने हडताल की, असह्य दु ख सहन किए, बहुत-से मारे गए, किंतु अत में गोखलेजीको दिए गए वचनका पालन किया गया और वह कर उठा लिया गया। ('धर्मात्मा गोखले', पृष्ठ २४)

• •

आप लोगोने मुझे गोखले पुस्तकालयके उद्घाटन और उनके चित्रके अनावरणके लिए बुलाया है। यह काम बहुत पवित्र है और उतना ही गभीर भी है।

....गोखले नामके भूखे तो न थे। इतना ही नही, वरन् उन्हें यह भी अच्छा न लगता था कि उनका मान हो। अनेक वार मान मिलते समय वे नीचे देखने लगते। यदि ऐसा माना जाता हो कि गोखलेके चित्रके अनावरणसे ही उनकी आत्माको शाति मिलेगी तो यह धारणा सच्ची नही। मरते समय उस महात्माने अपना आदर्श कह सुनाया था, और वह यह कि मेरे वाद मेरा जीवनचरित लिखा जायगा या मेरे लिए स्मारक वनेगा और शोक-प्रदर्शक सभाए होगी, किंतु उससे मेरी आत्माको शाति मिलनेवाली नही है। मेरी यही अभिलाषा है कि मेरा जीवन ही समस्त हिंदका जीवन वने और भारत-सेवक-समिति की प्रगति हो। इस वसीयतनामेको जो लोग मजूर करते हो, उन्हें गोखले-का चित्र रखनेका अधिकार है।

गोखलेके जीवनका विस्तार विशाल है। उनके जीवनके कुछ कौटु-विक प्रसग आज यहा आई हुई वहनोको सुनाऊगा। यह वात वहनोके याद रखने लायक है कि गोखलेने अपने कुटुवकी सेवा अच्छी तरह की है। उनका आचरण ऐसा न था कि जिससे कुटुवके लोगोका जी दुखे। जैसा कि आज हिंदू-ससारमे गुडियाके विवाहकी भाति लडकीको आठ वरसकी करके उसे दरियामें धकेल दिया जाता है, वैसा गोखलेने नही किया। उनकी लडकी अभी कुमारी है। उसे ऐसा रखनेमे उन्होने वहुत सहन-शीलता दिखाई है। इसके सिवा भरी जवानीमें उनकी पत्नी चल वसी थी। फिरसे उन्हें पत्नी मिल सकती थी, किंतु उन्होने ऐसा नही किया। कुटुव-सेवा तो उन्होने अनेक प्रकारसे की है और सामान्य रूपसे तो सभी लोग कुटुव-सेवा करते होगे, किंतु स्वार्थ-दृष्टिसे और स्वदेश-हितकी वृत्तिसे, दो प्रकारमे कुटुव-सेवा होती है। गोखले ने स्वार्थवृत्तिको तिला-

जलि दे दी थी। कुटुवके प्रति, उसके वाद ग्रामके प्रति और अनतर देशके प्रति, इस प्रकार जिस समय जो प्रसग आया, वैसे ही कर्त्तव्य-का पालन उन्होने सपूर्ण साहस, लगन और श्रमसे किया।

गोखलेके मनमे हिंदू-मुसलमानका भेद-भाव न था। वे सभीको समदृष्टिसे और स्नेह-भावसे देखते थे। कभी-कभी वे गुस्सा भी हो जाते थे; किंतु उनका वह क्रोध स्वदेश-हितसे सवध रखनेवाला और सामनेवालेके मनपर अच्छा ही असर डालनेवाला सिद्ध होता था। वह गुस्सा ऐसा था कि उसके असरसे बहुत-से यूरोपियन भी, जो शत्रुता प्रकट करते थे, घनिष्ट मित्र-जैसे बन गए थे।

गोखलेके समग्र जीवनपर दृष्टि डालनेवालेको मालूम होगा कि उन्होने अपना सारा जीवन स्वदेश-सेवामय बना दिया था। पचास वर्षके अदरकी उम्रमे ही वे इस नश्वर जगत्को छोडकर चले गये। इसका कारण यही है कि वे दिनके चौवीसो घटे मानसिक और शारीरिक शक्ति वहुत श्रम-पूर्वक स्वदेश-सेवामें खर्च करते थे। उनके मनमें ऐसी सकुचित भावना न थी कि मै स्वहित या स्वकुटुवके लिए क्या करके जा रहा हू, किन्तु देशके लिए क्या करके जा रहा हू, ऐसी ही उनकी भावना थी।

हमारे हिंदके एक समर्थ बलरूप अत्यजवर्गके उद्धारका प्रश्न भी महात्मा गोखलेको रोज खटकता था और उनकी उन्नतिके लिए बहुत-से कार्य उन्होने किये थे। कोई उनके वैसा करनेपर आपत्ति करता तो वे स्पष्ट शब्दोमे कह देते कि हमारे भाई अत्यजको छूनेसे हम भ्रष्ट नही होते, किंतु न छूनेकी दुष्ट भावनासे ही घोर पापमें गिरते है।...

उमरेठके नेताओका कर्त्तव्य है कि अपने देशी उद्योगोको पनपावे और उन्हें उत्तेजन दे। यदि ऐसी भावना न हो तो उन्हे गोखले-जैसे परमार्थी सतका चित्र रखनेका हक नही। महात्मा गोखलेके प्रति वे

सद्भाव प्रदर्शित करते हैं और उनके कर्त्तव्यको उमरेठ जान गया है, यह सतोषकी वात है।*

• • • •

उन्ही दिनो स्वर्गीय गोखले दक्षिण अफ्रीका आए। तव हम फार्मपर ही रहते थे। उस प्रवासके वर्णनके लिए एक स्वतत्र अध्याय की जरूरत हैं। अभी तो एक कड़वा-मीठा सस्मरण है, उसीको यहा लिख देता हूं। फार्ममें खाटके जैसी कोई वस्तु ही नही थी। पर गोखलेजीके लिए हम एक खाट मागकर लाए। वहापर ऐसा एक भी कमरा नही था, जिसमें रहकर उन्हें पूरा एकात मिल सके। बैठनेके लिए पाठगालाके बेंच थे। पर इस स्थितिमें भी कोमल शरीरवाले गोखलेजीको फार्मपर विना लाए हम कैसे रह सकते थे? और वह भी उसे विना देखे क्योकर रह सकते थे? मेरा खयाल था कि उनका शरीर एक रातभरके लिए कष्ट उठा सकेगा और वह स्टेशनसे फार्मतक करीव डेढ मील पैदल भी चल सकेंगे। मैंने उन्हें पहले हीसे पूछ रक्खा था। अपनी सरलताके कारण उन्होने विना विचारे मुझपर विश्वास रख सव व्यवस्थाको कवूल भी कर लिया था। सयोगसे उसी दिन वारिश आगई। ऐन वक्तपर एकाएक मै भी कोई फेरफार नही कर पाया। इस तरह अज्ञानमय प्रेमके कारण मैंने उनको उस दिन जो कष्ट दिया, वह कभी नही भुलाया जा सकता। वह भारी परिवर्त्तनको तो कदापि नही सह सकते थे। उन्हें खूव जाडा लगा। खाना खानेके लिए पाकशालामें भी उन्हें नही ले जा सके। मि० कैलनवेकके कमरेमें उन्हें रक्खा गया था। वहा पहुचते-पहुचते तो सव खाना ठडा हो जाता। उनके लिए खुद मै 'सूप' वना रहा था और भाई कोतवालने रोटिया वनाईं। पर यह सव गरम कैसे रहे? ज्यो-त्यो करके भोजना-

---

* नवंबर १६१७ में उमरेठके भारतीयो द्वारा महात्मा गोखलेके नाम पर स्थापित पुस्तकालयका उद्घाटन-भाषण)

ध्याय समाप्त हुआ। पर उन्होने मुझे एक शब्द भी नही कहा। हा, उनके चेहरेपरसे मैं सबकुछ और अपनी मूर्खताको भी जान गया। जब देखा कि हम सब जमीनपर सोते थे तब तो उन्होने भी खाटको अलग कर दिया और अपना बिस्तर जमीनपर ही लगवा लिया। रातभर मैं पडा-पडा पश्चात्ताप करता रहा। गोखलेजीको एक आदत थी, जिसे मैं कुटेव कहता था, वह केवल नौकरसे ही काम लेते थे। ऐसे लबे प्रवासोमे वह नौकरोको साथ नही रखते थे। मि० कैलनबेकने और मैंने कई बार उनके पैर दबा देनेके लिए प्रार्थना की, पर वह टस-से-मस नही हुए। अपने पैरोको हमे स्पर्शतक नही करने दिया। उल्टा कुछ गुस्सेमें और कुछ हँसीमें कहा—"मालूम होता है, आप सब लोगोने समझ रक्खा कि दु ख और कष्ट उठानेके लिए केवल आप ही पैदा हुए है और मुझ-जैसे आपको केवल कष्ठ देनेके लिए। लो, भुगतो अब अपनी 'अति' की सजा! मैं तुम्हे अपने शरीरको स्पर्श तक नही करने दूगा। आप सब लोग तो नित्य-क्रियाके लिए मैदानमें जावेंगे और मेरे लिए कमोड रख छोडा है! क्यो? खैर, परवाह नहीं। आज तो मै जरूर आपका गर्व दूर करूगा, चाहे इसके लिए कितना ही कष्ट हो।" यह वचन तो वज्रके समान थे। कैलनबेक और मै दोनो उदास हो गए। पर उनके चेहरे पर कुछ-कुछ हँसी भी थी। बस यही हमे आश्वासन दे रही थी। अर्जुनने अज्ञानवश श्रीकृष्णको कितना ही कष्ट क्यो न दिया हो, पर क्या यह सब श्रीकृष्णने याद रक्खा होगा? गोखलेजीने तो केवल सेवाको ही याद रक्खा और खूबी यह कि सेवा तो करने भी न दी। मोबासासे लिखा हुआ उनका वह प्रेम-भरा पत्र मेरे हृदयपर अकित है। उन्होने आप कष्ट उठा लिया, पर हम उनकी जो सेवा कर सकते थे, वह भी उन्होने नही करने दी। हमारा बनाया भोजन तो खैर खाना ही पड़ा, नही तो और करते ही क्या!

दूसरे दिन सुबह न तो उन्होने खुद ही आराम लिया, न हमे लेने दिया। उनके भाषणोको, जिन्हे हम पुस्तक रूपमें छपानेवाले थे, उन्होने दुरुस्त

किया। उन्हें कुछ भी लिखना होता तो पहले वह यहासे वहातक टहलते-टहलते विचार कर लेते। उन्हे एक छोटा-सा पत्र लिखना था। मेरा खयाल था कि वह फौरन लिख डालेंगे, पर नही। मैंने टीका की, इसलिए मुझे व्याख्यान सुनना पड़ा। "मेरा जीवन तुम क्या जानो! मै छोटी-से-छोटी बातमें भी जल्दी नही करता। उसपर विचार करता हू। उसके मध्यबिंदुपर ध्यान देता हूं, विषयोचित भाषा गढता हू और फिर कही लिखता हू। इस तरह यदि सभी करे तो कितना समय बच जाय और समाजका कितना लाभ हो। आज समाजको जो इन अपरिपक्व विचारोंके कारण हानि उठानी पडती है उससे वह बच जाय।" (द० अ० स०, १९२५)

• •

गोखलेजी तथा अन्य नेताओसे मै प्रार्थना कर रहा था कि वे दक्षिण अफ्रीका आकर यहाके भारतीयोकी स्थितिका अध्ययन करे। इस बातमें पूरा-पूरा सदेह था कि कोई आवेगा भी या नही। मि० रिच भी किसी नेताको भेजनेकी कोशिश कर रहे थे। पर ऐसे समयमें वहा आनेकी हिम्मत कौन कर सकता था जब लड़ाई बिलकुल मद हो गई हो? सन् १९११ में गोखले इग्लैंडमें थे। दक्षिण अफ्रीकाके युद्धका अध्ययन तो उन्होने अवश्य ही कर लिया था, बल्कि धारासभाओंमें चर्चा भी की थी। गिरमिटियाओंको नेटाल भेजना बद करनेका प्रस्ताव उन्होंने धारासभामें पेश किया था, जो स्वीकृत भी हो गया था। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार बराबर जारी था। भारत-सचिवके साथ वह इस विषयमें कुछ मशविरा कर रहे थे और उन्होने दक्षिण अफ्रीका जाकर उस प्रश्नका ठीक-ठीक अध्ययन करनेकी इच्छा भी प्रकट की थी। भारत-सचिवने उनके इस विचारको पसद भी किया था। गोखलेजीने छ सप्ताहके प्रवासकी योजना और कार्यक्रम बनानेके लिए मुझे लिख भेजा और साथ ही वह अतिम तारीख भी लिख भेजी, जब वह दक्षिण अफ्रीकासे विदा होना चाहते थे। उनके

शुभागमनकी वार्त्ता पढकर हमे तो इतना ग्रानद हुग्रा कि जिसकी हद नही। ग्राजतक किसी नेताने दक्षिण ग्रफ्रीकाका सफर नही किया था। दक्षिण ग्रफ्रीकाकी तो ठीक, पर प्रवासी भारतवासियोकी दशाका ग्रवलोकन ग्रौर ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे भी किसी विदेशी रियासतकी यात्रा तक नही की थी। इसलिए गोखले-जैसे महान् नेताके शुभागमनके महत्वको हम सब पूरी तरह समझ गए। हमने यह निश्चय किया कि गोखलेजीका ऐसा स्वागत-सम्मान किया जाय जैसा ग्रव तक वादशाहका भी न हुग्रा हो। यह भी तय हुग्रा कि दक्षिण ग्रफ्रीकाके मुख्य-मुख्य शहरोमें भी उन्हे ले जाना चाहिए। सत्याग्रही ग्रौर दूसरे भी उनके स्वागतकी तैयारियो मे वडे उत्साहपूर्वक काम करने लगे। गोरोको भी इस स्वागतमें भाग लेनेके लिए निमत्रित किया गया था ग्रौर लगभग सभी जगह वे शामिल भी हुए थे। यह भी निश्चय किया गया कि जहा-जहा सार्वजनिक सभाएँ हो, उन-उन शहरोके मेयरोको, यदि वे स्वीकार करे तो, ग्रध्यक्ष-स्थान दिया जाय। साथ ही जहातक हो सके, कोशिश करके प्रत्येक शहरमें सभा-स्थानके लिए वहाके टाउन हॉलका ही उपयोग किया जाय। हमने यह निश्चय कर लिया कि रेलवे-विभागकी इजाजत प्राप्त करके मुख्य-मुख्य स्टेशनोको भी सजाया जाय। तदनुसार कितने ही स्टेशनोको सजानेकी इजाजत भी हमे मिल गई। यद्यपि सामान्यतया ऐसी इजाजत नही दी जाती, पर हमारी स्वागतकी तैयारियोका ग्रसर सत्ताधिकारियो-पर भी पडा। इसलिए उन्होने भी जितनी उनसे वन पडी, सहानुभूति दिखाई। मसलन केवल जोहान्सवर्गके स्टेशनको सजानेमे ही हमे लगभग १५ दिन लग गये। वहा हम लोगोने एक सुदर प्रवेश-द्वार वनाया था।

दक्षिण ग्रफ्रीकाके विषयमे वहुत कुछ जानकारी तो उन्हे इग्लैंडमें ही मिल चुकी थी। भारत-सचिवने दक्षिण ग्रफ्रीकाकी सरकारको गोखले-का दरजा, साम्राज्यमे उनका स्थान, इत्यादि पहले ही वता दिया था।

किंतु स्टीमर कपनीमे टिकट तथा व्यवस्था आदि करनेकी वात किसीको कैसे सूझ सकती थी ? गोखलेजीकी तवियत नाजुक थी। इसलिए उनको अच्छी कैविन और एकातकी वडी आवश्यकता रहती, पर उन्हें तो साफ उत्तर मिल गया कि ऐसी कैविन है ही नही। मुझे ठीक-ठीक पता नही है कि स्वय गोखलेजीने या उनके और किसी मित्रने इडिया आफिस-में इस वातकी इत्तिला की। पर कपनीके डायरेक्टरके नाम इडिया आफिसकी तरफसे पत्र पहुचा। और जहा कोई कैविन ही नही थी वही उनके लिए एक वढिया कैविन तैयार हो गई। उस प्रारभिक कटुताका अत इस मधुरताके साथ हुआ। स्टीमरके कैप्टनको भी गोखलेजीका वढिया स्वागत करनेके लिए सूचना पहुची थी। इसलिए उनके इस सफर-के दिन वडी शाति और आनदके साथ वीते। गोखले उतने ही आनद और विनोदशील भी थे, जितने वह गभीर थे। स्टीमरके खेल वगैरहमें वह खूब भाग लेते थे। इसलिए स्टीमरके मुसाफिरोमें वह वडे प्रिय हो गए। गोखलेजीको यूनियन सरकारका यह विनय-सदेश भी पहुचा कि वह यूनियन सरकारके महमान हो और रेलवेके स्टेट सेलूनमें ही सफर करें, किंतु स्टेट सेलूनका तथा प्रिटोरियामें सरकारी महमान होना स्वीकार करनेका निश्चय उन्होने मेरे साथ मशविरा करनेके वाद किया।

जहाजसे वह केपटाउनमें उतरनेवाले थे। उनका मिजाज तो मेरी अपेक्षासे भी अधिक नाजुक सावित हुआ। वह एक खास तरहका भोजन ही कर सकते थे। अधिक परिश्रम भी नही उठा सकते थे। निश्चित कार्य-क्रम भी उनके लिए असह्य हो गया। जहा तक हो सका उसमें परि-वर्तन किया गया। जहा कही परिवर्तन नही हो सका, वहा स्वास्थ्य विग-डनेकी आशका होते हुए भी उन्होने उसे कवूल कर लिया। मुझे इस वातका वडा पश्चात्ताप हुआ कि उनसे विना पूछे ही मैंने इतना सख्त कार्य-क्रम क्यो तैयार कर डाला! कार्य-क्रममें कितनी ही जगह परिवर्तन किया गया, पर अधिकाश तो ज्यों-का-त्यों ही रखना पडा। यह वात मेरे खयालमें

नही आई थी कि उन्हें एकातकी अत्यन्त आवश्यकता रहती है। अत एकात स्थानका प्रबध करनेमें मुझे ज्यादा-से-ज्यादा कठिनाई हुई। पर साथ ही नम्रता-पूर्वक मुझे यह तो सत्यके लिए जरूर कहना पडेगा कि बीमार और बुजुर्गोकी सेवा करनेका मुझे खास अभ्यास और शौक भी था। इसलिए अपनी मूर्खताका ज्ञान होनेके बाद मै उसमें इतना सुधार कर सका था कि उन्हें बहुत काफी एकात और शाति भी मिल सकी। प्रवासमें शुरूसे आखिर तक उनके मत्रीका काम स्वय मैंने ही किया। स्वय-सेवक भी ऐसे थे जो साय-साय करती अधेरी रातमें भी चिट्ठीका उत्तर ला सकते थे। इसलिए मेरा खयाल है कि उन्हें सेवकोके अभावके कारण कोई कष्ट नही उठाना पडा होगा। कैलनबेक भी इन स्वयसेवकोमें थे।

यह तो प्रकट ही था कि केपटाउनमें बढिया-से-बढिया सभा होनी चाहिए। श्राइनर कुटुबके डब्ल्यू० पी० श्राइनरसे अध्यक्ष-स्थान स्वीकार करनेके लिए प्रार्थना की गई। हमारी प्रार्थनाको उन्होने मजूर कर लिया। विशाल सभा हुई। भारतीय और गोरे भी अच्छी तादादमें आए। मि० श्राइनरने मधुर शब्दोमें गोखलेजीका स्वागत किया और दक्षिण अफ्रीका-के भारतीयोके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। गोखलेजीका भाषण छोटा, परिपक्व विचारोसे भरा हुआ और दृढ था, किंतु विनयपूर्ण भी ऐसा था कि जिसने भारतीयोको प्रसन्न कर दिया और गोरोका दिल भी चुरा लिया। गोखलेजीने जिस दिन दक्षिण अफ्रीकाकी भूमिपर पैर रक्खा उसी दिन वहाकी पचरगी प्रजाके हृदयमें उन्होने अपना स्थान प्राप्त कर लिया।

केपटाउनसे जोहान्सबर्ग जाना था। रेलसे दो दिनका प्रवास था। युद्धका कुरुक्षेत्र ट्रान्सवाल था। केपटाउनसे आते समय राहमें हमें ट्रान्स-वालके बडे सरहदी स्टेशन क्लार्कस्डार्पपर से गुजरना पडता था। खास क्लार्कस्डार्प तथा राहमें आनेवाले अन्य शहरोमें भी ठहरकर हमें सभाओमें जाना था। इसलिए क्लार्कस्डार्पसे एक स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था की गई।

दोनो शहरोमे वहाके मेयर ही अध्यक्ष थे। किसी भी शहरको एक घटेसे अधिक समय नही दिया गया था। ट्रेन जोहान्सबर्ग बिलकुल ठीक समय पर पहुची। एक मिनटका भी फर्क नही पडने पाया। स्टेशनपर खासे कालीन वगैरह बिछाए गए थे। एक मच भी बनाया गया था। जोहान्सबर्गके मेयर और दूसरे अनेक गोरे भी हाजिर थे। गोखलेजी जितने दिन जोहान्सबर्गमे रहे, उतने दिन तक उनके उपयोगके लिए मेयरने उन्हें अपनी मोटर दे दी थी। स्टेशनपर ही उन्हें मानपत्र भी दिया गया। प्रत्येक स्थानपर मान-पत्र तो दिए ही जाते थे। जोहान्सबर्गका मानपत्र बडा सुदर था। दक्षिण अफ्रीकाकी लकडीपर जडी हुई सोनेकी हृदयाकार तख्तीपर खुदा हुआ था—तख्तीका सोना भी जोहान्सबर्गकी खान का ही था। लकडीपर भारतके कितने ही दृश्योके सुदर चित्र खुदे हुए थे। गोखलेजीका परिचय, मानपत्रको पढना और उसका उत्तर दिया जाना तथा अन्य मानपत्रोका लेना यह सब काम २२ मिनिटके अदर कर लिए गए थे। मानपत्र इतना छोटा था कि उसे पढनेमें पाच मिनटसे अधिक समय नहीं लगा होगा। गोखलेजीका उत्तर भी पाच ही मिनिटका था। स्वयसेवकोंका इतजाम इतना बढिया था कि पूर्व निश्चित मनुष्योके सिवा एक भी आदमी प्लेटफार्मपर नही आ सका। शोर-गुल जरा भी नही था। बाहर लोगोकी खूब भीड थी। फिर भी किसीके आने-जानेमें कोई कठिनाई नही हुई।

उनके ठहरनेकी व्यवस्था मि० कैलनबेकके एक छोटे-से सुदर बगलेमें की गई थी, जो जोहन्सबर्गसे पाच मीलकी दूरी पर एक टेकडीपर था। वहाका दृश्य ऐसा भव्य था, वहाकी शाति ऐसी आनददायक थी और बगला सादा होते हुए भी कलासे इतना परिपूर्ण था कि गोखलेजी खुश हो गए। मिलने-जुलनेकी व्यवस्था सबके लिए शहरमें ही की गई थी। उसके लिए एक खास आफिस किरायेपर ले लिया गया था। उनमें एक कमरा केवल उनके आराम करनेके लिए रक्खा गया था, दूसरा मिलने-

जुलनेके लिए और तीसरा कमरा मिलने आने वाले सज्जनोके बैठनेके लिए। जोहान्सबर्गके कितने ही प्रसिद्ध गृहस्थोसे खानगी मुलाकात करनेके लिए भी गोखलेजीको ले गए थे। गण्यमान्य गोरोकी भी एक खानगी सभा की गई थी, जिससे गोखलेजीको उनके दृष्टि-बिंदुका पूरी तरह खयाल हो जाय। इसके अलावा जोहान्सबर्गमें उनके सम्मानार्थ एक विशाल भोज भी दिया गया था, जिसमे कोई ४०० आदमियोको निमन्त्रित किया गया था। उनमे लगभग १५० गोरे थे। भारतीय टिकिट लेकर आ सकते थे। टिकटकी कीमत एक गिनी रक्खी गई थी। टिकटोकी आयमेंसे उस भोजका खर्च निकल आया। भोज केवल निरामिष और मद्यपान-रहित था। खाना भी केवल स्वयसेवको द्वारा ही बनाया गया था। इसका वर्णन यहा करना कठिन है। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोमें हिंदू-मुसलमान, छूत-अछूत आदिका कोई खयाल ही नही होता। सब एकसाथ बैठकर खा लेते है। निरामिष आहार करनेवाले भारतीय भी अपने नियमका पालन करते है। भारतीयोमें कितने ही क्षत्रिय भी थे। दूसरोकी तरह उनसे भी मेरा तो गाढ परिचय था। उनमेंसे अधिकाश गिरमिटिया माता-पिताकी प्रजा ही होते है। कई होटलोमे खाना पकाने और परोसनेका काम करते है। इन्ही लोगोकी सहायतासे इतने मनुष्योंकी रसोईकी व्यवस्था हो सकी। तरह-तरहके कोई पद्रह व्यजन थे। दक्षिण अफ्रीकाके गोरोके लिए यह एक नवीन और अजीव अनुभव था। इतने भारतीयोके साथ एक पक्तिमें खानेके लिए बैठना, निरामिष भोजन करना और मद्यपान विना काम चलाना ये तीनो अनुभव उनमेंसे कइयोके लिए नवीन थे। दो तो अवश्य ही सबके लिए नवीन थे।

इस सम्मेलनमे गोखलेजीका बडे-से-बडा और महत्वपूर्ण भाषण हुआ। पूरे ४५ मिनट वह बोले। इस भाषणकी तैयारीके लिए उन्होने हमारा खूब समय लिया था। पहले उन्होने अपना जीवनभरका यह निश्चय

सुनाया कि एक तो स्थानीय मनुष्योके दृष्टि-बिंदुकी अवगणना नही होनी चाहिए। दूसरे, जहातक उनसे मिलकर रहा जाय, हम मिलकर रहने-की कोशिश करें। इन दो बातोको ध्यानमें रखकर मै उनसे जो कहलाना चाहू वह उन्हे बता दू, पर यह मुझे उन्हे लिखकर देना चाहिए। साथ ही उनकी यह भी शर्त थी कि इनमेंसे एक भी वाक्य या विचारका वह उप-योग न करे तो मुझे बुरा न मानना चाहिए। लेख न लंबा होना चाहिए और न छोटा। कोई महत्वपूर्ण बात भी छूटने न पावे। इन सब बातोका खयाल रखते हुए मुझे उनके लिए स्मरणार्थ टिप्पणिया लिखनी पडती थी। यह तो मै सबसे पहले कह देता हू कि उन्होने मेरी भाषाका तो जरा भी उपयोग नही किया। वह तो अग्रेजीके पारगत विद्वान् थे। फिर मै यह आशा भी क्यो करू कि वह मेरी भाषाका उपयोग करे। पर मै यह भी नही कह सकता कि उन्होने मेरे विचारोका भी उपयोग किया। हा, मेरे विचारोकी उपयुक्तताको उन्होने जरूर स्वीकार किया। इसलिए मैने अपने दिलको समझा लिया कि आखिर उन्होने मेरे विचारोका भी किसी तरह उपयोग किया होगा, क्योकि उनकी विचार-शैली ऐसी अजीब थी कि उससे हमें यही पता नही चलता था कि उन्होने हमारे विचारोको कहा स्थान दिया है, अथवा दिया भी है, या नही। गोखले-जीके सभी भाषणोके समय मै हाजिर था, पर मुझे ऐसा एक भी प्रसग याद नही कि जिसमें मुझे यह इच्छा हुई हो कि अमुक विशेषण या अमुक विचारका उपयोग वह न करते तो अच्छा होता। उनके विचारोकी स्पष्टता, दृढता, विनय, इत्यादि उनके अथक परिश्रम और सत्यपरायणता-के फल-स्वरूप थे।

जोहान्सबर्गमें केवल भारतीयोकी एक विराट सभा भी तो हो जाना जरूरी था। मेरा यह आग्रह पहलेसे ही चला आ रहा है कि भाषण मातृ-भाषा ही में अथवा राष्ट्र-भाषा हिंदुस्तानीमें ही होना चाहिए। इस आग्रहके कारण दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोके साथ मेरा अधिक सरल और निकट

का सबध हो गया। इसलिए मै चाहता था कि भारतीयोकी सभामें गोखले-जी भी हिंदुस्तानीमे भाषण दें तो बडा अच्छा हो, किंतु इस विषयमें उनके विचार मै जानता था। टूटी-फूटी हिंदीसे काम चलाना तो उन्हें पसदही नही था। अर्थात् वह या तो मराठीमें भाषण दे सकते थे या अग्रेजीमें। मराठीमें भाषण देना उन्हें कृत्रिम मालूम हुआ। यदि मराठीमें बोलते भी तो गुजरातियो तथा उत्तर हिंदुस्तानके निवासी भारतीयोके लिए उसका अनुवाद करना अनिवार्य था। यदि ऐसा था तो फिर अग्रेजीमें ही क्यो न बोला जाय ? पर मेरे पास एक ऐसी दलील थी, जिसको गोखले-जी स्वीकार कर सकते थे। जोहान्सबर्गमें कोकणके कई मुसलमान भी बसते थे। कुछ महाराष्ट्रीय हिंदू भी थे। ये सब गोखलेजीका मराठी भाषण सुननेके लिए बडे लालायित थे और उन लोगोने मुझे यह भी कह रक्खा था कि मै गोखलेजीसे मराठीमे भाषण देनेके लिए अनुरोध करू। इसलिए मैने गोखलेजीसे कहा, "यदि आप मराठीमें भाषण देंगे तो इन लोगोको बडा आनद होगा। आप जो कुछ कहेंगे उसका मै हिंदुस्तानी में अनुवाद करके सुना दूगा।" यह सुनकर वह जोरसे खिलखिलाकर हँस पडे। "तुम्हारा हिंदुस्तानीका ज्ञान तो मैने अच्छी तरह जाच लिया, वह तुम्हीको मुबारक हो! पर याद रक्खो अब तुम्हें मराठीसे अनुवाद करना होगा। भला बताओ तो सही कि इतनी अच्छी मराठी तुम कहासे सीख गए ?" मैने कहा—"जो हाल मेरी हिंदुस्तानीका है वही मराठीके विषयमें भी समझिए। मराठीमें एक अक्षर भी मै नही बोल सकता। पर आप जिस विषयपर आज कुछ कहेंगे उसका भावार्थ मै जरूर कह दूगा। आप देखिएगा कि मै लोगोके सामने उसका उलट-सुलट अर्थ तो हरगिज नही करूगा। भाषणका अनुवाद करके सुनानेके लिए मै ऐसे लोग तो आपको अवश्य ही दे सकता हू, जो अच्छी तरह मराठी जानते है। पर शायद आप इस प्रस्तावको मजूर नही करेंगे। इसलिए मुझीको निबाह लीजिए, पर बोलिएगा मराठीमें। कोकणी भाइयोके साथ-साथ मुझे भी आपकी मराठी

सुननेकी वडी अभिलाषा है।" "भाई, अपनी ही टेक रक्खो। अब यहा तुम्हारे ही तो पाले पडा हुआ हू न ? अब कही यो थोडे छुट्टी मिल सकती है !" यह कहकर उन्होने मुझे खुश कर दिया। इसके बाद जजीवार तक इस तरहकी प्रत्येक सभामें वह मराठी हीमें बोले और मैं खास उन्हीका नियुक्त किया हुआ अनुवादक रहा। मेरा खयाल है कि प्रत्येक भारतीयको यथा-सभव अपनी मातृ-भाषामें अथवा व्याकरण-शुद्ध अग्रेजीकी बनिस्वत व्याकरण-रहित टूटी-फूटी हिंदीहीमे भाषण देना चाहिए। मैं कह नही सकता कि यह बात मैं उनको कहा तक समझा सका, किंतु इतना तो मैं जरूर कहूगा कि मुझे प्रसन्न करनेके लिए उन्होने दक्षिण अफ्रीकामें तो मराठी हीमे भाषण दिए। मैं यह भी जान सका कि अपने भाषणके बाद उसके प्रभावसे वह खुश भी हुए। दक्षिण अफ्रीकामें अनेक प्रसगोपर किए हुए अपने वर्तावसे गोखलेजीने यह वता दिया कि सिद्धातकी कठिनाई न हो तो मनुष्यको अपने सेवकोको जरूर राजी रखना चाहिए। यह भी एक गुण है। (द० अ० स०, १९२५)

• • •

जोहान्सवर्गसे हमें प्रिटोरिया जाना था। प्रिटोरियामें गोखलेजीको यूनियन सरकारका निमत्रण था। तदनुसार होटलमें उनके लिए सुरक्षित जगहमें ही हम ठहरे। यहापर उन्हें यूनियन सरकारके मंत्रिमडलसे, जिसमे जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे, मिलना था। जैसा कि ऊपर लिख चुका हू, मैंने उनका कार्यक्रम ऐसा बनाया था कि उन्हें हमेशा करने योग्य कामोकी सूचना मैं प्रतिदिन सुबह कर दिया करता था। यदि वह चाहते तो अगली रातको भी वता देता। मत्रि-मडलसे मिलनेका काम उत्तरदायित्व-पूर्ण था। हम दोनोने निश्चय कर लिया था कि मुझे उनके साथ नहीं जाना चाहिए, जानेकी आज्ञा भी नही मागनी चाहिए। मेरी उपस्थितिके कारण मत्रि-मडल और गोखलेजीके बीचमें जरूर ही एक हद तक पर्दा पड जानेकी सभावना थी। मत्रिगण उन्हें न तो पेट-

भर स्थानीय भारतीयोकी और न मेरी ही ऐसी वाते वता सकते जिनको वे गलत समझते थे। और यदि वे कुछ कहना चाहते तो उसे भी खुले दिलसे नही कह सकते थे, किंतु इसमें एक असुविधा भी थी। गोखलेजीकी जिम्मेदारी दुगुनी हो जाती थी। यदि किसी वातको वह भूल जाय, या मंत्रि-मडलकी तरफसे कोई ऐसी वात कही जाय जिसका उत्तर उनके पास न हो, तो क्या किया जाय? अथवा भारतीयोकी तरफसे किसी वातको कवूल करना हो तव क्या किया जाय? येदोनो वातें विना मेरी या दक्षिण अफ्रीकाके किसी जिम्मेदार नेताकी उपस्थितिके कैसे तय हो सकती थी? पर इसका निर्णय स्वय गोखलेजीने ही फौरन कर डाला। यही कि मै उनके लिए शुरूसे आखिर तक सक्षेपमें भारतीयोकी स्थितिका वृत्तात लिख दू। उसमें यह भी हो कि भारतीय अपनी मागोमें कहातक कम-ज्यादा करनेको तैयार है। इसके वाहरकी कोई वात उपस्थित हो तो उसमें गोखलेजी अपना अज्ञान कुवूल कर ले। इस निश्चयके साथ ही वह निश्चिंत भी हो गए। अव रहा यह कि मै ऐसा एक कागज तैयार करलू और वे उसे पढ ले। पर पढने इतना समय तो मैने रक्खा ही नही था। कितना ही सक्षेपमें लिखू तो भी १८-२० वर्षका, चार रियासतोकी भारतीय जनताकी स्थितिका इतिहास मै १०-२० सफेसे कममें कैसे दे सकता था? फिर उसके पढ लेनेपर उनको कुछ सवाल तो अवश्य ही सूझते। पर उनकी स्मरण-शक्ति जितनी तीव्र थी, उतनी ही उनकी मेहनत करनेकी शक्ति भी अगाध थी। रातभर जागते रहे। पोलकको और मुझे भी सोने नही दिया। प्रत्येक वातकी पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त कर ली। उलट-सुलट रीतिसे सवाल करके इस वातकी जाच भी कर ली कि वह स्थितिको वरावर समझ गए या नही। अपने विचार मेरे सामने कह सुनाये। अत में उन्हे पूरा सतोष हो गया। मै तो निर्भय ही था।

लगभग दो घटे मंत्रि-मडलके पास वह वैठे और वहासे आनेपर

मुझसे कहा, "तुम्हें एक सालके अदर भारतवर्ष आना है। सब बातोका फैसला हो गया है। खूनी कानून रद होगा, इमिग्रेशन कानूनसे वर्ण-भेद निकाल दिया जायगा और तीन पौडका कर भी रद होगा।" मैंने कहा, "इसमें मुझे पूरा सदेह है। मत्रि-मडलको जितना मै जानता हू, उतना आप नही जानते। आपका आशावाद मुझे प्रिय है, क्योकि स्वयं मै भी आशावादी हू। पर अनेक बातोमें धोखा खानेपर अब मै इस विषयमें आपके इतनी आशा नही रख सकता। पर मुझे भय भी नही है। आप वचन ले आए, यही मेरे लिए काफी है। मेरा धर्म तो केवल यही है कि आवश्यकता उपस्थित होने पर युद्ध ठान दू और यह सिद्ध कर दू कि वह न्याय है। इसकी सिद्धिमें आपको दिया गया वचन हमारे लिए बड़ा फायदेमद होगा। और यदि लडना ही पडा तो वह हमे दूनी शक्ति देगा। पर मुझे न तो इस बातका विश्वास होता है कि बिना अधिक तादादमे भारतीयोंके जेल गए इसका निबटारा हो सकता है और न इस बातका भी कि एक सालके अदर मै भारतवर्ष जा सकूगा।" तब वह बोले, "मै तुम्हें जो कुछ कहता हू इसमें कभी फर्क नही हो सकता। जनरल बोथाने मुझे वचन दिया है कि खूनी कानून और वह तीन पौडवाला कर भी रद होगा। तुम्हें एक सालके अदर भारत लौटना ही होगा। मै अब इस विषयमें तुम्हारी एक भी दलील नही सुनूगा।"

जोहान्सबर्गका भाषण प्रिटोरियाकी मुलाकातके बाद हुआ था।

ट्रान्सवालसे डरबन, मैरित्सबर्ग आदि स्थानोको गए। वहा कई गोरोसे काम पडा। कैम्बरलीकी हीरोकी खान देखी। कैम्बरली और डरबनके स्वागत-मडलोने भी जोहान्सबर्गके जैसे भोज दिए थे। उनमें अनेक अग्रेज भी आए थे। इस तरह भारतीयो और गोरोका दिल चुरा कर गोखलेजीने दक्षिण अफ्रीकाका किनारा छोडा। उनकी आज्ञा प्राप्त कर कैलनबेक और मै उन्हे जजीबार तक छोडनेके लिए गए थे। स्टीमरमें उनके लिए ऐसे भोजनकी व्यवस्था कर दी गई जो उनको

मुआफिक हो। रास्तेमें डेलागोआ बे, इन्हामबेन, जजीबार, आदि बदरगाहोपर भी उनका बडा सम्मान किया गया।

रास्तेमें हमारे बीच जो बातें होती उनका विषय भारतवर्ष और उसके प्रति हमारा धर्म ही रहता। प्रत्येक बातमे उनका कोमल भाव, सत्यपरायणता, स्वदेशाभिमान चमकता था। मैंने देखा कि स्टीमरमें वह जो खेल खेलते उनमे भी खेलोकी बनिस्वत भारतवर्षकी सेवाका भाव, ही विशेष रहता। भला उनके खेलमें भी सपूर्णता क्यो न हो!

स्टीमरमें शातिके साथ बाते करनेके लिए हमें समय मिल ही गया। उसमे उन्होने मुझे भारतवर्षके लिए तैयार किया। भारतवर्षके प्रत्येक नेताका पृथक्करण करके दिखाया। वे वर्णन इतने हूबहू थे कि मुझे बादमें उन नेताओका जो प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, उसमें और उसके चरित्र-चित्रणमें शायद ही कोई फर्क दिखाई दिया।

गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासमे उनके साथ मेरा जो सबध रहा, उसके ऐसे कितने ही पवित्र सस्मरण है, जिनको मै यहा दे सकता हू, किंतु सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका कोई सबध नही है। इसलिए मुझे अनिच्छापूर्वक अपनी कलमको रोकना पडता है। जजीबारमें हमारा जो वियोग हुआ वह हम दोनोके लिए बडा दुखदायी था, किंतु यह सोचकर कि देह-धारियोके घनिष्ट-से-घनिष्ट सबध भी अतमे टूटते ही है, कैलनबेकने और मैंने अपना समाधान किया। हम दोनोने यह आशा की कि गोखलेजीकी वाणी सत्य हो और हम दोनो एक सालके अदर ही भारतवर्ष जा सके, पर यह असभव सिद्ध हुआ।

इतना होते हुए भी गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासने हमें अधिक दृढ बना दिया। युद्धका जब अधिक रग चढा तब इस मुलाकातका रहस्य और आवश्यकता हम और भी अच्छी तरह समझे। यदि गोखलेजी दक्षिण अफ्रीका नही आते, मत्रि-मडलसे नही मिलते तो हम तीन पौंडवाले करको अपने युद्धका विषय ही नही बना सकते थे। यदि खूनी

कानून रद होते ही सत्याग्रह बंद कर दिया जाता तो तीन पौंडके करके लिए हमें नया सत्याग्रह शुरू करना पड़ता और उसमें असंख्य कष्ट उठाने पड़ते। इतना ही नहीं, बल्कि इस बातमें भी भारी संदेह था कि लोग उसके लिए शीघ्र तैयार होते भी या नहीं। इस करको रद कराना स्वतंत्र भारतीयोंका कर्त्तव्य था। उसको रद करानेके लिए अर्जियां वगैरह सब उपाय काममें लाये जा चुके थे। सन् १८९५ के सालसे कर दिया जा रहा था। चाहे कितना ही घोर दुःख क्यों न हो; किंतु यदि वह दीर्घ-कालीन हो जाता है तो लोग उसके आदी हो जाते हैं। फिर उन्हें यह समझाना महा कठिन होता कि उन्हें उसका प्रतिकार करना चाहिए। गोखलेजीको जो वचन दिया गया उसने सत्याग्रहियोंके मार्गको बड़ा सरल बना दिया। या तो सरकारको अपने वचनके अनुसार उस करको रद कर देना चाहिए था, या नहीं तो स्वयं वह वचन-भंग ही सत्याग्रहके लिए एक काफी बलवान कारण हो जाता, और हुआ भी ठीक यही। सरकारने एक सालके अंदर उस करको रद नहीं किया। यही नहीं; बल्कि यह भी साफ-साफ कह दिया कि वह कर रद नहीं किया जा सकता।

इसलिए गोखलेजीके प्रवाससे हमें तीन पौंडवाले करको सत्याग्रहके द्वारा रद करानेमें बड़ी सहायता मिली। दूसरे, उनके उस प्रवासके कारण वह दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके एक विशेषज्ञ समझे जाने लगे। दक्षिण अफ्रीका संबंधी अब उनके कथनका वजन भी कहीं अधिक बढ़ गया। साथ ही दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले भारतीयोंकी स्थितिका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जानेके कारण वह इस बातको अधिक अच्छी तरह समझ सके कि भारतवर्षको उन लोगोंके लिए क्या करना चाहिए, और उसे यह बात समझानेमें उनकी शक्ति तथा अधिकार भी बहुत बढ़ गया। फलतः अब की बार जब युद्ध चेता तो भारतसे धनकी वर्षा होने लग गई। लॉर्ड हार्डिंज तकने सत्याग्रहियोंके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट कर उन्हें

उत्साहित किया। भारतसे मि० एण्डूज और मि० पियर्सन दक्षिण अफ्रीका आए। यह सब बिना गोखलेजीके प्रवासके नही हो सकता था। (द० अ० स०, १९२५)

मैं गोखलेजीके पास गया। वह फर्ग्यूसन कालेजमें थे। बडे प्रेमसे मुझसे मिले और मुझे अपना बना लिया। उनका भी यह ही प्रथम परिचय था, पर ऐसा मालूम हुआ मानो हमें पहले मिल चुके हो। सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए, लोकमान्य समुद्रकी तरह। गोखलेजी गगाकी तरह। उसमें मैं नहा सकता था। हिमालय पर चढना मुश्किल है, समुद्रमें डूबनेका भय रहता है, पर गगाकी गोदीमें खेल सकते है, उसमे डोगीपर चढकर तैर सकते है। गोखलेजीने खोद-खोदकर बातें पूछी, जैसी कि मदरसेमे भरती होते समय विद्यार्थीसे पूछी जाती है। किस-किससे मिलू और किस प्रकार मिलू, यह बताया और मेरा भाषण देखनेके लिए मागा। मुझे अपने कालेजकी व्यवस्था दिखाई। कहा, "जब मिलना हो, खुशीसे मिलना और डाक्टर भाडारकरका उत्तर मुझे जताना।" फिर मुझे विदा किया। राजनैतिक क्षेत्रमे गोखलेजीने जीते-जी जैसा आसन मेरे हृदयमें जमाया और जो उनके देहातके बाद अब भी जमा हुआ है वैसा फिर कोई न जमा सका। (आ०, १९२७)

• •

पहले ही दिन गोखलेजीने मुझे मेहमान न समझने दिया, मुझे अपने छोटे भाईकी तरह रक्खा। मेरी तमाम जरूरतें मालूम कर ली और उनका प्रबध कर दिया। खुश-किस्मतीसे मेरी जरूरतें बहुत कम थी। सब काम खुद कर लेनेकी आदत डाल ली थी, इसलिए औरोसे मुझे बहुत ही कम काम कराना पड़ता था। स्वावलबनकी मेरी इस आदतकी, उस समयके मेरे कपडे-लत्तेकी सुघडताकी, मेरी उद्योगशीलता और

नियमितताकी बडी गहरी छाप उनपर पडी और वे उसकी इतनी स्तुति करने लगे कि मैं परेशान हो जाता।

मुझे यह न मालूम हुआ कि उनकी कोई बात मुझसे गुप्त थी। जो कोई बडे आदमी उनसे मिलने आते उनका परिचय वह मुझसे कराते थे। इन परिचयोंमें जो आज सबसे प्रधानरूपसे मेरी नजरोंके सामने खडे हो जाते हैं वह हैं डा० प्रफुल्लचद्र राय। वह गोखलेके मकानके पास ही रहते थे और प्राय हमेशा आया करते थे।

"यह हैं प्रोफेसर राय, जो ८००) मासिक पाते हैं, पर अपने खर्चके लिए सिर्फ ४०) लेकर बाकी सब लोक-सेवामें लगा देते हैं। इन्होंने शादी नही की, न करना ही चाहते हैं।" इन शब्दोंमें गोखलेने मुझे उनका परिचय कराया।

आजके डा० रायमें और उन समयके प्रो० रायमें मुझे थोडा ही भेद दिखाई देता है। जैसे कपडे उन समय पहनते थे आज भी लगभग वैसे ही पहनते हैं। हा, अब खादी आ गई है। उस समय खादी तो थी ही नही। स्वदेशी मिलोंके कपडे होंगे। गोखले और प्रो० रायकी बाते सुनते हुए मैं न अघाता था, क्योंकि उनकी बातें या तो देश-हितके सबधमें होती या होती ज्ञान-चर्चा। कितनी ही बाते दु खद भी होती, क्योंकि उनमे नेताओंकी आलोचना भी होती थी। जिन्हें मैं महान् योद्धा मानना सीखा था, वे छोटे दिखाई देने लगे।

गोखलेकी काम करनेकी पद्धतिसे मुझे जितना आनद हुआ उतना ही बहुत कुछ सीखा भी। वह अपना एक भी क्षण व्यर्थ न जाने देते थे। मैंने देखा कि उनके तमाम सबध देश-कार्यके ही लिए होते थे। बातें भी तमाम देश-कार्यके ही निमित्त होती थी। बातोंमें कही भी मलिनता, दभ या असत्य न दिखाई दिया। हिंदुस्तानकी गरीबी और पराधीनता उन्हें प्रतिक्षण चुभती थी। अनेक लोग उन्हे अनेक बातोमे दिलचस्पी कराने आते। वे उन्हें एक ही उत्तर देते, "आप इस कामको कीजिए,

मुझे अपना काम करने दीजिए। मुझे देशकी स्वाधीनता प्राप्त करनी है। उसके बाद मुझे दूसरी बातें सूझेंगी। अभी तो इस कामसे मुझे एक क्षण-की भी फुरसत नही रहती।"

रानडेके प्रति उनका पूज्य भाव बात-बातमें टपका पडता था। 'रानडे ऐसा कहते थे'—यह तो उनकी बातचीतका मानो 'सूत-उवाच' ही था। मेरे वहा रहते हुए रानडेकी जयती (या पुण्यतिथि, अब ठीक याद नही है) पडती थी। ऐसा जान पडा, मानो गोखले सर्वदा उसको मनाते हो। उस समय मेरे अलावा उनके मित्र प्रोफेसर काथवटे तथा दूसरे एक सज्जन थे। उन्हें उन्होने जयती मनानेके लिए निमत्रित किया और उस अवसरपर उन्होने हमें रानडेके कितने ही सस्मरण कह सुनाये। रानडे, तैलग और माडलिककी तुलना की। ऐसा याद पडता है कि तैलगकी भाषाकी स्तुति की थी। माडलिककी सुधारकके रूपमें प्रशसा की थी। अपने मवक्किलोकी वह कितनी चिता रखते थे, इसका एक उदाहरण दिया। एक बार गाडी चूक गई तो माडलिक स्पेशल ट्रेन करके गये। यह घटना कह सुनाई। रानडेकी सर्वाङ्गीण शक्तिका वर्णन करके बताया कि वह तत्कालीन अग्रणियोमें सर्वोपरि थे। रानडे अकेले न्यायमूर्ति न थे। वह इतिहासकार थे, अर्थ-शास्त्री थे। सरकारी जज होते हुए भी काग्रेसमे प्रेक्षकके रूपमें निर्भय होकर आते। फिर उनकी समझ-दारीपर लोगोका इतना विश्वास था कि सब उनके निर्णयोको मानते थे। इन बातोका वर्णन करते हुए गोखलेके हर्षका ठिकाना न रहता था।

गोखले घोडा-गाड़ी रक्खे हुए थे। मैने उनसे इसकी शिकायत की। मै उनकी कठिनाइयोको न समझ सका था। "क्या आप सब जगह ट्राममें नही जा सकते? क्या इससे नेताओकी प्रतिष्ठा कम हो जायगी?"

कुछ दु खित होकर उन्होने उत्तर दिया, "क्या तुम भी मुझे नही पह-चान सके? बडी धारा-सभासे जो कुछ मुझे मिलता है उसे मै अपने काममें नही लेता। तुम्हारी ट्रामके सफरपर मुझे ईर्ष्या होती है। पर मै ऐसा

नही कर सकता। जब तुमको मेरे जितने लोग पहचानने लग जावेंगे तब तुम्हें भी ट्राममे बैठना असंभव नही तो मुश्किल हो जायगा। नेता लोग जो कुछ करते हैं, केवल आमोद-प्रमोदके ही लिए करते है, यह माननेका कोई कारण नहीं। तुम्हारी सादगी मुझे पसद है। मै भरसक सादगीसे रहता हू, पर यह बात निश्चित समझना कि कुछ खर्च तो मुझ-जैसोके लिए अनिवार्य हो जाता है।"

इस तरह मेरी एक शिकायत तो ठीक तरहसे रद हो गई, पर मुझे एक दूसरी शिकायत भी थी और उसका वह सतोष-जनक उत्तर न दे सके।

"पर आप घूमने भी तो पूरे नही जाते। ऐसी हालतमें आप बीमार क्यो न रहे ? क्या देश-कार्यसे व्यायामके लिए फुरसत नही मिल सकती ?" मैने कहा।

"मुझे तुम कब फुरसतमें देखते हो कि जिस समय मै घूमने जाता ?" उत्तर मिला।

गोखलेके प्रति मेरे मनमें इतना आदर-भाव था कि मै उनकी बातोका जवाब न देता था। इस उत्तरसे मुझे सतोष न हुआ, पर मै चुप रहा। मै मानता था और अब भी मानता हू कि जिस तरह हम भोजन-पानेके लिए समय निकालते है उसी तरह व्यायामके लिए भी निकालना चाहिए। मेरी यह नम्र सम्मति है कि उससे देश-सेवा कम नही, अधिक होती है।

(आ०, १९२७)

ब्रह्मदेशसे लौटकर मैने गोखलेसे विदा मागी। उनका वियोग मेरे लिए दुःसह था, परंतु मेरा बगालका, अथवा सच पूछिए तो यहा कलकत्तेका, काम समाप्त हो गया था।

मेरा विचार था कि काममे लगनेसे पहले मै थोडा-बहुत सफर तीसरे दर्जेमें करू, जिसमे तीसरे दर्जेके मुसाफिरोकी हालत मै जान लू और

दुःखोको समझ लू। गोखलेके सामने मैने अपना यह विचार रक्खा। पहले तो उन्होने इसे हँसीमें टाल दिया, पर जब मैने यह बताया कि इसमे मैने क्या-क्या बातें सोच रक्खी है तब उन्होने खुशीसे मेरी योजना-को स्वीकार किया। सबसे पहले मैने काशी जाकर विदुषी ऐनी बेसेटके दर्शन करना तै किया। वह उस समय बीमार थी।

तीसरे दर्जेकी यात्राके लिए मुझे नया साज-सामान जुटाना था। पीतलका एक डिब्बा गोखलेने खुद ही दिया और उसमें मेरे लिए मगदके लड्डू और पूरी रखवा दी। बारह आनेका एक केनवासका बैग खरीदा। छाया (पोरबदरके नजदीकके एक गाव) के ऊनका एक लबा कोट बनवाया था। बैगमे यह कोट, तौलिया, कुरते और धोती रक्खे। ओढनेके लिए एक कबल साथ लिया। इसके अलावा एक लोटा भी साथ रक्खा। इतना सामान लेकर मै रवाना हुआ।

गोखले और डा० राय मुझे स्टेशन पहुचाने आये। मैने दोनोसे अनुरोध किया था कि वे न आवें, पर उन्होने एक न सुनी। "तुम यदि पहले दर्जेमे सफर करते तो मै नही आता, पर अब तो जरूर चलूगा।"— गोखले बोले।

प्लेटफार्मपर जाते हुए गोखलेको तो किसी ने न रोका। उन्होने सिरपर अपनी रेशमी पगडी बाध रक्खी थी और धोती तथा कोट पहने हुए थे। डा० राय बगाली लिबासमें थे। इसलिए टिकटबाबूने अदर आते हुए पहले तो रोका, पर गोखलेने कहा—"मेरे मित्र है।" तब डा० राय भी अदर आ सके। इस तरह दोनोने मुझे विदा दी। (आ०, १९२७)

• • •

विलायतमे मुझे पसलीके वरमकी शिकायत हो गई थी। इस बीमारी-के वक्त गोखले विलायतमें आ पहुचे थे। उनके पास मै व कैलनबेक हमेशा जाया करते। उनसे अधिकाशमे युद्धकी ही बाते हुआ करती। जर्मनीका भूगोल कैलनबेककी जबानपर था, यूरोपकी यात्रा भी उन्होने

बहुत की थी। इसलिए वह नक्शा फैलाकर गोखलेको लडाईकी छावनिया दिखाते।

जब मै बीमार हुआ था तब मेरी बीमारी भी हमारी चर्चाका एक विषय हो गई थी। मेरे भोजनके प्रयोग तो उस समय भी चल ही रहे थे। उस समय मै मूगफली, कच्चे और पक्के केले, नीबू, जैतूनका तेल, टमाटर, अंगूर इत्यादि चीजें खाता था। दूध, अनाज, दाल, वगैरह चीजें बिलकुल न लेता था। मेरी देखभाल जीवराज मेहता करते थे। उन्होने मुझे दूध और अनाज लेनेपर बडा जोर दिया। इसकी शिकायत ठेठ गोखलेतक पहुची। फलाहार-सबधी मेरी दलीलोके वह बहुत कायल न थे। तदुरुस्तीकी हिफाजतके लिए डाक्टर जो-जो बतावे वह लेना चाहिए, यही उनका मत था।

गोखलेके आग्रहको न मानना मेरे लिए बहुत कठिन बात थी। जब उन्होने बहुत ही जोर दिया तब मैने उनसे २४ घटेतक विचार करनेकी इजाजत मागी। कैलनबेक और मै घर आए। रास्तेमें मैने उनके साथ चर्चा की कि इस समय मेरा क्या धर्म है। मेरे प्रयोगमें वह मेरे साथ थे। उन्हे यह प्रयोग पसद भी था। परन्तु उनका रुख इस बातकी तरफ था कि यदि स्वास्थ्यके लिए मै इस प्रयोगको छोड दू तो ठीक होगा। इसलिए अब अपनी अतरात्माकी आवाजका फैसला लेना ही बाकी रह गया था।

सारी रात मै विचारमे डूबा रहा। अब यदि मै अपना सारा प्रयोग छोड दू तो मेरे सारे विचार और मतव्य धूलमें मिल जाते थे। फिर उन विचारोमें मुझे कही भी भूल न मालूम होती थी। इसलिए प्रश्न यह था कि किस अशतक गोखलेके प्रेमके अधीन होना मेरा धर्म है, अथवा शरीर-रक्षाके लिए ऐसे प्रयोग किस तरह छोड देने चाहिए। अतको मैने यह निश्चय किया कि धार्मिक दृष्टिसे प्रयोगका जितना अश आवश्यक है उतना रक्खा जाय और शेष बातोमे डाक्टरोकी आज्ञाका पालन किया

जाय। मेरे दूध त्यागनेमें धर्म-भावनाकी प्रधानता थी। कलकत्तेमें गाय-भैंसका दूध जिन घातक विधियो द्वारा निकाला जाता है, उसका दृश्य मेरी आखोके सामने था। फिर यह विचार भी मेरे सामने था कि मासकी तरह पशुका दूध भी मनुष्यकी खुराक नही हो सकता। इसलिए दूध-त्यागका दृढ निश्चय करके मै सुबह उठा। इस निश्चयसे मेरा दिल बहुत हलका हो गया था, किंतु फिर भी गोखलेका भय तो था ही, किंतु साथ ही मुझे यह विश्वास था कि वह मेरे निश्चयको उलटनेका उद्योग न करेंगे।

शामको 'नेशनल लिबरल क्लब' मे हम उनसे मिलने गए। उन्होने तुरत पूछा, "क्यो डाक्टरकी सलाहके अनुसार चलनेका निश्चय किया है न?"

मैंने धीरेसे जवाब दिया, "और सब बात मान लूगा, परतु आप एक बातपर जोर न दीजिएगा। दूध और दूधकी बनी चीजें और मास, इतनी चीजें मै न लूगा, और इनके न लेनेसे यदि मौत भी आती हो तो मै समझता हू उसका स्वागत कर लेना मेरा धर्म है।"

"आपने यह अतिम निर्णय कर लिया है?" गोखलेने पूछा।

"मैं समझता हू कि इसके सिवा मै आपको दूसरा उत्तर नही दे सकता। मै जानता हू कि इससे आपको दु ख होगा, परतु मुझे क्षम. कीजिएगा।" मैंने जवाब दिया।

गोखलेने कुछ दु खसे, परतु बडे ही प्रेमसे कहा "आपका यह निश्चय मुझे पसद नही। मुझे इसमें धर्मकी कोई बात नही दिखाई देती। पर अब मैं इस बातपर जोर न दूगा।" यह कहते हुए जीवराज मेहताकी ओर मुखातिब होकर उन्होने कहा—"अब गाधीजीको ज्यादा दिक न करो। उन्होंने जो मर्यादा बाध ली है उसके अदर उन्हें जो-जो चीजे दी जा सकती है, वही देनी चाहिए।"

डाक्टरने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की, पर वह लाचार थे। मुझे

मूगका पानी लेनेकी सलाह दी। कहा, "उसमें हींगका बघार दे लेना।" मैंने इसे मंजूर कर लिया। एक-दो दिन मैंने वह पानी लिया भी, परन्तु इससे उलटे मेरा दर्द बढ गया। मुझे वह मुआफिक नहीं हुआ। इससे मैं फिर फलाहारपर आ गया। ऊपरके इलाज तो डाक्टरने जो मुनासिब समझे किए ही। उससे अलबत्ता कुछ आराम था। परन्तु मेरी इन मर्यादाओंपर वह बहुत बिगडते। इसी बीच गोखले भारतको रवाना हुए, क्योंकि वह लंदनका अक्तूबर-नवबरका कोहरा सहन नहीं कर सके। (आ० १९२७)

* * *

मेरे बंबई पहुचते ही गोखलेने मुझे तुरत खबर दी कि बबईके गवर्नर आपसे मिलना चाहते हैं और पूना आनेके पहले आप उनसे मिल आवें तो अच्छा होगा। इसलिए मैं उनसे मिलने गया।

× × ×

अब मैं पूना पहुचा। वहाके तमाम संस्मरण लिखना मेरे सामर्थ्यके बाहर है। गोखलेने और भारत-सेवक-समितिके सदस्योंने मुझे प्रेमसे पाग दिया। जहातक मुझे याद है, उन्होंने तमाम सदस्योंको पूना बुलाया था। सबके साथ दिल खोलकर मेरी बातें हुईं। गोखलेकी तीव्र इच्छा थी कि मैं भी समितिमें आजाऊ। इधर मेरी तो इच्छा थी ही, परन्तु उनके सदस्योंकी यह धारणा हुई कि समितिके आदर्श और उसकी कार्य-प्रणाली मुझसे भिन्न थी। इसलिए वे दुविधामें थे कि मुझे सदस्य होना चाहिए या नहीं। गोखलेकी यह मान्यता थी कि अपने आदर्शपर दृढ रहनेकी जितनी प्रवृत्ति मेरी थी उतनी ही दूसरोंके आदर्शकी रक्षा करने और उनके साथ मिल जानेका स्वभाव भी था। उन्होंने कहा, "परन्तु हमारे साथी आपके दूसरोंको निभा लेनेके इस गुणको नहीं पहचान पाए है। वे अपने आदर्शपर दृढ रहनेवाले स्वतन्त्र और निश्चित विचारके लोग हैं। मैं आशा तो यही रखता हू कि वे आपको सदस्य बनाना मजूर

कर लेगे, परतु यदि न भी करे तो आप इससे यह तो हरगिज न समझेंगे कि आपके प्रति उनका प्रेम या आदर कम है। अपने इस प्रेमको अखडित रहने देनेके लिए ही वे किसी तरहकी जोखिम उठानेसे डरते है, परतु आप समितिके बाकायदा सदस्य हो, या न हो, मै तो आपको सदस्य मानकर ही चलूगा।"

मैने अपना सकल्प उनपर प्रकट कर दिया था। समितिका सदस्य बनू या न बनू, एक आश्रमकी स्थापना करके फिनिक्सके साथियोको उसमें रखकर मै बैठ जाना चाहता था। गुजराती होनेके कारण गुजरातके द्वारा सेवा करनेकी पूजी मेरे पास अधिक होनी चाहिए, इस विचारसे गुजरातमें ही कही स्थिर होनेकी इच्छा थी। गोखलेको यह विचार पसद आया और उन्होने कहा—"जरूर आश्रम स्थापित करो। सदस्योके साथ जो बातचीत हुई है उसका फल कुछ भी निकलता रहे, परतु आपको आश्रमके लिए धन तो मुझ ही से लेना है। उसे मै अपना ही आश्रम समझूगा।"

यह सुनकर मेरा हृदय फूल उठा। चदा मागनेकी झझटसे बचा, यह समझकर बडी खुशी हुई और इस विचारसे कि अब मुझे अकेले अपनी जिम्मेदारीपर कुछ न करना पडेगा, बल्कि हरेक उलझनके समय मेरे लिए एक पथ-दर्शक यहा है। ऐसा मालूम हुआ मानो मेरे सिरका बोझ उतर गया।

गोखलेने स्वर्गीय डाक्टर देवको बुलाकर कह दिया, "गाधीका खाता अपनी समितिमे डाल लो और उनको अपने आश्रमके लिए तथा सार्वजनिक कामोके लिए जो कुछ रुपया चाहिए, वह देते जाना।"

अब मै पूना छोडकर शातिनिकेतन जानेकी तैयारी कर रहा था। अतिम रातको गोखलेने खास मित्रोकी एक पार्टी इस विधिसे की, जो मुझे रुचिकर होती। उसमे वही चीजे अर्थात् फल और मेवे मगाए थे, जो मै खाया करता था। पार्टी उनके कमरेसे कुछ ही दूरपर थी। उनकी

हालत ऐसी न थी कि वे वहातक भी आ सकते, परतु उनका प्रेम उन्हें कैसे रुकने देता ! वह जिद करके आए थे, परतु उनको गश आ गया और वापस लौट जाना पडा। ऐसा गश उन्हें वार-वार आ जाया करता था, इसलिए उन्होने कहलाया कि पार्टीमें किसी प्रकारकी गडवड न होनी चाहिए। पार्टी क्या थी, समितिके आश्रममे अतिथि-घरके पासके मैदानमे जाजम विछाकर हम लोग बैठ गये थे और मूगफली, खजूर वगैरह खाते हुए प्रेम-वार्ता करते थे एव एक-दूसरेके हृदयको अधिक जाननेका उद्योग करते थे।

किंतु उनकी यह मूर्छा मेरे जीवनके लिए कोई मामूली अनुभव नही था। (आ० १९२७)

•

राजनैतिक क्षेत्रमें मैंने अपने आपको उस महात्माका शिष्य कहा है और मैं उसे राजनैतिक वातोमें अपना गुरु मानता हू और यह वात मैं भारतवासियोकी ओरसे कहता हू। सन् १८९६ में मैंने अपने शिष्य होनेकी वात कही थी और मुझे अपनी इस पसदके लिए कभी दुख नही हुआ।

मि० गोखलेने मुझे इस वातकी शिक्षा दी थी कि प्रत्येक भारतवासीको, जो अपने देशके प्रेमका दम भरता हो, सदा राजनैतिक क्षेत्रमे कार्य करनेका ध्यान रखना चाहिए। उसे केवल जवानी जमा-खर्च ही नही करना चाहिए, वल्कि उसे देशके राजनैतिक जीवन तथा राजनैतिक सस्थाओको आध्यात्मिक वनाना चाहिए। उन्होने मेरे जीवनमें उत्तेजना उत्पन्न की तथा वे अव भी उत्तेजना उत्पन्न कर रहे है। उस उत्तेजनासे मै अपने आपको पवित्र करना चाहता हू तथा अपने आपको आध्यात्मिक वनाना चाहता हू। मैंने उस आदर्शके लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है। मुझे इसमे विफलता हो सकती है और जिस सीमा तक मुझे उसमें विफलता होगी उस सीमातक मै अपने आपको अपने गुरुका अयोग्य शिष्य समझूगा। •

मैं उस महात्मा राजनीतिज्ञके समीप उनके जीवनके अत समय तक रहा और मैंने उनमें कभी अहभाव नही पाया। जातीय-सेवा-सभाके आप सभासदोसे मैं प्रश्न करता हू कि आप लोगोमें किसी प्रकारका अहभाव तो नही है ? यदि महात्मा गोखलेने कीर्त्तिशाली होना चाहा तो केवल देशके राजनैतिक क्षेत्रमे कीर्त्तिशाली होना चाहा। उनकी यह इच्छा इसलिए नही थी कि सर्वसाधारण मेरी प्रसशा करे, बल्कि यह इच्छा इसलिए थी कि मेरे देशका लाभ—मेरे देशका कल्याण—हो। उन्होने सर्वसाधारणकी प्रशसाकी कभी कामना नही की थी, पर स्वय सर्वसाधारण ही उन पर प्रशसाकी वर्षा करते थे, वे जबरदस्ती उनकी तारीफें करते थे। वे चाहते थे कि मेरे देशका लाभ हो और यही उनका बहुत बडा दैवी बल था।

आज आप लोग मुझसे इस चित्रको उद्घाटित करनेके लिए कहते हैं। मैं यह काम पूरी ईमानदारी, हृदयकी पूरी सत्यता और शुद्धताके साथ करूगा और यही ईमानदारी या हृदयकी शुद्धता जीवनका अतिम उद्देश्य होना चाहिए।* ('महात्मा गाधी'—रामचद्र वर्मा, पृष्ठ ४१)

... .

गोखलेकी पुण्यतिथिके अवसरपर उस स्वर्गस्थ महात्माके भाषणो तथा लेखोका गुजराती अनुवाद प्रकाशित करनेका विचार पहलेपहल मेरे ही मनमे उत्पन्न हुआ था। इसलिए उसके पहले भागकी प्रस्तावना अधिकाशमें मुझको ही लिखना उचित था। हम लोगोने नियम किया है कि हरसाल गोखलेकी पुण्यतिथि मनावेंगे। भजन, कीर्त्तन, व्याख्यान और तदनतर सभाका विसर्जन—यह हर साल ही होता है। इससे कालक्षेप तो बहुत होता है, पर उससे कोई वास्तविक लाभ नही होता। अत

---

*बंगलौरमें गोखलेकी मूर्ति-अनावरणके समय प्रकट किये गए उद्गार।

भाषणोकी अपेक्षा कार्यको अधिक महत्व देने तथा ऐसे उत्सवोको सर्व-साधारणके लिए सचमुच लाभदायक बनानेके लिए गत वर्ष पुण्य-तिथिके प्रबन्ध-कर्त्ताओंने इस अवसर पर मातृभाषामें कोई उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करना निश्चित किया था। पुस्तक चुननेमे भी देर नही लगी। स्वभावत. ही पहली पुस्तक स्वर्गीय गोखले के भाषणोका सग्रह पसन्दकी गई।

स्व० गोखलेके विषयमें दो-चार शब्द लिखना ही सच्ची प्रस्तावना हो सकता है, परतु गुरुके विषयमें शिष्य क्या लिखे और कैसे लिखे? उसका लिखना एक प्रकारकी धृष्टतामात्र है। सच्चा शिष्य वही है जो गुरुमें अपनेको लीन कर दे, अर्थात् वह टीकाकार हो ही नहीं सकता। जो भक्ति दोष देखती हो वह सच्ची भक्ति नही और दोषगुणके पृथक्करणमें असमर्थ लेखक द्वारा की हुई गुरु-स्तुतिको यदि सर्वसाधारण अगीकार न करें तो इसपर उसे नाराज होनेका अधिकार नही हो सकता। शिष्यके आचरणो हीसे गुरुकी टीका होती है। गोखले राजनैतिक विषयोमें मेरे गुरु थे, इस बातको मै अनेक बार कह चुका हू। इस कारण उनके विषयमें कुछ लिखनेमें मै अपने-को असमर्थ समझता हू। मै चाहे जितना लिख जाऊ, मुझे थोडा ही मालूम होगा। मेरे विचारसे गुरु-शिष्यका सबध शुद्ध आध्यात्मिक सबध है। वह अकशास्त्रके नियमानुसार नही होता। कभी-कभी वह हमारे बिना जाने भी हो जाता है। उसके होनेमें एक क्षणसे अधिक नही लगता, पर एक बार होकर वह फिर टूटना जानता ही नही।

१८९६ ई० में पहले-पहल हम दोनो व्यक्तियोमे यह सबध हुआ। उस समय न मुझे उनका ख्याल था और न उन्हें मेरा। उसी समय मुझे गुरुजीके भी गुरु लोकमान्य तिलक, सर फिरोजशाह मेहता, जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी, डा० भाडारकर तथा बगाल और मद्रास प्रांतके और भी अनेक नेताओंके दर्शनोका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मै उस समय बिल्कुल

नवयुवक था, मुझपर सबने प्रेम-वृष्टि की। सबके एकत्र दर्शनका वह प्रसग मुझे कभी न भूलेगा, परतु गोखलेसे मिलकर मेरा हृदय जितना शीतल हुआ उतना औरोसे मिलनेसे नही हुआ। मुझे याद नही आता कि गोखलेने मुझपर औरोकी अपेक्षा अधिक प्रेम-वृष्टि की थी। तुलना करनेसे मै कह सकता हू कि डा० भाडारकर ने मुझपर जितना अनुराग प्रकट किया उतना और किसीने नही किया। उन्होने कहा--यद्यपि मै आजकल सार्वजनिक कार्योमे अलग रहता हू, पर फिर भी केवल तुम्हारी खातिर मै उस सभाका अध्यक्ष बनना स्वीकार करता हू, जो तुम्हारे प्रश्नपर विचार करनेके लिए होनेवाली है। यह सब होते हुए भी केवल गोखले हीने मुझे अपने प्रेम-पाशमें आबद्ध किया। उस समय मुझे इस बातका बिलकुल ज्ञान नही हुआ। पर सन् १९०२ वाली कलकत्तेकी काग्रेसमें मुझे अपने शिष्य-भावका पूरा-पूरा अनुभव हुआ। उपर्युक्त नेताओमेसे अनेकके दर्शनोका उस समय मुझे फिर सौभाग्य प्राप्त हुआ। किंतु मैने देखा कि गोखलेको मेरी याद बनी हुई थी। देखते ही उन्होने मेरा हाथ पकड लिया। वे मुझे अपने घर खीच ले गए। मुझे भय था कि विषय-निर्वाचिनी-समितिमे मेरी बात न सुनी जायगी। प्रस्तावोकी चर्चा शुरू हुई और खतम भी हो गई, पर मुझे अततक यह कहनेका साहस न हुआ कि मेरे मनमें भी दक्षिण अफ्रीका सबधी एक प्रश्न है। मेरे लिए रातको कौन बैठा रहता! नेतागण कामको जल्दी निपटानेके लिए आतुर हो गए। उनके उठ जानेके डरसे मै कापने लगा। मुझे गोखलेको याद दिलानेका भी साहस न हुआ। इतनेमें वे स्वय ही बोले--मि० गाधी भी दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोकी दशाके सबधमे एक प्रस्ताव करना चाहते हैं। उस पर अवश्य विचार किया जाय। मेरे आनदकी सीमा न रही। राष्ट्रसभाके सबधमें मेरा यह पहला ही अनुभव था। इसलिए उससे स्वीकृत होनेवाले प्रस्तावोका मै बडा महत्व समझता था। इसके बाद भी उनके दर्शनके कितने ही अवसर उपस्थित हुए और वे सभी पवित्र है। पर इस समय जिस बातको मै उनका महामत्र

मानता हूं, उसका उल्लेखकर, इस प्रस्तावनाको पूर्ण करना उत्तम होगा।

इस कठिन कलिकालमे किसी विरले ही मनुष्यमें शुद्ध धर्मभाव देख पड़ता है। ऋषि, मुनि, साधु आदि नाम धारणकर भटकते फिरनेवालोंको इस भावकी प्राप्ति शायद ही कभी होती है। आजकल उनका धर्म-रक्षक पदसे च्युत हो जाना सभी लोग देख रहे हैं। यदि एक ही सुदर वाक्यमें धर्मकी पूरी व्याख्या कही है तो वह भक्त-शिरोमणि गुजराती कवि नरसिंह मेहताके इस वाक्यमें है .

"ज्यां लगी आतमा तत्व चीन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व जूठी।"

अर्थात्—जबतक आत्मतत्वकी पहचान न हो तबतक सभी साधनाए निरर्थक है। यह वचन उसके अनुभव-सागरके मथनसे निकला हुआ रत्न है। इससे ज्ञात होता है कि महातपस्वी तथा योगी जनोंमें भी (सच्चा) धर्मभाव होना अनिवार्य नही है। गोखलेको आत्मतत्वका उत्तम ज्ञान था, इसमें मुझे तनिक भी सदेह नही। यद्यपि वे सदा ही धार्मिक आडवरसे दूर रहे, फिर भी उनका सपूर्ण जीवन धर्ममय था। भिन्न-भिन्न युगोमे मोक्ष-मार्ग पर लगानेवाली प्रवृत्तिया देखी गई है। जब-जब धर्मबधन ढीला पडता है तब-तब कोई एक विशेष प्रवृत्ति धर्म-जागृतिमें विशेष उपयोगी होती है। यह विशेष प्रवृत्ति उस समयकी परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। आजकल हम अपनेको राजनैतिक विषयोंमें अवनत देखते हैं। एकागी दृष्टिसे विचार करनेसे जान पडेगा कि राजनैतिक सुधारसे ही अन्य बातोंमें हम उन्नति कर सकेंगे। यह बात एक प्रकारसे सच भी है। राजनैतिक अवस्थाके सुधारके बिना उन्नति होना संभव नही। पर राजनैतिक स्थितिमें परिवर्तन होने हीसे उन्नति न होगी। परिवर्तनके साधन यदि दूषित तथा घृणित हुए तो उन्नतिके बदले और अवनति ही होनेकी अधिकतर सभावना है। जो परिवर्तन शुद्ध और पवित्र साधनोंसे किया जाता है वही हमें उच्च मार्गपर ले जा सकता है।

सार्वजनिक कामोमे पडते ही गोखलेको इस तत्वका ज्ञान हो गया था और इसको उन्होने कार्यमें भी परिणत किया। यह बात सभी लोग जानते थे कि यह भव्य विचार उन्होने अपने भारत-सेवक-समिति तथा सपूर्ण जन-समुदायके सम्मुख रक्खा कि यदि राजनीतिको धार्मिक स्वरूप दिया जायगा तो यही मोक्ष-मार्गपर ले जानेवाली हो जायगी। उन्होने साफ कह दिया कि जबतक हमारे राजनैतिक कार्योको धर्मभावकी सहायता न मिलेगी तब-तक वे सूखे, रसहीन, ही बने रहेंगे। उनकी मृत्युपर 'टाइम्स आव इडिया' में जो लेख प्रकाशित हुआ था उसके लेखकने इस बातका स्पष्ट उल्लेख किया था और राजनैतिक सन्यासी उत्पन्न करनेके उनके प्रयत्नकी सफलता पर अविश्वास प्रकट करते हुए, उनकी यादगार 'भारत-सेवक-समिति' का ध्यान इसकी ओर आकर्षित किया था। वर्त्तमान कालमें राजनैतिक सन्यासी ही सन्यासाश्रमकी गौरववृद्धि कर सकते है। अन्य गेरुवा वस्त्र-धारी सन्यासी उसकी अपकीर्त्तिके ही कारण है। शुद्धधर्म मार्गमे चलने-वाले किसी भारतवासीका राजनैतिक कामोसे परे रहना कठिन है। उसी बातको मै दूसरी तरह अगीकार किए बिना रह ही नही सकता। और आजकलकी राज्य-व्यवस्थाके जालमें हम इस तरह फस गए है कि राजनीतिसे अलग रहते हुए, लोक-सेवा करना सर्वथा असभव ही है। पूर्व समयमें जो किसान इस बातको जाने बिना भी कि जिस देशमें हम बसते है उसका अधिकारी कौन है, अपनी जीवन-यात्रा भलीभाति निर्वाह कर लेता था, वह आज ऐसा नही कर सकता। ऐसी दशामें उसका धर्माचरण राजनैतिक परिस्थितिके अनुसार ही होना चाहिए। यदि हमारे साधु, ऋषि, मुनि, मौलवी और पादरी इस उच्च तत्वको स्वीकार कर लें तो जहा देखिए वही भारत-सेवक-समितिया ही दिखाई देने लगें और भारतमें धर्म-भाव इतना व्यापक हो जाय कि जो राजनैतिक चर्चा आज लोगोको अरुचिकर होती है वही उन्हें पवित्र और प्रिय मालूम होने लगे, फिर पहले ही की तरह भारतवासी धार्मिक साम्राज्यका उपभोग

करने लगें। भारतका बधन एक क्षणमे दूर हो जाय और वह स्थिति प्रत्यक्ष आखोके सामने आ जाय, जिसका दर्शन एक प्राचीन कविने अपनी अमरवाणीमें इस प्रकार किया है—फौलादसे तलवार बनानेका नही वल्कि (हल की) फाल बनानेका काम लिया जायगा और सिंह और बकरे साथ-साथ विचरण करेंगे। ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्ति ही गुरुवर गोखलेका जीवन-मत्र थी। यही उनका सदेश है और मुझे विश्वास है कि शुद्ध और सरल मनसे विचार करनेपर उनके भाषणोके प्रत्येक शब्दमे यह मत्र लक्षित होगा।*

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय! तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

श्रीकृष्णने अर्जुनको जो उपदेश दिया था, वही उपदेश भारत-माताने महात्मा गोखलेको दिया था और उनके आचरणोसे सूचित होता है कि उन्होने उसका पालन भी किया है। यह सर्वमान्य वात है कि उन्होने जो-जो किया, जिस-जिसका उपभोग किया, जो स्वार्थ त्याग किया, जिस तपका आचरण किया, वह सभी कुछ उन्होने भारत-माताके चरणोमें अर्पण कर दिया।

केवल देश ही के लिए जन्म लेनेवाले इस महात्माका अपने देश-बधुओ-के प्रति क्या सदेश है? 'भारत-सेवक-समिति' के जो सेवक महात्मा गोखलेके अतिम समयमे उनके पास उपस्थित थे, उन्हे उन्होने निम्नलिखित वाक्य कहे थे·

"(तुम लोग) मेरा जीवन-चरित लिखने न बैठना, मेरी मूर्त्ति बनवानेमें भी अपना समय मत लगाना। तुम लोग भारतके सच्चे सेवक

*स्वर्गीय गोखलेकी गत पुण्य-तिथिके उपलक्षमें उनके भाषणो तथा लेखोंके गुजराती संग्रहकी भूमिका।

होगे तो अपने सिद्धातके अनुसार आचरण करते अर्थात् भारतकी ही सेवा करनेमे अपनी आयु व्यतीत करोगे ।"

सेवाके सवधमें उनके आतरिक विचार हमे मालूम है। राष्ट्रीय सभाका कार्य सचालन, भाषण तथा लेख द्वारा जनताको देशकी सच्ची स्थितिका ज्ञान कराना, प्रत्येक भारतवासीको साक्षर वनानेका प्रयत्न कराना, ये सव काम सेवा ही है। पर किस उद्देश्य और किस प्रणालीसे यह सेवा की जाय? इस प्रश्नका वे जो उत्तर देते वह उनके इस वाक्यसे प्रकट होता है। अपनी सस्था ('भारत-सेवक-समिति') की नियमावली वनाते हुए उन्होने लिखा है . "सेवकोका कर्त्तव्य भारतके राजनैतिक जीवनको धार्मिक वनाना है।" इसी एक वाक्यमें सव-कुछ भरा हुआ है। उनका जीवन धार्मिक था। मेरा विवेक इस वातका साक्षी है कि उन्होने जो-जो काम किए, सव धर्मभाव हीकी प्रेरणासे किए। वीस साल पहले उनका कोई-कोई उद्गार या कथन नास्तिकोका-सा होता था। एक वार उन्होने कहा था—"क्या ही अच्छा होता यदि मुझमे भी वही श्रद्धा होती, जो रानडेमें थी।" पर उस समय भी उनके कार्योके मूलमें उनकी धर्म-वुद्धि अवश्य रहती थी। जिस पुरुषका आचरण साधुओके सदृश्य है, जिसकी वृत्ति निर्मल है, जो सत्यकी मूर्त्ति है, जो नम्र है, जिसने सर्वथा अहंकारका परित्याग कर दिया है, वह निस्सदेह धर्मात्मा है। गोखले इसी कोटिके महात्मा थे। यह वात मैं उनके लगभग २० वर्षोकी सगतिके अनुभवसे कह सकता हू।

१८९६ में मैने नेटालकी शर्त्तवदीकी मजदूरीपर भारतमें वाद-विवाद आरभ किया। उस समय कलकत्ता, ववई, पूना, मद्रास आदि स्थानोके नेताओसे मेरा पहले-पहल सवध हुआ। उस समय सव लोग जानते थे कि महात्मा गोखले रानडेके शिष्य है। फर्ग्यूसन कालेजको वे अपना जीवन भी अर्पण कर चुके थे, और मैं उस समय एक निरा अनुभव-हीन युवक था। मै पहले-पहल पूनेमे उनसे मिला। इस पहली ही भेंटमे हम

लोगोमे जितना घनिष्ट सबध हो गया उतना और किसी नेतासे नही हुआ । महात्मा गोखलेके विषयमें जो बातें मैंने सुनी थी वे सब प्रत्यक्ष देखनेमें आई । उनकी वह प्रेम-युक्त और हास्यमय मूर्त्ति मुझे कभी न भूलेगी । मुझे उस समय मालूम हुआ कि मानो वे साक्षात् धर्म की ही मूर्त्ति है । उस समय मुझे रानडेके भी दर्शन हुए थे । पर उनके हृदयमें मैं स्थान न पा सका । मै उनके विषयमे केवल इतना ही जान सका कि वे गोखलेके गुरु है । अवस्था और अनुभवमें वे मुझसे बहुत अधिक बडे थे, इस कारण अथवा और किसी कारणसे मैं रानडेको उतना न जान सका, जितना कि गोखलको मैंने जाना ।

१८९६ ई० के अवसरसे ही गोखलेका राजनैतिक जीवन मेरे लिए आदर्श-स्वरूप हुआ । उसी समयसे उन्होने राजनैतिक गुरुके नाते मेरे हृदयमें निवास किया । उन्होने सार्वजनिक सभा (पूना) की त्रैमासिक पुस्तकका सपादन किया । उन्होने फर्ग्यूसन-कालेजमें अध्यापन कार्य करके उसे उन्नत दशाको पहुचाया । उन्होने वेल्बी-कमीशनके सामने गवाही देकर अपनी वास्तविक योग्यताका प्रमाण दिया, उनकी बुद्धिमत्ताकी छाप लार्ड कर्जनपर—उन लार्ड कर्जनपर जो अपने सामने किसीको कुछ न गिनते थे—बैठी और वे उनसे शकित रहने लगे ।

उन्होने बडे-बडे काम करके मातृभूमिकी कीर्तिको उज्ज्वल किया । पब्लिक-सर्विस-कमीशनका काम करते समय उन्होने अपने जीने-मरने तककी परवा न की । उनके इन तथा अन्य कार्योका दूसरे व्यक्तियोने उत्तम रीतिसे वर्णन किया है ।

जनरल बोथा तथा स्मट्ससे जब उन्होने दक्षिण अफ्रीकाकी राजधानी प्रिटोरियामें मुलाकात की थी उस समय इस मुलाकातके लिए तैयार होनेमें उन्होने जितना परिश्रम किया था वह मुझे इस जन्मभें नही भूल

सकता। मुलाकातके पहले दिन उन्होने मेरी और मि० कैलनवेककी परीक्षा ली। वे स्वय रातके तीन ही बजे जाग पडे और हम लोगोको भी उन्होने जगाया। उन्हे जो पुस्तकें दी गई थी उनको उन्होने अच्छी तरह पढ लिया था। अब हम लोगोसे जिरह करके वे इस बातका निश्चय करना चाहते थे कि उनकी तैयारी पूरी हुई या अभी उसमें कसर है। मैंने उनसे विनयपूर्वक कहा कि इतना परिश्रम अनावश्यक है। हम लोगोको तो कुछ मिले या न मिले, लडना ही होगा, पर अपने आरामके लिए मैं आपका बलिदान नही करना चाहता। पर जिस पुरुषने सर्वदा काममे लगे रहनेकी आदत ही बना रक्खी थी, वह मेरी बातोपर कब ध्यान देता। उनकी जिरहोका मैं क्या वर्णन करू। उनकी चिंताशीलताकी कितनी प्रशसा करू। इतने परिश्रमका एक ही परिणाम होना चाहिए था। मत्रि-मडलने वचन दिया कि आगामी बैठकमें सत्याग्रहियोकी आकाक्षाओको स्वीकार करनेवाला कानून पास किया जायगा और मजदूरोको ४५ रुपयोका जो कर देना पडता है वह माफ कर दिया जायगा।

पर इस वचनका पालन नही किया गया। तो क्या गोखले निश्चेष्ट हो बैठ रहे? एक क्षणके लिए भी नही। मेरा विश्वास है कि १९१३ई० में उक्त वचनको पूरा करानेके लिए उन्होने जो अविराम श्रम किया, उससे उनके जीवनके दस वर्ष अवश्य छीजे होगे। उनके डाक्टरकी भी यही राय है। उस वर्ष भारतमे जागृति उत्पन्न करने और द्रव्य एकत्र करनेके लिए उन्होने जितने कष्ट सहे, उनका अनुमान कठिन है। यह महात्मा गोखलेका ही प्रताप था कि दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नपर भारतवर्ष हिल उठा। लार्ड हार्डिजने मद्रासमें इतिहासमें यादगार होने योग्य जो भाषण दिया वह भी उन्हीका प्रताप था। उनसे घनिष्ट परिचय रखने-वालोका कहना है कि दक्षिण अफ्रीकाके मामलेकी चिंताने उन्हें चारपाईपर डाल दिया, फिर भी अततक उन्होने विश्राम करना स्वीकार न किया।

दक्षिण अफ्रीकासे आधीरातको आनेवाले पत्र-सरीखे लवे-चौडे तारोको उसी क्षण पढना, जवाव तैयार करना, लार्ड हार्डिजके नाम पर तार भेजना, समाचार-पत्रोमे प्रकाशित कराए जानेवाले लेखका मसविदा तैयार करना और इन कामोकी भीडमें खाने और सोने तककी याद न रहना, रात-दिन एक कर डालना, ऐसी अनन्य निस्स्वार्थ भक्ति वही करेगा जो धर्मात्मा हो।

हिंदू और मुसलमानके प्रश्नको भी वे धार्मिक दृष्टिसे ही देखते थे। एक वार अपनेको हिंदू कहनेवाला एक साधु उनके पास आया और कहने लगा कि मुसलमान नीच है और हिंदू उच्च। महात्मा गोखलेको अपने जालमें फसते न देख उसने उन्हें दोप देते हुए कहा कि तुममें हिंदुत्वका तनिक भी अभिमान नही। महात्मा गोखलेने भवें चढाकर हृदय-भेदी स्वरमें उत्तर दिया—"यदि तुम जैसा कहते हो वैसा करने हीमें हिंदुत्व है तो मैं हिंदू नही। तुम अपना रास्ता पकडो।"

महात्मा गोखलेमें निर्भयताका गुण वहुत अधिक था। धर्मनिष्ठामें इस गुणका स्थान प्राय सर्वोच्च है। लेफ्टिनेंट रैंडकी हत्याके पश्चात् पूनामें हलचल मच गई थी। गोखले उस समय इग्लैंडमें थे। पूनावालोकी तरफसे वहा उन्होने जो व्याख्यान दिए वे सारे जगतमें प्रसिद्ध हैं। उनमें वे कुछ ऐसी वाते कह गए थे, जिनका पीछे वे सवूत न दे सकते थे। थोडे ही दिनो वाद वे भारत लौटे। अपने भाषणोमें उन्होने अग्रेज सिपाहियोपर जो इलजाम लगाया था उसके लिए उन्होने माफी माग ली। इस माफी मागनेके कारण यहाके वहुतसे लोग उनसे नाराज भी हो गए। महात्माको कितने ही लोगोने सार्वजनिक कामोसे अलग हो जानेकी सलाह दी। कितने ही नासमझोने उनपर भीरुताका आरोप करनेमें भी आगापीछा न किया। इन सवका उन्होने अत्यत गभीर और मधुर भाषामें यही उत्तर दिया—"देश-सेवाका कार्य मैने किसीकी आज्ञासे अगीकार नही किया है और किसीकी आज्ञासे

उसे मै छोड भी नही सकता। अपना कर्त्तव्य करते हुए यदि मैं लोकपक्षके साथ रहनेके योग्य समझा जाऊ तो अच्छा ही है, पर यदि मेरे भाग्य वैसे न हो तो भी मैं उसे अच्छा ही समझूगा।" काम करना उन्होने अपना धर्म माना था। जहातक मेरा अनुभव है, उन्होने कभी स्वार्थ-दृष्टिसे इस वातका विचार नही किया कि मेरे कार्योंका जनतापर क्या प्रभाव पडेगा। मेरा विश्वास है कि उनमें वह शक्ति थी जिससे यदि देशके लिए उन्हे फासी पर चढाना होता तो भी वे अविचलित चित्तसे हँसते हुए फासी पर चढ जाते। मै जानता हू कि अनेक वार उन्हे जिन अवस्थाओ में रहना पडा है उनमे रहनेकी अपेक्षा फासीपर चढना कही सहज था। ऐसी विकट परिस्थितियोका उन्हें अनेक वार सामना करना पडा, पर उन्होने कभी पाव पीछे न हटाया।

इन सव वातोसे तात्पर्य यह निकलता है कि यदि इस महान् देशभक्तके चरित्रका कोई अश हमारे ग्रहण करने योग्य है तो वह उनका धर्म-भाव ही है। उसीका अनुकरण करना हमें उचित है। हम सव लोग वडी व्यवस्थापिका सभाके सदस्य नही हो सकते। हम यह भी नही देखते कि उसके सदस्य होनेसे देश-सेवा हो ही जाती है। हम सब लोग पब्लिक-सर्विस-कमीशनमें नही वैठ सकते। यह वात भी नही है कि उसमे के सव वैठनेवाले देशभक्त ही होते है। हम सव लोग उनकी वरावरीके विद्वान् नही हो सकते और विद्वानमात्रके देश-सेवक होनेका भी हमें अनुभव नही है। परतु निर्भयता, सत्य, धैर्य, नम्रता, न्यायशीलता, सरलता और अध्यवसाय आदि गुणोका विकास कर उन्हे देशके लिए अर्पण करना सवके लिए साध्य है, यही धर्मभाव है। राजनैतिक जीवनको धर्ममय करनेका यही अर्थ है। उक्त वचनके अनुसार आचरण करनेवालेको अपना पथ सदा ही सूझता रहेगा। महात्मा गोखलेकी सपत्तिका भी वह उत्तराधिकारी होगा। इस प्रकारकी निष्ठासे काम करनेवालेको और भी जिन-जिन विभूतियोकी आवश्यकता होगी वे सव प्राप्त होगी। यह ईश्वरका

वचन है और महात्मा गोखलेका चरित्र इसका ज्वलत प्रमाण है।*
('महात्मा गांधी'—रामचद्र वर्मा)

. . . .

मेरे पास एक गुमनाम पत्र आया है। उसमें मेरी प्रशसा करते हुए लेखकने लिखा है, "आपने जिस कामको उठाया है वह लोकमान्यको अतिशय प्रिय था। मालूम होता है, उनकी आत्मा आपमें विराजती है। आपको साहस नही छोडना चाहिए। काम करते जाइए, स्वराज्य आपका है। पर आपने अपनेको गोखलेका शिष्य किस तरह माना है? यह लिखकर आपने अपनी अप्रतिष्ठा की है।"

अच्छा हो यदि लेखक गुमनाम पत्र लिखनेकी बुरी आदत छोड दें। यदि हम लोग स्वराज्यके लिए वाकई तत्पर हैं तो हमें उचित ही है कि भीरुता त्यागकर साहसीकी भाति अपना मत प्रकट करें। चूकि पत्र सार्वजनिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण है इसलिए इसका उत्तर दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। मैं लोकमान्यका अनुयायी नही हू। उनके करोडो देशवासियोकी तरह मैं उनके दृढ साहस, असीम पाडित्य और अगाध देश-प्रेम की हृदयसे प्रशसा करता हू। सबसे अधिक आदर मैं उनके पवित्र और नि स्वार्थ जीवनकी करता हू। वर्तमान समाजके मनुष्योमें उन्होने जनताकी दृष्टि अपनी ओर सबसे अधिक आकृष्ट की है। उन्होने हम लोगोके हृदयमें स्वराज्यका बीजारोपण किया। वर्तमान शासनकी बुराइयोको जितना अधिक लोकमान्यने समझा था उतना अधिक और किसीने नही, और मैं उनके सदेशको भारतकी झोपड़ियोतक उसी तरह पहुचाना चाहता हू और फैलानेका यत्न कर रहा हू जिस तरह कि उनका अच्छे-से-अच्छा शागिर्द। पर मेरे और उनके तरीकेमें भेद है। यही कारण है कि अभीतक

---

* बबईकी 'भगिनी-समाज' नामक संस्थासे स्त्रियोके लिए प्रकाशित एक सामयिक पुस्तिका से।

चद महाराष्ट्र-नेता मेरे साथ एकमत नही हो सके है। पर मेरा यह भी दृढ मत है कि लोकमान्यको मेरे तरीकेपर अविश्वास नही था। मेरे ऊपर उनका दृढ विश्वास था। अपनी मृत्युके कोई दस दिन पहले अपने अनेक मित्रोके सामने उन्होने कहा था कि आपका तरीका सबसे अच्छा है, यदि जनताको समझाकर आप अपने साथ कर सके। लेकिन उन्हें इस बातका सदेह था कि जनता मेरे तरीकेको समझ सकेगी। पर मै दूसरा तरीका जानता ही नही। मै यही चाहता हू कि परीक्षाके समय देश अपनी योग्यता दिखलावे कि उसने अहिसात्मक असहयोगके तत्वको समझ लिया है। मै अपनी अन्य अयोग्यताओको भी जानता हू। मै पाडित्यका दावा नही करता। मुझमें उनके समान सगठन-शक्ति भी नही है। मेरे कार्य-सचालनके लिए शागिर्द भी नही है और साथ ही बीस वर्षतक विदेशोमें रहनेके कारण भारतका मुझे अनुभव भी उतना नही है जितना लोकमान्यको था। हम लोगोमें दो बातोमें समता थी देशप्रेम तथा स्वराज्य। यह दोनोके हृदयमे एक भावसे विद्यमान थे। इसलिए मै इस गुमनाम पत्रके लेखकको बतला देना चाहता हू कि लोकमान्यकी स्मृतिके लिए मेरे हृदयमें किसीसे कम आदर या मान नही है और स्वराज्यके प्रतिपादनमें मै उनके उत्तम-से-उत्तम शिष्यके साथ आगे बढता रहूगा। मै जानता हू कि उनकी सबसे सच्ची उपासना यही है कि भारतको जल्दी-से-जल्दी स्वराज्य मिल जाय। केवलमात्र इसीसे उनकी आत्माको शाति मिल सकती है।

शिष्य होना परम पवित्र, पर व्यक्तिगत भाव है। मैने १८८८ ई० में दादाभाईके चरणोमें अपनेको समर्पित किया, पर मेरे आदर्शसे वे बहुत दूर थे। मै उनके पुत्रके स्थानपर हो सकता था, उनका शागिर्द नही हो सकता था। शिष्यका दर्जा पुत्रसे ऊचा है। शिष्य, पुत्र रूपसे, दूसरा जन्म ग्रहण करता है। शिष्य होना अपनी स्वकीय प्रेरणासे समर्पित करना है। १८९६ ई० में दक्षिण अफ्रीकाके सबधमे भारतके सभी प्रधान नेताओसे मिला। जस्टिस रानडेसे मुझे भय लगता था। उनके सामने मुझे बयान

करनेका भी साहस नही होता था। वदरुद्दीन तैयवजी पिताकी तरह प्रतीत हुए। उन्होने मुझे सलाह दी कि फिरोजशाह मेहता और रानडेके परामर्शसे काम करो। सर फिरोजशाह तो हमारे सरक्षक वन गए। इसलिए उनकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य थी। जो कुछ वे कहते, मै चुपचाप स्वीकार करता। उन्होने मुझसे कहा, "२६ सितवरको सार्वजनिक सभामे तुम्हे भाषण देना होगा।" मैने सहर्ष स्वीकार कर लिया। २५ सितवरको मुझे उनसे मिलना था। मै उनके पास गया। उन्होने मुझसे पूछा, "क्या तुमने अपना भाषण लिखकर तैयार कर डाला है ?" मैने उत्तर दिया, "जी, नही।"

उन्होने कहा, "इस तरह काम नही चलेगा। क्या आज रातभरमें लिखकर तैयार कर सकते हो ?" इतना कहकर उन्होने अपने मुशीसे कहा, "तुम मिस्टर गाधीके साथ जाओ और व्याख्यान लिखवाकर ले आओ और इसे तुरत छपवा डालो और फौरन एक प्रति मेरे पास भेज दो।" इतना कहनेके वाद उन्होने मुझसे कहा, "लवा-चौडा भाषण मत लिखना। ववईके नागरिक देरतक नही ठहर सकते।" मैने चुपचाप स्वीकार कर लिया।

ववईके उस शेरने मुझे आज्ञापालनका मर्म सिखाया। उन्होने मुझे अपना शागिर्द नही वनाया। उन्होने आजमाइश भी नही की।

वहासे मै पूना गया। मै एकदम अजनवी था। जिनके यहा मै टिका था वे मुझे पहले-पहल लोकमान्य तिलकके पास ले गए। जिस समय मै उनसे मिला, वे अपने साथियोसे घिरे वैठे थे। उन्होने मेरी वातें सुनी और कहा, "आपका भाषण सार्वजनिक सभामें होना जरूरी है। पर आप जानते है कि यहा दलवदी है। इससे ऐसा सभापति चाहिए जो किसी दल-विशेषका न हो। यदि इसके लिए आप डाक्टर भाडारकर से मिलें तो उत्तम हो।" मैने उनकी सलाह स्वीकार की और लौट आया। सिवा इसके कि स्नेहमय मिलापके भावका प्रदर्शन करके उन्होने मेरी घवराहट

दूर की, नही तो लोकमान्यका उस समय मुझपर कोई अच्छा प्रभाव नही पडा । वहासे मै श्रीयुत गोखलेके पास गया और तब डाक्टर भाडारकरके पास गया । डाक्टर भाडारकरने मेरा उसी तरह् स्वागत किया, जिस तरह् गुरु शिष्यका करता है ।

मिलते ही उन्होने मुझसे कहा, "आप बड़े उत्साही और तत्पर कार्य-कर्त्ता प्रतीत होते है, नही तो इतनी गर्मीमें मुझसे कोई भी मिलने नही आता। मैने सार्वजनिक सभाओमें इधर जाना छोड दिया है । पर आपने जिन दयनीय शब्दोमें अफ्रीकाकी दशाका वर्णन किया है, उससे मुझे लाचार होकर यह पद स्वीकार करना पडता है ।

उनके चेहरेसे विद्वत्ता टपक रही थी । मेरे हृदयमें श्रद्धाका ज्वार उमड आया, पर गुरुभक्तिका भाव फिर भी न भरा । वह हृदय-सिंहासन उस समय भी खाली रह गया । मुझे अनेक धीर-वीर मिले, पर राजाकी पदवी तक कोई न पहुच सका ।

पर जिस समय मै श्रीयुत गोखलेसे मिलने गया, बातें एकदम बदल गईं । मै नही कह सकता कि इसका क्या कारण था । मै उनके घरपर मिलने गया । यह मिलन ठीक उसी प्रकार था जैसा दो चिर विछोही मित्रो या माता और पुत्रका होता है । उनकी नम्र आकृति देखकर मेरा हृदय शात हुआ । दक्षिण अफ्रीका तथा मेरे सबधमे उन्होने जिस तरह पूछताछ की उससे मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया । उनसे विदा होते समय मैने अपने दिलमें कहा, "बस मेरे मनका आदमी मिल गया ।" उसी समयसे श्रीयुत गोखले मेरे हृदयसे अलग न हो सके । १६०१ में दूसरी बार दक्षिण अफ्रीकासे लौटा । इस बार मेरी घनिष्टता और भी प्रगाढ हो गई । उन्होने अपने हाथमे मेरा हाथ लेकर पूछना शुरू किया, "किस तरह रहते हो ? क्या कपडा पहनते हो ? भोजन कैसा होता है ?" मेरी माता भी इतनी तत्पर नही थीं । मेरे और उनके बीच कोई अतर नही था । यह चक्षु-राग था, अर्थात् प्रथम दर्शनसे ही हृदयमें प्रगाढ प्रेमका अकुर जम गया

था। १९१३ मे इसे कडी परीक्षामें उतरना पडा। उस समय मुझे मालूम हुआ कि उनमें सभी गुण वर्तमान है। चाहे इसके पहले उनमे वे सब गुण न रहे हो, पर इसकी मुझे कोई परवाह नही। मेरे लिए उतना ही काफी था कि मुझे उनमें कोई दोष नही दिखलाई दिए। राजनैतिक क्षेत्रमें वे मुझे सबसे उत्तम व्यक्ति प्रतीत हुए। पर इससे यह न समझना चाहिए कि उनमें और मुझमे मतभेद नही था। सामाजिक नियमोमें मेरा उनका १९०१ तक मतभेद रहा। पश्चिमी सभ्यताके प्रभावपर भी हम लोगोका मतभेद था। अहिंसापर मेरा जो अटल विश्वास था उससे भी उनका मतभेद था। पर इससे हम लोगोमें किसी तरहका अतर नही आ सका। ये सब बाते किसी तरहका मतभेद नही उपस्थित कर सकी। यदि आज वे जीते रहते तो क्या होता, यह कहना व्यर्थ है। मै जानता हू कि मै उनकी आज्ञाका पालन करता होता। मैने इसे इसलिए लिखा है कि उस गुमनाम पत्रमे शागिर्दी-सबधी बातोसे मुझे हार्दिक पीडा हुई। क्या मुझपर इस बातका दोषारोपण किया जा सकता है कि मैने इस सबधको स्वीकार करनेमें देर की ? इस समय जबकि लोग यह कह रहे है कि मै स्वर्गीय गोखलेके दलसे एकदम विरुद्ध हो गया हू तो मेरे लिए उस पवित्र सबधको व्यक्त कर देना नितात आवश्यक था। (य० इ०, पृष्ठ ९०५)

• • • • •

मेरे इस दक्षिणके प्रवासमें कई नवयुवकोने मुझे लिखा है कि अस्पृश्यता तथा अन्य कुरीतियोके, जिनसे हिंदू-समाज पीड़ित हो रहा है, ब्राह्मण ही दोषी है। ये सारी बुराइया उन्हीकी बदौलत विद्यमान है। स्व० गोखलेके १९ वें पुण्य-वर्षके दिन मै यह लेख लिख रहा हू। इसलिए स्वभावत ही मुझे उनका हरिजन-प्रेम याद आ रहा है। अस्पृश्यताके कलकसे सर्वथा मुक्त श्री गोखलेको छोडकर मुझे कोई अन्य व्यक्ति याद नही आता। वह मनुष्य-मनुष्यके बीचमें किसी प्रकारकी असमानताकी कल्पना भी नही कर सकते थे। उनकी दृष्टिमें तो मनुष्यमात्र समान थे।

एक बार दक्षिण अफ्रीकामें एक सज्जन उन्हें एक सांप्रदायिक सभामें लिवा ले जानेके लिए उनके पास आए, पर उन्होंने इन्कार कर दिया। तब उनके हिंदू-धर्मके प्रति अपील की गई। इसपर वह विगड उठे। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और जरा गर्म पडकर उक्त सज्जनसे वोले, "अगर यही हिंदू-धर्म है तो मैं हिंदू नही हू।" लोग तो यह सुनकर आश्चर्य-चकित रह गये। किसी व्यक्ति या सप्रदायकी उच्चताकी कल्पनाको वह सहन नही कर सकते थे। विश्ववधुत्वकी भावना उन्होंने स्वय अपने जीवनमें चरितार्थ करके दिखा दी, इस बातको उनके साथी खूब जानते हैं। पारिया (अत्यज) कहे जानेवाले भाइयोसे वह खूब दिल खोलकर मिलते थे। यह बात उनमे नही थी कि वह किसी पर कृपा या अहसान कर रहे है। उनके हृदयमें तो केवल एक सेवाका ही आदर्श था। उनका विश्वास था कि सार्वजनिक आदमी जनताके नेता नही, बल्कि सेवक है। उनकी दृष्टिमे सबसे वडा सेवक ही सबसे वडा नेता था। और स्व० गोखले हर तरह एक सच्चे जन्मना ब्राह्मण थे। वह जन्म-जात अध्यापक भी थे। उनसे जब कोई 'प्रोफेसर' कहता तो वडे प्रसन्न होते थे। विनम्रता-की तो वह मूर्ति थे। राष्ट्रको उन्होंने अपना सर्वस्व दे दिया था। चाहते तो वह मालामाल हो जाते, लेकिन उन्होंने तो स्वेच्छासे गरीबीका ही वाना पसद किया। गोखले जैसे जन-सेवक पर क्या इन ब्राह्मण-निदकों-को गर्व नही होगा? और यह बात नही कि ऐसे ब्राह्मण एक गोखले ही थे। मनुष्य-मनुष्यके बीचमें समानताको माननेवाले ऐसे ब्राह्मणोकी एक खासी लवी सूची वनाई जा सकती है। ब्राह्मणमात्रको दोषी ठहरानेका तो यह अर्थ हुआ कि जो ब्राह्मण आज खास तौरसे स्वय निस्स्वार्थ लोक-सेवा करनेको तैयार है, उनकी उस सेवाके मधुर फलको हम खुद अस्वी-कार कर रहे हैं। उन लोगोको किसीके प्रशसा-पत्र की जरूरत नही है। उनकी सेवा ही उनका पुरस्कार है। गोखलेने एक महान् अवसरपर लिखा था कि 'जो सेवा किसी व्यक्तिके कहनेसे हाथमें नही ली जाती, वह

किसी दूसरेकी आज्ञासे त्यागी भी नही जा सकती। इसलिए सबसे निरापद नियम तो यह है कि मनुष्यको हम उसके वर्तमान रूपमें ही ग्रहण करें, फिर चाहे जिस कुलमें वह पैदा हुआ हो और उसकी जाति या उसका रग चाहे जो हो। अस्पृश्यता-निवारणके इस आदोलनमे हमें किसीकी सेवाकी चाहे वह कितनी ही छोटी हो, अवगणना नही करनी चाहिए, जहातक कि उसमे सेवाकी भावना है, न कि उद्धार या कृपा की। (ह० से० ९ ३ ३४)

. . .

(सरोजिनी नायडूकी बात करते-करते गोखलेकी बात बताने लगे। गोखलेका उनके बारेमें मत बताने लगे। कहने लगे,)

"मै तुझसे बहुत सी बातें कर लेता हू जो किसीसे नही करता। करनेकी है भी नही। ऐसे ही गोखले मेरे साथ सब बाते कर लिया करते थे। उनके मित्र तो बहुत थे, मगर ऐसा कोई नही था कि जिसके सामने निसकोच अपने मनकी सारी बातें वे कह सकें। मुझे उन्होने विश्वास-पात्र समझा और एक-एक आदमीका पृथक्करण करके बता दिया।" (का० क०, २४ ८ ४२)

: ५७ :

घोषाल

काग्रेसके अधिवेशनको एक-दो दिनकी देर थी। मैंने निश्चय किया था कि काग्रेसके दफ्तरमें यदि मेरी सेवा स्वीकार हो तो कुछ सेवा करके अनुभव प्राप्त करू।

जिस दिन हम आए उसी दिन नहा-धोकर काग्रेसके दफ्तरमें गया।

श्रीभूपेन्द्रनाथ वसु और श्रीघोषाल मत्री थे। भूपेनवाबूके पास पहुचकर कोई काम मागा। उन्होने मेरी ओर देखकर कहा, "मेरे पास तो कोई काम नही है, पर शायद मि० घोषाल तुमको कुछ वतावेंगे। उनसे मिलो।"

मै घोषालवाबूके पास गया। उन्होने मुझे नीचेसे ऊपर तक देखा। कुछ मुस्कराए और बोले, "मेरे पास कारकुनका काम है। करोगे?"

मैने उत्तर दिया, "जरूर करूगा। अपने वस भर सवकुछ करनेके लिए मै आपके पास आया हू।"

"नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसीको कहते है।"

कुछ स्वय-सेवक उनके पास खडे थे। उनकी ओर मुखातिव होकर कहा, "देखते हो, इस नवयुवकने क्या कहा?"

फिर मेरी ओर देखकर कहा, "तो लो, यह चिट्ठियोका ढेर, और यह मेरे सामने पडी है कुरसी। उसे ले लो। देखते हो न, सैकडो आदमी मुझसे मिलने आया करते है। अव मै उनसे मिलू या जो लोग फालतू चिट्ठिया लिखा करते है उन्हें उत्तर दू? मेरे पास ऐसे कारकुन नही कि जिनसे मै यह काम करा सकू। इन चिट्ठियोमे वहुतेरी तो फिजूल होगी, पर तुम सवको पढ जाना। जिनकी पहुच लिखना जरूरी हो उनकी पहुच लिख देना और जिनके उत्तरके लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना।"

उनके इस विश्वाससे मुझे वडी खुशी हुई।

श्रीघोषाल मुझे पहचानते न थे। नाम-ठाम तो मेरा उन्होने वादको जाना। चिट्ठियोके जवाव आदिका काम आसान था। सारे ढेरको मैने तुरत निपटा दिया। घोषालवाबू खुश हुए। उन्हे वात करनेकी आदत वहुत थी। मै देखता था कि वह वातोमें वहुत समय लगाया करते थे। मेरा इतिहास जाननेके वाद तो कारकूनका काम देनेमे उन्हे जरा शर्म मालूम हुई, पर मैने उन्हे निश्चित कर दिया।

"कहा मैं और कहा आप ! आप कांग्रेसके पुराने सेवक, मेरे नजदीक तो आप मेरे बुजुर्ग हैं। मैं ठहरा अनुभवहीन नवयुवक ! यह काम सौंपकर मुझपर तो आपने अहसान ही किया है, क्योंकि मुझे आगे चलकर कांग्रेसमें काम करना है। उसके काम-काजको समझनेका अलभ्य अवसर आपने मुझे दिया है।"

"सच पूछो तो यही सच्ची मनोवृत्ति है। परंतु आजकलके नवयुवक ऐसा नहीं मानते। पर मैं तो कांग्रेसको उसके जन्मसे जानता हूं। उसकी स्थापना करनेमें मि० ह्यूमके साथ मेरा भी हाथ था।" घोपालबाबू बोले।

हम दोनोंमें नाना संबंध हो गया। दोपहरके खानेके समय वह मुझे साथ रखते। घोपालबाबूके बटन भी 'बेरा' लगाता। यह देखकर 'बेरा' का काम खुद मैंने लिया। मुझे वह अच्छा लगता। बड़े-बूढोंकी ओर मेरा बड़ा आदर रहता था। जब वह मेरे मनोभावोंसे परिचित हो गए तब अपना निजी सेवाका सारा काम मुझे करने देते थे। बटन लगवाते हुए मुह पिचकारकर मुझसे कहते, "देखो न, कांग्रेसके सेवकको बटन लगाने तककी फुरसत नहीं मिलती, क्योंकि उस समय भी वे काममें लगे रहते हैं।" इस भोलेपनपर मुझे मनमें हंसी तो आई, परंतु ऐसी सेवाके लिए मनमें अरुचि बिलकुल न हुई। उनसे जो लाभ मुझे हुआ उसकी कीमत नहीं आकी जा सकती। (आ०, १९२७)

: ५८ :

चक्रैया

वह (चक्रैया) सेवाग्रामका आश्रमवासी था। नई तालीमके तरीकेपर सीखा था। बड़ा परिश्रमी और दस्तकार था। झूठ, फरेब, क्रोध-जैसे दोष

उसमें नही थे। दैववश उसके दिमागमें कुछ रोग पैदा हो गया। खुद निसर्गोपचारमें ही विश्वास करता था, पर दोस्तोने और डाक्टरोंने उसका आपरेशन करनेका आग्रह किया। इस रोगसे उसकी आखोका तेज जाता रहा था। फिर भी उसने आपरेशन-मेजपर जानेसे पहले मुझे बडी कोशिश-से पत्र लिखा था कि प्राकृतिक चिकित्सा मुझे प्रिय है, पर आपरेशनका प्रयोग करानेके लिए भी मै तैयार हू और मौत आएगी तो राम-नाम लेता हुआ मरूगा। आखिर बबईके अस्पतालमे आपरेशन किया गया और आपरेशन-मेजपर ही उसके प्राण छूट गए।

उसके जानेपर रोना आता है, पर मैं रो नही सकता, क्योकि मैं रोऊ तो किसके लिए रोऊ और किसके लिए न रोऊ? भारतमाताको अगर बच्चे चाहिए तो बकौल तुलसीदासजी, ऐसे ही चाहिए, जो या तो दाता हो, या शूर। चकैया दाता था, क्योकि वह नि स्वार्थ सेवक और परम सतोषी था और शूर भी था, क्योकि उसने अपने हाथसे मृत्युको अपना लिया। वह हरिजन था, पर उसके दिलमे हरिजन-सवर्ण, हिंदू-मुसलमान-जैसे भेद न थे। वह सबको इसान मानता था और स्वय सच्चा इसान था। (प्रा० प्र०, ३१ ५ ४७)

: ५९ :

विन्स्टन चर्चिल

मेरे पास एक बुलद चीज है और वह है लोकमत। लोकमतमें बडी प्रचड शक्ति है। अभी हमारे यहा इस शब्दका अर्थ पूरे जोरसे प्रकट नही हुआ है, पर अग्रेजीमें उस शब्दका अर्थ बडा जोरदार है। अग्रेजीमें इसे 'पब्लिक ओपिनियन' कहते है और उसके सामने बादशाह भी कुछ

नही कर सकता। चर्चिल जो इतना वडा वहादुर है और जो ऊचे खानदान-का, वडा भारी वक्ता, वहुत ही विद्वान—मेरे जैसा अनजान विलकुल नही है—यह सवकुछ होते हुए भी अपनी गद्दी न सभाल सका। इसका मतलव यह है कि वहाका लोकमत वहुत जाग्रत है। इसलिए उसके सामने किसीकी नही चल सकती। (प्रा० प्र०, १० ६ ४७)

•

आज सुवहके अखवारोमे रायटरद्वारा तारसे भेजा हुआ मि० चर्चिलके भाषणका जो सार छपा है, उसे मै हिंदुस्तानीमें आपको समझाता हू। वह सार इस तरह है

"आज रातको यहा अपने एक भाषणमे मि० चर्चिलने कहा, 'हिंदुस्तानमें भयकर खूरेजी चल रही है, उससे मुझे कोई अचरज नही होता। अभी तो इन वेरहमीभरी हत्याओ और भयकर जुल्मोकी शुरूआत ही है। यह राक्षसी खूरेजी वे जातिया कर रही है, ये जुल्म एक-दूसरी पर वे जातिया ढा रही है, जिनमें ऊची-से-ऊची सस्कृति और सभ्यताको जन्म देनेकी शक्ति है और जो ब्रिटिश ताज और ब्रिटिश पार्लामेंटके रवादार और गैर-तरफदार शासनमें पीढ़ियोतक साथ-साथ पूरी शातिसे रही है। मुझे डर है कि दुनियाका जो हिस्सा पिछले ६० या ७० वरससे सवसे ज्यादा शात रहा है, उसकी आवादी भविष्यमें सव जगह वहुत ज्यादा घटनेवाली है, और आवादीके घटावके साथ ही उस विशाल देशमें सभ्यताका जो पतन होगा, वह एशियाकी सवसे वड़ी निराशापूर्ण और दु खभरी वात होगी।"

आप सव जानते है कि मि० चर्चिल खुद एक वडे आदमी है। वे इग्लैंडके ऊचे कुलमें पैदा हुए है। मार्लवरो-परिवार इग्लैंडके इतिहास-मे मशहूर है। दूसरे विश्व-युद्धके शुरू होनेपर जव ग्रेट ब्रिटेन खतरेमें था तव मि० चर्चिलने उसकी हुकूमतकी वागडोर सभाली थी। वेशक उन्होंने उस समयके ब्रिटिश साम्राज्यको खतरेसे वचा लिया। यह दलील

गलत होगी कि अमेरिका या दूसरे मित्र-राष्ट्रोंकी मदद के बिना ग्रेट ब्रिटेन लडाई नही जीत सकता था। मि० चर्चिलकी तेज सियासी बुद्धिके सिवा मित्र-राष्ट्रोको एक साथ कौन मिला सकता था ? मि० चर्चिलने जिस महान् राष्ट्रकी लडाईके दिनोमे इतनी शानसे नुमाइदगी की, उसने उनकी सेवाओकी कदर की। लेकिन लडाई जीत लेनेके बाद उस राष्ट्रने ब्रिटिश द्वीपोको, जिन्होने लडाईमें जन-धनका भारी नुकसान उठाया था, नया जीवन देनेके लिए चर्चिलकी सरकारकी जगह मजदूर-सरकारको तरजीह देनेमे कोई हिचकिचाहट नही दिखाई। अग्रेजोने समयको पहचान कर अपनी इच्छासे साम्राज्यको तोड देने और उसकी जगह बाहरसे न दिखाई देनेवाला दिलोका ज्यादा मशहूर साम्राज्य कायम करनेका फैसला कर लिया। हिंदुस्तान दो हिस्सोमे बट गया है, फिर भी दोनो हिस्सोने अपनी मरजीसे ब्रिटिश कामनवेल्थके सदस्य बननेका ऐलान किया है। हिंदुस्तानको आजाद करनेका गौरव-भरा कदम पूरे ब्रिटिश राष्ट्रकी सारी पार्टियोने उठाया था। इस कामके करनेमें मि० चर्चिल और उनकी पार्टीके लोग शरीक थे। भविष्य अग्रेजोद्वारा उठाए गए इस कदमको सही साबित करेगा या नही, यह अलग बात है। और इसका मेरी इस बातसे कोई ताल्लुक नही है कि चूकि मि० चर्चिल सत्ताके फेरबदलके काममें शरीक रहे है, इसलिए उनसे उम्मीद की जाती है कि वे ऐसी कोई बात नही कहे या करे, जिससे इस कामकी कीमत कम हो। यकीनन आधुनिक इतिहासमे तो ऐसी कोई मिसाल नही मिलती, जिसकी अग्रेजोके सत्ता छोडनेके कामसे तुलना की जा सके। मुझे प्रियदर्शी अशोकके त्यागकी बात याद आती है। मगर अशोक बेमिसाल है और साथ ही वे आधुनिक इतिहासके व्यक्ति नही है। इसलिए जब मैंने रायटरद्वारा प्रकाशित किया हुआ मि० चर्चिल-के भाषणका सार पढा तो मुझे दु ख हुआ। मैं मान लेता हू कि खबरें देनेवाली इस मशहूर सस्थाने मि० चर्चिलके भाषणको गलत तरीकेसे बयान नही किया होगा। अपने इस भाषणसे मि० चर्चिलने उस देशको

हानि पहुचाई है, जिसके वे एक बहुत बडे सेवक है। अगर वे यह जानते थे कि अंग्रेजी हुकूमतके जुएसे आजाद होनेके बाद हिंदुस्तानकी यह दुर्गति होगी तो क्या उन्होने एक मिनटके लिए भी यह सोचनेकी तकलीफ उठाई कि उसका सारा दोष साम्राज्य बनानेवालोके सिरपर है, उन 'जातियो' पर नही जिनमें चर्चिल साहबकी रायमे 'ऊची-से-ऊची स्फूर्तिको जन्म देनेकी ताकत है।' मेरी रायमे मि० चर्चिलने अपने भाषणमे सारे हिंदुस्तानको एक साथ समेट लेनेमें बेहद जल्दबाजी की है। हिंदुस्तानमे करोडोकी तादादमे लोग रहते है। उनमेसे कुछ लाखने जगलीपन अख्तियार किया है, जिनकी कि कोई गिनती नही है। मै मि० चर्चिलको हिंदुस्तान आने और यहाकी हालतका खुद अध्ययन करनेकी हिम्मतके साथ दावत देता हू। मगर वे पहलेसे ही किसी विषयमे निश्चित मत रखनेवाले एक पार्टीके आदमीकी हैसियतसे नही, बल्कि एक गैरतरफदार अंग्रेजकी तरह आए, जो अपने देशकी इज्जतका किसी पार्टीसे पहले खयाल रखता है और जो अंग्रेज सरकारको अपने इस काममें शानदार सफलता दिलानेका पूरा इरादा रखता है। ग्रेट ब्रिटेनके इस अनोखे कामकी जाच उसके परिणामोसे होगी। हिंदुस्तानके विभाजनने वेजाने उसके दो हिस्सोको आपसमे लडनेका न्योता दिया। दोनो हिस्सोको अलग-अलग स्वराज देना आजादीके इस दानपर धब्बे-जैसा मालूम होता है। यह कहनेसे कोई फायदा नही कि दोनोमेंसे कोई भी उपनिवेश ब्रिटिश कामनवेल्थसे अलग होनेके लिए आजाद है। ऐसा करनेसे कहना सरल है। मै इस पर और ज्यादा कुछ नही कहना चाहता। मेरा इतना कहना यह बतलानेके लिए काफी होगा कि मि० चर्चिलको इस विषयपर ज्यादा सावधानीसे बोलनेकी जरूरत क्यो थी। परिस्थितिकी खुद जाच करनेके पहले ही उन्होने अपने साथियोके कामकी निंदा की है।

आप लोगोमेसे बहुतोने मि० चर्चिलको ऐसा कहनेका मौका दिया है। अभी भी आपके लिए अपने तरीकोको सुधारने और मि० चर्चिलकी

भविष्यवाणीको झूठ साबित करनेके लिए काफी वक्त है। मै जानता हू कि मेरी बात आज कोई नही सुनता। अगर ऐसा नही होता और लोग उसी तरह मेरी बातोको मानते होते, जिस तरह आजादीकी चर्चा शुरू होनेसे पहले मानते थे तो मै जानता हू कि जिस जगलीपनका मि० चर्चिलने वडा रस लेते हुए वढा-चढाकर बयान किया है, वह कभी नही हो पाता और आप लोग अपनी माली और दूसरी घरेलू मुश्किलोको सुलझानेके ठीक रास्तेपर होते। (प्रा० प्र०, २८ ६ ४७)

: ६० :

सी० वाई० चिन्तामणि

(आज सुवह निर्णयपर बातें हुई। जयकर, सप्रू और चिंतामणिकी रायोपर चर्चा हुई। बापू कहने लगे)

यह आशा रख सकते हैं कि जयकर सप्रूसे यहा अलग हो जायगे।

बल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नहीं है।

बापू—आशा इसलिए रख सकते है कि विलायतमे भी इस मामलेमे इनके विचार अलग ही रहे थे। वैसे तो क्या पता ?

बल्लभभाई—चिंतामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढ़ाई।

बापू—क्योकि चितामणि हिंदुस्तानी है, जबकि सप्रूका मानस यूरोपियन है। चितामणि समझते है कि इस निर्णयमें ही बहुत कुछ विधान आ जाता है। सप्रू यह मानते है कि विधान मिल गया तो फिर इन बातोकी चिता ही नही (म० डा०, २१ ८ ३२)

: ६१ :

जगदीशन्

जगदीशन्‌को खुद भी कोढ हो गया था। वे मद्रासके रहनेवाले हैं। वे बडे सज्जन और विद्वान पुरुष हैं। वे श्रीनिवास शास्त्रीजीके भक्त थे। तो उन्होंने अपना जीवन इस काममे लगा दिया है। (प्रा० प्र०, २३ १० ४७)

जिनको कुष्ट रोग रहता है उनके बारेमे मैंने कल एक बात कही थी। जगदीशन्‌का भी नाम लिया था। वे बडे विद्वान् आदमी हैं। उनको यह रोग था। वह बिलकुल नाबूद तो नही हुआ है, लेकिन काफी अकुशमे आ गया है। वे इसमें काफी काम करते हैं, काफी दिलचस्पी लेते हैं, उनसे मिलते-जुलते हैं। मेहनती तो जबरदस्त हैं ही। वे मद्रासमे रहते हैं, वर्धामें नहीं, लेकिन कई दिनोंसे वर्धामे हैं। उन्होंने इस बारेमे मुझसे खतो-किताबत की थी। उनका पत्र मिले कई दिन हो गए। उसको आज मैंने पढ लिया। मैंने उसमे एक बात देखी है, जिसे मैं यहा साफ कर देना चाहता हू। वे कहते हैं कि जिसको कुष्ट रोग हो गया है उसको कोढी मत कहो। लोग उससे बुरा अर्थ निकाल लेते हैं। उसको वे अछूतसे भी बदतर मान लेते हैं। अछूत बदी थोडा करता है। उनको छूनेमे हम पतित हो जाते हैं, ऐसा हम मान लेते हैं। मैं कह चुका हू कि सच्चा कोढ तो मनकी मलिनता है। अपने भाइयोंसे घृणा करना, किसी जाति या वर्गके लोगोंको बुरा कहना, रोगी मनका चिह्न है और वह कोढसे भी बुरा है। ऐसे लोग उससे भी बदतर है। तो फिर ऐसा नाम क्यो लेना चाहिए? कुष्ट रोगसे पीडित कहो, लेकिन कोढी मत कहो। अगर बुरा कहनेसे बुरा बन जाय तो नही कहना चाहिए। गुलाबके पुष्पको आप चाहे किसी भी

नामसे कहे, लेकिन उसमे जो सुवास या सुगध भरी है उसको वह कभी नही छोडेगा, बुरे-से-बुरा नाम दो तो भी नही। यदि यह जगदीशन् ऐसा कहता है, ठीक है, पर जो छूतकी बीमारी है वह कोई एक तो है नही। किसीको खुजली हो जाती है, उसको जो स्पर्श करेगा उसको खुजली हो जायगी। सर्दी है, हैजा है, प्लेग है, इसी तरहसे कुष्ट रोग है। फिर उसके प्रति घृणा क्या करनी ? एक आदमी जब सचमुच कुष्ट रोगी बन जाता है तो लोग उसका तिरस्कार करते है। वे कहते है कि वह तो कमजात है। कमजात तो वे हुए जो तिरस्कार करते है। यह घृणा करनेका जो कोढ है वह निकल जाना चाहिए। (प्रा० प्र०, २४ १० ४७)

: ६२ :

हीरजी जयराम

चलालाके पडथा खादी-कार्यालयके श्री नागरदासभाई लिखते है

"श्री हीरजीभाई जयराम मिस्त्री, जिन्होने हमें थानामें श्री स्वामी आनंदके आश्रमवाली जमीन दी थी, गुजर गए है।

"जब चर्खा-संघने और श्री रामजीभाई हंसराजने काठियावाड़में खादीका काम बंद किया तो हीरजीभाईने ही उस कामको टिकाये रक्खा था। सन् १९३७के अतमें जब मै यहां आया तो हीरजीभाई करीब दस चर्खोंका काम संभाले हुए थे और उनके लिए वे पींजने भी चलवा रहे थे। उन्होने इस कामको इतना जिदा रक्खा, उसीका यह नतीजा है कि आज काठियावाड़में हर साल करीब एक लाख रुपयेकी व्यापारी खादी पैदा होती है। चलालाके और उसकी शाखाओंके कुल मिलाकर २५ केंद्रोंमें

इस समय काम हो रहा है। व्यापारी खादीके साथ-साथ स्वावलंबी खादीका काम भी बढ रहा है। जिस समय हमने अपने खादी-कामको फैलाया, हीरजीभाई अपने कताई-पिंजाईके कामको जारी रक्खे हुए थे। कपड़ेके लिहाजसे उनका सारा परिवार स्वावलम्बी था, अपने खेतसे वे अच्छा फूटा हुआ कपास खुद चुन लाते थे और अपने हाथों उसे ओटते थे। वे नियमसे रोज दो गुंडी सूत तो कातते ही थे।

"काठियावाड़के खादी और हरिजन कार्यको उन्होंने समय-समयपर सहायता पहुंचाई थी। हमें उनका पूरा-पूरा आधार था। मरनेसे पहले उन्होंने अपनी वसीयत लिखी है, जिसमें मोरवीमें खादी-कार्य शुरू करनेके लिए एक हजार रुपए की मजूरी दी है। मोरवीमें खादी-कार्य चलानेकी उनकी तीव्र इच्छा थी, परतु वह सफल न हो सकी। मिस्त्रीजीने दो साल पहले अपनी दूसरी पत्नीके देहांतके बाद तीसरी बार विवाह किया था। पहली पत्नीसे उनके तीन लडके हैं।

"वे नीचे लिखे सज्जनोको अपनी वसीयतका ट्रस्टी बना गये हैं:

१. श्री रामजीभाई हंसराज
२. श्री जगजीवनभाई मेहता
३. श्री छगनलाल जोशी
४. श्री नागरदास
५. एक स्थानीय व्यापारी

"वसीयतके दस्तावेजकी रजिस्ट्री हो चुकी है। सब मिलाकर स्थावर, जंगम और नकद मिल्कियत ५२ हजारकी है।"

मुझे तो भाई हीरजीके इस वसीयतनामेकी कोई खबर ही न थी। मुझे उनका चेहरा अच्छी तरह याद है। भाई हीरजीकी सारी सेवा मूक थी। थानेके नजदीकवाली जमीन भी उन्होंने सकुचाते-सकुचाते ही दी थी। उनकी सेवामें तनिक भी आडबर न था। वे साधारण स्थितिके मामूली पढे-लिखे आदमी थे, परतु उनकी सब सेवाएं ठोस थी। नाम या यशका उन्हें कभी लोभ न रहा, उनकी सेवा ही उनका इनाम और प्रमाण-पत्र था। ऐसी आत्मा सदा ही अमर होती है। (ह० से०, १२४४२)

: ६३ :

श्रीकृष्णदास जाजू

नए अध्यक्षके रूपमे सघको पूर्व अध्यक्षकी भाति ही एक सुपरीक्षित और धर्मबुद्धिवाला कार्यकर्ता मिल गया है। जाजूजी दर्शनशास्त्री नही हैं, वह लेखक भी नही हैं, किंतु वह अधिक व्यवहारदक्ष हैं। वह अखिल भारतीय चर्खा सघकी महाराष्ट्र शाखाके प्रधान व्यवस्थापक रहे हैं। उनके परिश्रमसे ही उसे आज इतनी सफलता मिली है। (ह० से०, २ ३ ४०)

: ६४ :

मोहम्मद अली जिन्ना

जिन्नासाहबने जिस मुक्ति-दिवसका ऐलान किया था उस दिन मुझे गुलबर्गाके मुसलमानोकी तरफसे यह तार मिला---"नजात-दिवसका मुबारकबाद, काइदे-आजम जिन्ना जिंदाबाद।" मैंने समझा कि यह सदेश मुझे चिढानेके उद्देश्यसे भेजा गया है। मगर भेजनेवाले क्या जानें कि इस तारका उद्देश्य पूरा नही हुआ। जब मुझे वह मिला तो मैं भी मन-ही-मन भेजनेवालोकी इस प्रार्थनामें शामिल होगया---"काइदे-आजम जिन्ना बहुत दिन जिए।" काइदे-आजम हमारे पुरानी साथी हैं। आज कुछ बातोमें हमारे-उनके विचार नही मिलते तो इससे क्या हुआ ? उनके लिए मेरे सद्भावमें कोई अतर नही आ सकता।

मगर काइदे-आजमकी तरफसे एक विशेष कारण उन्हे बधाई देनेके लिए और मिल गया है। ईदके दिन रेडियोपर उन्होने जो बढिया भाषण दिया था उसपर बधाईका तार भेजनेकी मुझे खुशी हासिल हुई थी।

अब वे और भी मुबारकबादके हकदार हो गए है, क्योंकि वे काग्रेसकी नीति और राजनीतिके विरोधी दलोके साथ करारनामे कर रहे है। इस तरह वे मुस्लिम-लीगको साम्प्रदायिक चक्करसे निकालकर उसे राष्ट्रीय स्वरूप दे रहे है। मै उनके इस कदमको पूरी तरह उचित समझता हू। मै देखता हू कि मद्रासकी जस्टिस पार्टी और डॉक्टर अबेडकरका दल जिन्नासाहबसे पहले ही मिल चुका है। अखबारोमें खबर है कि हिंदू महासभाके प्रधान श्रीसावरकर उनसे बहुत जल्द मिलनेवाले है। जिन्नासाहबने खुद जनताको सूचना दी है कि बहुत-से गैर-काग्रेसी हिंदुओने उनके साथ सहानुभूति प्रकट की है। ऐसा होना मै पूरी तरह लाभदायक समझता हू। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है कि हमारे देशमे दो ही बडे-बड़े दल रह जाय, एक काग्रेसियोका और दूसरा-गैरकाग्रेसियोका या काग्रेस-विरोधी शब्द ज्यादा पसद हो तो, काग्रेस-विरोधियोका। जिन्नासाहबकी कृपासे कम तादादवाली जाति शब्द का नया और अच्छा अर्थ हो रहा है। काग्रेसका बहुमत सवर्ण हिंदुओ, अवर्ण हिंदुओ, मुसलमानो, ईसाइयो, पारसियो और यहूदियोके मेलसे बना है। इसलिए यह एक ऐसा बहुमत है जिसमे एक खास तरहकी राय रखनेवाले सब वर्गोके लोग शामिल है। जो नया दल बनने जा रहा है वह एक खास तरहकी राय रखनेवाले तादादके लोगोका दल है। निर्वाचकोको पसद आनेपर इनका किसी भी दिन बहुमत हो सकता है। इस तरह दलोका एक होना ऐसी बात है जिसे हम सबको दिलसे चाहना चाहिए। अगर काइदे-आजम इस तरहका मेल साध सके तो मै ही नही, सारा हिंदुस्तान एक आवाजसे पुकारकर कहेगा—"काइदे-आजम जिन्ना जुग-जुग जिए"; क्योकि वे ऐसी स्थायी और सजीव एकता स्थापित कर देंगे, जिसके लिए मुझे विश्वास है कि सारा राष्ट्र तडप रहा है। (ह० से०, २० १ ४०)

: ६५ :

छोटेलाल जैन

सावरमती-सत्याग्रहाश्रमके निवासी और सवधी कुछ इस तरह विखरे पडे है कि उन्हें एक-दूसरेकी प्रवृत्तिका पता तक नही रहता। खास सवध जोडने या उसे यत्नपूर्वक रखनेकी प्रथा नही डाली गई। सवध केवल सेवा-सवधी रहा है। कहनेका यह आशय नही कि सव ऐसा ही करते है, किंतु मूक सेवामें स्व० मगनलाल गाधीके साथ वरावरी करने-वाले आश्रमवासी श्री छोटेलाल जैन का आत्मघात, इन शब्दोको लिखते हुए अदरसे मुझे काट रहा है। छोटेलालकी मूक सेवाका वर्णन भाषावद्ध नही हो सकता। ऐसा करना मेरी शक्तिसे वाहर है। छोटेलालका कोई परिचय देता तो वह भागते थे। उनकी मृत्युसे उनके विषयमें उनके सगे-सवधी भी जानना चाहेंगे। लेकिन आश्रममें आनेके वाद छोटेलालका कभी किसी दिन अपने सवधियोके पास जानेका या आश्रममें उनके रिश्ते-दारोके आनेका मुझे स्मरण नही आता। उनके नाम व पते-ठिकाने भी नही जानता तो भी उनके पास आश्रमकी खवर पहुचानेका तो मेरा कर्तव्य है ही। उनकी खातिर भी इस टिप्पणीका लिखना उचित है और छोटे-लालकी मृत्युसवधी इस टिप्पणीके साथ भला कौन ईर्ष्या करेगा ?

मेरे सौभाग्यसे मुझे कुछ ऐसे योग्य साथी मिल है कि उनके विना मै अपनेको अपग अनुभव करता हू। छोटेलाल मेरे ऐसे ही साथी थे। उनकी वुद्धि तीव्र थी। उन्हें कोई भी काम सौपते मुझे हिचकिचाहट नही होती थी। वे भाषाशास्त्री भी थे। राजपूताना-निवासी होनेसे उनकी मातृभाषा हिंदी थी। पर वह गुजराती, मराठी, वगाली, तमिल, सस्कृत और अग्रेजी भी जानते थे। नई भाषा या नया काम हाथमें लेनेकी उनकी

जैसी शक्ति मैने और किसीमें नही देखी। आश्रमके स्थापना-कालसे ही छोटेलालने उससे अपना सबध जोड लिया था।

रसोई बनाना, पाखाना साफ करना, कातना, बुनना, हिसाब-किताब रखना, अनुवाद करना, चिट्ठी-पत्री लिखना आदि सब कामोको वह स्वाभाविक रीतिसे करते और वे उन्हें शोभते थे। मगनलालके लिखे 'बुनाई-शास्त्र' में छोटेलालका हिस्सा मगनलालके जितना ही था, यह कहा जा सकता है। चाहे जैसे जोखमका काम उन्हें सौपा जाय उसे वह प्रयत्नपूर्वक करते और जबतक वह पूरा न हो जाय, उन्हें शाति नही मिलती थी। अविश्रात रीतिसे काम करते हुए भी छोटेलाल दूसरा काम लेनेको हमेशा तैयार रहते थे। उनके शब्दकोषमें 'थकान' के लिए स्थान नही था। सेवा करना और दूसरोसे सेवा-कार्य लेना यह उनका मत्र था। ग्राम-उद्योग-सघ स्थापित हुआ तो घानीका काम दाखिल करनेवाले छोटेलाल, धान दलनेवाले छोटेलाल और मधुमक्खिया पालने वाले भी छोटेलाल। जिस तरह छोटेलालके बगैर मै अपग जैसा हो गया हू ऐसी ही स्थिति आज उनकी मधुमक्खियोकी भी होगी, क्योकि यह नोट लिखते समय मुझे पता नही कि उनके इस परिवारकी अब इतनी सार-सभाल कौन रखेगा।

छोटेलाल मधुमक्खियोके पीछे जैसे दीवाने हो गए थे। उनकी शोधमें उन्हें हलके प्रकारके मियादी बुखार (टाइफाइड) ने पकड लिया। यह उनके प्राणोका गाहक निकला। मालूम होता है, उन्हें छ सात दिन-अपनी सेवा कराना भी असह्य लगा। अत ३१ अगस्त, मगलवारकी रात-को ग्यारह और दो बजेके बीचमें सबको सोता हुआ छोडकर वह मगन-वाडीके कुएमें कूद पडे। आज पहली तारीखको शामके चार बजे लाश हाथमे आई। मै सेगावमें बैठा रातके आठ बजे यह लिख रहा हू। छोटलालकी देहका इस समय वर्धामें अग्नि-दाह हो रहा होगा।

इस आत्मघातके लिए छोटेलालको दोष देनेकी मुझमें हिम्मत नही।

छोटेलाल तो वीर पुरुष थे। उनका नाम १६१५ के दिल्ली-षडयन्त्र-केस-मे आया था, पर उसमें वह बरी हो गए थे। किसी आफिसरको मार-कर खुद फासीके तख्तेपर चढनेका स्वप्न वह उन दिनो देखते थे। इतनेमें मेरे लेखोके पाशमें आ फसे। दक्षिण अफ्रीकाके मेरे जीवनसे उन्होने परिचय प्राप्त कर लिया था। अपनी तीव्र हिंसक बुद्धिको उन्होने बदल दिया और अहिंसाके पुजारी बन गए। जिस तरह साप केचुल उतार देता है उसी तरह उन्होने अपने हिंसक जीवनकी खोल उतारकर फेंक दी। इतना होते हुए भी वह अपने मनसे क्रोधको नही जीत सके। उन्हें इस बीमारीमें अपनी सेवा लेना असह्य मालूम दिया और गहरी पैठी हुई हिंसा-को खुद अपनी बलि दे दी। इसके सिवाय, दूसरा अर्थ मै इस आत्मघातका नही लगा सकता।

छोटेलाल मुझे अपना देनदार बनाकर ४५ वर्षकी उम्रमें चल बसे। उनसे मैं अनेक आशाए रखता था। उनकी अपूर्णता मैं सहन नही कर सकता था, इससे छोटेलालने मेरे वाग्बाण जितने सहन किए उतने तो शायद मैंने एक-दो को ही सहन कराये होगे। पर छोटेलालने उन्हें सदैव सहन किया। परतु ऐसे वचन सुनानेका मुझे क्या अधिकार था ? मुझे तो उन्हे हिंदू-मुसलमानकी लडाईमें, या हिंदूधर्ममें से अस्पृश्यता-रूपी कचरा निकाल बाहर करनेमें या गोमाताकी सेवामे होमकर उनका लहना चुकाना था। ऐसा करनेकी शक्ति रखनेवाले साथियोमे छोटेलाल एक ऊचा स्थान रखते थे। मेरे लिए तो ये सब स्वराजकी वेदिया हैं।

पर छोटेलालकी मृत्युका रोना रोकर अब क्या करू ? ऐसे अनेक मूक योद्धाओकी आवश्यकता होगी। रामराज-रूपी स्वराज लेना आसान नही। छोटेलालके जीवनके इस छोटे-से टुकडेका परिचय पाकर दूसरे मूक सेवक आगे आवे। (ह० से०, ११ ६ ३७)

: ६६ :

पुरुषोत्तमदास टंडन

एक भाईने मेरे पास इस आशयका एक बहुत सख्त पत्र भेजा है कि क्या तुम अब भी पागल ही रहोगे ? अब तो थोड़े दिनोमे इस दुनियासे चले जाओगे, तब भी कुछ सीखोगे नही ? यदि पुरुषोत्तमदास टंडनने यह कहा कि 'सबको तलवार लेनी चाहिए, सिपाही बनना चाहिए और अपना बचाव करना चाहिए' तो तुमको इस बातमें चोट क्यो लगती है ? तुम तो गीताके पढनेवाले हो ? तुम्हें तो इन द्वंद्वोंसे परे हो जाना चाहिए और बात-बातमें चोट लगा लेने या खुश होनेकी झंझट छोड देनी चाहिए। तुम उन कहानीवाले भोले साधु बाबा-जैसी बात करते हो जो पानीमे बहते हुए बिच्छूके डंक लगानेपर भी उसे हाथसे पकडकर बचानेकी कोशिश करता था। अगर तुमसे अहिंसाका गीत गाए बिना रहा नही जाता तो कम-से-कम जो दूसरे रास्तेसे जाते है उन्हें तो जाने दो ! उनके बीचमें रोडा क्यो बनते हो ?

अगर मैं स्थितप्रज्ञ रह सका तो अपनी एक सौ पच्चीस वर्षकी उम्रमें से एक भी वर्ष कम जिंदा नही रहूंगा। अगर हम सब स्थितप्रज्ञ बनें तो हममेंसे एक भी आदमीको १२५ वर्षसे जरा भी कम जीनेका कोई कारण नहीं है। वैसे भगवान चाहे तो भले मुझे आज ही उठा ले, पर अभी तुरत में चलनेवाला नहीं हू। मुझे अभी रहना है और काम करना है। पुरुषोत्तमदास टंडन मेरे पुराने साथी है। हम वर्षोंतक साथ-साथ काम करते आए है। मेरे जैसे ही ईश्वरके वे भक्त हैं। जब मैंने यह सुना कि वे ऐसी बात कर रहे है तब मुझे दुःख हुआ। मैंने कहा कि आज तीस बरससे भी अधिक समयसे जो हमने सीखा है और जिसकी हमने लगनसे साधना की है, वह क्या इस तरह गवा दिया जायगा ? बचावके लिए

तलवार पकडनेकी बात की जाती है, पर आजतक मुझे दुनियामे एक आदमी ऐसा नही मिला है, जिसने बचावसे आगे बढकर प्रहार न किया हो। बचावके पेटमे ही वह पडा है। अब रही मेरे दिलपर चोट लगनेकी बात। अगर मै पूरा स्थितप्रज्ञ बन गया होता तो मुझे चोट न लगती। अब भी चोट न लगे ऐसी कोशिश मै कर रहा हू। कल जहा था वहासे आज कुछ-न-कुछ आगे ही बढता हू। अगर ऐसा नही हो तो रोज-रोज गीता-मे से स्थितप्रज्ञके ये श्लोक बोलनेमे मै दभी ठहरता हू, पर ऐसा नही हो सकता कि इन श्लोकोके बोलने भरसे ही कोई एक ही दिनमें स्थितप्रज्ञ बन जाय। (प्रा० प्र०, १२ ६ ४७)

आज सवेरे जब मेरा मौन था तो श्री पुरुषोत्तमदास टडन आए। मैने आपको बताया था कि जब टडनजी ने कहा कि हरेक स्त्री-पुरुषको शस्त्रधारी बनना चाहिए और स्वरक्षा करनी चाहिए तो यह सुनकर मुझे कैसा बुरा लगा था। एक पत्र-लेखकने मुझसे पूछा था कि गीता पढते रहनेपर भी इस तरह आपको बुरा कैसे लग सकता है? उस पत्रसे यह भी पता चलता था कि टडनजी 'शठ प्रति शाठ्य' का सिद्धात मानते है। तब टडनजीसे मैने पूछा कि आप क्या मानते है? इसका खुलासा देते हुए टडनजीने बताया कि मै 'शठ प्रति शाठ्य' के सिद्धातको तो नही मानता हू, लेकिन स्वरक्षाके लिए शस्त्रधारी बनना जरूरी है, ऐसा मै मानता हू। गीताने भी यही सिखाया है।

तब मैने टडनजीसे कहा कि इतना तो आप उस भाईको लिख दीजिए कि आप 'शठ प्रति शाठ्य' के माननेवाले नही है ताकि वे भ्रममे न रहे। और स्वरक्षाके लिए हिसा करनेकी बात गीतामें कही है, यह मै नही मानता। मैने तो गीताका अलग ही अर्थ निकाला है। मेरी समझमे गीता ऐसा नही सिखाती है। गीतामें या दूसरे किसी सस्कृत ग्रथमे अगर ऐसी बात लिखी है तो मै उसे धर्मशास्त्र माननेको तैयार नही हू। महज

सस्कृतमे कुछ लिख देनेसे कोई वाक्य शास्त्र-वाक्य नही वन जाता ।

टडनजीने मुझसे कहा—'तुमने तो उन वदरोको मारनेके लिए भी लिखा था, जो वेहद पीडा पहुचाते है और खेती उजाड देते है ।' लेकिन मै तो किसी भी प्राणीको और यहा तक कि चीटीतकको भी मारना पसद नही करता । फिर भी खेती-वाडीका सवाल अलग है और मनुष्य-मनुष्यका अलग है ।

तव टडनजीने कहा कि 'शठ प्रति शाठ्य' यानी एक दातके वदलेमें दो दात निकालनेकी वात हम न करें और एक दातके वदलेमे एक दात तथा एक थप्पडके वदलेमें एक थप्पडकी वात भी नही करेंगे, परतु हाथमें शस्त्र नही लेगे, अपनी शक्ति नही दिखाएगे तो स्वरक्षा किस तरह होगी ?

इसके वारेमें मेरा यह जवाव है कि स्वरक्षा जरूर की जाय, पर मेरी स्वरक्षा कैसे होगी ? कोई मेरे पास आता है और कहता है कि वोल, राम-नाम लेता है या नही ? नही लेगा तो यह तलवार देख ! तव मै कहूगा, यद्यपि मै हरदम राम-नाम लेता हू, लेकिन तलवारके वलपर मै हरगिज न लूगा, चाहे मारा क्यो न जाऊ ? और इस तरह स्वरक्षाके लिए मै मरूगा । वैसे कलमा पढनेमें मेरा कोई धर्म जानेवाला नहीं है । क्या हो गया, अगर मै ठेठ अरवीमे वोलू कि अल्लाह एक है और उसका रसूल एक ही मुहम्मद पैगवर है । ऐसा वोलनेमें कोई पाप नही और इतने भरसे वे मुझे मुसलमान माननेको तैयार है तो मै अपने लिए फख्र-की वात समझूगा । लेकिन जव तलवारके जोरसे कोई कलमा पढवाने आवेगा तव कभी भी कलमा न पढूगा । अपनी जान देकर मै स्वरक्षा करूगा । इस वहादुरीको सिद्ध करनेके लिए मै जिंदा रहना चाहता हू । इसके अलावा और तरीकेसे मै जीना नही चाहता । (प्रा० प्र०, १६. ६ ४७)

: ६७ :

काउंट लियो टाल्स्टाय

टाल्स्टायके लेख तो इतने सरस और इतने सरल है कि चाहे जो धर्म-प्रेमी उन्हे पढकर उनसे लाभ उठा सकता है। उसकी पुस्तक पढकर साधारणत यह विश्वास अधिक होता है कि वह मनुष्य जैसा कहता था वैसा ही करता भी रहा होगा। ('मेरे जेलके अनुभव'—महात्मा गाधी)

. . . . .

सवाल—काउंट टाल्स्टायको आप किस दृष्टिसे देखते है ?

जवाब—मै उनको अत्यत आदरकी दृष्टिसे देखता हू। अपने जीवनकी कितनी ही बातोके लिए मै उनका ऋणी हू। (य० इ०, पृष्ठ २०६)

. . .

मेरी वर्त्तमान मानसिक दशा ऐसी नही है कि मै एक भी पर्व पुण्य-तिथि या एक भी उत्सव मनाने के योग्य रहा होऊ। कुछ दिनो पहले 'नव-जीवन' या 'यग इडिया' के किसी पाठकने मुझसे प्रश्न पूछा था, "आप श्राद्धके विषयमें लिखते हुए कह चुके है कि पुरखोका सच्चा श्राद्ध उनकी पुण्य-तिथिके दिवस उनके गुणोका स्मरण करने से और उन्हें अपने जीवन-में ओतप्रोत कर लेनेसे हो सकता है। इसीसे मै पूछता हू कि आप खुद अपने पुरखोकी श्राद्धतिथि कैसे मनाते है ?" पुरखोकी श्राद्धतिथि जब मै जवान था तब मनाया करता था। परतु मै अभी तुम्हे यह कहनेमें शर्माता नही हू कि मुझे अपने पूज्य पिताजीकी श्राद्धतिथिका स्मरण तक नही है। कई वर्ष व्यतीत हो चुके। एक भी श्राद्धतिथि मनानेकी मुझे याद नही है, यहा तक कि मेरी कठिन स्थिति या कहिए कि सुदर स्थिति है, अथवा जैसेकि कई एक मित्र मानते है, मोहकी स्थिति है, कि ऐसा मेरा

मतव्य है कि जिस कार्यको सिरपर लिया हो उसीमे चौवीस घटे लगे रहना, उसका मनन करना और जहा तक वन पडे उसे सुव्यवस्थित रूपसे करनेमें ही सवकुछ आ जाता है। उसीमें पुरुखोकी श्राद्धतिथिका मनाना भी आ जाता है। टाल्स्टाय-जैसोके उत्सव भी आ जाते है।... तीन महीने पहले एलमर माड एव टाल्स्टायका साहित्य इकट्ठा करने-वाले दूसरे सज्जनोके पत्र आए थे कि इस शताब्दीके अवसरपर मैं भी कुछ लिख भेजू और इस दिन की याद हिंदुस्तानमे दिलाऊ। एलमर माडके पत्रका साराग या सारा पत्र तुमने मेरे अखवारोमें देखा होगा। उसके वाद मै यह वात विलकुल भूल गया था। यह प्रसग मेरे लिए एक शुभ अवसर है।

तीन पुरुषोने मेरे जीवनपर वहुत ही वडा प्रभाव डाला है। उसमें पहला स्थान मैं राजचन्द्र कविको देता हू, दूसरा टाल्स्टायको और तीसरा रस्किनको। टाल्स्टाय और रस्किनके दरम्यान स्पर्धा खडी हो और दोनोके जीवनके विपयमें मै अधिक वाते जान लू तो नही जानता कि उस हालतमें प्रथम स्थान मैं किसे दूगा। परतु अभी तो दूसरा स्थान टाल्स्टायको देता हू। टाल्स्टायके जीवनके विपयमे वहुतेरोने जितना पढा होगा उतना मैने नही पढा है। ऐसा भी कह सकते है कि उनके लिखे हुए ग्रथोका वाचन भी मेरा वहुत कम है। उनकी पुस्तकोमेंसे जिस कितावका प्रभाव मुझपर वहुत अधिक पडा उसका नाम है 'Kingdom of Heaven is Within You.' उसका अर्थ यह है कि ईश्वरका राज्य तुम्हारे हृदयमें है। उसे वाहर खोजने जाओगे तो वह कही न मिलेगा। इसे मैने चालीस वर्ष पहले पढा था। उस वक्त मेरे विचार कई एक वातोमे शकाशील थे। कई मर्तवा मुझे नास्तिकताके विचार भी आते थे। विलायत जानेके समय तो मै हिंसक था, हिंसापर मेरी श्रद्धा थी और अहिंसापर अश्रद्धा। यह पुस्तक पढनेके वाद मेरी यह अश्रद्धा चली गई। फिर मैने उनके दूसरे कई एक ग्रथ पढे। उनमे से प्रत्येकका

क्या प्रभाव पडा सो मै नही कह सकता, परतु उनके समग्र जीवनका क्या प्रभाव पडा वह तो कह सकता हू ।

उनके जीवनमेसे मै अपने लिए दो बातें भारी समझता हू । वे जैसा कहते थे वैसा ही करनेवाले पुरुष थे । उनकी सादगी अद्भुत थी, बाह्य सादगी तो थी ही । वे अमीर-वर्गके मनुष्य थे । इस जगतके छप्पन भोग उन्होने भोगे थे । धन-दौलतके विषयमे मनुष्य जितनी इच्छा रख सकता है, उतना उन्हें मिला था । फिर भी उन्होने भरी जवानीमें अपना ध्येय बदला । दुनियाके विविध रग देखनेपर भी, उनके स्वाद चखनेपर भी, जब उन्हें प्रतीत हुआ कि इसमें कुछ नही है तो उससे मुह मोड लिया और अत तक अपने विचारोपर पक्के रहे । इसीसे मैने एक जगह लिखा है कि टाल्स्टाय इस युगकी सत्यकी मूर्त्ति थे । उन्होने सत्यको जैसा माना वैसा ही पालनेका उग्र प्रयत्न किया । सत्यको छिपाने या कमजोर करनेका प्रयत्न नही किया । लोगोको दुख होगा या अच्छा लगेगा कि नही, इसका विचार किए बिना ही उन्हे जिस माफिक जो वस्तु दिखाई दी उसी माफिक कह सुनाई । टाल्स्टाय अपने युगके लिए अहिंसाके बडे भारी प्रवर्तक थे । अहिंसाके विषयमे परिश्रमके लिए जितना साहित्य टाल्स्टायने लिखा है, जहा तक मै जानता हू, उतना हृदयस्पर्शी साहित्य दूसरे किसीने नही लिखा है । उससे भी आगे जाकर कहता हू कि अहिंसाका सूक्ष्म दर्शन जितना टाल्स्टायने किया था और उसका पालन करनेका जितना प्रयत्न टाल्स्टायने किया था, उतना प्रयत्न करनेवाला आज हिंदुस्तानमें कोई नही । ऐसे किसी आदमीको मै नही जानता ।

मेरे लिए यह दशा दुखदायक है, मुझे यह भाती नही है । हिंदुस्तान कर्मभूमि है । हिंदुस्तानमें ऋषि-मुनियोने अहिंसाके क्षेत्रमें बडी-से-बडी खोजें की है, परतु हम केवल बुजुर्गोकी ही प्राप्त की हुई पूजीपर नही निभ सकते । उसमें यदि वृद्धि न की जाय तो हम उसे खा जाते है ।

इस विषयमें न्यायमूर्त्ति रानडेने हमें सावधान कर दिया है। वेदादि साहित्यमेंसे या जैन साहित्यमेंसे हम वडी-वडी बातें चाहे जितनी करते रहें अथवा सिद्धातोके विषयमें चाहे जितने प्रमाण देतें रहें और दुनिया को आश्चर्य-मग्न करते रहें फिर भी दुनिया हमें सच्चा नही मान सकती। इसलिए रानडेने हमारा धर्म यह वताया है कि हम इस पूजीमें वृद्धि करते जाय। दूसरे धर्म-विचारकोने जो लिखा हो, उसके साथ मुका-बिला करें,ऐसा करनेमें कुछ नया मिल जाय या नया प्रकाश मिलना हो तो उसका तिरस्कार न करना चाहिए, किंतु हमने ऐसा नही किया। हमारे धर्माध्यक्षोने एक पक्षका ही विचार किया है। उनके पठन, कथन और वरतनमें समानता भी नही है। प्रजाको अच्छा लगे या नही, जिस समाज-में वे स्वयं काम करते थे उस समाजको भला लगे या वुरा, फिर भी टाल्स्टायके समान खरी-खरी सुना देनेवाले हमारे यहा नही मिलते। हमारे इस अहिंसा प्रधान देशकी ऐसी दयाजनक दशा है।

हमारी अहिंसाकी निंदा ही योग्य है। खटमल, मच्छर, विच्छू, पक्षी और पशुओको हर किसी तरहसे निभानेमें ही मानो हमारी अहिंसा पूर्ण हो जाती है। वे प्राणी कष्टमें तडपते हो तो उसकी हम परवा नही करते, दु खी होनेमें यदि स्वय हिस्सा देते हो तो उसकी भी हमे चिंता नही। परतु दु खी प्राणीको कोई प्राणमुक्त करे अथवा हम उसमें शरीक हो तो उसमे हम घोर पाप मानते हैं। ऐसा मैं लिख चुका हू कि यह अहिंसा नही है। टाल्स्टायका स्मरण कराते हुए फिर कहता हू कि अहिंसाका यह अर्थ नही है। अहिंसाके मानी है प्रेमका समुद्र, अहिंसाके मानी हैं वैरभावका सर्वथा त्याग। अहिंसामें दीनता, भीरुता न हो, डर-डरके भागना भी न हो। अहिंसामें दृढता, वीरता, निश्चलता होनी चाहिए।

यह अहिंसा हिंदुस्तानमें शिक्षित समाजमे दिखाई नही देती। उनके लिए टाल्स्टायका जीवन प्रेरक है। उन्होने जो वस्तु मान ली, उसका पालन करनेमें भारी प्रयत्न किया और उससे कभी डिगे तक नही। मैं

यह नही मानता कि उन्हें वह हरी छडी (सिद्धि) न मिली हो। 'नही मिली' यह तो उन्होने स्वय कहा है। ऐसा कहना उनको सुहाता था, परतु यह मै नही मानता कि उन्हे वह छडी न मिली हो, जैसा कि उनके टीकाकार लिखते है। मै यह मान सकता हू, यदि कोई कहे कि उन्होने सब तरहसे उस अहिंसाका पालन नही किया जिसका उन्हें दर्शन हुआ था। इस जगतमें ऐसा पुरुष कौन है कि जो अपने सिद्धातोपर पूरा अमल कर सका हो? **मेरा मानना है कि देह-धारीके लिए संपूर्ण अहिंसाका पालन अशक्य है।** जबतक शरीर है तबतक कुछ-न-कुछ तो अहभाव रहता ही है। जबतक अहभाव है, शरीरको भी तभीतक धारण करना है ही। इसलिए शरीरके साथ हिंसा भी रही हुई है। टाल्स्टायने स्वय कहा है कि जो अपनेको आदर्श तक पहुचा हुआ समझता है, उसे नष्टप्राय हो समझना चाहिए। बस यहीसे उसकी अधोगति शुरू होती है। ज्यो-ज्यो हम आदर्शके समीप पहुचते है, आदर्श दूर भागता जाता है। जैसे-जैसे हम उसकी खोजमें अग्रसर होते है, यह मालूम होता है कि अभी तो एक मजिल और बाकी है। कोई भी जल्दीसे मजिलें तय नही कर सकता, ऐसा माननेमें हीनता नही है, निराशा नहीं है, किंतु नम्रता अवश्य है। इसीसे हमारे ऋषियोंने कहा है कि मोक्ष तो शून्यता है। मोक्ष चाहनेवालेको शून्यता प्राप्त करना है। यह ईश्वर-प्रसादके बिना नही मिल सकती। यह शून्यता जबतक शरीर है, आदर्शरूप ही रहती है। इस बातको टाल्स्टायने साफ देख लिया, उसे बुद्धिमें अकित किया, उसकी ओर दो डग आगे बढे और उसी वक्त उन्हें वह हरी छडी मिल गई। उस छडीका वे वर्णन नही कर सकते, सिर्फ मिली इतना ही कह सकते है। फिर भी अगर कहा होता कि मिली तो उनका जीवन समाप्त हो जाता।

टाल्स्टायके जीवनमें जो विरोधाभास दीखता है वह टाल्स्टायका कलक या कमजोरी नही है, किंतु देखनेवालोकी त्रुटि है। एमर्सनने कहा है कि अविरोध तो छोटे-से आदमीका पिशाच है। हमारे जीवनमे कभी विरोध

आनेवाला ही नही, अगर यह हम दिखलाना चाहें तो हमें मरा ही समझें। ऐसा करनेमें अगर कलके कार्यको याद रखकर उसके साथ आजके कार्यका मेल करना पड़े तो कृत्रिम मेलमें असत्याचरण हो सकता है। सीधा मार्ग यह है कि जिस वक्त जो सत्य प्रतीत हो उसका आचरण करना चाहिए। यदि हमारी उत्तरोत्तर वृद्धि ही हो जाती हो तो हमारे कार्योमे दूसरोको विरोध दीखे भी तो उससे हमे क्या सबध है। सच तो यह है कि वह हमारा विरोध नही है, हमारी उन्नति है। उसीके अनुसार टाल्स्टायके जीवनमें जो विरोध दीखता है वह विरोध नही है, बल्कि हमारे मनका विरोधाभास है। मनुष्य अपने हृदयमें कितने प्रयत्न करता होगा राम-रावणके युद्धमें कितनी विजये प्राप्त करता होगा, उनका ज्ञान उसे स्वय नही होता, देखनेवालोका तो हो ही नही सकता। यदि वह कुछ फिसला तो वह जगतकी निगाहमें कुछ भी नही है, ऐसा प्रतीत होना अच्छा ही है। उसके लिए दुनिया निंदाकी पात्र नही है। इसीसे तो सतोने कहा है कि जगत जब हमारी निंदा करे तब हमें आनद मनाना चाहिए और स्तुति करे तब काप उठना चाहिए। जगत दूसरा नही करता। उसे तो जहा मैल दीखा कि वह उसकी निंदा ही करेगा। परतु महापुरुषके जीवनको देखने बैठें तो मेरी कही हुई बात याद रखनी चाहिए। उसने हृदयमें कितने युद्ध किए होंगे और कितनी जीतें प्राप्त की होंगी, इसका गवाह तो प्रभु ही है। यहीं निष्फलता और सफलताके चिह्न है।

इतना कहकर मै यह समझाना नही चाहता कि तुम अपने दोषोको छिपाओ या पहाड़से दोषोको तनिकसे गिनो। यह तो मैंने दूसरोके विषयमें कहा है। दूसरोके हिमालय-से बड़े दोषोको राईके समान समझना चाहिए और अपने राई-से दोषोको हिमालयके समान बड़ा समझना चाहिए। अपनेमें अगर जरा-सा भी दोष मालूम हो, जाने-अनजाने असत्य हो गया हो तो हमें ऐसा होना चाहिए कि अब जलमें डूब मरें। दिलमें आग सुलग जानी चाहिए। सर्प या बिच्छूका डक तो कुछ नही है, उनका

जहर उतारनेवाले बहुत मिल सकते है, परतु असत्य और हिंसाके दशसे बचानेवाला कौन है ? ईश्वर हमे उससे मुक्ति दे सकता है और हममें अगर पुरुषार्थ हो तभी वह मिल सकती है। इसलिए अपने दोषोके बारेमें हम सचेत रहें। वे जितने बडे देखे जा सके उन्हे हम देखे और अगर जगत हमे दोषित ठहरावे तो हम ऐसा न मानें कि जगत कितना कजूस है कि छोटे-से दोषको बडा बतलाता है। टाल्स्टायको कोई उनका दोष बतलाता तो वे उसे बडा भयकर रूप दे देते थे। उनका दोष बतानेका प्रसग दूसरेको शायद ही उपस्थित हुआ हो, क्योकि वे बहुत आत्मनिरीक्षण किया करते थे। दूसरोके बतानेके पहले ही वे अपने दोप देख लेते थे और उसके लिए जिस प्रायश्चित्तकी कल्पना उन्होने स्वय की हो वह भी वे कर डाले हुए होते थे। यह साधुताकी निशानी है। इसीसे मैं मानता हू कि उन्हे वह छडी मिली थी।

दूसरी एक अद्भुत वस्तुका खयाल टाल्स्टायने लिखकर और उसे अपने जीवनमें ओत-प्रोत करके कराया है। वह वस्तु है 'ब्रेड लेबर'। यह उनकी स्वय की हुई खोज न थी। किसी दूसरे लेखकने यह वस्तु रूसके सर्व-सग्रहमें लिखी थी। इस लेखकको टाल्स्टायने जगतके सामने ला रक्खा और उसकी बातको भी वे प्रकाशमें ले आये। जगतमें जो असमानता दिखाई पडती है, दौलत व कगालियत नजर आती है उसका कारण यह है कि हम अपने जीवनका कानून भूल गये है। यह कानून 'ब्रेड लेबर' है। गीताके तीसरे अध्यायके आधारपर मैं उसे यज्ञ कहता हू। गीताने कहा है कि विना यज्ञ किए जो खाता है वह चोर है, पापी है। वही चीज टाल्स्टायने बतलाई है। 'ब्रेड लेबर' का उलटा-सुलटा भावार्थ करके हमें उसे उडा नही देना चाहिए। उसका सीधा अर्थ यह है कि जो शरीर खपाकर मजदूरी नही करता उसे खानेका अधिकार नही है। हम भोजनके मूल्यके बराबर मेहनत कर डालें तो जो गरीबी जगतमे दिखाई देती है वह दूर हो जाय। एक आलसी दो भूखोको मारता है, क्योकि

उसका काम दूसरेको करना पडता है । टाल्स्टायने कहा कि लोग परोप-कार करनेके लिए प्रयत्न करते है, उसके लिए पैसे खरचते है और इलकाव लेते है, परतु ऐसा न करके थोडा-सा ही काम करें अर्थात् दूसरोके कधोपर-से नीचे उतर जाय तो बस यही काफी है। और यही सच्ची बात है। यह नम्रताका वचन है। करें तो परोपकार, किंतु अपने ऐशोआराममेंसे लेश-मात्रभी न छोडे तो यह वैसा ही हुआ जैसा कि अखा भक्तने कहा है-'निहायकी चोरी और सुईका दान।' ऐसे क्या विमान आ सकता है ?

बात ऐसी नही है कि टाल्स्टायने जो कहा वह दूसरोने नही कहा हो, परत् उनकी भाषामे चमत्कार था, क्योकि जो कहा उसका उन्होने पालन किया। गद्दी-तकियोपर बैठनेवाले, मजदूरीमे जुट गये, आठ घटे खेती का या दूसरा मजदूरीका काम उन्होने किया। इससे यह न समझे कि उन्होने साहित्यका कुछ काम ही नही किया था। जबसे उन्होने शरीरकी मेहनतका काम शुरू किया तबसे उनका साहित्य अधिक शोभित हुआ। उन्होने अपने पुस्तकोमे जिसे सर्वोत्तम कहा है, वह है 'कला क्या है', यह उन्होने इस यज्ञकालकी मजदूरीमेंसे बचते वक्तमें लिखा था। मजदूरीसे उनका शरीर न घिसा और ऐसा उन्होने स्वय मान लिया था कि उनकी बुद्धि अधिक तेजस्वी हुई और उनके ग्रथोके अभ्यासी कह सकते है कि यह बात सच्ची है।

यदि टाल्स्टायके जीवनका उपयोग करना हो तो उनके जीवनसे उल्लि-खित तीन बातें जान लेनी चाहिए। युवक-सघके सभ्योको ये वचन कहते हुए मै उन्हें याद दिलाना चाहता हू कि तुम्हारे सामने दो मार्ग है एक स्वेच्छाचारका और दूसरा सयमका । यदि तुम्हें यह प्रतीत होता हो कि टाल्स्टायने जीना और मरना जाना था तो तुम देख सकते हो कि दुनिया-मे सबके लिए और विशेषत युवकोके लिए सयमका मार्ग ही सच्चा मार्ग है। हिंदुस्तानमें तो खास तौरपर है ही। देशमें पश्चिमसे तरह-तरहकी हवाए, मेरी दृष्टिमें जहरी हवाये, आती है। टाल्स्टायके जीवनके समान

सुदर हवा भी आती है सही, परतु वह प्रत्येक स्टीमरमे थोडे ही आती है। प्रत्येक स्टीमरमे कहो या प्रतिदिन कहो। कारण कि प्रतिदिन कोई-न-कोई स्टीमर बम्बई या कलकत्तेके बदरगाहमें आता ही है। दूसरे परदेशी सामानके समान उसमे परदेशी साहित्य भी आता है। उनके विचार मनुष्य-को चकनाचूर करनेवाले होते हैं, स्वेच्छाचारकी तरफ लेजानेवाले होते है।

....तिलक महाराज कह गये हैं कि हमारे यहा 'कान्श्यन्स' का पर्याय-वाची शब्द नही है। हम यह नही मानते कि प्रत्येक व्यक्तिके 'कान्श्यन्स' होता है। पश्चिममें यह बात मानते हैं। व्यभिचारीके लिए, लपटके लिए, कान्श्यन्स क्या हो सकता है? इसीलिए तिलक महाराजने 'कान्श्यन्स' की जड ही उडा दी। हमारे ऋषि-मुनियोने कहा है कि अतर्नाद सुननेके लिए अतर्कर्ण भी चाहिए, अतर्चक्षु भी चाहिए और उसे प्राप्त करनेके लिए सयमकी अवश्यकता है। इसलिए पातजल योगदर्शनमे योगाभ्यास करनेवालोके लिए, आत्मदर्शनकी इच्छा रखने वालोके लिए, पहला पाठ यम-नियम पालन करनेका बताया है। सिवाय सयमके मेरे, तुम्हारे या अन्य किसीके पास कोई दूसरा मार्ग ही नही है। यही टाल्स्टायने अपने लम्बे जीवनमे सयमी रहकर बताया। मै चाहता हू, प्रभुसे प्रार्थना करता हू कि यह चीज हम उसी तरह साफ देख सकें जैसे कि आखोके आगेका दीया स्पष्ट देखते है और आज एकत्र हुए है तो ऐसा निश्चय करके बिखरें कि टाल्स्टायके जीवनमेंसे हम सयमकी साधना करनेवाले है।

निश्चय करलो कि हम सत्यकी आराधना छोडनेवाले नही है। सत्यके लिए दुनियामें सच्ची अहिसा ही धर्म है। अहिसा प्रेमका सागर है। उसका नाम जगतमे कोई ले सका ही नही। उस प्रेमसागरसे हम सराबोर हो जाय तो हममें ऐसी उदारता आ सकती है कि उसमे सारी दुनियाको हम विलीन कर सकते है। यह बात कठिन अवश्य है, किंतु है साध्य ही। इसीसे हमने प्रारभमे प्रार्थनामें सुना कि शकर हो या विष्णु, ब्रह्मा हो

या इंद्र; बुद्ध हो या सिद्ध; मेरा सिर तो उसीके आगे झुकेगा जो रागद्वेष-रहित हो, जिसने कामको जीता हो, जो अहिंसा, प्रेमकी प्रतिमा हो। यह अहिंसा लूले-लगड़े प्राणियोंको न मारनेमें समाप्त नही होती। उसमें धर्म हो सकता है, परन्तु प्रेम तो उससे भी वहुत आगे वढा हुआ है। उसके दर्शन जिसको नही हुए वह लूले-लगडे प्राणियोको वचावे तो उससे क्या होना जाना था! ईश्वरके दरवारमें इसकी कीमत वहुत कम कूती जायगी। तीसरी वात है 'ब्रेड लेवर'—यज्ञ। शरीरको कष्ट देकर मेहनत करके ही खानेका हमें अधिकार है। पारमार्थिक दृष्टिसे किया हुआ काम यज्ञ है। मजदूरी करके भी सेवाके हेतु जीना है। लम्पट होनेको या दुनियाके भोगोका उपभोग करनेको जीवित रहना नही कहते है। कोई कसरतवाज नौजवान आठ घटे कसरत करें तो यह 'ब्रेड लेवर' नही है। तुम कसरत करो, शरीरको मजवूत वनाओ तो इसकी मैं अवगणना नही करता, परतु जो यज्ञ टाल्स्टायने कहा है, गीताके तीसरे अध्यायमें जो वताया गया है, वह यह नही है। जीवन यज्ञकी खातिर है, सेवाके लिए है। जो ऐसा समझेगा वह भोगोको कम करता जावेगा। इस आदर्श सावनमें ही पुरुषार्थ है। भले ही इस वस्तुको किसीने सर्वांशमें प्राप्त न किया हो, भले ही वह दूर-ही-दूर रहे; किंतु फरहादने जिस तरह शीरीके लिए पत्थर फोड़े उसी तरह हम भी पत्थर तोड़ें। हमारी यह शीरी अहिंसा है। उसमें हमारा छोटा-सा स्वराज्य तो शामिल है ही, वल्कि उसमें तो सभी कुछ समाया है।[1] (हि० न० २० ९.२८)

..

रस्किनका Fors Clavigera (फोर्स क्लेविजेरा) वापूने वहुत रसके साथ पढना शुरू किया और आज कहने लगे—"यह पुस्तक तो वार-वार

---

[1]गत १० सितंवरको महर्षि टाल्स्टायकी जन्म-शताब्दीके अवसरपर सत्याग्रहाश्रममें दिए गये व्याख्यानका सारांश।

पढें तो भी थकान नही मालूम होती। इसमेंसे तो नई-नई बातें सूझती हे।"

शिक्षाकी बुनियादके बारेमें कुछ विचार बहुत सुन्दर लगनेके कारण इस विषय पर एक छोटा-सा लेख आश्रमको भेजा।[1] मैंने (महादेवभाई) रस्किन

---

[1] जॉन रस्किन एक उत्तम प्रकारका लेखक, अध्यापक और धर्मज्ञ था। उसका देहांत १८८०के आसपास हुआ। उसकी एक पुस्तकका मुझपर बहुत ही गहरा असर पडा और उसीके सुझाये हुए रास्तेपर मैंने एक क्षणमें जिंदगीमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर डाला। यह बात ज्यादातर आश्रमवासी तो जानते ही होगे। उसने सन् १८७१में सिर्फ मजदूर-वर्गको ध्यानमें रखकर एक मासिक पत्र लिखना शुरू किया था। उन पत्रोंकी तारीफ मैंने टॉल्स्टॉयकी किसी रचनामें पढ़ी थी। मगर वे पत्र मैं आजतक जुटा नहीं सका। उसकी प्रवृत्ति और रचनात्मक कार्यके विषयमें एक पुस्तक मेरे साथ आ गयी थी, उसे यहा पढा। उसमें भी उन पत्रोंका उल्लेख था। इस परसे मैंने रस्किनकी एक शिष्याको विलायतमें लिखा। वही इस पुस्तककी लेखिका है। वह बेचारी गरीब, इसलिए ये पुस्तकें कहांसे भेज सकती थी? मूर्खतासे या झूठे विनयसे मैंने उसे आश्रमसे रुपया मंगा लेनेको नहीं लिखा। इस भली स्त्रीने अपनेसे ज्यादा समर्थ मित्रको मेरा खत भेज दिया। वे 'स्पेक्टेटर'के मालिक हैं। उनसे मैं विलायतमें मिला भी था। उन्होंने ये पत्र पुस्तकाकार चार भागोंमें छपाये है, सो भेज दिये। इनमेंसे पहला भाग मैं पढ रहा हू। इनके विचार उत्तम हैं और हमारे बहुतसे विचारोसे मिलते-जुलते हैं—यहांतक कि अनजान आदमी तो यही मान लेगा कि मैंने जो कुछ लिखा है और आश्रममें हम जो भी आचरण करते है, वह रस्किनकी इन रचनाओसे चुराया हुआ है। 'चुराया हुआ' शब्दका अर्थ तो समझमें आ ही गया होगा। जो विचार या आचार जिससे लिया हो उसका नाम छिपाकर

और टॉल्स्टॉयके बीच एक समानता सुझाई, "टाल्स्टायने अपना कलानिष्ठ जीवन छोड़कर सेवानिष्ठ जीवनकी शुरुआत की और कलाकी पुस्तकोंका लिखना बिलकुल त्याग कर ऐसी घरेलू पुस्तकें और कहानियां लिखना शुरू किया, जिनसे ग्राम लोगोंकी उन्नति हो। रस्किनके जीवनका पहला हिस्सा भी कलानिष्ठाका था। इस कलानिष्ठाके कालमें उसने मॉडर्न

यह बताया जाय कि यह हमारी अपनी कृति है, तो वह चुराया हुआ माना जाता है।

रस्किनने बहुत लिखा है। उसमेंसे इस बार तो थोड़ा ही देना चाहता हूं। वह कहता है कि इस कथनमें गभीर भूल है कि बिलकुल अक्षरज्ञान न होनेसे कुछ होना अच्छा ही है। रस्किनकी साफ राय यह है कि जो सच्ची है, आत्माका ज्ञान करानेवाली है, वही शिक्षा है और वही लेनी चाहिए। और बादमें वह कहता है कि इस दुनियामें मनुष्यमात्रको तीन चीजोंकी और तीन गुणोंकी आवश्यकता है। जो इन्हें हासिल करना नहीं जानता, वह जीनेका मंत्र ही नहीं जानता। और इसलिए ये छः चीजें शिक्षाका आधार होनी चाहिए। इस तरह मनुष्य-मात्रको बचपनसे—फिर भले वह लड़का हो या लड़की—जानना ही चाहिए कि साफ हवा, साफ पानी और साफ मिट्टी किसे कहते हैं, इन्हें किस तरह रखा जाय और इनका उपयोग क्या है। इसी तरह तीन गुणोंमें उसने गुणज्ञता, आशा और प्रेमको गिना है। जिनमें सत्यादिकी कद्र नहीं, जो अच्छी चीजको पहचान नहीं सकते, वे अपने घमडमें फिरते हैं और आत्मानंद नहीं पा सकते। इसी तरह जिनमें आशावाद नहीं यानी जो ईश्वरके न्यायके बारेमें शंका रखते हैं, उनका हृदय कभी प्रफुल्लित नहीं रह सकता, और जिनमें प्रेम नहीं यानी अहिंसा नहीं, जो जीवमात्रको अपने कटुंबी नहीं मान सकते, वे जीनेका मंत्र कभी नहीं साध सकते।

पेण्टर्स, स्टोन्स ऑव वेनिस आदि पुस्तकें लिखीं। बादमें उसे लगा कि सौन्दर्यकी उपासना चीज तो अच्छी है, मगर आसपास दुःख, दारिद्रय और फूट हो, तो सौन्दर्यका आनद कैसे लूटा जा सकता है ? इसलिए उसने अपनी कलम खून और आँसुओंमें डुबोई और 'अण्टु दिस लास्ट' ('सर्वोदय') लिखा। जो आलोचना टाल्स्टायकी हुई वह रस्किनकी भी हुई।" बापूने कहा—

यह तुलना एक खास हदके बाद नही रहती, क्योंकि टाल्स्टायने तो कला-जीवनकी यानी अपने भूतकालकी निंदा की, उससे इन्कार किया, जबकि रस्किनने Unto this Last (अण्टु दिस लास्ट) और Fors (फोर्स) लिखकर अपने कला-जीवन पर कलश चढा दिया।

इस बातपर रस्किनने अपनी चमत्कारी भाषामें बहुत विस्तारसे लिखा है। यह तो फिर किसी वक्त समाजके समझने लायक ढगसे दे सकूं तो ठीक ही है। आज तो इतनेसे ही संतोष कर लेता हूं। साथ ही इतना और कह दूं कि जो कुछ हम अपने देहाती शब्दोंमें विचारते रहे हैं और आचरणमें लानेका प्रयत्न कर रहे है, लगभग वही सब रस्किनने अपनी प्रौढ़ और विकसित भाषामें और अग्रेज जनता समझ सके इस ढंगसे पेश किया है। यहां मैंने तुलना दो अलग भाषाओंकी नहीं की है, बल्कि दो भाषा-शास्त्रियोंकी की है। रस्किनके भाषा-शास्त्रके ज्ञानके साथ मेरे जैसा आदमी मुकाबलानहीं कर सकता। मगर ऐसा समय जरूर आयेगा जब भाषा-मात्रका प्रेम व्यापक होगा। तब भाषाके पीछे धूनी रमानेवाले रस्किन-जैसे शास्त्री निकलआयेंगे और वे उतनी ही प्रभावशाली गुजराती लिखेंगे, जितनी प्रभावशाली अंग्रेजी रस्किनने लिखी है।

२८.३.३२
यरवदा मंदिर

मैंने कहा—'टाल्स्टाय तो क्रान्तिकारी था, इसलिए उसने जीवनमें भी परिवर्तन किया, और रस्किन विचार देकर बैठा रहा।"

बापू बोले—

यह तो बहुत बडा फर्क है न ? टाल्स्टायका-सा जीवन-परिवर्तन रस्किनमें नही है।

वल्लभभाईने कहा—"लेकिन आज रस्किनका नाम तो विलायतमें सचमुच कोई नहीं लेता न ?"

बापू बोले—

हा, नही लेता, मगर रस्किन भुलाया नही जा सकता। उसका जमाना आ रहा है। ऐसा समय आ रहा है कि जिसने रस्किनको नही सुना और उसके बारेमें लापरवाही दिखाई, वह रस्किनकी तरफ मुडेगा। (म० डा०, २८ ३ ३२)

•

टाल्स्टाय एक बडा योद्धा था, पर जब उसने देखा कि लडाई अच्छी चीज नही है तब लडाईको मिटा देनेकी कोशिश करते-करते वह मर गया। उसने कहा है कि दुनियामें सबसे बडी शक्ति लोकमत है और वह सत्य और अहिंसासे पैदा हो सकता है। (प्रा० प्र०, १०.६. ४७)

: ६८ :

अमृतलाल वि० ठक्कर

ठक्करबापा आगामी २७ नवबरको ७० वर्षके हो जायगे। बापा हरिजनोके पिता है और आदि-वासियो और उन सबके भी, जो लगभग

हरिजनोकी ही कोटिके है और जिनकी गणना अर्द्धसभ्य जातियोमें की जाती है। दिल्लीके हरिजन-निवास-वासियोकी तजवीज इस प्रकार उनकी ७० वी जयती मनानेकी है कि जिससे ठक्करबापाके हृदयको सात्विक सतोष प्राप्त हो। ये लोग ठक्करबापाके जन्म-दिवसपर, हरि-जन-कार्यके निमित्त, उन्हें ७०००) की एक विनम्र थैली भेट करना चाहते है। इसके लिए उन्होने मेरा आशीर्वाद मागा है। यह भी चाहते है कि उनके इस शुभ प्रयत्नको मै प्रकाशमे ला दू। पर मैने तो उन्हें झिडका है कि उनमें आत्म-श्रद्धाकी कमी है। ठक्करबापा एक विरल लोकसेवक है। वे विनम्र स्वभावके है। वे प्रशसाके भूखे नही। उनका जीवन-कार्य ही उनका एकमात्र सतोष और विश्राम है। वृद्धावस्था उनके उत्साह-को मद नही कर सकी है। वे स्वय एक सस्था है। एक बार जब मैने उनसे कहा कि वे थोडा आराम ले लें तो तुरत उनका जवाब आया, "जब इतना तमाम काम करनेको पडा है, तब मै आराम कैसे ले सकता हू ? मेरा काम ही मेरा आराम है।" अपने जीवन-कार्यमें वे जिस प्रकार अपनी शक्ति लगा रहे है, उसे देखकर तो उनके आस-पास रहनेवाले नवयुवक भी लज्जित हो जाते है। इतने महान् कार्यके लिए और उस जन-सेवकके लिए, जो अपने विशाल वृद्ध कधोपर इतना भारी भार वहन कर रहा है, ७०००) की थैली एक प्रकारका अपमान है। कार्यकर्त्ताओका तो यह लक्ष्य होना चाहिए कि सारे हिंदुस्तानसे वे ७०,०००) रु० से कम तो किसी हालतमें इकट्ठे नही करेंगे। महान् सेवा-प्रवृत्ति और उसके सेवा-रत पिताको देखते हुए, यह ७०,०००) की रकम भी कोई चीज नही है। लेकिन एक महीनेके अदर यह रकम इकट्ठी करनी है, इस दृष्टिसे यह ठीक ही है। (ह० से०, २१ १० ३९)

• • •

भारत-सेवक-समितिको अपने प्राणोकी तरह प्रिय समझनेवाले एक मित्र श्रीठक्करबापा-कोषके लिए दस रुपयेका चदा भेजते हुए लिखते है

"श्री ठक्करबापाकी प्रशंसामें लिखे गये आपके एक-एक शब्दका मैं समर्थन करता हूं। इस संबधमें मेरी एक ही सूचना है और वह यह कि बापाके पुण्य कार्योका सारा श्रेय भारत-सेवक-समितिको महज इसलिए नहीं मिलना चाहिए कि बापा उसके एक सदस्य है। समितिने बिना किसी हिचकिचाहटके उनको अपना सदस्य माना है और बापाके द्वारा मानव-जातिकी जो महान् सेवा हुई है, उसपर उसने हमेशा ही गर्व किया है।"

यह शिकायत बिलकुल ठीक है। दरअसल, बात तो यह है कि बापाकी कई विशेषताओका उल्लेख करते हुए मै उनकी एक खास विशेषताका उल्लेख करना भूल गया हू, इसका मुझे खयाल ही न रहा। बात यह है कि भारत-सेवक-समितिकी सदस्यता स्वीकार करनेसे पहले बापा म्युनिसिपल कॉरपोरेशन, बबईके रोड-इजीनियरका काम करते थे। हरिजन सेवक-सघको उनकी सेवाएं भारत-सेवक-समितिकी ओरसे ही बतौर कर्जके मिली है। मै मानता हू कि मेरी ओरसे समितिको किसी प्रकारके विज्ञापनकी जरूरत नही है और चूकि मैं अपने आपको इस समितिका एक स्वत नियुक्त और अनियमित सदस्य समझता हू, इसलिए समितिकी प्रशसामें कुछ लिखना मै अपनी ही प्रशसा करनेके समान समझता हू। लेकिन जरूरत पडनेपर मै ऐसे नाजुक काम भी अच्छी तरह कर सकता हू। समितिके नामका उल्लेख तो अकस्मात् ही छूट गया था। मुझपर कामका काफी बडा बोझ रहता है। मैने सोचा तो था कि मै बापाका जिक्र करते हुए भारत-सेवक-समितिका भी जिक्र करूगा, लेकिन आखिर जैसा कि जाहिर है, बात ध्यानमें न रही। (ह० से०, ४ ११ ३९)

. . .

बापाकी इकहत्तरवी जयती मनानेमें मुझे हाजिर होना चाहिए। लेकिन मै इस लायक नही रहा हू। मेरी तो हार्दिक आशा है कि बापा सौ वर्ष पूरे करें। बापाका जन्म ही दलितोकी सेवाके लिए है, वे भले ही अस्पृश्य हो या भिल्ल या सताल या खासी इत्यादि। उनकी कदर करनेमें

भी हम दलितोकी कुछ-न-कुछ सेवा करते है । बापाकी सेवाने हिंदुस्तानको बढाया है । (ह० से० ६.१२ ३६)

: ६६ :

एस० वी० ठकार

श्री एस० वी० ठकार एक मूक परतु कुशल सेवक है । हरिजनोकी सेवाके उपरात उन्होने और भी कई क्षेत्रोमे काफी काम किया है । उन्होने मुझे एक सविस्तर रिपोर्ट भेजी है । उसमें उन्होने वर्णन दिया है कि कैसे एक जगह भिल्लोके दो पक्षोमे सख्त झगडा पैदा हो गया था, परतु सरकार की मदद लेकर वह बीचमें पडे, उससे फसाद होते-होते रुक गया । भिल्लोके एक अत्यत प्रभावशाली सुधारक स्वर्गस्थ श्रीगुले महाराज थे, वह खुद भिल्ल थे । उनकी सरलता और हृदयकी सच्ची लगनके कारण उनकी गहरी छाप भिल्ल जनतापर पडी थी । उससे प्रेरित होकर उन्होने हजारो-की सख्यामे शराब पीना और दूसरी कई बुराइयोको छोड दिया था । साल पहले उनका देहात होनेपर एक और आदमीने उनकी जगह ली । सुधारक पक्षने, जिन लोगोने बुराइयोको नही छोडा था उनका बहिष्कार किया, इससे काफी वैमनस्य उनमें पैदा हो गया है । एक समय तो ऐसा लगने लगा था कि अभी मारपीट शुरू होगी । श्रीठकारके ठीक समयपर प्रयत्नसे वह तो रुक गई, परतु उसके साथ सुधारकी प्रवृत्तिको भी धक्का पहुचा है । अभी सुधारकोके विरोधियोका पक्ष प्रवल है और अगर पहलेकी तरह आदोलनमे शुद्ध धार्मिक प्रेरणा फिरसे पैदा न हो सकी तो अदेशा है कि आदोलन बिल्कुल बैठ जायगा । इसमेंसे जैसे कि श्री-ठकार लिखते है हमे पाठ तो यह मिलता है कि हमारा हेतु चाहे कितना नेक हो अगर उसमें हिंसाका मिश्रण हो तो सब काम बिगड जाता है ।

किसी भी सुधारक प्रवृत्तिकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि स्वेच्छा और ज्ञानपूर्वक उसे जनताका सहकार मिले। वलात्कारसे हम लोगोकी आदतें सुधार नही सकते। (ह० से०, १८ १ ४२)

: ७० :

द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर

रवीद्रनाथ ठाकुरके वडे भाई द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर जो 'वडे दादा' के नामसे पहचाने जाते है उनका, पिताका जैसा पुत्रके प्रति प्रेम होता है वैसा ही, मुझपर प्रेम है। वे मेरे दोष देखनेके लिए साफ इन्कार करते है। उनके खयालसे तो मैने कोई गलती ही नही की। मेरा असहयोग, मेरा चरखा, मेरा सनातनीपन, हिंदू-मुसलमान ऐक्यकी मेरी कल्पना, अस्पृश्यताका मेरा विरोध सब यथायोग्य है और इसीमें स्वराज्य है, यह मेरी मान्यता उनकी भी मान्यता है। पुत्रपर मोहित पिता उसके दोष नही देखता है, उसी प्रकार वडे दादा भी मेरे दोष देखना नही चाहते है। उनके मोह और प्रेमका तो भला मै यहापर उल्लेख ही कर सकता हू, उसका वर्णन मुझसे हो ही नही सकता। उस प्रेमके योग्य वननेका मै प्रयत्न कर रहा हू। उनकी उम्र ८० से भी ज्यादा है। लेकिन छोटी-से-छोटी वातकी वे खवर रखते है। उन्हें यह भी खवर है कि हिंदुस्तानमें आज क्या चल रहा है। वे दूसरोंसे पढाकर सुनते है और यह सव खवर प्राप्त करते है। दोनो भाइयोको वेदादिका गहरा अभ्यास है। दोनों सस्कृत जानते है। दोनोकी वातचीतमें उपनिषद और गीताके मत्र और श्लोक वरावर सुनाई देते है। (हि० न०, ११ ६ २५)

• • • • •

इस बातपर विश्वास लाना कि द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर अब नही रहे, बड़ा ही कठिन है। शातिनिकेतनके तारसे यह शोकजनक समाचार मिला है कि बडे दादाको चिरशाति प्राप्ति हुई है। उनकी उम्र ६० वर्षके लगभग थी, फिर भी उनमें जो आनद और उत्साह दिखाई देता था उसके कारण उनके पास जानेवालेको कभी यह मालूम ही नही होता था कि उनके भौतिक अस्तित्वके अब थोड़े ही दिन बाकी हैं। प्रतिभासपन्न पुरुषोके उस कुटुबमे बडे दादाका स्थान महत्वका था। वे विद्वान थे, सस्कृत और अग्रेजी दोनो अच्छी तरह जानते थे, लेकिन इसके अलावा वे बडे धार्मिक मनुष्य थे और उनका हृदय भी विशाल था। वे श्रद्धासे उपनिषदोको ही मानते थे, फिर भी ससारकी दूसरी धर्म-पुस्तकोसे प्रकाश पानेके लिए भी वे स्वतत्र थे। उन्हें अपने देशसे वडा प्रेम था, फिर भी उनकी देशभक्ति दूसरे गुणोकी विरोधिनी न थी। वे अहिंसात्मक असहयोगके आध्यात्मिक रहस्यको समझते थे, लेकिन इसके साथ यह नही कि वे उसके राजनैतिक महत्वको भी न समझते हों। वे चरखेमें दिलसे विश्वास रखते थे और अपनी वृद्धावस्थामें भी उन्होने खादी धारण की थी। एक युवकमे जितना उत्साह होता है उतने ही उत्साहके साथ वे वर्तमान बातोको जाननेके लिए प्रयत्न करते थे। बडे दादाकी मृत्युसे हम लोगोमेंसे एक साधु तत्वज्ञानी और स्वदेशभक्त उठ गया है। मैं कवि और शाति-निकेतनवासियोके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करता हू। (हि० न०, २१.१ २६)

: ७१ :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

लार्ड हार्डिजने डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरको एशियाके महाकविकी पदवी दी थी; पर अब रवीन्द्रबाबू न सिर्फ एशियाके बल्कि ससार भरके महाकवि गिने जा रहे हैं। यदि अभी नही तो कम-से-कम बहुत जल्द उनका नाम ससारभरके महाकवियोमें गिना जाने लगेगा। दिन-पर-दिन उनकी प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ रहा है, जिससे उनकी जिम्मेदारी भी दिन-पर-दिन बढती जा रही है। उनके हाथसे भारतवर्षकी सबसे बडी सेवा यह हुई है कि उन्होने अपनी कविता द्वारा भारतवर्षका सदेश ससारको सुनाया है। इसीसे रवीन्द्रबाबूको सच्चे हृदयसे इस बातकी चिंता है है कि भारतवासी भारत-माताके नामसे कोई झूठा या सारहीन सदेशा ससारको न सुनावें। हमारे देशका नाम न डूबने पावे, इस बातकी चिंता करना रवीन्द्रबाबूके लिए स्वाभाविक ही है। उन्होने लिखा है कि मैंने इस आदोलनकी तानके साथ अपनी तान मिलानेकी भरसक कोशिश की; पर मुझे निराश होना पडा। उन्होने यह भी लिखा है कि असहयोग आदोलनके शोरगुलमें मुझे अपनी हृदय-वीणाके लिए कोई उचित स्वर नही मिल सका। तीन जोरदार पत्रोमें उन्होने इस आदोलनके सबधमें अपना सदेह प्रकट किया है। अतमें वह इस नतीजेपर पहुचे है कि असहयोगका आदोलन ऐसा गभीर और गौरवपूर्ण नही है कि वह उस भारतवर्षके योग्य हो सके, जिसे वह अपनी कल्पनाका आदर्श समझे हुए है। उनका मत है कि असहयोगका सिद्धात खडन और निराशाका सिद्धात है। रवीन्द्रबाबूकी समझमें वह सिद्धात भेदभाव और अनुदारतासे भरा हुआ है।

रवीन्द्रबाबूके हृदयमे भारतवर्षकी प्रतिष्ठाके लिए जो चिंता है उसके लिए हर हिंदुस्तानीको अभिमान होना चाहिए। यह बहुत अच्छी

बात हुई है कि उन्होने अपना सदेह ऐसी सुदर और सरल भाषामें प्रकट कर दिया ।

मै रवीन्द्रबाबूके सदेहोका उत्तर बडी नम्रताके साथ देनेका प्रयत्न करूगा । मै रवीन्द्रबाबू या उन लोगोको जिनके हृदयपर रवीन्द्रबाबूकी कवितापूर्ण भाषाका प्रभाव पडा है शायद विश्वास न दिला सकू, पर मै उनको और कुल भारतवर्षको यह विश्वास दिलाना चहता हू कि असहयोगके उद्दे-श्यके सबधमें उनका जो कुछ सदेह है वह बिल्कुल निर्मूल है । मै उन्हें यह विश्वास दिलाना चाहता हू कि यदि उनके देशने असहयोगके सिद्धातको स्वी-कार किया है तो इसमें उनके शर्मानेकी कोई बात नही है। अगर यह सिद्धात अमली तौरपर काममें आनेमे असफल हो तो सिद्धातका दोष न कहा जायगा, क्योकि अगर सच्चाईको अमली तौरपर काममें लानेवाले आदमी सफल होते हुए न दिखाई पडें तो इसमें सच्चाईका कोई दोष नही है । हा, यह सभव है कि असहयोग-आदोलन शायद अपने समयके पहले ही शुरू हो गया हो । तब हिंदुस्तान और ससार दोनोको उस उचित समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिए । पर हिंदुस्तानके सामने तलवार और असहयोग इन दोनोको छोडकर और कोई उपाय नही था । अपनी सहायताके लिए कोई उपाय चुनना है तो वह इन्ही दोनोमेंसे चुन सकता है ।

रवीन्द्रबाबू को इस बातसे भी न डरना चाहिए कि असहयोग-आदोलन भारतवर्ष तथा यूरोपके बीचमे एक बडी भारी दीवार खडी करना चाहता है । इसके विरुद्ध असहयोग आन्दोलन का मशा यह है कि आपसके आदर और विश्वासकी बुनियादपर बिना किसी दबावके सच्चे तथा प्रतिष्ठित सहयोगके लिए पक्का रास्ता तैयार किया जाय । यह आदोलन इसलिए चलाया गया है कि जिसमें हमसे कोई जबरदस्ती सहयोग न करा सके । हमारे विरुद्ध दल बाधकर हमें कोई नुकसान न पहुचा सके और सभ्यताके नामसे तथा तलवारके जोरसे आजकल जो तरीके हमारा खून चूसनेके लिए काममें लाये जा रहे है वे न लाये जा सकें । असहयोग-आदोलन

इस वातके विरोधमें किया गया है कि हमारी इच्छा विना और हमारे जाने विना हमसे वुराईमें सहयोग कराया जा रहा है।

रवीन्द्रवावूको अधिकतर चिंता विद्यार्थियोंके वारेमें है। उनका मत यह है कि जवतक दूसरे स्कूल न खुल जाय तवतक उनसे सरकारी स्कूल छोडनेको न कहा जाय। इस वातमें मेरा उनसे पूरा मतभेद है। मैंने कोरी साहित्यकी शिक्षाको कभी परम आवश्यक नही समझा है। अनुभवसे मुझे यह मालूम हो गया है कि अकेली साहित्यकी शिक्षासे मनुष्यके चरित्रकी उन्नति रत्तीभर भी नही होती। मेरा यह भी विश्वास है कि चरित्रनिर्माणसे साहित्यकी शिक्षाका कोई सवध नही है। मेरा यह पक्का विश्वास है कि सरकारी स्कूलोंने हमें वुजदिल, लाचार और अविश्वासी वना दिया है। उनके सववसे हमारे हृदयमें असतोप तो उत्पन्न हो गया है, पर उस असतोपको दूर करनेके लिए कोई दवा हमे नही वतलाई गई है, जिससे हमारे हृदयोमें निराशाने घर कर लिया है। सरकारी स्कूलोंका उद्देश्य हमें क्लर्क और दुभाषिया वनाना था। वह पूरा हो गया है। किसी सरकारकी धाक तभी कायम रहती है जव प्रजा स्वय अपनी इच्छासे उस सरकारसे सहयोग करती है। अगर सरकार हमें गुलाम वनाये हुए है और ऐसी सरकारके साथ सहयोग करना और उसे सहायता देना अनुचित है, तो हमारे लिए यह जरूरी है कि हम उन सस्थाओसे अपना नाता तोड दे जिनमें हम स्वय अपनी इच्छासे अवतक सहयोग दे रहे है। जातिकी आशा उसके नौजवानोपर निर्भर होती है। मेरा यह मत है कि अगर हमे इस वातका पता लग जाय कि यह सरकार पूरी तरहसे मरी हुई है तो अपने लडकोको उसके स्कूलो और कालेजोमें भेजना हमारे लिए पापका काम होगा।

मैंने जो प्रस्ताव राष्ट्रके सामने रखा है उसका खडन इस वातसे नही हो सकता कि अधिकतर विद्यार्थी पहली वारका जोश ठडा होते ही अपने स्कूलोमें फिरसे वापस चले गये। उनका अपनी वातोसे टल जाना इस

वातका सबूत नही है कि हमारा यह प्रस्ताव गलत है; बल्कि इस बातका सबूत है कि हम किस कदर नीचे गिर गये है। अनुभवसे यह पता लगा है कि राष्ट्रीय स्कूलोके खुलनेसे बहुत ज्यादा विद्यार्थी उनमें भरती नही हुए। जो विद्यार्थी सच्चे और अपने विश्वासके पक्के थे वे विना कोई राष्ट्रीय स्कूल खुले हुए भी सरकारी स्कूलोंसे बाहर निकल आये। मेरा पक्का निश्चय है कि जिन विद्यार्थियोने पहले-पहल स्कूल-कालेज छोडा है उन्होने देशकी बहुत वडी सेवा की है।

वास्तवमें रवीन्द्रबाबू जडसे ही असहयोग सिद्धातके विरुद्ध है। ऐसी हालतमे अगर उन्होने स्कूल और कालेजोसे विद्यार्थियोके निकलनेका विरोध किया तो कोई वडी वात नही है। उनका ऐसा करना तो स्वाभाविक ही था। रवीन्द्रबाबूके हृदयमें ऐसी हरएक वस्तुसे धक्का पहुचता है जिसका उद्देश्य खडन करना है। उनकी आत्मा धर्मकी उन आज्ञाओके विरोधमे उठ खडी होती है जो हमें किसी वस्तुका खडन करनेके लिए कहती है। मै उनका मत उन्हीके शब्दोमे आपके सामने रख देता हू—"एक महाशयने इस वर्तमान आदोलनके पक्षमें मुझसे अक्सर यह कहा है कि प्रारभमे किसी उद्देश्यको स्वीकार करनेकी अपेक्षा उसे अस्वीकार करनेका भाव प्रबल रहता है। यद्यपि मै यह मानता हू कि वास्तवमें बात ऐसी ही है, पर मै इस बातको सच्ची नही मान सकता। भारतवर्षमें ब्रह्मविद्याका उद्देश्य मुक्ति या मोक्ष है; पर बौद्ध धर्मका उद्देश्य निर्वाण प्राप्त करना है। मुक्ति हमारा ध्यान सत्यके मडनात्मक पक्षकी ओर और निर्वाण उसके खडनात्मक पक्षकी ओर खीचता है। इसीलिए बुद्ध भगवानने इस बात पर जोर दिया कि ससार दु खमय है तथा उससे छुटकारा पाना हमारा धर्म है और ब्रह्मविद्याने इस वातपर जोर दिया कि ससार आनदमय है और उस आनदको प्राप्त करना हमारा परम कर्तव्य है।" इन वाक्यो और इसी तरहके दूसरे वाक्योसे पाठकगण रवीन्द्रबाबूकी मानसिक वृत्तिका पता लगा सकते है। मेरी नम्र रायमें किसी बातका खडन या अस्वीकार करना

वैसा ही आदर्श है जैसा किसी बातका स्वीकार करना या मडन करना। असत्यका अस्वीकार करना उतना ही जरूरी है जितना सत्यका स्वीकार करना। सब धर्म हमें यही शिक्षा देते हैं कि दो विरोधी शक्तिया हमपर अपना प्रभाव डाल रही है, और मनुष्य जीवनका प्रयत्न इसी बातमें रहता है कि वह लगातार स्वीकार करने योग्य वस्तुको स्वीकार और अस्वीकार करने योग्यको अस्वीकार करता रहे। बुराईके साथ असहयोग करना हमारा उतना ही कर्तव्य है जितना भलाईके साथ सहयोग करना। मैं साहससे कह सकता हू कि रवीन्द्रबाबूने निर्वाणको केवल एक खडनात्मक या अभाव-सूचक दिशा बतलाकर बौद्ध धर्मके साथ बडा अन्याय किया है। हा, मैं मानता हूं कि उन्होंने यह अन्याय जान-बूझकर नही किया। मैं साहसके साथ यह भी कह सकता हू कि जिस तरह निर्वाण एक अभावात्मक दशा है, उसी तरहसे मुक्ति भी अभावको सूचित करनेवाली एक अवस्था है। शरीरके बधनसे छुटकारा पाना या उस बधनका बिलकुल नाश हो जाना, आनद प्राप्त करना है। मैं अपनी दलीलके इस हिस्सेको खतम करते हुए इस बातकी ओर ध्यान खीचना चाहता हू कि उपनिषदोके रचयिताओने ब्रह्मका सबसे अच्छा वर्णन 'नेति' किया है।

इसलिए मेरी समझमें रवीन्द्रबाबूको असहयोग-आदोलनके अभावात्मक या खडनात्मक रूपपर चौकनेकी कोई जरूरत न थी। हम लोगोंने 'नही' कहनेकी शक्ति बिलकुल गवा दी है। सरकारके किसी काममें 'नही' कहना पाप और अराजकता गिना जाने लगा था। जिस तरहसे कि बोनेके पहले निराई करना बहुत जरूरी है उसी तरहसे सहयोग करनेके पहले जान-बूझकर पक्के इरादेके साथ असहयोग करना हम लोगोने जरूरी समझा है। खेतीके लिए जितनी बुआई जरूरी है, उतनी ही निराई जरूरी है। वास्तवमें उस समय भी हर रोज निराई जरूरी है जबकि फसलें उगती रहती हैं। इस असहयोग-आदोलनके रूपमें जातिकी ओरसे सरकारको इस बातका निमत्रण दिया है कि जिस

तरहसे हरएक जातिका हक और हरएक अच्छी सरकारका धर्म है, उसी तरहसे इस सरकारको भी चाहिए कि वह जातिके साथ सहयोग करे। असहयोग-आदोलन जातिकी ओरसे इस बातका नोटिस है कि वह अब और ज्यादा दिनोतक दूसरोकी सरक्षकतामें रहकर सतोष न करेगी। हिंदुस्तानने तलवार या मारकाटके अस्वाभाविक और अधार्मिक सिद्धातके स्थानपर असहयोगके निर्दोष प्राकृतिक और धार्मिक सिद्धातको ग्रहण किया है। अगर हिंदुस्तान कभी उस स्वराज्यको प्राप्त करेगा जिसका स्वप्न रवीन्द्रबाबू देख रहे है तो वह सिर्फ शातिपूर्ण असहयोग आदोलनके द्वारा प्राप्त करेगा। वे चाहें तो ससारको अपना शातिपूर्ण सदेशा सुनावें और इस बातका भरोसा रखें कि हिंदुस्तान अगर अपनी बातका धनी बना रहेगा तो अपने असहयोग द्वारा उनके सदेशको अवश्य सच्चा साबित करेगा। रवीन्द्रबाबू जिस देशभक्तिके लिए उत्सुक हो रहे है, उसे असली तौरपर पैदा करनेको ही यह आदोलन किया गया है। हिंदुस्तान जो यूरोपके पैरोके नीचे पडा हुआ है, ससारको कोई आशा नही दिला सकता। स्वतत्र और जाग्रत भारत ही दुखी ससारको शाति और सुखका सदेशा सुना सकता है। असहयोग-आदोलन इसीलिए चलाया गया है कि जिसमें भारतवर्ष एक ऊचे स्थानसे अपना सदेशा ससारको सुना सके। (य० इ०, १९२१)

• • • • •

..टैगोरकी क्या बात! उन्होने क्या नही साधा? साहित्यका एक भी क्षेत्र उन्होने छोडा है? और सबमें कमाल एसी अलौकिक शक्ति-वाला आदमी हमारे यहा तो है ही नही, लेकिन दुनियामें भी होगा या नही, इसमें मुझे शक है।

वल्लभभाई बोले—"मगर उनका शांतिनिकेतन चलेगा? वे तो बूढ़े हो गये और उनकी जगह लेनेवाला कोई रहा नहीं।" बापूने कहा—

....बात तो जरूर मुश्किल है। मगर यह तो कैसे कहा जा सकता

है। भगवानने इतनी असाधारण प्रतिभावाला आदमी पैदा किया तो उसे यह तो मजूर नही होगा कि उसका काम योही बंद हो जाय।

वल्लभभाई कहने लगे—यह तो ठीक है। मगर उनकी जो असाधारणताए है उन सबको कौन किस क्षेत्रमें ला सकेगा ? मैंने (महादेवभाई) कहा—नदलाल बोस, असित हलदार-जैसे उत्तम चित्रकार वहा मौजूद है। विधुशेखर शास्त्री भी है। वल्लभभाई बोले—चित्रकला तो ठीक है। मगर उसकी पाठशालाए कितनी चल सकती है ? हमारा तो खादी और चरखा है। उसके लिए बापू थोड़े ही चाहिए ! ये तो बापू न होगे तो दूधाभाई भी आकर चलाते रहेंगे। उन्होंने कोई ऐसी चीज नहीं दी, जिसे लोग अपने हाथोमें ले सकें और जो अखड रूपमें चलती ही रहे।

मैंने तुरत कहा—टैगोरके बारेमें यह कहा जा सकता है कि आज तक उनके यहा असाधारण प्रतिभावाले लोग खिचकर न आये हों तो शायद अब उनके कामको जारी रखनेके लिए वे आ जायं। शातिनिकेतनको उनके आदर्शके अनुसार ही जारी रखनेके लिए नये आदमी क्यो न शरीक होंगे ? बापूने कहा—

आज उनकी प्रचड शक्तिसे ज्यादा लोग आकर्षित न हो तो भविष्यमें आकर्षित हो सकते है। आज भी रामानद चटर्जी-जैसे लोग तो है ही और ईश्वर कृपा हो तो और लोग भी आ सकते है। और उनका श्रीनिकेतनका काम तो जारी हा रहेगा। एमहर्स्ट-जैसा आदमी विलायत छोडकर इसे चलानेके लिए चला आए तो मुझे आश्चर्य नही होगा। (म० डा०)

... ...

आप (डा० कागावा) शान्तिनिकेतन देखे बगैर चले जायें, यह कैसे हो सकता है ?

कागावा—मैंने कविके काव्योको पढा है। मुझे वे बहुत प्रिय है।

गाधीजी—किंतु कवि आपको प्रिय है न ?

कागावा—मैं रोज 'गीताजली' पढ़ा करता हूं तो क्या रोज कविका

सान्निध्य अनुभव नहीं करता ? हो सकता है कि कवि अपने काव्योंसे महान् हो।

गाधीजी—कभी-कभी इसका उल्टा सत्य होता है; पर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके विषयमें यह कहूगा कि अपने महाकाव्योसे भी वे महान् हैं। अब एक दूसरा प्रश्न पूछता हू। आपके प्रवासक्रममें पाडिचेरी है या नही ? आप अगर अर्वाचीन भारतवर्षका अध्ययन करना चाहते हैं, तो शातिनिकेतन और अरविंद-आश्रम आपको देखने ही चाहिए। (ह० से०, २८.१.३६)

• •

शातिनिकेतनमें आगमन मेरे लिए एक तीर्थ-यात्राके समान था। बहुत दिनोसे मेरी इच्छा वहा जानेकी थी, लेकिन यह अवसर मलिकन्दा जाते समय ही मुझे मिल सका। मेरे लिए शातिनिकेतन नया नही है। १९१५ में जब इसकी रूपरेखा बन रही थी तब मैं वही था। इसका मतलब यह नही कि अब इसका निर्माण-क्रम रुक गया है। गुरुदेव खुद विकसित हो रहे हैं। वृद्धावस्थाके कारण उनके मनके लचीलेपनमें कोई अतर नही पडा है। इसलिए जबतक गुरुदेवकी भावनाकी छाया उसके ऊपर है तबतक शातिनिकेतनकी वृद्धि रुक नही सकती। वहा प्रत्येक मनुष्यकी उनके प्रति जो श्रद्धा है वह ऊपर उठानेवाली है, क्योकि वह सहज है। मुझे तो इसने अवश्य ही ऊचा उठाया। कृतज्ञ छात्रो और अध्यापकोने उनको जो उपाधि 'गुरुदेव' की दे रखी है उससे शातिनिकेतनमें उनकी स्थिति ठीक-ठीक व्यक्त होती है। यह स्थिति उनकी इसलिए है कि वह उस स्थान और वहाके समूहमें निमग्न हो गये है, अपनेको भूल गये हैं। मैंने देखा कि वह अपनी प्रियतम कृति 'विश्व-भारती' के लिए जी रहे हैं। वह चाहते हैं कि यह फूले-फले और अपने भविष्यके विषयमें निश्चिन्त हो जाये। इसके बारेमें उन्होने मुझसे देरतक बातचीत की। लेकिन इतना भी उनके लिए काफी नही था, इसलिए जब हम विदा हो रहे थे तब उन्होने मुझे नीचे लिखा बहुमूल्य पत्र दिया.

प्रिय महात्माजी,

आपने आज सुबह ही हमारे कार्यके 'विश्व-भारती'-केंद्रका विहंगावलोकन किया है। मैं नहीं जानता कि आपने इसकी मर्यादाका क्या अंदाज लगाया है। आप जानते हैं कि यद्यपि अपने वर्तमान रूपमें यह संस्था राष्ट्रीय है, तथापि अन्त भावनाकी दृष्टि से यह एक सार्वदेशिक—अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है और अपने साधनोंके अनुसार भरसक शेष जगतको भारतकी संस्कृतिका आतिथ्य प्रदान करती है।

एक बड़े गाढ़े अवसरपर आपने बिल्कुल टूटनेसे इसे बचाया और अपने पांवपर खड़े होनेमें इसकी सहायता की; आपके इस मित्रतापूर्ण कार्यके लिए हम आपके निकट सदा आभारी हैं।

और अब शांतिनिकेतनसे आपके विदा होनेके पहले मैं आपसे जोरदार अपील करता हूं कि यदि आप इसे एक राष्ट्रीय संपत्ति समझते हैं तो इस संस्थाको अपने संरक्षणमें लेकर इसे स्थायित्व प्रदान करें। 'विश्वभारती' उस नौकाके समान है जो मेरे जीवनके सर्वोत्तम रत्नोंसे भरी हुई है और मुझे आशा है कि अपनी रक्षाके लिए अपने देशवासियोंसे यह विशेष देख-रेख पानेका दावा कर सकती है।

प्रेमपूर्वक

रवींद्रनाथ ठाकुर

इस संस्थाको अपने संरक्षणमें लेनेवाला मैं कौन होता हूं? चूंकि यह एक ईमानदार आत्माकी कृति है, इसलिए ईश्वरका संरक्षण इसके साथ है। वह कोई दिखावेकी चीज नहीं है। गुरुदेव स्वयं सार्वदेशिक—अंतर्राष्ट्रीय हैं, क्योंकि वह सच्चे रूपमें राष्ट्रीय हैं। इसलिए उनकी संपूर्ण कृतियां सार्वदेशिक हैं और 'विश्वभारती' उन सबमें श्रेष्ठ है। मुझे इसमें किसी तरहका संदेह नहीं कि जहांतक आर्थिक बोझका सबब है इसके भविष्यके बारेमें गुरुदेवको संपूर्ण चिंतासे मुक्त कर देना चाहिए।

उनकी हृदयग्राही अपीलके जवाबमें जो कुछ सहायता करने लायक मैं हू, करनेका मैंने उनको वचन दिया है। (ह० से०, २-३-४०)

. . . .

"मैं यहा आप लोगोके लिए कोई अतिथि या महमान बनकर नही आया हू। शातिनिकेतन तो मेरे लिए घरसे भी अधिक है। जब १९१४ में मैं इगलैडसे लौटनेवाला था तब यही तो मेरे दक्षिण अफ्रिकावाले कुटुब-का प्रेमपूर्वक आतिथ्य हुआ था और यहा मुझे भी करीब एक महीनेतक आश्रय मिला था। जब मैं आप सब लोगोको अपने सामने एकत्रित देखता हू तो उन दिनोकी याद मेरे हृदयपर छा जाती है। मैं कितना चाहता हू कि यहा ज्यादा दिन ठहरू, पर अफसोस कि यह सभव नही। यहा कर्तव्यका प्रश्न है। उस दिन एक मित्रको एक पत्रमे मैंने लिखा था कि शातिनिकेतन और मलिकदा की यह यात्रा मेरे लिए तीर्थ-यात्रा है। सचमुच इस बार शातिनिकेतन मेरे लिए 'शाति' का 'निकेतन' सिद्ध हुआ। मैं यहा राजनीतिकी सब चिंता और झझट छोडकर मात्र गुरुदेवके दर्शन और आशीर्वाद लेने आया हू। मैंने अक्सर एक कुशल भिक्षुक होनेका दावा किया है। लेकिन आज गुरुदेवका मुझे जो आशीर्वाद मिला है उससे बढकर दान मेरी झोलीमें कभी किसीने नही डाला। मैं जानता हू कि उनका आशीर्वाद तो मुझे हमेशा ही है। मगर आज मेरा खास सौभाग्य है कि उन्हीके हाथो रूबरू मुझे आशीर्वाद मिला और इस कारण मेरे हर्ष-का पार नही। (ह० से०, ३०-३-४०)

. . .

डा० रवीन्द्रनाथ टैगोरके निधनमे हमने न केवल अपने युगके सबसे बडे कविको ही, बल्कि एक उत्कट राष्ट्रवादीको, जो कि मानवताका पुजारी भी था, खो दिया है। शायद ही कोई ऐसी सार्वजनिक प्रवृत्ति होगी, जिसपर उनके शक्तिशाली व्यक्तित्वकी छाप न पडी हो। शाति-निकेतन और श्रीनिकेतनके रूपमे उन्होने समस्त राष्ट्रके लिए ही नही,

अपितु समस्त ससारके लिए विरासत छोडी है । प्रभु उस महान् आत्माको शाति दें और शातिनिकेतनके जिन सचालकोपर इसका उत्तरदायित्व आ पडा है, वे उसके योग्य सिद्ध हो (७-८-४१)

• • • •

१७ तारीख गुरुदेवका श्राद्ध-दिवस है । जो लोग श्राद्धको धार्मिक महत्व देते है, वे निसदेह उस दिन निर्जल उपवास करेंगे या केवल फलोंपर रहेंगे और अपना समय प्रार्थनामें वितायेंगे । प्रार्थना व्यक्तिगत रूपमें की जा सकती है अथवा सामूहिक रूपमें । प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्रामके निवासी, जिन्होंने उनके उस ऊचा उठानेवाले सदेशको सुना है, जो उन्होंने अपनी कृतियोद्वारा दिया तथा जिसे उन्होने अपने जीवनमें जिया, सुविधानुसार किसी समय एकत्र होगे और उस दिव्यजीवनके बारेमें चितन करेंगे और अपने आपको देश-सेवाके लिए समर्पित कर देंगे ।

गुरुदेवका ध्येय शाति और सद्भावना था । वे साम्प्रदायिक बधनोसे अपरचित थे । इसलिए मैं आशा करता हू कि सब वर्ग एक स्वरसे इस पवित्र दिनको मनायेंगे और साम्प्रदायिक ऐक्यको बढावा देंगे ।

मैं लोगोको यह भी याद दिलाना चाहूगा कि दीनबधु-स्मारक-कोषका अधिकाश अभी इकट्ठा किया जाना है । यह कहते दु ख होता है कि यह कोष अब गुरुदेव-स्मारक-कोष भी बन गया है, कारण कि स्मारकके लिए इकट्ठा किया जानेवाला सब धन केवल शातिनिकेतनके, जिसमें विश्वभारती और श्रीनिकेतन भी सम्मिलित है, सचालन और सवर्द्धनके लिए व्यय किया जायगा । इससे गुरुदेवके लिए अलग और विशेष स्मारककी आवश्यकता समाप्त नहीं हो जाता । लेकिन इसपर विचार करना उस समयतक विडम्बनामात्र होगी जबतक कि वह स्मारक पूरा न हो जाय, जिसका बीजारोपण स्वय गुरुदेवने किया था । (१२-८-४१)

• • • • • • • •

दीनबधु एड्रयूज-स्मारक और गुरुदेव-स्मारक दोनो पर्यायवाची शब्द है। गुरुदेवने दीनबधु-स्मारकका आरभ किया था, लेकिन उसकी पूर्तिके पहले ही वे दीनबधुके अनुगामी बन गये। इसलिए दीनबधुका स्मारक अब गुरुदेवका भी स्मारक बन गया है। स्मारकका हेतु इन दो महान आत्माओ-के अनुरूप ही है। शातिनिकेतन, विश्वभारती और श्रीनिकेतनकी समृद्धि और रक्षा ही वह हेतु है। ये तीनो सस्थाए वास्तवमें एक ही है। यह बडे दु ख और शर्मकी बात है कि पाच लाखकी यह छोटी-सी रकम धनिको, विद्यार्थियो या मजदूरोकी ओरसे अभी तक इकट्ठा नही हो पाई है। हर कोई यह मानता है कि गुरुदेवके और उनकी सस्थाके कारण हिंदुस्तानको वह यश और प्रतिष्ठा प्राप्ति हुई है जो किसी व्यक्ति या सस्थाके कारण उसे कभी प्राप्त नही हुई। शातिनिकेतनका ही यह प्रभाव था कि जिससे प्रभावित होकर चीनके सेनाध्यक्ष चागकाई शेक और श्रीमती चागकाई शेकने उसे इतनी बडी रकम भेट की थी। शातिनिकेतनमें जो काम हो रहा है, उसको देखते हुए उसका खर्च न कुछ-सा है। कारण यह है कि जो लोग शुद्ध अवैतनिक काम नही करते, वे भी अपेक्षाकृत कम वेतन लेकर काम कर रहे है। अबतक स्मारक निधिमे कुल करीब एक लाख रुपए इकट्ठे हुए है। मुझे आशा है कि स्मारककी बाकी रकम जल्दी ही जमा हो जायगी और मुझको धन-सग्रहके लिए दौरा करनेकी कोई जरूरत न रह जायगी। स्मारककी रकमको पूरी करनेके लिए मैं वचनबद्ध हू। जब गुरुदेव मृत्यु-शय्यापर थे, मैंने उन्हें अपने आखिरी पत्रमें लिखा था कि अगर ईश्वरकी मर्जी हुई तो मैं दीनबधु-स्मारककी पूरी रकम वसूल कर लूगा। दीनबधुको शातिनिकेतनकी आर्थिक स्थितिकी चिंता दिन-रात बनी रहती थी। वे इस चिंताको मेरे पास बतौर धरोहरके छोड गये है। हिंदुस्तानके और मानवताके इन दो सेवकोकी इस पुकारकी मैं जरा भी उपेक्षा नही कर सकता। जिनके मनमें इन दोनो महापुरुषोकी स्मृतिके लिए आदर है और जो गुरुदेवकी सजीव कृतिके मूल्यको समझते है, उनसे निवेदन

है कि वे स्वेच्छासे लिये हुए इस दायित्वको निवाहनेमें मेरी मदद करें।
(ह० से०, २६-४-४२)

... . .

गुरुदेवकी देह खाकमें मिल चुकी है, लेकिन उनके अदर जो जोत थी, जो उजेला था, वह तो सूरजकी तरह था, जो तवतक वना रहेगा जवतक धरतीपर जानदार रहेंगे। गुरुदेवने जो रोशनी फैलाई वह आत्माके लिए थी। सूरजकी रोशनी जैसे हमारे शरीरको फायदा पहुचाती है, वैसे गुरुदेवकी फैलाई रोशनीने हमारी आत्माको ऊपर उठाया है। वे एक कवि थे और प्रथम श्रेणीके साहित्यिक थे। उन्होने अपनी मातृभाषामें लिखा और सारा वगाल उनकी कविताके झरनेसे काव्यरसका गहरा पान कर सका। उनकी रचनाओके अनुवाद वहुत-सी भाषाओमें हो चुके है। वे अग्रेजीके भी वहुत वडे लेखक थे और शायद विना अग्रेजी जाने ही वे उस जवानके इतने वडे लेखक वन गये थे। मदरसेकी पढाई तो उन्होने की थी, लेकिन युनिवर्सिटीकी कोई डिग्री उन्होने नही ली थी। वे तो वस गुरुदेव ही थे। हमारे एक वाइसरायने उनको एशियाका कवि कहा था। उससे पहले किसीको ऐसी पदवी नही मिली थी। वे समूची दुनियाके भी कवि थे। यही क्यो, वे तो ऋषि थे। हमारे लिए वे अपनी 'गीताजलि' छोड गये है, जिसने उनको सारी दुनियामें मशहूर कर दिया। तुलसीदासजी हमारे लिए अपनी अमर रामायण छोड गये है। वेदव्यासजीने महाभारतके रूपमें हमारे लिए मानव-जातिका इतिहास छोडा है। ये सव निरे कवि नही थे। ये तो गुरु थे। गुरुदेवने भी सिर्फ कविके नाते ही नही, ऋषिकी हैसियतसे भी लिखा है। लेकिन सिर्फ लिखना ही उनकी अकेली खासियत नही थी। वे एक कलाकार थे, नृत्यकार थे और गायक थे। वढिया-से-वढिया कलाम जो मिठास और पवित्रता होनी चाहिए, वह सव उनमें और उनकी चीजोमें थी। नई-नई चीजें पैदा करनेकी उनकी ताकतने हमको शातिनिकेतन,

श्रीनिकेतन और विश्वभारती जैसी सस्थाएं दी है। अपनी इन सस्थाओंमें वे भावरूपसे विराजमान है, और ये अकेले बगालको ही नही, बल्कि समूचे हिंदुस्तानको उनकी विरासतके रूपमें मिली है। शातिनिकेतन तो हम सबके लिए असलमें यात्राका एक धाम ही बन गया है। गुरुदेव अपने जीतेजी इन सस्थाओको वह रूप नही दे पाये जो वे देना चाहते थे, जिसका वे सपना देखते थे। कौन है, जो ऐसा कर पाया हो? आदमीके मनोरथको पूरा करना तो भगवानके हाथमें है। फिर भी ये सस्थाए हमें उनकी कोशिशोंकी याद दिलायेंगी और हमेशा हमको यह बताती रहेंगी कि गुरुदेवके मनमें अपने देशके लिए कितनी गहरी प्रीति थी और उन्होंने उसकी कितनी-कितनी सेवाए की है। उनके रचे कौमी गीतको आप अभी-अभी सुन चुके है। हमारे देशके जीवनमें इस गीतकी अपनी एक जगह बन गई है। हजारो-लाखो लोग एकसाथ इसकी प्रेरणा पहुचानेवाली कडियोको अक्सर गाते रहते है। यह सिर्फ गीत ही नहीं है, बल्कि भक्ति-भावसे भरा भजन भी है। (ह० से०, १९-५-४६)

: ७२ :

जनरल डायर

आर्मी कौसिलने जनरल डायरको समझकी भूलका दोषी ठहराया और परामर्श दिया कि उसे सरकारी सेनामें कही नौकरी न मिले। मि० माटेगूने भी जनरल डायरके आचरणकी कडी आलोचना करनेमें कोई बात उठा नही रखी। इसपर भी किसी कारणवश मुझसे यह कहे बिना रहा नही जाता कि जनरल डायर ही सबसे बडा अपराधी नही है। उसकी बर्बरता स्पष्ट है। आर्मी कौसिलके सामने जनरल डायरने अपने बचावकी

जो बातें कही हैं, उनमेंसे हरएकमें उसकी महा नीच तथा असैनिक कायरता-के चिह्न पाये जाते हैं। निहत्ये स्त्री, पुरुष और बच्चोंको जो खेल-तमाशा तथा छुट्टी मनानेका ही काम जानते थे, उसने बागी सेना बताया है। जनरल डायरने इसलिए अपनेको पंजाबका रक्षक बताया है कि उसने घिरे हुए आदमियोंको खरहोंकी तरह गोलियोंसे मार डाला। ऐसा मनुष्य योद्धा कहलानेके योग्य नहीं है। उसके कार्यमें कोई वीरता नहीं पाई जाती। उसने कोई जोखिम नहीं उठाई। बिना छेड़-छाड़के और बिना सूचना दिये ही उसने गोलियां चलाईं, यह समझकी भूल नहीं है। कल्पित विपदके सामने यह उसकी थरथराहट है। इससे बहुत बुरी अयोग्यता तथा कठोर हृदयता ही प्रकट होती है। किंतु जनरल डायर पर जो खर्च किया गया है वह बहुत करके बे-मार्ग हुआ है। इसमें संदेह नहीं कि जनरल डायरकी गोलीबारी भयंकर थी। उसकी करतूतसे जितने निर्दोष आदमी मरे, वह घटना भी बडी शोकजनक थी। किंतु पीछे धीरे-धीरे जो अत्याचार, जो बेइज्जती और जो धरपकड हुई वह बहुत बुरी और आत्माका नाश करनेवाली थी और जिन अफसरोंने यह कार्य किया उन्हें जलियांवाला बागमें हत्याएं करनेवाले जनरल डायरकी अपेक्षा अधिक दोषी समझना चाहिए। जनरल डायरने तो थोड़ेसे आदमियोंको ही मार डाला, पर इसके बाद अत्याचार करने-वाले अफसरोंने राष्ट्रके प्राण हर लिये। कर्नल फ्रैंक जानसन बड़ा भारी अपराधी है, पर कौन आदमी इसका नाम लेता है? इसने निर्दोष लाहौरमें आतंक फैला दिया और अपनी निष्ठुर आज्ञासे फौजी कानूनके समस्त अफसरोंको कड़ी कार्रवाई करनेको बाध्य किया। किंतु मुझे इस जान-सनपर भी उतना कहना नहीं है। पंजाब तथा भारतके समस्त मनुष्योंका पहला कर्तव्य है कि वे कर्नल ओब्रायन, मि० वास्वर्थ स्मिथ, राय श्रीराम तथा मि० मलिक खांको नौकरीसे निकाल बाहर करावें। ये अभी तक सरकारी नौकरीमें बने हैं। इनका दोष वैसा ही सिद्ध हुआ है जैसा जनरल डायरपर

सिद्ध किया गया है। यदि हम सतुष्ट होकर पंजाबके शासनको अन्य अत्याचारियोसे परिष्कृत करना भूल जाय तो हम अपने कर्तव्यमें चूक जायेंगे। यह केवल मच परसे व्याख्यान देने या प्रस्ताव पास करनेसे नही होगा। यदि हम सरकारी कर्मचारियोपर प्रभाव डालकर उन्हें यह दिखाना चाहें कि वे प्रजाके मालिक नही, बल्कि रक्षक और नौकर हैं जो बुरा आचरण करनेपर अपने पदपर रह नही सकते तो हमें खूब कड़े उपायका अवलंबन करना चाहिए। (म० गा०—रामचद्र वर्मा पृष्ठ ४०२)

: ७३ :

मिस डिक

टाइप-राइटरोके एजेंटसे मेरा कुछ परिचय था। मै उससे मिला और कहा कि यदि कोई टाइपिस्ट (भाई या बहन) ऐसा हो जिसे 'काले' आदमीके यहा काम करनेमें कोई उज्र न हो तो मेरे लिए तलाश कर दें। दक्षिण-अफ्रिकामें लघु-लेखन (शॉर्टहैंड) अथवा टाइपिंगका काम करने-वाली अधिकाश स्त्रिया ही होती है। पूर्वोक्त एजेंटने मुझे आश्वासन दिया कि मै एक शोर्टहैंड-टाइपिस्ट आपको खोज दूगा। मिस डिक नामक एक स्कॉच कुमारी उसके हाथ लगी। वह हाल ही स्काटलैंडसे आई थी। जहा भी कही प्रामाणिक नौकरी मिल जाय वहा करनेमें उसे कोई आपत्ति न थी। उसे काममे लगनेकी भी जल्दी थी। उस एजेंटने उस कुमा-रिकाको मेरे पास भेजा। उसे देखते ही मेरी नजर उसपर ठहर गई। मैंने उससे पूछा—

"तुमको एक हिंदुस्तानीके यहा काम करनेमें आपत्ति तो नही है?"

उसने दृढताके साथ उत्तर दिया—"बिलकुल नहीं।"

"क्या वेतन लोगी ?"

"साढे सत्रह पौंड अधिक तो न होंगे ?"

"तुमसे मैं जिस कामकी आशा रखता हूं वह ठीक-ठीक कर दोगी तो इतनी रकम बिलकुल ज्यादा नहीं है। तुम कब कामपर आ सकोगी ?"

"आप चाहें तो अभी।"

इस बहनको पाकर मैं बडा प्रसन्न हुआ और उसी समय उसे अपने सामने बैठकर चिट्ठियां लिखवाने लगा। इस कुमारीने अकेले मेरे कारकुनका ही नहीं, बल्कि सगी लडकी या बहनका भी स्थान मेरे नजदीक सहज ही प्राप्त कर लिया। मुझे उसे कभी किसी बातपर डांटना-डपटना नहीं पडा। शायद ही कभी उसके काममें गलती निकालनी पडी हो। हजारों पौंडके देन-लेनका काम एक बार उसके हाथमें था और उसका हिसाब-किताब भी वह रखती थी। वह हर तरहसे मेरे विश्वासका पात्र हो गई थी। यह तो ठीक; पर मैं उसकी गुह्यतम भावनाओंको जानने योग्य उसका विश्वास प्राप्त कर सका था और यह मेरे नजदीक एक बड़ी बात थी। अपना जीवन-साथी पसंद करनेमें उसने मेरी सलाह ली थी। कन्या-दान करनेका सौभाग्य भी मुझीको प्राप्त हुआ था। मिस डिक जब मिसेज मैकडॉनल्ड हो गईं तब उन्हें मुझसे अलग होना आवश्यक था। फिर भी विवाहके बाद भी, जब-जब जरूरत होती मुझे उनसे सहायता मिलती थी। (आ० क०, १९२७)

: ७४ :

रेवरेंड डुड नीड्डु

एक तीसरे ख्यातनामा पादरी भी थे। उन्होने पादरीपन छोडकर पत्रका सपादन ग्रहण किया था। आप ब्लुमफोटीनमे प्रकाशित होनेवाले 'फ्रैण्ड' नामक दैनिकके सपादक रेवरेड डुडनीड्डु है। उन्होने गोरोके द्वारा अपमानित होकर भी अपने पत्रमें भारतीयोका पक्ष किया था। दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वक्ताओमे उनकी गणना होती थी। (द० अ० स० १९२४)

: ७५ :

श्री जोसेफ डोक

जोसेफ डोक वैप्टिस्ट सप्रदायके पादरी थे। दक्षिण अफ्रीकामें आनेसे पहले वे न्यूजीलेंडमें थे। इस घटना[1] के छ महीने पहले की बात है, एक दिन वह मेरे दफ्तरमें आये और अपना कार्ड भेजा। उसमें 'रेवरेण्ड' विशेषणका उपयोग किया गया था। इसपरसे मैंने झूठमूठ ही यह कल्पना कर ली कि जिस प्रकार अन्य कितने ही पादरी मुझे ईसाई बननेका उपदेश करने या आदोलन बद करनेको कहनेके लिए आते है, उसी प्रकार अथवा वुजुर्ग बनकर मेरे साथ सहानुभूति दिखानेके लिए वह आय होगे। पर ज्योही मि० डोक अदर आये और वातचीत करने लगे त्योही कुछ

---

[1] दक्षिण अफ्रीकाके पहले समझौतेके अवसर पर मीर आलम द्वारा पिटनेकी घटना।

मिनटोमें ही मैंने अपनी भूलको समझ लिया और दिल हीमें मैंने उनसे क्षमा माग ली। उस दिनसे हम वडे मित्र वन गए। युद्ध-सवधी तमाम समाचारोंसे उन्होंने अपनेको परिचित वताया और कहा "इस युद्धमें आप मुझे अपना मित्र समझिए। मुझसे जो कुछ सेवा वनेगी, वह सव मैं अपना धर्म समझकर करनेकी इच्छा रखता हू। ईसाके जीवनादर्शका चितन-मनन करके मैंने तो यही सीखा है कि आपत्कालमें दीन-दुखियोका साथ देना चाहिए।" यह हमारा पहला परिचय था। इसके वाद दिनोदिन हमारा स्नेह-सवध वढता ही गया। . .पर डोक-कुटुवने मेरी जो सेवा की, उसका वर्णन करनेसे पहले उनका थोडा-वहुत परिचय दे देना भी आवश्यक था। रात हो या दिन, कोई-न-कोई मेरे पास जरूर वैठा रहता था। जवतक मैं उनके घरमें रहा तवतक उनका मकान केवल एक धर्मशाला ही वन गया था। भारतीयोमें फेरीवाले लोग भी थे। उनके कपड़े मजदूरोंके-जैसे और मैले भी रहते। उनके साथमें एक गठरी या टोकरी भी अवश्य रहती। जूतोपर सेर भर धूल भी। मि० डोकके मकानपर ऐसे लोगोंसे लगाकर अध्यक्ष तकके सभी दरजेके लोगोंकी एक भीड़ लगी रहती। सव मेरा हाल पूछने और डाक्टरकी आज्ञा मिलनेपर मुझसे मिलनेके लिए चले आते। सभीको वे समान भावसे और सम्मान-पूर्वक अपने दीवानखानेमें वैठाते और जवतक मैं उनके यहा रहा, तवतक उनका सारा समय मेरी शुश्रूषामें और मुझसे मिलनेके लिए आनेवाले सैकडो सज्जनोंके आदर-सत्कार हीमें जाता। रातको भी दो-तीन वार मि० डोक चुपचाप मेरे कमरेमें आकर जरूर देख जाते। उनके घरपर मुझे एक दिन भी ऐसा खयाल नही हुआ कि यह मेरा घर नही, या मेरे सवधी होते तो इससे अच्छी सेवा करते। पाठक यह भी खयाल न कर लें कि इतने जाहिरा तौरपर भारतीय आदोलनका पक्ष ग्रहण करने तथा मुझे अपने घरमें स्थान देनेके कारण उन्हें कुछ सहना न पडा होगा। वे अपने पथके गोरोंके लिए एक गिरजाघर चला रहे थे।

उनकी आजीविका इन पथवालोके हाथोंमे थी। सभी लोग तो उदार दिल-के होते नही है । उन लोगोंके दिलमे भी भारतीयोके खिलाफ कुछ भाव थे ही । पर डोकने इसकी कोई परवा नही की। हमारे परिचय-के आरभहीमे एक दिन मैने इस नाजुक विषयपर चर्चा छेडी थी । उनका उत्तर यहा लिख देने योग्य है । उन्होने कहा—

"मेरे प्यारे दोस्त, ईसाके धर्मको आपने क्या समझ रखा है ? मै उस पुरुषका अनुयायी हूँ जो अपने धर्मके लिए फासी पर लटक गया और जिसका प्रेम विश्वव्यापी था । जिन गोरोंके मुझे छोड़ देनेका आपको डर है, उनकी आंखोमें ईसाके अनुयायीकी हैसियतमें ज़रा भी मै शोभा पाना चाहूँ तो मुझे जाहिरा तौरसे अवश्य ही इस युद्ध-में भाग लेना चाहिए और इसके फलस्वरूप यदि वे मेरा त्याग भी कर दें तो मुझे इसमें जरा भी बुरा न मानना चाहिए । इसमें शक नहीं कि मेरी आजीविकाका आधार उनपर है; पर आप यह कदापि न समझ बैठें कि आजीविकाके लिए मैने उनसे यह सबंध किया है या वे ही मेरी रोजी देनेवाले हैं। मेरी रोजीका देनेवाला तो परमात्मा है। ये है केवल निमित्तमात्र । मेरा उनका सम्बन्ध होते समय हमारा उनका यह ठहराव हो चुका है कि मेरी धार्मिक स्वतन्त्रतामें कोई हस्तक्षेप न करेगा। इसलिए आप मेरी ओरसे निश्चिन्त रहें। मै भारतीयों पर अहसान करनेके लिए इस युद्धमें सम्मिलित नहीं हो रहा हूँ। मै तो इसे अपना धर्म समझ-कर ही इसमें भाग ले रहा हूँ। पर असल बात यह है कि मैने हमारे गिरजाके डीनके साथ बातचीत करके भी इस बातका खुलासा कर लिया है । मैंने उन्हें यह स्पष्ट कह दिया है कि अगर मेरा भारतीयों-से सम्बन्ध रखना आपको पसन्द न हो तो आप खुशीसे मुझे रुखसत दे सकते हैं और दूसरा पादरी तलाश कर सकते है। पर उन्होंने इस विषयमें मुझे बिल्कुल निश्चिन्त कर दिया है, बल्कि और उत्साहित

किया है। आपको यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि सभी गोरे आपकी तरफ एकसी तिरस्कारकी नजरसे ही देखते हैं। आप नहीं जानते कि अप्रत्यक्ष रूपसे आपके विषयमें वे कितना सद्भाव रखते हैं। इसे तो मैं ही जान सकता हूं और आपको भी यह कुबूल करना होगा।"

इतनी स्पष्ट बातचीत होनेपर फिर मैंने इस नाजुक विषयपर कभी बातचीत नही छेडी। इसके कुछ साल बाद डोक रोडेशियामें अपने धर्म-की सेवा करते हुए स्वर्गवासी हो गये। तब हमारा युद्ध समाप्त नही हुआ था। उनकी मृत्युके समाचार प्राप्त होनेपर उनके पथवालोने अपने गिरजा-घरमें एक सभा निमन्त्रित की थी। उसमें काछलिया तथा अन्य भार-तीयोके साथ-साथ मुझे भी बुलाया गया था। मुझे वहा भाषण देना पड़ा था।

अच्छी तरह चलने-फिरने लायक होनेमे मुझे करीब दस-ग्यारह दिन लगे होगे। ऐसी स्थिति होते ही मैंने इस प्रेमी कुटुबसे विदा मागी। वह वियोग हम दोनोंके लिए बडा दुखदाई था। (द० अ० स०, १९२५)

: ७६ :

श्रीमती ताराबहन

मिस मेरी चेस्ले नामकी एक अग्रेज बहन सन् १९३४में हिंदुस्तानमें थी। उन दिनो बबईमें कांग्रेसका अधिवेशन हो रहा था। जहाजसे उतरते ही वह काग्रेस-केम्पमें पहुची और मेरे झोपड़ेमें आकर उसने मुझसे कहा, "मैं मीरा बहनको जानती हूं और मीरा बहनके साथ ही मैं

यहा आनेवाली थी, पर किसी कारणवश उनके एकाध हफ्ते पहले ही मै विलायतसे रवाना हो गई।" गावोमें रहकर भारतकी सेवा करनेकी उसकी इच्छा थी। उसकी बातचीतसे मै कुछ खास प्रभावित नही हुआ और मुझे लगा कि वह हिंदुस्तानमें कुछ ज्यादा महीने ठहरनेकी नही। पर मेरी यह भूल थी। मिस मेरी बार को, जिन्होने बेतूल (मध्यप्रदेश) से कुछ मील दूर खेडी गावमें पहलेसे ही काम करना शुरू कर दिया था, वह बहन जानती थी। मेरी बार मिस चेस्लेको अपने साथ वर्धा ले आई और कुछ दिन हम सब वहा एक साथ रहे। मिस चेस्लेका निश्चय देखकर तो मै चकित रह गया। मेरी बारके साथ उसने खेडीमें ग्राम-सेवाका कार्य आरभ कर दिया। भारतीय पोशाक पहन ली और अपना नाम ताराबहन रख लिया। खेडीमें उसने इस कदर सख्त परिश्रम-से काम किया कि बेचारी मेरी बार तो देखकर हकबका गई। वह मिट्टी खोदती और सिरपर टोकरी रखकर ढोती। अपना भोजन उसने इतना सादा बना लिया था कि उसका स्वास्थ्यतक खराब हो गया। कनाडासे काफी पैसा आता था, पर उसमेंसे वह सिर्फ दस रुपयेके लगभग ही अपने लिए रखती और बाकी सब ग्राम-उद्योग-सघको या हिंदुस्तानके उन भाई-बहनोको दे देती थी, जिनके सपर्कमें वह आती थी और जो उसे मालूम होते थे कि आगे चलकर वे अच्छे ग्राम-सेवक बन सकते है और जिन्हें रुपये-पैसेकी कुछ जरूरत होती थी। मैंने उसे बहुत ही निकटसे देखा। उसकी उदरताकी कोई सीमा नही थी। मानव-प्रकृतिकी अच्छाईमे उसकी बहुत श्रद्धा थी। अपराधको वह भूल जाती थी। वह सच्ची ईसाई थी। क्वेकर संप्रदायकी, पर उसमें कोई सकीर्णता नही थी। दूसरोको अपने धर्ममें मिलानेमें उसका विश्वास नही था। 'लदन-स्कूल आव इकनामिक्स' की वह ग्रेजुएट थी और एक अच्छी शिक्षिका थी। लदनमें कई सालतक उसने एक स्कूल चलाया था। उसने फौरन यह महसूस कर लिया कि हिंदी उसे जरूर सीख लेनी चाहिए और नियमित

रीतिसे वह हिंदीका अभ्यास करने लगी। बोलचालकी हिंदी सीखनेके लिए वह कुछ महीने वर्धाके महिला-आश्रममें आकर रही और वही उसने दो वहनोके साथ गरमियोमें वद्री-केदार जानेका विचार किया। मैंने उसे इस खतरनाक यात्रासे आगाह कर दिया था। लेकिन जव वह एक वार निश्चय कर लेती थी तो ऐसे-ऐसे साहसिक कामोसे उसका मन फेरना मुश्किल होता था। वद्री-केदारकी भयानक यात्रा उसे करनी ही थी। अत अपने मित्रोके साथ उस दिन वह रवाना हो गई। १५ मई को कनखलसे मुझे यह सक्षिप्त तार मिला—"तारावहनका शरीरात हो गया।"

हिंदुस्तानके गावोके लिए उसके हृदयमे जो प्रेम था उसमे कोई उससे वाजी नही मार सकता था। हिंदुस्तानकी आजादीके लिए हममेंसे अच्छे-से-अच्छे लोगोंमें जितना उत्साह है, उससे कम तारावहनमे नही था। दरजेकी छुटाई जहा भी देखती, अधीर हो जाती थी। गरीव स्त्रियो और वच्चोसे वह इतनी आजादीके साथ मिलती थी कि देखते ही वनता था। सेवा करके वह किसीका उपकार कर रही है, यह भावना तो उसमें थी ही नही। किसीसे उसने अपनी सेवा नही कराई, किंतु कोई भी हो, उसकी सेवा वह अत्यत उत्साहके साथ करती थी। उसने अपना अहकार धो डाला था। ऐसी मूक सेविका थी वह कि उसके वाए हाथ-को पता नही लगता था कि दाहिने हाथने क्या काम किया है। ईश्वर उसकी दिवगत आत्माको चिरशाति दे। (ह० से०, २३ ५.३६)

• • • • • •

प्राय हर विलायती डाकमें मेरे पास स्व० तारावहन (मेरी चेस्ली) के सगे-सवधियो और मित्रोके पत्र आते रहते है। इनमें उनके अनेक गुणोका वर्णन रहता है। कई सज्जन उनके अनेक प्रकारके उपकारोका वर्णन करते है, जो स्व० तारावहनने उनपर किये। कुछ लिखते है कि उन्होने हमें फला-फला सहायता देनेका वचन दिया था और कुछ तारावहन द्वारा

छोड़े गये एक या अनेक विरासतनामोका भी उल्लेख करते है। हालाकि महादेव देसाई इन सब पत्र भेजनेवालोको अपने थोड़े समयमें जितना उनसे बन पडता है ब्यौरेवार जानकारी देनेकी कोशिश करते है, फिर भी तमाम सबधित लोगोके लाभके लिए यह जाहिर कर देना जरूरी है कि अपनी शोचनीय मृत्युके कुछ ही समय पहले उन्होने मेरे नामपर जो विरासतनामा लिख दिया था, वह कानूनदा मित्रोंकी रायमें भारतीय विरासतके कानूनके अनुसार वैध नही मालूम होता। पर अगर यह साबित भी हो जाय कि वह वैध है तो भी उनके सगे-संबधियो और मित्रोकी अनुमतिके बिना उनकी सपत्तिका उपयोग हिंदुस्तानी ग्रामोद्योगोके लिए करनेकी मुझे जरा भी इच्छा नही है, यद्यपि यह काम इधर उन्हें अत्यत प्रिय था और इसके लिए वे एक गुलामकी तरह काम करते-करते वीरोचित मृत्युकी गोदमें सदाके लिए सो गईं। इस बातकी बहुत ही कम सभावना है कि स्व० ताराबहनकी वह सब सपत्ति मेरे हाथ आ जायगी, जिसका कि वे अपने जीवनकालमें किसी प्रकारका विनियोग नही कर गईं हैं; पर अगर ऐसा हुआ तो उसे हाथ लगानेसे पहले मै उन तमाम वचनो या वादोकी जाच करूगा जो उन्होने पश्चिममें किये और उन्हे पूरा करनेकी कोशिश भी करूगा।

बैंकसे उनके नामपर आये हुए कई चेक मेरे पास पडे हुए है जिनका भुगतान भी नही हुआ है। उनके परिवारके बहन-भाइयोसे, जिनकी सख्या मै देखता हू, बहुत बडी है, मेरी यह सलाह है कि उनमे जो सबसे नजदीकी हों, राज्यसे इस सबधका एक कानूनी अधिकार-पत्र लेकर वह मेरे पास भेजें ताकि मैं और कुमारी मेरी बार हमारे पास रखी हुई ताराबहनकी चीजें उन्हें सौप सकें। मेरे पास तो अनभुने चेक पडे हुए है और मेरी बारके पास उनके कुछ छोटे-मोटे जेवर है। हिंदुस्तानमें आनेपर अपनी जरूरतें उन्होने इतनी कम कर दी थी कि शायद ही ऐसी कोई चीज बची हो, जिसकी कोई कीमत आ सके। अपने जीवन-कालमें

उन्हे जो कुछ मिला उन्होने ग्राम-सेवाके लिए मुझे दे डाला। उस स्वर्गीय उपकारशीला देवीसे सबध रखनेवाली बातोके विषयमें मेरे पास तो इतनी ही जानकारी है। आशा है, यह उनके तमाम सबधित लोगोके लिए काफी होगी। (ह० से०, २६ ९.३६)

: ७७ :

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

लोकमान्य बाल गगाधर तिलक अब ससारमें नही हैं। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे ससारसे उठ गये। हम लोगोके समयमें ऐसा दूसरा कोई नही जिसका जनता पर लोकमान्यके-जैसा प्रभाव हो। हजारो देशवासियोकी उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह अपूर्व थी। यह अक्षरश सत्य है कि वे जनताके आराध्यदेव थे, प्रतिमा थें, उनके वचन हजारो आदमियोके लिए नियम और कानून-से थे। पुरुषोमें पुरुष-सिंह ससारसे उठ गया। केशरीकी घोर गर्जना विलीन हो गई।

देशवासियोपर उनका इतना प्रभाव होनेका क्या कारण था? मैं समझता हू, इस प्रश्नका उत्तर बडा ही सहज है। उनकी स्वदेशभक्ति ही उनकी इद्रियवृत्ति थी। वे स्वदेशप्रेमके सिवा दूसरा धर्म नही जानते थे।

जन्मसे ही वे प्रजासत्तावादी थे। बहुमतकी आज्ञापर इतना अधिक विश्वास करते थे कि मुझे उससे भयभीत होना पडता था। पर यही वह बात है जिससे जनता पर उनका इतना अधिक प्रभाव था। स्वदेशके लिए वे जिस इच्छा-शक्तिसे काम लेते थे वह बडी ही प्रबल थी। उनका

जीवन वह ग्रथ है जिसे खोलनेकी भी जरूरत नही, वह खुला हुआ ग्रथ है। उनका खाना-पीना और पहनावा विल्कुल साधारण था। उनका व्यक्तिगत जीवन बडा ही निर्मल और बेदाग है। उन्होने अपनी आश्चर्य-जनक बुद्धि-शक्तिको स्वदेशको अर्पण कर दिया था। जितनी स्थिरता और दृढताके साथ लोकमान्यने स्वराज्यकी शुभवार्ताका उपदेश किया उतना और किसीने नही किया। इसी कारण स्वदेशवासी उनपर अटूट विश्वास रखते थे। साहसने कभी उनका साथ नही छोडा। उनकी आशावादिता अदम्य थी। उनको आशा थी कि जीवनकालमें मै ही सपूर्ण रूपसे स्वराज्य स्थापित हुआ देख सकूगा। यदि वे इसे नही देख सके तो उनका दोप नही है। उन्होने निस्सदेह स्वराज्य-प्राप्तिकी अवधि बहुत कम कर दी है। यह अब हम लोगोके लिए है, जो अभीतक जी रहे है, कि अपने द्विगुणित उद्योगसे उसको जहातक हो शीघ्र सत्य कर दिखावें।

मै अग्रेजोको ऐसी धारणा बनानेसे मना करता हू कि लोकमान्य अग्रेजोके शत्रु थे। या अधिकारी वर्ग या अग्रेजी राज्यसे घृणा करते थे।

कलकत्ता-काग्रेसके समय हिंदीके राष्ट्रभाषा होनेके सबधमें उन्होने जो कहा था, उसे सुननेका अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ था। वे काग्रेस पडालसे तुरत ही लौटे थे। हिंदीके सबधमें उन्होने अपने शात भाषणमें जो कहा उससे बडी तृप्ति हुई। भाषणमें आपने देशी भाषाओपर खयाल रखनेके कारण अग्रेजोकी बडी प्रशसा की थी। विलायत जानेपर, यद्यपि उन्हें अग्रेज जूररोके विषयमें बुरा ही अनुभव हुआ तथापि उनका ब्रिटिश प्रजासत्तामें बडा ही दृढ विश्वास हो गया। उन्होने यहा तक कहा था कि पजाबके अत्याचारोका चित्र, 'सिनेमेटोग्राफ' यत्र द्वारा ब्रिटिश प्रजासत्तावादियोको दिखाना चाहिए। मैंने यहा इस बातका उल्लेख इसलिए नही किया कि मै भी ब्रिटिश प्रजासत्तापर विश्वास रखता हू

(जो कि मैं नही रखता) ; पर यह दिखानेके लिए कि वे अग्रेज-जातिके प्रति घृणाका भाव नही रखते थे। पर वे भारत और साम्राज्यकी अवस्थाको इस पिछडी अवस्थामें न तो रखना ही चाहते थे और न रख सकते थे।

वे चाहते थे कि शीघ्र ही भारतसे समानताका भाव रक्खा जाय और इसे वे देशका जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। भारतकी स्वतन्त्रताके लिए उन्होने जो लडाई की उसमें सरकारको छोड नही दिया। स्वतंत्रताके इस युद्धमे उन्होने न तो किसीकी मुरव्वतकी और न किसीकी प्रतीक्षा ही की। मुझे आशा है, अग्रेज लोग उस महापुरुषको पहचानेंगे जिनकी भारत पूजा करता था।

भारतकी भावी सततिके हृदयमें भी यही भाव बना रहेगा कि लोकमान्य नवीन भारतके बनानेवाले थे। वे तिलक महाराजका स्मरण यह कहकर करेंगे कि एक पुरुष था जो हमारे लिए ही जन्मा और हमारे लिए ही मरा। ऐसे महापुरुषको मरना कहना ईश्वरकी निंदा करना है। उनका स्थायी तत्व सदाके लिए हम लोगोमें व्याप्त हो गया। आओ, हम भारतके एकमात्र लोकमान्यका अविनाशी स्मारक अपने जीवनमें उनके साहस, उनकी सरलता, उनके आश्चर्य-जनक उद्योग और उनकी स्वदेश-भक्तिको सीखकर बनावे। ईश्वर उनकी आत्माको शाति प्रदान करे। (य० इ०, ४-८-२०)

... .. .

लोकमान्य तो एक ही थे। लोगोने तिलक महाराजको जो पदवी, जो उच्च स्थान दिया था वह राजाओके दिये खितावोसे लाख गुना कीमती था। देशने आज यह बात सिद्ध कर दिखाई है। यह कहें तो अत्युक्ति नही होगी कि सारी बबई लोकमान्यको पहुचानेके लिए उलट पडी थी।

उनके आखिरी दिनोमें जो दृश्य मैने अपनी आखोसे देखा वह कभी भुलाया नही जा सकता। लोगोके उस अगाध प्रेमका वर्णन करना असंभव है।

फ्रासमें कहावत है कि 'राजा मर गये, राजा चिरजीव रहें।' यह विचार इगलैंड आदि सारे देशोमें प्रचलित है और जब राजाकी मृत्यु होती है तब यह कहावत कही जाती है। उसका भावार्थ यह है कि राजा तो मरता ही नही। राजतत्र एक मिनिट भी बंद नही रहता।

उसी प्रकार तिलक महाराज भी मर नही सकते, न मरे ही। बबईकी जनताने यह दिखला दिया कि वे जीते है और बहुत समय तक जीयेंगे। उनके सगे-सबधियोको भले ही दु ख हुआ हो, उन्होने भले ही आखोंसे मोती टपकाए हो, परतु दूसरे लोग तो उत्सव मनानेके लिए आये थे। बाजे और भजन लोगोको चेतावनी दे रहे थे कि लोकमान्य मरे नही हैं। 'लोकमान्य तिलक महाराजकी जय' ध्वनिसे आकाश गूज उठता था। उस समय लोग इस बातको भूल गए थे कि हम तो तिलक महाराजके देहके दाहकर्मके लिए आये है।

शनिवारकी रातको जब मैंने उनके स्वर्गवासकी खबर सुनी तब मेरा चित्त व्याकुल हो रहा था, पर जयघोष सुनकर मेरी बेचैनी जाती रही। मेरी भी यही धारणा हुई कि तिलक महाराज जीवित हैं। उनका क्षण-भगुर देह छूट गया है, पर उनकी अमर आत्मा तो लाखों लोगोके हृदयमें विराजमान है।

इस जमानेमें किसी भी लोकनायकको ऐसी मृत्युका सौभाग्य प्राप्त नही हुआ था। दादाभाई गये, फिरोजशाह गये, गोखले भी चले गये। सबके साथ हजारो लोग श्मशान तक गये थे, पर तिलक महाराजने तो हद कर दी। उनके पीछे तो सारी दुनिया गई। रविवारको बबई बावली हो गई थी।

यह कैसा चमत्कार! ससारमें चमत्कार नामकी कोई वस्तु ही नही। अथवा यो कहें कि जगत स्वय ही एक चमत्कृति है। बिना कारणके कोई काम नही होता। इस सिद्धातमें कोई अपवाद नही हो सकता। लोकमान्यका हिंदुस्तानपर असीम प्रेम था। इसी कारण लोक-

प्रेमकी भी मर्यादा नहीं रह गई थी। स्वराज्यके मत्रका जितना जप उन्होने किया है उतना दूसरा किसीने नही किया। जिस समय दूसरे लोग यह मानते थे कि हा, अब भारत स्वराज्यके योग्य होगा, उस समय लोकमान्य सच्चे दिलसे मानते थे कि भारत आज ही तैयार है। लोकमान्यकी इस धारणाने लोगोके मनको हर लिया था। ऐसा मानकर वे बैठे नही रहे; बल्कि जिदगीभर उसके अनुसार काम किया। उससे जनतामें नवीन चैतन्य नया जोश पैदा हुआ। उन्होने स्वराज्य प्राप्त करनेकी अपनी अधीरताका स्वाद लोगोको चखाया और ज्यो-ज्यो जनता को उसका स्वाद मालूम होने लगा त्यो-त्यो वह उनकी तरफ खिचती गई।

उनपर अनेक तरहकी आफतें आईं, तरह-तरहके कष्ट उन्हें सहने पडे, तो भी उन्होंने उस मत्रका अनुष्ठान नही छोडा। इस तरह वे कठिन परीक्षाओंमें भी पास हुए। इससे जनताने उन्हें अपने हृदयका सम्राट बनाया और उनका वचन उसके लिए कानूनकी तरह मान्य हो गया।

देहके नष्ट होजानेसे ऐसा महान जीवन नष्ट नही होता, बल्कि देह-पातके बाद से तो वह शुरू होता है।

जिसे हम पूजनीय मानते है उसकी सच्ची पूजा तो उसके सद्गुणोंका अनुकरण करना ही है। लोकमान्य अत्यत सादगीके साथ रहते थे। उनके स्मरणके लिए हमें भी अपना जीवन सादा बनाना चाहिए। हमें उस सीमातक वस्तुओंका त्याग करना चाहिए जिस तकके लिए हमारा मन गवाही देता हो। अपने निश्चित कार्यको करनेसे कभी पीछे नहीं हटना चाहिए। वे विचारशील थे। हमें भी विचार करके ही बोलना और काम करना चाहिए। वे विद्वान् थे, अपनी मातृभाषा और सस्कृतिपर उनका खूब प्रभुत्व था। हमें भी उनकी तरह विद्वान् होनेका निश्चय करना चाहिए। व्यवहारमें विदेशी भाषाका त्याग करके मातृ-भाषाका काफी ज्ञान प्राप्त करना और उसीके द्वारा अपने विचारोको

प्रकट करनेका अभ्यास करना चाहिए। हमें सस्कृत भाषाका अध्ययन करके अपने धर्म-शास्त्रोमें छिपे धर्म-रहस्योको प्रकट करना चाहिए। वे स्वदेशीके प्रेमी थे। हमे भी स्वदेशीका अर्थ समझकर उसका व्यवहार करना चाहिए। उनके हृदयमें अपने देशके प्रति अथाह प्रेम था। हम भी अपने हृदयमें ऐसा प्रेम उदय करें और दिन-प्रतिदिन देश-सेवामें अधिकाधिक तत्पर हो। इसी रीतिसे उनकी पूजा हो सकती है। जिससे इतना न हो सके वे उनकी यादगारके लिए जितना हो सके धन दें और वह स्वराज्यके कार्यमें खर्च किया जाय।

लोकमान्य वर्त्तमान राज्य-मडलके कट्टर शत्रु थे। पर इससे यह न समझना चाहिए कि वे अग्रेजोसे द्वेष करते थे। जो लोग ऐसा समझते हैं वे भूल करते हैं। उन्हीके श्रीमुखसे मैंने कई बार अग्रेजोंकी प्रशसा सुनी है। वे अग्रेजी-राज्यके सबधको भी अनिष्ट नही मानते थे। वे तो सिर्फ अपने को अग्रेजोके बराबर मनवाना चाहते थे। किसीका भी गुलाम बनकर रहना उन्हें पसद न था।

ऐसे प्रौढ देशभक्तके स्वर्गवासका उत्सव हम मना रहे हैं। ऐसे पुरुषका देह चाहे रहे या न रहे, पर देशकी सेवा तो किया ही करता है; देशको आगे बढाया ही करता है। जिसने अपने कार्यकी रूपरेखा बना रक्खी हो, जिसने उसके अनुसार ४५ वर्षोंतक काम किया हो, जिसने अपनी देहको देशसेवाके ही अर्पण कर दिया हो, उसके देहका नाश भले ही हो जाय, उसकी स्मृति कभी नष्ट नही होती, उसकी मृत्यु कभी नही होती। अतएव लोकमान्य तिलक मर कर भी हमे जीवनका मत्र सिखा गये है। (हिं० न०, ६-८-२२)

... ...

पहले मैं लोकमान्यसे मिला। उन्होने कहा—'सब दलोंकी सहायता प्राप्त करनेका आपका विचार बिल्कुल ठीक है। आपके प्रश्नके सबधमें मत-भेद हो नही सकता; परतु आपके कामके लिए किसी तटस्थ

सभापतिकी आवश्यकता है। आप प्रोफेसर भाडारकरसे मिलिये। यो तो वह आजकल किसी हलचलमें पडते नही है, पर शायद इस कामके लिए 'हा' कर लें। उनसे मिलकर नतीजेकी खबर मुझे कीजिएगा। मैं आपको पूरी-पूरी सहायता देना चाहता हू। आप प्रोफेसर गोखलेसे भी अवश्य मिलिएगा। मुझसे जब कभी मिलनेकी इच्छा हो जरूर आइयेगा।"

लोकमान्यके यह मुझे पहले दर्शन थे। उनकी लोक-प्रियताका कारण मैं तुरत समझ गया। (आ० क०, १९२७)

... .

वह मुझे रिपन कालेज ले गया। वहा बहुतेरे प्रतिनिधि ठहरे हुए थे। सौभाग्यसे जिस विभागमें मैं ठहरा था, वही लोकमान्य भी ठहराये गए थे। मुझे ऐसा स्मरण है कि वह एक दिन बाद आये थे। जहा लोकमान्य होते, वहा एक छोटा-सा दरबार लगा ही रहता था। यदि मैं चितेरा होऊं तो जिस चारपाईपर वह बैठते थे उसका चित्र खीचकर दिखा दू, उस स्थानका और उनकी बैठकका इतना स्पष्ट स्मरण मुझे है। उनसे मिलने आनेवाले असख्य लोगोमें एकका नाम मुझे याद है—'अमृत-बाजार पत्रिका' के स्व० मोतीबाबू। इन दोनोका कहकहा लगाना और राजकर्त्ताओके अन्याय-सबधी उनकी बाते कभी भुलाई नही जा सकती।

. ...

इस विशेष[1] अधिवेशनके अवसरपर मुझे लोकमान्यकी अनुपस्थिति बहुत ज्यादा खटकी थी। आज भी मेरा यह मत है कि अगर वह जिंदा रहते तो अवश्य ही कलकत्तेके प्रसगका स्वागत करते। लेकिन अगर यह नही होता और वह उसका विरोध करते तो भी वह मुझे अच्छा लगता

---

[1] कलकत्ता-अधिवेशन, १९२०

और मैं उससे बहुत-कुछ शिक्षा ग्रहण करता। मेरा उनके साथ हमेशा मत-भेद रहा करता, लेकिन यह मत-भेद मधुर होता था। उन्होंने मुझे सदा यह मानने दिया था कि हमारे बीच निकटका सबध है। ये पक्तिया लिखते हुए उनके अवसान का चित्र मेरी आखोके सामने घूम रहा है। आधी रातके समय मेरे साथी पटवर्धनने टेलीफोन द्वारा मुझे उनकी मृत्यु-की खबर दी थी। उसी समय मैंने अपने साथियोसे कहा था—"मेरी बड़ी ढाल मुझसे छिन गई।" इस समय असहयोगका आदोलन पूरे जोर पर था। मुझे उनसे आश्वासन और प्रेरणा पानेकी आशा थी। आखिर जब असह-योग पूरी तरह मूर्तिमान हुआ था तब उनका क्या रुख होता सो तो दैव ही जाने; लेकिन इतना मुझे मालूम है कि देशके इतिहासकी इस नाजुक घड़ीमें उनका न होना सबको खटकता था। (आ० क०, १९२७)

... ...

आपका यही सवाल है न कि लोग "शठ प्रति शाठ्यम्" को तिलक महाराजका सिद्धात मानते हैं और हमें उनके जीवनमें इस सिद्धातकी प्रतीति कहा तक होती है? हम इस प्रश्नमेंसे बहुत अधिक सार ग्रहण नही कर सकते। हा, इस बारेमें तिलक महाराजके साथ मेरा कुछ दिनो तक पत्र-व्यवहार हुआ था। उनके जीवनके नम्र विद्यार्थी और गुणोके एक पुजारीके नाते मैं कह सकता हू कि तिलक महाराजमें विनोदकी शक्ति थी। विनोदके लिए अग्रेजीमें 'ह्यूमर' शब्द है। अबतक हम इस अर्थमें विनोदका उपयोग नहीं करने लगे है। इसीसे अग्रेजी शब्द देकर अर्थ समझाना पड़ता है। अगर लोकमान्यमें यह विनोद-शक्ति न होती तो वह पागल हो जाते—राष्ट्रका इतना बोझ वह उठाते थे। लेकिन अपनी विनोद-प्रियताके कारण वह स्वय अपनी रक्षा तो कर ही लेते थे, दूसरोको भी विषम स्थितिमेंसे बचा लेते थे। दूसरे, मैंने यह देखा है कि वाद-विवाद करते समय वह कभी-कभी जान-बूझकर अतिशयोक्तिसे भी काम ले-लेते थे। प्रस्तुत प्रश्नके सबधमें मेरा उनका जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह मुझे ठीक-ठीक याद नही, आप

उसे देख लें। "शठ प्रति शाठ्यम्" तिलक महाराजका जीवन-मत्र नही था। अगर ऐसा होता तो वह इतनी लोकप्रियता प्राप्त न कर सकते। मेरी जानमें ससार-भरमें ऐसा एक भी उदाहरण नही है, जिससे किसी मनुष्यने इस सिद्धांतपर अपना जीवन-निर्माण किया हो और फिर भी वह लोकमान्य वन सका हो। यह सच है कि इस वारेमें जितना गहरा मैं पैठता हू, वह नही पैठते थे। हम शठके प्रति शाठ्यका कदापि उपयोग कर ही नही सकते। 'गीता-रहस्य'में एक-दो स्थानोमें, सिर्फ एक-ही दो स्थानोमे, इस बातका थोडा समर्थन जरूर मिलता है। लोकमान्य मानते थे कि राष्ट्रहितके लिए अगर कभी शाठ्यसे, दूसरे शब्दोमें 'जैसे को तैसा' सिद्धातसे, काम लेना पडे तो ले सकते हैं। साथ ही वह यह भी मानते तो थे ही कि शठके सामने भी सत्यका प्रयोग करना अच्छा है, यही सत्य सिद्धात है। मगर इस सवधमें वह कहा करते थे कि साधु लोग ही इस सिद्धातपर अमल कर सकते हैं। तिलक महाराजकी व्याख्याके मुताविक साधु लोगोसे अर्थ वैरागियोका नही, वल्कि उन लोगोसे होता है जो दुनियासे अलिप्त रहते हैं, दुनियादारी-के कामोमें भाग नही लेते। इससे यह अर्थ नही निकलता कि अगर कोई दुनियामें रहकर इस सिद्धातका पालन करे तो अनुचित होगा—हा, वह न कर सके यह दूसरी वात है—वह मानते थे कि शाठ्यका उपयोग करनेका उसे अधिकार है।

लेकिन ऐसे महान् पुरुषके जीवनका मूल्य ठहरानेका हमें कोई अधिकार हो तो हम विवादास्पद वातोसे उसका मूल्य न ठहरावें। लोकमान्यका जीवन भारतके लिए, समस्त विश्वके लिए, एक वहुमूल्य विरासत है। उसकी पूरी कीमत तो भविष्यमें निश्चित होगी। इतिहास ही उसकी कीमतका अनुमान लगावेगा, वही लगा सकता है। जीवित मनुष्यका ठीक-ठीक मूल्य, उसका सच्चा महत्व, उसके समकालीन कभी ठहरा ही नही सकते। उनसे कुछ-न-कुछ पक्षपात तो हो ही जाता है, क्योकि रागद्वेष-पूर्ण लोग ही इस कामके कर्ता भी होते है। सच पूछा जाय तो इतिहासकार भी राग-

द्वेष-रहित नही पाये जाते। गिबन प्रामाणिक इतिहासकार माना जाता है, मगर मै तो उसकी पुस्तकके पृष्ठ-पृष्ठमे पक्षपात अनुभव कर सकता हूं। मनुष्य-विशेष या सस्था-विशेषके प्रति राग अथवा द्वेषसे प्रेरित होकर उसने बहुतेरी बाते लिखी होगी। समकालीन व्यक्तिमें विशेष पक्षपात होनेकी सभावना रहती है। लोकमान्यके महान् जीवनका उपयोग तो यह है कि हम उनके जीवनके शाश्वत सिद्धातोका सदा स्मरण और अनुकरण करें।

तिलक महाराजका देशप्रेम अटल था। साथ ही उनमें तीक्ष्ण न्याय-वृत्ति भी थी। इस गुणका परिचय मुझे अनायास मिला था। १९१७ की कलकत्ता-महासभाके दिनोमे, हिंदी साहित्य सम्मेलनकी सभामें, भी वह आये थे। महासभाके कामसे उन्हे फुर्सत तो कैसे हो सकती थी? फिर भी वह आये और भाषण करके चले गये। मैंने वही देखा कि राष्ट्रभाषा हिंदीके प्रति उनमें कितना प्रेम था। मगर इसमे भी बढ कर जो बात मैंने उनमें देखी, वह थी अग्रेजोके प्रतिकी उनकी न्याय-वृत्ति। उन्होने अपना भाषण ही यो शुरू किया था—"मै अग्रेजी शासनकी खूब निंदा करता हू, फिर भी अग्रेज विद्वानोने हमारी भाषाकी जो सेवा की है, उसे हम भुला नही सकते"। उनका आधा भाषण इन्ही बातोसे भरा था। आखिर उन्होनें कहा था कि अगर हमे राष्ट्रभाषाके क्षेत्रको जीतना और उसकी वृद्धि करना हो तो हमें भी अग्रेज विद्वानोकी भाति ही परिश्रम और अभ्यास करना चाहिए। अपनी लिपिकी रक्षा और व्याकरणकी व्यवस्था-के लिए हम एक बड़ी हद तक अग्रेज विद्वानोके आभारी है। जो पादरी आरभमें आये थे, उनमे पर-भाषाके लिए प्रेम था। गुजरातीमें टेलर-कृत व्याकरण कोई साधारण वस्तु नही है। लोकमान्यने इस बातका विचार भी नही किया कि अग्रेजोकी स्तुति करनेसे मेरी लोकप्रियता घटेगी। लोगोका तो यही विश्वास था कि वह अग्रेजोकी निंदा ही कर सकते है।

तिलक महाराजमे जो त्याग-वृत्ति थी, उसका सौवा या हजारवा भाग भी हम अपनेमें नही बता सकते। और उनकी सादगी? उनके कमरेमे

न तो किसी तरहका फर्नीचर होता था, न कोई खास सजावट। अपरिचित आदमी तो खयाल भी नही कर सकता था कि वह किसी महान् पुरुषका निवास-स्थान है। रगरगमें भिदी हुई उनकी इस सादगीका हम अनुकरण करें तो कैसा हो? उनका धैर्य तो अद्भुत था ही। अपने कर्तव्यमें वह सदा अटल रहते और उसे कभी भूलते ही न थे। धर्मपत्नीकी मृत्युका सवाद पानेपर भी उनकी कलम चलती ही रही।. . . क्या हम तिलक महाराजके जीवनका एक भी ऐसा क्षण बतला सकते है जो भोग-विलासमें बीता हो? उनमें जबर्दस्त सहिष्णुता थी। यानी वह चाहे जैसे उद्दड-से-उद्दड आदमीसे भी काम करवा लेते थे। लोकनायकमें यह शक्ति होनी चाहिए। इसमे कोई हानि नही होती। अगर हम सकुचित हृदय बन जाय और सोच लें कि फला आदमीसे काम लेंगे ही नही, तो या तो हमें जगलमें जाकर बस जाना चाहिए, या घर बैठे-बैठे गृहस्थका जीवन बिताना चाहिए। इसमें शर्त यही है कि स्वय अलिप्त रह सकें।

मुहसे तिलक महाराजका बखान करके ही हम चुप न हो बैठें। काम, काम और काम ही हमारा जीवन-सूत्र होना चाहिए। जब कि हम स्वराज्य-यज्ञको चालू रखना चाहते है, हमें चाहिए कि हम निकम्मे साहित्यका पढना बद कर दें, निरर्थक बातें करना छोड दें और अपने जीवन-का एक-एक क्षण स्वराज्यके काममे बिताने लगें। आप पूछेंगे कि क्या पढाई छोडकर यह काम करे? १९२१ में भी विद्यार्थियोके साथ मेरा यही झगडा था कि तिलक महाराजने क्या किया था? उन्होने जो बडे-बडे ग्रथ लिखे, वे बाहर रहकर नही, जेलमें रहकर लिखे थे। 'गीता रहस्य' और 'आर्कटिक होम' वह जेलमे ही लिख सके थे। बडे-बडे मौलिक ग्रथ लिखनेकी शक्ति होते हुए भी उन्होने देशके लिए उसका बलिदान किया था। उन्होने सोचा, "घरके चारो ओर आग भभक उठी है। इसे जितनी बुझा सकू, उतनी तो बुझाऊ।" उन्होने अगर हजार घडे पानीसे वह बुझाई

हो, तो हम एक ही घडा डालें, मगर डालें तो सही। पढाई आदि आवश्यक होते हुए भी गौण बाते है। अगर स्वराज्यके लिए इनका उपयोग होता हो तो करना चाहिए, अन्यथा इन्हें तिलाजलि देनी चाहिए। इससे न हमारा नुकसान है और न ससारका।

तिलक महाराज अपने जीवन द्वारा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण छोड गये है। जिनके जीवनमेंसे इतनी सारी बातें ग्रहण करने योग्य हों, जिनकी विरासत इतनी जवर्दस्त हो, उनके सबधमें उक्त प्रश्नके लिए गुजाइश ही नही रहती है। हमारा धर्म तो गुणग्राही बननेका है।

आज हमें जो काम करना है, वह मुर्दार आदमियोके करनेसे तो हो नही सकता। स्वराज्यका काम कठिन है। भारतमें आज एक लहर बह रही है। उसमे खिचकर हम भाषण करते है, धीगाधीगी मचाते है, तूफान खडे करते है, मनमाने तौरपर सस्थाओमें घुस जाते है और फिर उन्हें नष्ट करते एव धारासभाओमें जाकर भाषण करते है। तिलक महाराजके जीवनमें ये बातें हमारे देखनेमे भी नही आती। उनके जीवनके जो गुण अनुकरणीय है, सो तो मै ऊपर कह ही चुका हू।[1]

• • •

आप लोगोने तिलक महाराजकी प्रसिद्ध पुस्तक 'गीता-रहस्य' का नाम सुना होगा। उसमे इतना ज्ञान भरा है कि उसके अनेक पारायण करने चाहिए। मैंने वह यरवदा जेलमें पढी थी। यह बात सही है कि मैं उनकी सभी बातोसे सहमत नही हू, पर इसमे कोई सदेह नही कि तिलक महाराज बहुत बडे विद्वान थे और उन्होने सस्कृत साहित्यका बहुत गहरा अध्ययन किया था। उनकी वह गीता पढे मुझे बहुत समय हो गया, इसलिए उनके ठीक शब्द मुझे याद नही है, पर उनके लिखनेका भावार्थ मै बताऊगा। वह बात मुझे बहुत ठीक लगती है।

---

[1]लोकमान्यकी पुण्य तिथिपर गुजरात विद्यापीठमें दिया गया भाषण।

उन्होने एक जगह कहा है कि अग्रेजी भाषामें अतरात्माके लिए 'कान्शस' शब्द अच्छा है ; पर जब यह कहा जाता है कि हम अपने 'कान्शस'के मुताबिक चलते है तब इसका सही अर्थ यह नही होता कि हम अतरात्माके कहनेपर चलते हैं। हमारे वैदिक धर्मके मुताबिक 'कान्शस' सभीमें (जड़-चेतनमें) होता है। पर बहुतोका 'कान्शस' सोया हुआ रहता है, अर्थात् उनकी अतरात्मा मूढ अवस्थामें होती है। तो उस अवस्थामें उसे 'कान्शस' कैसे कहा जाय ? हमारे धर्मके अनुसार मनुष्यकी अतरात्मा तब जाग्रत होती है जब यम-नियमादिका पालन और दूसरी भी बहुत-सी चेष्टा आदि करें। तिलक महाराजकी इस बातको मैने पचा लिया है। शास्त्रकी जो चीज हम पचा सकें वही सार्थक है। जैसे वही आहार हमारे लिए सार्थक बनता है जिसका हम रक्त बनाएं। तो तिलक महाराजकी इस बातको मैंने पचा लिया है, जिसके जरिये कौन-सी आवाज अतरात्माकी है और कौन-सी नही, उसकी परख मै कर लेता हू। (प्रा. प्र., १.६.४७)

: ७८ :

अब्बास तैयबजी

सबसे पहले सन् १६१५ में मै अब्बास तैयबजीसे मिला था। जहा कही मैं गया, तैयबजी-परिवारका कोई-न-कोई स्त्री-पुरुष मुझसे आकर जरूर मिला। ऐसा मालूम पडता है, मानो इस महान और चारो तरफ फैले हुए परिवारने यह नियम ही बना लिया था। हमारे बीच इस अटूट सबधका खास कारण क्या था, यह सिवा इसके मुझे और कुछ मालूम नही कि जिस सुप्रतिष्ठित न्यायाधीशके कारण यह वश प्रसिद्ध है उससे सन् १८६० में मेरी मित्रता हो गई थी, जब कि मै दक्षिण अफ्रीकासे हिंदुस्तान

वापस आया था और बिल्कुल अनजान व्यक्ति था। कुछ लोगोके विचार-में तो मैं सभवत एक दुःसाहसी आदमी था, लेकिन वदरुद्दीन तैयवजी और कुछ अन्य व्यक्ति ऐसे भी थे जिनका यह खयाल नही था।

मगर मुझे तो वडौदाके अब्बास मियाके विषयपर ही आना चाहिए। जब हम एक-दूसरेसे मिलते और मैं उनके मुहकी ओर देखता तो मुझे स्व० जस्टिस वदरुद्दीन तैयवजीका स्मरण हो आता था। हमारी उस मुलाकातसे हमारे बीच जन्मभरके लिए मित्रताकी गाठ वध गई। मैंने उन्हें हरिजनोका मित्र ही नही, बल्कि उन्हीमे का एक पाया। बहुत दिन पहले गोधरामें, शामको हरिजनोकी वस्तीमें होनेवाले एक अस्पृश्यता-विरोधी सम्मेलनमें जब मैंने उन्हे बुलाया तो दर्शकोको बडा आश्चर्य हुआ, लेकिन अब्बास मियाने हरिजनोके काममें उसी उत्साहसे भाग लिया, जैसे कोई कट्टर हिंदू ले सकता है। इतनेपर भी वह कोई साधारण मुसलमान नही थे। इस्लामके लिए उन्होने मुक्तहस्तसे दान दिया और कई मुस्लिम सस्थाओको वह सहायता देते रहते थे। मगर हरिजनोंको मुसलमान बनाने जैसा कोई विचार उनके मनमे नही था। उनके इस्लाममे भूमडलके तमाम महान् धर्मोके लिए गुजाइश थी। इसीलिए अस्पृश्यता-विरोधी-आदोलन-मे वह हिंदुओकी ही तरह उत्साह-पूर्वक भाग लेते थे, और मैं जानता हू कि जबतक वह जिदा रहे तब तक उनका यह उत्साह बराबर वैसा ही बना रहा।

असल बात यह है कि उन्होने आधे मन से कभी कोई काम नही किया। अब्बास तैयवजी अपने मनमें कोई बात छिपाकर नही रखते थे। पजाब-की पुकारका उन्होने तत्क्षण जवाब दिया। उनकी आयुके और ऐसे व्यक्तिके लिए, जिसने जीवनमें कभी कोई मुसीबत नही झेली, जेलोकी सख्तिया बर्दाश्त करना कोई मजाक नही था। लेकिन उनकी श्रद्धाने हरएक कठिनाईको विजय कर लिया। हँसते-हँसाते खेडाके किसानोकी तरह ही सादा जीवन व्यतीत करते, उन्हीका-सा खाना खाते और सब

मौसमोमे उन्हीकी रद्दी-सद्दी गाड़ियोमें सफर करनेकी क्षमतासे अनेक नौजवनोको उनके सामने शर्मिन्दा होना पडा। ऐसी असुविधाओके वारेमें, जिन्हें कि वचाया जा सकता हो, मैंने उनको कभी शिकायत करते हुए नही सुना। 'क्यों?' का प्रश्न करना उनका काम नही था, वह तो काम करने और अपनेको झोक देनेकी वात जानते थे। हालाकि एक समय चीफ जज-की हैसियतसे उन्हें किसीको मृत्यु-दण्ड देने और अपनी आज्ञा-पालन करानेकी सत्ता प्राप्त थी, फिर भी विना किसी उच्चके अनुशासन पालन करनेकी आश्चर्यजनक क्षमता उन्होने प्रदर्शित की। वह मनुष्य-जातिके विरले सेवकोमेंसे थे। भारत-सेवक भी वह इसीलिए थे कि वह मनुष्य-जातिके सेवक थे। ईश्वरको वह दरिद्रनारायणके रूपमें मानते थे। उनका विश्वास था कि परमेश्वर दीन-दुखियोके वीच ही रहता है। अव्वास मियाका शरीर यद्यपि इस समय कब्रमें विश्राम कर रहा है, पर वह मरे नही है। उनका जीवन हम सवके लिए एक स्फूर्ति है, एक प्रेरणा है। (ह० से०, २०-८-३६)

: ७९ :

बदरुद्दीन तैयबजी

मै श्री मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, मनमोहन घोप, वदरुद्दीन तैयवजी इत्यादिकी याद आपको दिला दूगा जिन्होने अपनी कानूनी लियाकत विल्कुल मुफ्त वाटी और अपने देशकी वडी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप शायद मुझे ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमें वडी लवी-लवी फीस लेते थे। मै इस तर्कको इस कारण नही मान सकता कि मनमोहन घोपके सिवा मेरा

और सबसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोने भारतको आवश्यकता पडनेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नही कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई सबध नही है। मैने उनको वडे सतोषसे दीनता-पूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हिं० न०, १२-११-३१)

: ८० :

डॉक्टर दत्त

फोरमन क्रिश्चियन कालेजके प्रिंसिपल डॉक्टर दत्तके देहातसे देशका एक कट्टर राष्ट्रवादी क्रिश्चियन उठ गया है। दक्षिण अफ्रीकासे लौटनेके वाद तुरत ही उनको निकटसे जाननेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। वे स्वर्गीय दीनवधु एण्ड्रूजके एक अतरग मित्र थे। उन्होने अपने हरएक मित्रसे मेरा परिचय करा दिया था और तभी उन्हें सतोष हो पाया था। सन् १९२४ में एकता परिषद्के उन चिंताजनक दिनोमें, जब मै दिल्लीमें २१ दिनका उपवास कर रहा था, उन्होने रात-दिन लगकर काम किया था। दूसरी गोलमेज परिषदके समय भी मैंने उन्हें उतनी ही लगनके साथ काम करते देखा था। देशके इतिहासके इस नाजुक अवसरपर उनका देहात दुगुना कष्टदायक होगा। मै श्रीमती दत्तके साथ अपनी समवेदना प्रकट करता हू। डॉक्टर दत्तके अनेकानेक मित्र इस शोकमें उनके साथ है। (ह० से०, २८-६-४२)

: ८१ :

गोपबन्धुदास

प० गोपबधुदास, जो पहले एम० एल० सी०, वकील इत्यादि थे, अति त्यागी नेता है। उनसे मुझे विदित हुआ है कि ये और उनका दल केवल भात-दालपर गुजारा करते है, घी उन्हे शायद ही मिलता है। असहयोग करनेके अनतर कार्यकर्ताओने अपनी आवश्यकताए एकबारगी कम कर दी है, यहातक कि दस रुपये जैसी छोटी रकमपर ये अपना निर्वाह कर लेते हैं। मुझे तनिक भी सदेह नही कि ऐसे अदम्य उत्साही कार्यकर्ताओके द्वारा स्वराज्य इसी वर्षमें प्राप्त हो सकता है। पडित गोपबधुदासकी एक पाठशाला साखी-गोपालमें पुरीसे १२ मील पर है। यह एक कुज पाठशाला है। यह देखने योग्य है। मैने उसके छात्रो और शिक्षकोके बीच एक दिन बड़े आनदसे काटा। यह खुले मैदानमें शिक्षापद्धतिकी बडी अच्छी परीक्षा है। वहाके कुछ छात्र ज़बर्दस्त कुश्तीबाज है। (य० इ० ३ ४ २१)

: ८२ :

देशबन्धु चित्तरंजन दास

फरीदपुरसे लौटकर सोमवारको ये सस्मरण मै लिख रहा हूं। देशबधुदासके पुराने महलकी छतपर बैठा हुआ हूं। बगालमें आये आज मुझे चार रोज हुए है, परतु इस महलमें मेरे दिलपर पहलेपहल जो चोट लगी है वह अभीतक मुझे छोड नही रही है। मै

जानता था कि यह मकान देशबधुने सार्वजनिक कामके लिए दे दिया है। मुझे पता था कि उनके सिरपर कर्ज था; पर उसके साथ ही मुझे इस बातका भी ज्ञान था कि वे यदि वकालत करे तो थोडे समयमे यह कर्ज अदा करके अपने महलपर कब्जा कर सकते है। पर उन्हें वकालत तो करनी थी नही, या यो कहे कि वे तो विना फीस लिये देशकी वकालत करना चाहते थे। इसलिए महलके सदृश मकानको दे डालनेका ही निश्चय उन्होंने किया और उसका कब्जा ट्रस्टियोको दे दिया। उनकी इच्छा थी कि इस यात्रामे मै कलकत्तेमे तो उन्हीके इसी पुराने मकानपर ठहरू। इसीसे यहा आ कर रहा हू।

परन्तु जानना एक बात है और देखना दूसरी। घरमें प्रवेश करते समय मेरा हृदय रो उठा। आखें छलछला उठी। इस महलके मालिकके बिना और उनकी मालिकीके बिना वह मुझे जेलखाना मालूम हुआ। उसमे रहना मुश्किल हो गया और अभी तक इस भावका प्रभाव मुझपर बना हुआ है।

मै जानता हू कि यह मोह है। मकानका कब्जा देकर देशबन्धुने अपने सिरसे एक बोझ कम किया है। उस मकानसे, जिसमें ये दपती न जाने कहा खो जाय, उन्हे क्या लाभ ? यदि वे मनमें लावे तो झोपडीको राजमहल बना सकते है। दोनोने स्वेच्छासे उसे त्यागा है। इसपर खेद किसलिए ? यह तो हुई ज्ञानकी बात। यह ज्ञान यदि मुझे न हो तो मुझे आजसे ही महल बनानेका उद्यम शुरू करना पडे।

परन्तु देहाध्यास कही जाता है ? ससार कही दासकी तरह करता है ? दुनिया तो यदि महल हो तो उसे चाहती है। पर इस पुरुषने उसका त्याग कर दिया। धन्य है उसे ! मेरे आसू प्रेमके है। चोट भी यह प्रेम ही लगाता है। और स्वार्थ क्यो न हो ? यदि देशबधुके साथ मेरा कुछ भी सबध न होता तो यह आघात न पहुचता। बहुतेरे महल देखे है, जिनके मालिक उन्हें छोड़कर दुनियासे ही चले गये है। परतु उनमें प्रवेश करते

हुए आखोसे आसू नही गिरे। इसलिए यह रोना स्वार्थ-मूलक भी है। चित्तरजन दासने महलका परित्याग भले ही किया हो, पर उनकी सेवाकी कीमत बढ गई है।

परिषद्में देशबधुका शरीर बहुत ही दुर्बल दिखाई दिया। आवाज बैठ गई है। कमजोरी खूब है। सच कहें तो अभी तबीयत ऐसे कामोके योग्य नही हो पाई है। अभी तो डाक्टरोने उन्हें सलाह दी है कि वे शक्ति प्राप्त करनेके लिए या तो यूरोप या दार्जिलिंग जावें, पर वहा तो वे मजबूरीकी अवस्थामे ही जाना चाहते हैं।

. . . देशबधुका भाषण सक्षिप्त और दिलचस्प था। प्रत्येक वाक्यमें अहिंसाकी ध्वनि थी। उन्होने उस भाषणमे साफ तौरपर बताया कि हिंदुस्तानका उद्धार अहिंसामय सग्रामसे ही हो सकता है। इस भाषणके नीचे यदि कोई मुझसे सही करनेके लिए कहे तो मुझे शायद ही कोई वाक्य या शब्द बदलनेकी जरूरत हो।

उनके भाषणके अनुसार ही प्रस्तावोका होना स्वाभाविक था। इससे विषय-समितिमें खासा झगडा भी हुआ। अतमे देशबधुको त्याग-पत्र देना कहने तककी नौबत आगई थी। लेकिन आखिर उनके प्रभावकी जय हुई और परिषद्के महत्वपूर्ण प्रस्ताव निर्विघ्न पास हुए।

. . . .

जब हृदय चोटसे व्यथित होता है तब कलमकी गति कुठित हो जाती है। मैं यहा इस तरह शोकमय वायुमडलमें हू कि तार द्वारा पाठकोके के लिए अधिक कुछ भेजनेमे असमर्थ हू। अभी दार्जिलिंगमें उस महान् देशभक्तके साथ ५ रोज तक मेरा समागम रहा। उसने हम एक दूसरेको पहलेसे अधिक एक-दूसरेके नजदीक कर दिया। मैंने केवल यही अनुभव नही किया कि देशबन्धु कितने महान् थे, बल्कि यह भी अनुभव किया कि वे कितने भले थे। भारतका एक लाल चला गया। हमे चाहिए कि हम स्वराज्य प्राप्त करके उसे पुन प्राप्त करें। (हि० न०, १८ ६ २५)

. . . .

आप लोगोने आचार्य रायसे सुन लिया कि हम लोगोपर कैसा भीषण प्रहार हुआ है। परतु मै जानता हू कि अगर हम सच्चे देशसेवक है तो कितना ही बडा वज्र-प्रहार हो, हमारे दिलको नही तोड सकता। आज सबेरे यह शोकसमाचार सुना तो मेरे सामने दो परस्पर विरुद्ध कर्तव्य आ खड़े हुए। मेरा कर्तव्य था कि पहले जो गाडी मिले उसीसे मै कलकत्ते चला जाता; पर मेरा यह भी कर्त्तव्य था कि आपके निर्द्धारित कार्यक्रम-को पूरा करू। मेरी सेवावृत्तिने यही प्रेरणा की कि यहाका कार्य पूरा किया जाय। यद्यपि मै दूर-दूरसे आये हुए लोगोसे मिलनेके लिए ठहर गया हू तथापि उनके सामने महासभाके कार्यकी विवेचना न करके स्वर्गीय देशबधुका ही स्मरण करूगा। मुझे विश्वास है कि कलकत्ता दौड़ जानेकी अपेक्षा यहाका काम पूरा करनेसे उनकी आत्मा अधिक प्रसन्न होगी।

देशबन्धु दास एक महान् पुरुष थे।[1] मै गत छ वर्षोसे उन्हें जानता हू। कुछ ही दिन पहले जब मै दार्जिलिगसे उनसे विदा हुआ था तब मैंने एक मित्रसे कहा था कि जितनी ही घनिष्टता उनसे बढती है उतना ही उनके प्रति मेरा प्रेम बढता जाता है। मैंने दार्जिलिगमें देखा कि उनके मनमें भारतकी भलाईके सिवा और कोई विचार न था। वे भारतकी स्वाधीनताका ही सपना देखते थे, उसीका विचार करते थे और उसीकी बातचीत करते थे, और कुछ नही। दार्जि-लिगसे विदा होते समय भी उन्होने मुझसे कहा था कि आप बिछुड़े हुए दलोको एक करनेके लिए बगालमें अधिक समय तक ठहरिए, ताकि सब लोगोकी शक्ति एक कार्यके लिए युक्त हो जाय। मेरी बगाल-यात्रामें उनसे मतभेद रखनेवालोने भी विना हिचकिचाहटके इस बातको स्वीकार किया है कि बगालमें ऐसा कोई मनुष्य नही है जो उनका स्थान ले सके।

---

[1] इतना कहते-कहते गाधीजीकी आखोमें आसू आगये और एक-दो मिनट तक कुछ बोल न सके।

वे निर्भीक थे, वीर थे। बगालमे नवयुवकोके प्रति उनका निस्सीम स्नेह था। किसी नवयुवकने मुझे ऐसा नही कहा कि देशबधुसे सहायता मागने पर कभी किसीकी प्रार्थना खाली गई। उन्होने लाखो रुपया पैदा किया और लाखो रुपया बगालके नवयुवकोमें बाट दिया। उनका त्याग अनुपम था, और उनकी महान् बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञताकी बात मै क्या कह सकता हू! दार्जिलिगमें उन्होने मुझसे अनेक बार कहा कि भारतकी स्वाधीनता अहिसा और सत्यपर निर्भर है।

भारतके हिंदुओ और मुसलमानोको जानना चाहिए कि उनका हृदय हिंदू और मुसलमानका भेद नही जानता था। मै भारतके सब अग्रेजोसे कहता हूं कि उनके प्रति उनके मनमें बुरा भाव न था। उनकी अपनी मातृभूमिके प्रति यही प्रतिज्ञा थी—"मै जीऊगा तो स्वराज्यके लिए और मरूगा तो स्वराज्यके लिए।" हम उनकी स्मृतिको कायम रखनेके लिए क्या करें? आसू बहाना सहज है, परतु आसू हमारी या उनके स्वजनो-परिजनोकी सहायता नही कर सकता। अगर हममेंसे हर कोई हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई उस कामको करनेकी प्रतिज्ञा करें जिसमें वे रहते थे तो समझा जायगा कि हमने कुछ किया। हम सब ईश्वरको मानते है। हमें जानना चाहिए कि शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य है। देशबधुका शरीर नष्ट हो गया, परतु उनकी आत्मा कभी नष्ट न होगी। न केवल उनकी आत्मा, बल्कि उनका नाम भी—जिन्होने इतनी बड़ी सेवा और त्याग किया है—अमर रहेगा और जो कोई जवान या बूढा उनके आदर्शपर जरा भी चलेगा वह उनकी यादगार बनाये रखनेमें मदद देगा। हम सबमें उनके जैसी बुद्धिमत्ता नही है, पर हम उस भावको अपनेमें ला सकते है जिससे वे देशकी सेवा करते थे।

देशबधुने पटना और दार्जिलिगमें चरखा कातनेकी कोशिश की थी। मैंने उनको चरखाका पाठ पढाया था और उन्होने मुझसे वादा किया था कि मै कातना सीखनेकी कोशिश करूगा और जबतक शरीर रहेगा तबतक

कातूगा। उन्होने अपने दार्जिलिगके निवास-स्थानको 'चरखाक्लब' बना दिया था। उनकी नेक पत्नीने वायदा किया कि बीमारीकी हालत छोडकर मै रोज आध घटे तक स्वय चरखा चलाऊगी और उनकी लड़की, वहन और वहनकी लडकी तो बरावर ही चरखा कातती थी।

देशबधु मुझसे अक्सर कहा करते—"मै समझता हू कि धारासभामें जाना जरूरी है मगर चरखा कातना भी उतना ही जरूरी है। न सिर्फ जरूरी है, वल्कि विना चरखेके धारासभाके कामको कारगर बनाना असभव है।" उन्होने जवसे खादीकी पोशाक पहनना शुरू किया तवसे मरनेके दिनतक पहनते आए।

मेरे लिए यह कहनेकी वात नही है कि उन्होने हिंदू-मुसलमानोंमें मेल करनेके लिए कितना वडा काम किया था। अछूतोसे वे कितना प्रेम रखते थे। इसके विषयमें सिर्फ वही एक वात कहूगा जो मैंने वारी-सालमे कल रातको एक नाम-शूद्र नेतासे सुनी थी। उस नेताने कहा—"मुझे पहली आर्थिक सहायता देशवधुने दी और पीछे डाक्टर रायने।" आप सव लोग धारासभाओमें नही जा सकते। परतु उन तीन कामोको कर सकते है जो उनको प्रिय थे। मै अपनेको भारतका भक्तिपूर्वक सेवा करनेवाला मानता हू। मै घोषणा करता हू कि मै अपने सिद्धातपर अटल रहकर, आगेसे सभव हुआ तो, देशवधु दासके अनुयायियोको उनके धारा-सभाके कार्यनें पहलेसे अधिक सहायता दूगा। मै ईश्वरसे प्रार्थना करता हू कि वह उनके कामको हानि पहुचानेवाला काम करनेसे मुझे वचाये रक्खे। हमारा धारासभा-सवधी मतभेद बना हुआ था और है। फिर भी हमारा हृदय एक हो गया था। राजनैतिक साधनोमें सदा मतभेद बना रहेगा। परतु उसके कारण हम लोगोको एक-दूसरेसे अलग न हो जाना चाहिए, या परस्पर शत्रु न बन जाना चाहिए। जो स्वदेश-प्रेम मुझे एक कामके लिए प्रेरित करता था वही उनको कुछ दूसरा काम करनेको उत्साहित करता था। और ऐसा पवित्र मत-भेद देशके काममें बाधक

नहीं हो सकता। साधन-संबंधी मतभेद नहीं, बल्कि हृदयकी मलिनता ही अनर्थकारी है। दार्जिलिंगमें रहते समय मैं देखता था कि देशबंधुके दिलमें अपने राजनैतिक विरोधियोंके प्रति नम्रता प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। मैं उन पवित्र बातोंका वर्णन यहां न करूंगा। देशबंधु देश-सेवकोंमें एक रत्न थे। उनकी सेवा और त्याग बेजोड़ था। ईश्वर करे, उनकी याद हमें सदा बनी रहे और उनका आदर्श हमारे सदुद्योगमें सार्थक हो। हमारा मार्ग लंबा और दुर्गम है। हमको उसमें आत्मनिर्भरताके सिवा और कोई सहारा नहीं देगा। स्वावलंबन ही देशबंधुका मुख्य सूत्र था। वह हमें सदा अनुप्राणित करता रहे। ईश्वर उनकी आत्माको शांति दे[1]। (हिं० न०, २५.६.२५)

. . . . .

मनुष्योंमें से एक दिग्गज पुरुष उठ गया। बंगाल आज एक विधवाकी तरह हो गया है। कुछ सप्ताह पहले देशबंधुकी समालोचना करनेवाले एक सज्जनने कहा था, "यद्यपि मैं उनके दोष बताता हूं, फिर भी यह सच है, मैं आपके सामने मानता हूं कि उनकी जगह पर बैठने लायक दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है।" जबकि मैंने खुलनाकी सभामें, जहां कि मैंने पहले-पहल यह दिल दहलानेवाली दुर्वार्ता सुनी, इस प्रसंगका जिक्र किया—आचार्य रायने छूटते ही कहा—"यह बिलकुल सच है। यदि मैं यह कह सकूं कि रवीन्द्रनाथके बाद कविका स्थान कौन लेगा तो यह भी कह सकूंगा कि देशबंधुके बाद नेता का स्थान कौन ले सकता है। बंगालमें कोई आदमी ऐसा नहीं है जो देशबंधुके समीप भी कहीं पहुंच पाता हो।" वे कई लड़ाइयोंके विजयी वीर थे। उनकी उदारता एक दोषकी सीमातक बढ़ी हुई थी। वकालतमें उन्होंने लाखों रुपये पैदा किये, पर उन्हें जोड़कर वे कभी

---

[1] देशबंधुके अवसानका शोक-समाचार मिलनेके बाद खुलनामें दिया गया भाषण।

धनी नही बने, यहा तक कि उन्होंने अपना पैतृक महल भी दे डाला।

१९१९ मे, पजाब महासभा जाच समितिके सिलसिलेमें, उनसे पहले-पहल मेरा प्रत्यक्ष परिचय हुआ। मै उनके प्रति सशय और भयके भाव लेकर उनसे मिलने गया था। दूरसे ही मैंने उनकी धुआधार वकालत और उससे भी अधिक धुआधार वक्तृत्वका हाल सुना था। वे अपनी मोटर-कार लेकर सपत्नीक, सपरिवार आये थे और एक राजाकी शान-बान-के साथ रहते थे। मेरा पहला अनुभव तो कुछ अच्छा न रहा। हम हटर-कमिटीकी तहकीकातमे गवाहिया दिलानेके प्रश्न पर विचार करनेके लिए बैठे थे। मैने उनके अदर तमाम कानूनी बारीकियोको तथा गवाहको जिरहमें तोड़कर फौजी कानूनके राज्यकी, बहुतेरी शरारतोकी कलई खोलनेकी, वकीलोचित तीव्र इच्छा देखी। मेरा प्रयोजन कुछ भिन्न था। मैंने अपना कथन उन्हें सुनाया। दूसरी मुलाकातमें मेरे दिलको तसल्ली हुई और मेरा तमाम डर दूर हो गया। उनको मैने जो कुछ कहा उसको उन्होंने उत्सुकताके साथ सुना। भारतवर्षमें पहली ही बार बहुतेरे देश-सेवकोके घनिष्ठ समागममे आनेका अवसर मुझे मिला था। तबतक मैने महासभाके किसी काममें वैसे कोई हिस्सा न लिया था। वे मुझे जानते थे---एक दक्षिण अफ्रीकाका योद्धा हैं। पर मेरे तमाम साथियोने मुझे अपने घरका-सा बना लिया, और देशके इस विख्यात सेवकका नबर इसमें सबसे आगे था। मै उस समितिका अध्यक्ष माना जाता था। "जिन बातोमें हमारा मतभेद होगा उनमे मै अपना कथन आपके सामने उपस्थित कर दूगा। फिर जो फैसला आप करेंगे उसे मै मान लूगा। इसका यकीन मै आपको दिलाता हू।" उनके इस स्वयस्फूर्त आश्वासनके पहले ही हममे इतनी घनिष्ठता हो गई थी कि मुझे अपने मनका सशय उनपर प्रकट करनेका साहस हो गया। फिर जब उनकी ओरसे यह आश्वासन मिल गया तब मुझे ऐसे मित्रनिष्ठ साथीपर अभिमान तो

हुआ, किंतु साथ ही कुछ सकोच भी मालूम हुआ, क्योंकि मैं जानता था कि मैं तो भारतकी राजनीतिमे एक नौसिखिया था और शायद ही ऐसे पूर्ण विश्वासका अधिकारी था। परतु तत्रनिष्ठा छोटे-बडेके भेदको नही जानती। वह राजा जो कि तत्र-निष्ठाके मूल्यको जानता है, अपने सेवक की भी बात, उस मामलेमें मानता है, जिसका पूरा भार उसपर छोड देता है। इस जगह मेरा स्थान एक सेवकके जैसा था। और मैं इस बातका उल्लेख कृतज्ञता और अभिमानके साथ करता हू कि मुझे जितने मित्र-निष्ठ साथी वहा मिले थे, उनमें कोई इतना मित्रनिष्ठ न था जितना चित्तरजन दास थे।

अमृतसर-धारासभामें तत्रनिष्ठका अधिकार मुझे नही मिल सकता था। वहा हम परस्पर योद्धा थे, हर शख्सको अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार राष्ट्रहित-सबधी, अपने ट्रस्टकी रक्षा करनी थी। जहा तर्क अथवा अपने पक्षकी आवश्यकताके अलावा किसीकी बात मान लेनेका सवाल न था। महासभाके मचपर पहली लडाई लडना मेरे लिए एक पूरे आनद और तृप्ति-का विषय था। बडे सभ्य, उसी तरह न झुकनेवाले महान् मालवीयजी बलाबलको सामने रखनेकी कोशिश कर रहे थे। कभी एकके पास जाते थे, कभी दूसरेके पास। महासभाके अध्यक्ष पडित मोतीलालजीने सोचा कि खेल खतम हो गया। मेरी तो लोकमान्य और देशबधुसे खासी जम रही थी। सुधार-सबधी प्रस्तावका एक ही सूत्र उन दोनोंने बना रक्खा था। हम एक-दूसरेको समझा देना चाहते थे, पर कोई किसीका कायल न होता था। बहुतोंने तो सोचा था कि अब कोई चारा नही था और इसका अत बुरा रहेगा। अलीभाई, जिन्हे मैं जानता था और चाहता था, पर आजकी तरह जिनसे मेरा परिचय न था, देशबधुके प्रस्तावके पक्षमें मुझे समझाने लगे। मुहम्मद अलीने अपनी लुभावनी नम्रतासे कहा, "जाच-समितिमे आपने जो महान् कार्य किया है, उसे नष्ट न कीजिए।" पर वह मुझे न पटा सके। तब जयरामदास, वह ठडे दिमागवाला सिंधी

आया, और उसने एक चिटमे समझौतेकी सूचना और उसकी हिमायत लिखकर मुझे पहुचाई। मैं शायद ही उन्हें जानता था। पर उनकी आखो और चेहरेमे कोई ऐसी बात थी जिसने मुझे लुभा लिया। मैंने उस सूचनाको पढा। वह अच्छी थी। मैंने उसे देशबधुको दिया। उन्होने जवाब दिया,—"ठीक है, बशर्ते कि हमारे पक्षके लोग उसे मान ले।" यहा ध्यान दीजिए उनकी पक्षनिष्ठापर। अपने पक्षके लोगोका समाधान किये बिना वे नही रहना चाहते थे। यही एक रहस्य है लोगोके हृदयपर उनके आश्चर्यजनक अधिकारका। वह सब लोगोको पसद हुई। लोकमान्य अपनी गरुडके सदृश तीखी आखोसे वहा जो कुछ हो रहा था सब देख रहे थे। व्याख्यान-मचसे पडित मालवीयजीकी गगाके सदृश वाग्धारा बह रही थी। उनकी एक आख सभामचकी ओर देख रही थी जहा कि हम साधारण लोग बैठकर राष्ट्रके भाग्यका निर्णय कर रहे थे। लोकमान्यने कहा—"मेरे देखनेकी जरूरत नही। यदि दासने उसे पसद कर लिया है तो मेरे लिए वह काफी है।" मालवीयजीने उसे वहासे सुना, कागज मेरे हाथसे छीन लिया और घोर करतलध्वनिमें घोषित कर दिया कि समझौता हो गया। मैंने इस घटनाका सविस्तर वर्णन इस लिए किया है कि उसमे देशबधुकी महत्ता और निर्विवाद नेतृत्व, कार्य-विषयक दृढता, निर्णय-सबधी समझदारी और पक्षनिष्ठाके कारणोका सग्रह आ जाता है।

अब और आगे बढिए। हम जुहू, अहमदाबाद, दिल्ली और दार्जिलिंग पहुचते है। जूहूमें वे और पडित मोतीलालजी मुझे अपने पक्षमें मिलानेके लिए आये। वे दोनो जोड़वा भाई हो गये थे। हमारे दृष्टिबिंदु अलग-अलग थे। पर उन्हें यह गवारा न होता था कि मेरे साथ मतभेद रहे। यदि उनके बसका होता तो वे ५० मील चले जाते जहा मैं सिर्फ २५ मील चाहता, परतु वे अपने एक अत्यत प्रिय मित्रके सामने भी एक इच न झुकना चाहते थे, जहा कि देशहित सकटमें था। हमने एक प्रकारका समझौता कर लिया। हमारा मन तो न भरा, पर हम निराश

न हुए। हम एक-दूसरेपर विजय प्राप्त करनेके लिए तुले हुए थे। फिर हम अहमदाबादमें मिले। देशबंधु अपने पूरे रगमें थे और एक चतुर खिलाड़ीकी तरह सब रग-ढग देखते थे। उन्होंने मुझे एक शानकी शिकस्त दी। उनके जैसे मित्रके हाथों ऐसी कितनी शिकस्त मैं न खाऊगा! पर अफसोस! वह शरीर अब दुनियामे नही रहा! कोई यह खयाल न करे कि साहावाले प्रस्तावके कारण हम एक-दूसरेके शत्रु हो गये थे। हम एक-दूसरेको गलतीपर समझ रहे थे, पर वह मतभेद स्नेहियोका मतभेद था। वफादार पति और पत्नी अपने पवित्र मतभेदोके दृश्योको याद करे—किस तरह वे अपने मतभेदोके कारण कष्ट सहते है, जिससे कि उनके पुनर्मिलनका सुख अति बढ जाय। यही हमारी हालत थी। सो हमें फिर दिल्लीमे उस भीषण जबडेवाले शिष्ट पडित और नम्र दाससे, जिनका कि बाहरी स्वरूप किसी सरसरी तौरपर देखनेवालेको अशिष्ट मालूम हो सकता है, मिलना होगा। मेरे उनके प्रस्तावका ढाचा वहा तैयार हुआ और पसद हुआ। वह एक अटूट प्रेम-बधन था जिसपर कि अब एक दलने उनकी मृत्युकी मुहर लगा दी है।

. . .वे अक्सर आध्यात्मिकताकी बातें करते थे और कहते थे कि धर्मके विषयमें आपका मेरा कोई मतभेद नही है। पर यद्यपि उन्होंने कहा नही तथापि हो सकता है कि उनका भाव यह रहा हो कि मैं इतना काव्यहीन हू कि मुझे हमारे विश्वासोकी एकात्मता नही दिखाई देती। मैं मानता हू कि उनका खयाल ठीक था। उन बहुमूल्य पाच दिनोमें मैंने उनका हर कार्य धर्म-मग्न देखा और न केवल वे महान् थे, बल्कि नेक भी थे, उनकी नेकी बढती जा रही थी। पर इन पाच दिनोके बहुमूल्य अनुभवोको मुझे किसी अगले दिनके लिए रख छोडना चाहिए। जबकि क्रूर दैवने लोकमान्यको हमसे छीन लिया तब मैं अकेला असहाय रह गया। अभीतक मेरी वह चोट गई नही है; क्योंकि अबतक मुझे उनके प्रिय शिष्योकी आराधना करनी पडती है।

पर देशबधुके वियोगने तो मुझे और भी बुरी हालतमें छोड दिया है। जब लोकमान्य हमसे जुदा हुए थे, देश आशा और उमगसे भरा हुआ था, हिंदू-मुसलमान हमेशाके लिए एक होते हुए दिखाई दिये थे, हम युद्धका शख फूकनेकी तैयारीमें थे। पर अब ? (हिं० न० २५.६. २५)

. . . . . .

कलकत्तेने कल दिखला दिया कि देशबधुदासका बगालपर, नही सारे भारतवर्षके हृदयपर, कितना अधिकार था। कलकत्ता, बबईकी तरह पचरगी प्रजाका नगर है। इसमे हर प्रातके लोग बसते है और इन तमाम प्रातोके लोग, बगालियोकी तरह ही अपने दिलसे उस जुलूसमें योग दे रहे थे। देशके कोने-कोनेसे तारोकी जो झडी लग रही है उससे भी यही बात और जोरके साथ प्रकट होती है कि सारे देशभरमें वे कितने लोकप्रिय थे।

जिन लोगोका हृदय कृतज्ञतासे भर रहा है, उनके सबधमें इससे भिन्न अनुभव नही हो सकता था। और देशबधु इस सारे कृतज्ञताज्ञापनके पात्र भी थे। उनका त्याग महान था। उनकी उदारताकी सीमा नही थी। उनकी मुट्ठी सदा सबके लिए खुली रहती थी। दान देनेमें वे कभी आगा-पीछा न सोचते थे। उस दिन जबकि मैंने बडे मीठे भावसे कहा, "अच्छा होता, आप दान देनेमें अधिक विचारसे काम लेते।" उन्होने तुरत उत्तर दिया, "पर मै नही समझता कि अपने अविचारके कारण मेरी कुछ हानि हुई है।" अमीर और गरीब सबके लिए उनका रसोईघर खुला था। उनका हृदय हरएककी मुसीबतके समय उसके पास दौड जाता था। सारे बगालमे ऐसा कौन नवयुवक है जो किसी-न-किसी रूपमे देशबधुका कृतज्ञ नही है ? उनकी बेजोड कानूनी प्रतिभा भी सदा गरीबोकी सेवाके लिए हाजिर रहती थी। मुझे मालूम हुआ है कि उन्होने यदि सबकी नही तो, बहुतेरे राजनैतिक कैदियोकी पैरवी बिना एक कौडी लिये की है। पजाबकी जाचके समय जब वे पजाब गये थे तो अपना सारा खर्च अपनी जेबसे किया था। उन दिनो अपने साथ वे एक राजाकी तरह लवाजमा

ले गये थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि पजावकी उस यात्रामें उनके ५०,००० रुपये खर्च हुए थे। जो उनके द्वारपर आता था उसीके लिए उनकी उदारताका हाथ आगे वढ जाता था। उनके इसी गुणने उन्हे हजारो नवयुवकोके दिलका राजा वना दिया था।

जैसे ही वे उदार थे वैसे ही निर्भीक भी थे। अमृतसरमें उनकी धुआंधार वक्तृताओने मेरा दम खुश्क कर दिया था। वे अपने देशकी मुक्ति तुरत चाहते थे। वे एक विशेषणको हटाने या वदलनेके लिए तैयार न थे। इसलिए नही कि वे जिद्दी थे, वल्कि इसलिए कि वे अपने देशको वहुत चाहते थे। उन्होने विशाल शक्तियोको अपने कब्जेमें रक्खा। अपने अदम्य उत्साह और अध्यवसायके द्वारा उन्होने अपने दलको प्रवल वनाया। परन्तु यह भीषण शक्तिप्रवाह उनकी जान ले वैठा। उनका यह वलिदान स्वेच्छापूर्वक था। वह उच्च था। उदात्त था।

फरीदपुरमें तो उनकी विजय हुई। उनके वहाके उद्‌गार उनकी अत्यन्त समझदारी और राजनीतिज्ञताके नमूना थे। वे विचार-पूर्ण और असदिग्व थे और (जैसा कि मुझे उन्होने कहा था) उनके अपने लिए तो उन्होने अहिंसाको एकमात्र नीति और इसलिए भारतवर्षका राजनैतिक धर्म (Creed) स्वीकार किया था।

प० मोतीलाल नेहरू तथा महाराष्ट्रके तन्त्रनिष्ठ सैनिकोसे मेल करके उन्होने शून्य-से स्वराज्य-दलको एक महान् और वर्धमान् दल वना लिया और ऐसा करके उन्होने अपने निश्चयवल, मौलिकता साधन-वहुलता और किसी वस्तुको अच्छा मान लेनेके वाद फिर परिणामकी चिंता न करनेके, गुणोका परिचय दिया। और आज हम स्वराज्य-दलको एक एकत्र और सुतत्रनिष्ठ सगठनके रूपमें देखते है। धारासभा-प्रवेशके सबधमें मेरा मतभेद था और है। पर मैंने सरकारको तग करने और लगातार उसकी स्थितिको विषम वनानेके सवधमें धारासभाकी उपयोगितासे कभी इन्कार नही किया। धारासभामें इस दलने जो काम किया उसकी महत्तासे

कोई इन्कार नही कर सकता और उसका श्रेय मुख्यत देशबधुको ही है। मैंने अपनी आखें खुली रखकर उनके साथ प्रस्ताव किया था। तबसे मैंने जो कुछ हो सकी उस दलकी सहायता की है। अब उनके स्वर्गवासके कारण, उसके नेताके चले जानेके बाद, मेरा यह दुहरा कर्त्तव्य हो गया है कि उस दलके साथ रहू। यदि मैं उसकी सहायता न कर पाया तो मैं उसकी प्रगतिमें तो किसी तरह बाधक न होऊगा।

मै फिर उनके फरीदपुरवाले भाषणपर आता हू। स्थानापन्न बडे लाट साहबने श्रीमती बासती देवी दासके नाम जो शोक-सदेश भेजा है उसके गुणको राष्ट्र मानेगा। एग्लो-इडियन पत्रोने स्वर्गीय देशबधुकी स्मृतिमें जो उनका यशोगान किया है उसका उल्लेख मै कृतज्ञतापूर्वक करता हू। मालूम होता है कि फरीदपुरवाले भाषणकी पारदर्शिनी निर्मल-हृदयताने अग्रेजोके दिलपर अच्छा असर किया है। मुझे इस बातकी चिंता लग रही है कि कही उनके स्वर्गवासके कारण इस शिष्टाचार प्रदर्शनके साथ ही उसका अत न हो जाय। फरीदपुरवाले भाषणके मूलमे एक महान् उद्देश्य था। एग्लो-इडियन मित्रोने चाहा था कि देशबधु अपनी स्थितिको स्पष्ट कर दें और अपनी तरफसे आगे कदम बढावें। इसीके उत्तरमे उस महान् देशभक्तने वह भाषण किया था और अपनी स्थिति स्पष्ट की थी। पर क्रूर कालने उस उद्गारके कर्ताको हमसे छीन लिया। परतु उन अग्रेजो को, जो अब भी देशबधुकी नीयतपर शक करते हो, मैं यकीन दिलाना चाहता हू कि जबतक मै दार्जिलिंगमे रहा, मेरे दिल पर जो बात सबसे अधिक जोरके साथ अकित हुई वह थी, देशबन्धुके उन वचनोंके निर्मल भाव। क्या इस गौरवमय अन्तका सदुपयोग हमारे घावोको भरने और अविश्वासको मिटानेमे किया जा सकता है? मै एक मामूली बात सुझाता हू। सरकार देशबन्धु चित्तरजन दासकी स्मृतिमें, जो कि अब हमारे साथ अपने पक्षकी पैरवी करनेके लिए दुनियामें नही है, उन तमाम राजनैतिक कैदियोको छोड दे, जिनके सबधमें

उनका कहना था कि वे निर्दोष हैं। मैं निरपराधताकी बिना पर उन्हें छोडनेको नहीं कहता। हो सकता है कि सरकारके पास उनके अपराधके लिए अच्छे-से-अच्छे सबूत हों। मैं तो सिर्फ उस मृत-आत्माके गुणकी स्मृतिमें और बिना पहलेसे कोई बुरा खयाल बनाये, उन्हें छोड देनेके लिए कहता हू। यदि सरकार भारतीय लोक-मतके अनुरजनके लिए कुछ भी करना चाहती है तो इससे बढकर अनुकूल अवसर न मिलेगा और राजनैतिक कैदियोंके छुटकारेसे बढकर अनुकूल वायुमडल बनानेका अच्छा मगलाचरण न होगा। मैं प्रायः सारे बगालका दौरा कर चुका हू। मैंने देखा कि इस बातसे लोगोंके दिलमें चोट पहुची है—इनमें सभी लोग आवश्यक रूपसे स्वराजी नहीं हैं। परमात्मा करे वह आग जिसने कि कल देशबन्धुके नश्वर शरीरको भस्म कर डाला, हमारे नश्वर अविश्वास, सदेह और डरको भस्मसात् कर डाले। फिर यदि सरकार चाहे तो वह भारतवासियोंकी मागकी पूर्तिके सर्वोत्तम उपायोंपर विचार करनेके लिए एक सम्मेलन कर सकती है।

यदि सरकार अपने जिम्मेका काम करेगी तो हमें भी अपनी तरफका काम करना होगा। हमें यह दिखा देना होगा कि हमारी नौका एक आदमीके भरोसे पर नहीं चल रही है। श्री विन्सेंट चर्चिलके शब्दोंमें, जो कि उन्होंने युद्धके समयमें कहे—"हमें यह कहनेमें समर्थ होना चाहिए, सब काम ज्यों-का-त्यों चलता रहे।" स्वराज्य-दलकी पुनर्रचना तुरत होनी चाहिए। पजाबके हिंदू और मुसलमान भी इस दैवी कोप-प्रहारको देखकर अपने लडाई-झगडे भूलते हुए दिखाई देते हैं। क्या दोनों पक्षके लोग इतनी दृढता और समझदारीका परिचय देंगे कि अपने लडाई-झगडोंका अत कर लें? देशबधु हिंदू-मुस्लिम-एकताके प्रेमी थे। उसपर उनका विश्वास भी था। उन्होंने अत्यन्त विकट परिस्थितिमें हिंदू और मुसलमानोंको एक बनाए रक्खा। क्या

उनकी चिताग्नि हमारे अनैक्यको न जला सकेगी ? शायद इसके पहले-तमाम दलोके एक सस्थाके अतर्गत होनेकी आवश्यकता हो। देशवधु इसके लिए उत्सुक थे। वे अपने प्रतिपक्षियोके लिए वहुत वुरा-भला कहा करते थे। परतु दार्जिलिगमे मैने देशबधुके मुहसे उनके किसी भी राज-नैतिक प्रतिपक्षीके प्रति एक भी कठोर शब्द निकलते न देखा। उन्होने मुझसे कहा कि सव दलोके एक करनेमें आप भरसक सहायता दीजिए। सो अव हम शिक्षित भारतवासियोका कर्तव्य है कि देशवधुके इस विचारको कार्यरूपमें परिणत करें और उनके जीवनकी इस एक महाकाक्षाको पूर्ण करें। यदि हम फिलहाल स्वराज्यकी सीढीपर ठेठ ऊपरतक न पहुच सके तो तुरत उसकी कुछ सीढिया तो चढे सही। तभी हम अपने हृदय-स्तलसे पुकार सकते है—"देशवधु स्वर्गवासी हुए, देशवधु चिरायु रहें।"
(हि० न०, २५.६.२५)

इस अकमे लिखनेके लिए और क्या वात लिखना सूझेगी ?

पहाड-जैसे देशवधु उठ गये, सो अखवार उन्हीकी वातोसे भरे हुए है। देशवधुकी छोटी-से-छोटी वात अखवारवाले वडी उत्सुकताके साथ छाप रहे है। 'सर्वंट' ने विशेष अक निकाला है। 'वसुमती 'वगालका सवसे वडा समाचारपत्र है। यह विशेष अकको तैयारी कर रहा है। हजारसे ज्यादा शोक-सूचक तार श्रीमती वासतीदेवी दासके पास आये है और सुदूर देशोसे आ ही रहे है। जगह-जगह सभाए हुई है। कोई भी गाव, जहा महासभाका झडा फहराता हो, शायद ही खाली होगा, जहा सभा न हुई हो।

कलकत्ता १८ ता० को पागल हो गया था। अक-शास्त्री कहते है कि २ लाखसे कम आदमी इकट्ठे न हुए थे। रास्तोपर खडे, तारके खभो-पर चढे, ट्रामकी छतपर खडे, झरोखोमें राह देखते हुए वैठे स्त्री-पुरुष इससे जुदा है।

साथ भजन-कीर्तन तो था ही। पुष्पोकी वृष्टि हो रही थी। शव

खुला हुआ था परतु उसपर फूलोके हार का पहाड बिछ गया था।
रथीके जुलूसके आगे स्वयसेवक फुलवाडी लेकर चल रहे थे। उसमे फूलोसे सुसज्जित चरखा था। जुलूस स्टेशनसे ७-३० पर चलकर श्मशानमें ३ बजे पहुचा। ३-३० बजे अग्नि-सस्कार शुरू हुआ।

श्मशान-घाटपर भीड उमडी थी। पीछेसे जो भीड़ उमडती थी उसे रोकना अति कठिन था और मै समझता हू कि यदि मुझे हट्टे-कट्टे लोगोने अपने कधेपर बिठाकर इस उमडती हुई भीडके सामने न उठा रक्खा होता तो भयकर दुर्घटना हो जाती। दो सशक्त आदमियोने मुझे अपने कधेपर बिठा रक्खा और उस हालतमें मै लोगोको रोक रहा था और उनसे बैठ जानेकी प्रार्थना कर रहा था। लोग जबतक मुझे देखते थे तबतक तो मानते थे, पर मै जहा अशातिकी आशका होती उस ओर गया कि मेरी पीठ फिरते ही लोग तुरत उठ खडे हो जाते थे। सब लोग दीवाने हो गये थे। हजारो आखें रथीकी ओर लगी हुई थी। जब दाहकर्म शुरू हुआ तब लोग धीरज खो बैठे। सब बरबस खडे हो गये और चिताकी ओर खिच पडे। यदि एक भी क्षणका विलब होता तो सबके चितापर गिर पडनेका अदेशा था। अब क्या करे? मैंने लोगोसे कहा, "अब काम पूरा हुआ। सब अपने-अपने घर जावे।" और मुझे उठानेवाले भाइयोसे कहा, "अब मुझे इस भीडसे हटा ले चलो।" लोगोको मै पुकार पुकारकर और इशारेसे कहता चला कि मेरे पीछे आओ। इसका असर बहुत अच्छा हुआ, वह हजारोकी भीड वापस लौटी और दुर्घटना होते-होते बची।

चिता चदनकी लकडीकी बनाई गई थी।

लोग ऐसे मालूम होते थे मानो वन-भोजन को आये हो। गंभीरता तो सबके चेहरे पर थी, पर ऐसा नही मालूम होता था कि वे शोक-भारसे दब गये हैं। कुटुम्बियोका और मेरा शोक स्वार्थ-पूर्ण मालूम होता था। हमारे तत्त्व-ज्ञानका अन्त आ गया, लोगोका कायम रहा;

क्योंकि वे तटस्थ थे। उनके अन्दर सम्मानका भाव तो पूरा-पूरा था। उनकी पूजा नि स्वार्थ थी। वे तो भारत-पुत्रको, अपने बन्धुको, प्रमाण-पत्र देनेके लिए आये थे। वे अपनी आखोसे और चेष्टासे ऐसा कहते हुए दिखाई देते थे, "तुमने बडा काम किया, तुम्हारे जैसे हजारो हो।"

देशबधु जैसे भव्य थे वैसे ही भले थे। दार्जिलिगमे इसका बडा अनुभव मुझे हुआ। उन्होने धर्म-सबधी बाते की। जिनकी छाप उनके दिलपर गहरी बैठी, उनकी बाते की। वे धर्मका अनुभव-ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उत्सुक थे। "दूसरे देशमें जो कुछ हो, पर इस देशका उद्धार तो शातिमार्गसे ही हो सकता है। मै यहाके नवयुवकोको दिखला दूगा कि हम शातिके रास्ते स्वराज्य प्राप्त कर सकते है।" "यदि हम भले हो जायगे तो अग्रेजोको भला बना लेगे।" "इस अधकार और दभमें मुझे सत्य के सिवा दूसरा कोई रास्ता नही दिखाई देता। दूसरे की हमें आवश्यकता भी नही।" 'मै तमाम दलोमें मेल कराना चाहता हू। बाधा सिर्फ इतनी ही है कि हमारे लोग भीरु है। उनको एकत्र करनेके प्रयत्नमें होता क्या है कि हमें भीरु बनना पडता है। तुम जरूर सबको मिलानेकी कोशिश करना और मिलना, पत्र-सपादकोको समझाना कि मेरी और स्वराज्य-दलकी ख्वाहमख्वाह निंदा करनेसे क्या लाभ ? मैने यदि भूल की हो तो मुझे बतावें। मै यदि उन्हें सतुष्ट न करू तो फिर शौकसे पेट भरके मेरी निंदा करें।" "तुम्हारे चरखेका रहस्य मै दिन-दिन अधिक समझता जाता हू। मेरा कधा यदि दर्द न करता हो और इसमें मेरी गति कुठित न हो तो मै तुरत सीख लू। एक बार सीखनेपर नियम-पूर्वक कातनेमें मेरा जी न ऊबेगा। पर सीखते हुए जी उकता उठता है। देखो न, तार टूटते ही जाते है।" "पर आप ऐसा किस तरह कह सकते है ? स्वराज्यके लिए आप क्या नही कर सकते।" "हा, हा, यह तो ठीक ही है। मै कहा सीखने-से नाही करता हू ? मै तो अपनी कठिनाई बताता हू। पूछो तो वासती-देवीसे कि ऐसे काममें मै कितना मदबुद्धि हू ?" वासतीदेवीने उनकी मदद

की, "ये सच कहते हैं। अपना कलमदान खोलना हो तो ताला लगाने मुझे आना पड़ता है।" मैंने कहा, "यह तो आपकी चालाकी है। इस तरह आपने देशबंधुको अपंग बना रक्खा जिससे उन्हें सदा आपकी खुशामद करनी पड़े और आपपर सहारा रखना पड़े।" हँसीसे कमरा गूंज उठा। देशबंधु मध्यस्थ हुए। "एक महीने बाद मेरी परीक्षा लेना। उस समय मैं रस्सियां निकालता न मिलूंगा।" मैंने कहा "ठीक है आपके लिए सतीशबाबू शिक्षक भी भेज देंगे। आप जब पास हो जायंगे तो समझिएगा कि स्वराज्य नजदीक आ गया।" ऐसे सब विनोदोंका वर्णन करने लगूं तो खात्मा नहीं हो सकता।

कितने ही संस्मरण तो ऐसे हैं जिनका वर्णन मैं कर ही नहीं सकता।

मैं जिस प्रेमका अनुभव वहां कर रहा था उसकी कुछ झलक यदि यहां न दिखाऊं तो मैं कृतघ्न माना जाऊंगा। वे छोटी-छोटी-सी बातकी संभाल रखते थे। मेवे खुद कलकत्तेसे मंगवाते। दार्जिलिंगमें बकरी या बकरीका दूध मिलना मुश्किल पड़ता है। इसलिए ठेठ तलहटीसे पांच बकरियां मंगवाकर रक्खीं। मेरी जरूरतकी एक-एक चीजका इंतजाम किये बगैर न रहते थे। हमारे कमरेके दरम्यान सिर्फ एक दीवार थी। सुबह होते ही, काम-काजसे निबटकर, मेरी राह देखते बैठते। चारपाई पर बैठते थे, चारपाई अभी नहीं छूटी थी। पल्थी मारकर बैठनेकी मेरी आदतसे परिचित थे। सो कुरसीपर नहीं बैठने देते थे। खटियापर ही अपने सामने मुझे बैठाते। गद्देपर भी कुछ खास तौरपर बिछवाते और तकिया भी लगवाते। मुझसे दिल्लगी किये बिना न रहा गया, "यह दृश्य तो मुझे चालीस बरस पहलेकी याद दिलाता है। जब मेरी शादी हुई थी तब हम दुलहे-दुलहिन इस तरह बैठे थे। अब यहां पाणिग्रहणकी ही कसर है।" मेरे कहनेकी देर थी कि देशबंधुके कहकहेसे सारा घर गूंज उठा। देशबंधु जब हँसते तो उनकी आवाज दूर तक पहुंचे बिना न रहती।

देशबधुका हृदय दिन-पर-दिन कोमल होता जाता था। रूढिके अनुसार मास-मछली खानेमें उन्हें कोई विधि-निषेध न था। फिर भी जब असहयोग शुरू हुआ तब मासाहार, मद्यपान और चुरट तीनो चीजें उन्होने छोड दी थी। पीछे जाकर फिर उन्होने अपना जोर जमाया था, परतु उनका झुकाव इनको छोडनेकी ओर ही रहता था। अभी कुछ दिनोसे राधास्वामी सम्प्रदायके एक साधुसे उनका समागम हुआ। तबसे निरामिष भोजनकी उत्सुकता वढ गई थी। सो जबसे वे दार्जिलिंग गये, निरामिष भोजन शुरु किया था। और मेरे रहनेतक घरमें मास-मछली न आने दिया। मुझसे अनेक बार कहा, "यदि मुझसे हो सका तो अबसे मैं मास मछलीको छुऊगा तक नही। मुझे वे पसद भी नही और मै समझता हू कि इससे हमारी आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधा पहुचती है। मेरे गुरुने मुझे खास तौरपर कहा कि साधनाके खातिर तुम्हें मासाहार अवश्य छोड देना चाहिए।" (हिं० न०, २ ७.२५)

• ••

.. यदि हमें देशबधुकी आत्माको शाति दिलाना हो तो हमारे पास एक ही इलाज है। उनके तमाम सद्गुणोको हम अपने अदर पैदा करें। कितने ही सद्गुण तो अवश्य पैदा कर सकते हैं। उनके सदृश अग्रेजी चाहें हमें न आ सके, उनकी तरह वकील हम सब न हो सकें, धारा-सभामें जानेकी शक्ति उनके सदृश हमारे पास न हो, पर हमारे अदर उनके जैसा देशप्रेम तो हो सकता है। उनके बराबर उदारता हम सीख सकते हैं। उनके बराबर धन हम चाहे न दे सकें, परतु जो यथाशक्ति देते हैं उन्होने बहुत कुछ दे दिया है। विधवाके एक ताबेके छल्लेकी कीमत महाराजके करोडोमेंसे दिये हजारकी कीमतसे ज्यादा है। देशबधुने खादी पहननेके बाद फिर घरमें या बाहर उसका त्याग नही किया। क्या हम खादी पहनेंगे ? देशबधुने महीन खादी कभी न चाही। उन्होने तो मोटी खादीको ही पसद किया था। देशबधुने कातनेका प्रयत्न किया। जिन्होंने

शुरू नही किया, क्या वे अब करेंगे ? (हिं० न०, ६.७.२५)

. ...

मैं श्री मोतीलाल नेहरू, सी० आर०।दास, मनमोहन घोष, बदरुद्दीन तैयबजी इत्यादिकी याद आपको दिला दूंगा जिन्होंने अपनी कानूनी योग्यता बिल्कुल मुफ्त बाटी और अपने देशकी बडी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप शायद मुझे ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमें बड़ी लबी-लबी फीस लेते थे । मैं इस तर्कको इस कारण नही मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा और सबसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोने भारतको आवश्यकता पड़नेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नही कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई सबब नही है । मैंने उनको बड़े सतोषसे दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हिं० न०, १२.११.२१)

: ८३ :

दासप्पा

मैसूरमें कई वकीलोने मैसूर-सत्याग्रहकी हलचलमें हिस्सा लिया था। मैसूरकी चीफ कोर्टने उनके वकालतनामे छीन लिये हैं। इस सिलसिलेमें कोर्टके सबसे आखिरी शिकार श्री दासप्पा हैं। श्री दासप्पाकी मैसूरमें खूब प्रतिष्ठा है और वह बीस सालसे वकालत कर रहे है । वकालत-जैसे स्वतत्र पेशेमें किसीकी इस तरह सनद जब्त की जाना बेशक एक गभीर बात है । पर पहले भी काफी कारणके विना, या केवल राजनैतिक कारणोसे ऐसी घटनाए घट चुकी है । ऐसे अन्यायोको हमें धीरज और बहादुरीसे

बर्दाश्त करना है। पर श्री दासप्पाके बारेमें चीफ जजके हुक्मनामेकी रिपोर्ट 'हिंदू' में पढकर बहुत दुख हुआ है। श्री दासप्पाने मैसूरके एक खास भागमें सभाओंमें भाषण न देनेके मजिस्ट्रेट साहबके हुक्मको तोडनेका साहस किया था और साथ ही मेरी सलाहके अनुसार सत्याग्रही कैदियोको, जज श्री नागेश्वर आइरकी महकमाना जाचका बहिष्कार करनेकी सलाह देकर अपनी धृष्टताका सबूत दिया था। इन और अन्य अपराधोके कारण श्री दासप्पाका वकालतनामा हमेशाके लिए जब्त हो गया। अगर जज-साहबकी चले, तो श्री दासप्पाको गरीबीका मुख देखना होगा। अगर उनके फैसलेका असर सरकारी मिसलके आगे जा सके, तो श्री दासप्पा समाजमे अपनी सब प्रतिष्ठा खोकर तिरस्कार और घृणाके पात्र बन जायेंगे। श्री दासप्पाको मै अच्छी तरह जानता हू। वह एक निर्दोष चरित्रके शुद्ध ईमानदार आदमी है। अपनी शक्तिके अनुसार वह अहिंसाका पालन करने-का मर्दानगीसे प्रयत्न कर रहे है। जो उन्होने किया है वही कई वकील और दूसरे लोग ब्रिटिश भारतमें कर चुके है। जज ऐसी बातोकी तरफ ध्यानतक नही देते, और जनताने उनको जन-नायकका पद दिया है। श्री भूलाभाई बबईकी हाईकोर्टके एडवोकेट-जनरल रह चुके है। उन्होने कानून तोडे है। इसी तरह श्री मुशीने और श्री चक्रवर्ती राज-गोपालाचार्यने भी कानून तोडे है। मगर उन लोगोके वकालतनामेको किसीने हाथ नही लगाया। इसमेसे पिछले दो तो अपने-अपने सूबेमें मत्री पदपर भी रह चुके है। सार्वजनिक जाचका आजसे पहले बिना किसी निजी हानिके बहिष्कार किया गया है। मगर इससे बहिष्कारके कर्त्ता-धर्त्ताओंकी इज्जत या आचरणपर कभी हमला नहीं किया गया। मेरी रायमें अपना फैसला सुनाते समय मैसूर कोर्टके जज अपने कर्तव्यको भूल गये है। इससे श्री दासप्पाको कोई नुक्सान नही पहुचा। उलटे वह मैसूरकी जनताकी नजरोमें और ऊचे चढ जाएगे। मगर मै यह दावेसे कह सकता हू कि अपने पूर्वाग्रहोके वश होकर जजसाहबने अपने आपको

नुकसान पहुचाया है। इस तरह न्यायका मजाक पहले भी उड़ाया जा चुका है। (ह० से०, १३ ७ ४०)

: ८४ :

मनोहर दीवान

एक परोपकारी पुरुष, मै तो उनको महात्मा ही कहूगा, मनोहर दीवान है। वे वर्धामें रहते है और विनोबा भावेके बड़े शिष्य है। विनोबा-जी तो बहुत बड़े आदमी है। तो मनोहरके दिलमें हुआ कि चलो, कुछ-न-कुछ करें। तो उन्होने कोढियोकी सेवा करनेका काम पसद किया। विनोबाने भी उनको ऐसा करनेके लिए प्रेरणा दी। वे निर्लेप रहते हैं। पैसेकी उनको दरकार नहीं। वे डाक्टर तो नहीं हैं, लेकिन उन्होंने उसका काफी अभ्यास कर लिया है। काफी लोग उनकी मदद लेते है। (प्रा० प्र०, २३.१०.४७)

: ८५ :

गोपाल कृष्ण देवधर

श्री गोपाल कृष्ण देवधरके स्वर्गवाससे देश एक महान् समाज-सेवक और हरिजनोका एक सुदृढ और विश्वसनीय बधु गवा बैठा। स्व० गोखलेकी स्थापित की हुई 'सर्वेण्ट् आफ इडिया सोसाइटी' के श्री देवधर सस्थापक सदस्योमेंसे थे। प्रातीय हरिजन-सेवक-सघके वे अध्यक्ष भी थे। देशमें

ऐसा एक भी दुर्भिक्ष नही पड़ा या ऐसी बाढ नही आई जहा उनकी याद न की गई हो। वे चाहते तो आसानीसे काफी पैसा पैदा कर सकते थे, पर उन्होने तो गरीबीका ही बाना धारण किया, क्योकि लोक-सेवकका जीवन-सिद्धात ही गरीबी है। उनकी अथक कार्यशक्ति सक्रामक थी। जब भी उनकी समाज-सेवाकी माग हुई, वे कभी उससे पीछे नहीं रहे। उनका जीवन एक निष्कलक पवित्रताका जीवन था। अपने प्रिय पूना-सेवा-सदनके तो वे प्राण थे। उसके लिए उन्होने इतनी अच्छी तरह परिश्रम किया कि एक छोटी-सी चीजसे बढते-बढते वह आज इतनी अच्छी सस्था बन गई है कि भारतवर्षमें जितनी भी इस प्रकारकी सस्थाए है उनसे वह किसी तरह पीछे नही। दिवगत आत्माके परिवारके साथ मै सादर समवेदना प्रकट करता हूं। (ह० से०, २३.११.३५)

: ८६ :

दुर्गाबेन देसाई

श्रीमहादेव देसाईकी धर्मपत्नी प्रयागमें है। वे खुद भी स्वयसेविका हुई है, सेवा करनेके लिए जगह-जगह जाती है, दूसरे स्वयसेवकोंको खाना पकाकर खिलाती है और दूसरी तरहसे उनकी सहायता करती है, रोज चरखा कातती है। श्रीमहादेवभाईके गिरफ्तार होते ही उन्होंने मुझे एक पत्र भेजा, जिसे पढकर पाठक प्रसन्न होगे। इसी खयालसे उसे यहा प्रकाशित करता हू :—

"आप यह जानकर प्रसन्न होगे कि आप और व जो बात चाहते थे, वही हुई। उन्हें एक वर्षकी सजा और सौ रुपया जुर्माना हुआ। जुर्माना न दें तो एक मास अधिक कैद। यह समाचार तो आपको मिल

हो चुका होगा । मैं तो आपको सिर्फ इसीलिए यह लिख रही हूं कि आप मेरी चिंता न करें । इस समय तो मुझे कुछ भी दुःख नहीं हुआ, पर नहीं कह सकती, यह हालत कबतक कायम रहेगी; क्योंकि मन तो स्वभावतः ही चचल ठहरा । इससे वह कभी सुख और कभी दुःख मानकर व्यर्थ दुःखी होता है ।

देवदासभाई जबतक जेलके बाहर हैं और यहां काम कर रहे हैं तबतक तो मैं यहीं रहूंगी । उनके पकड़े जानेके बाद मैं आश्रम (सत्याग्रह आश्रम, साबरमती) आऊंगी ।

यह पत्र कल लिखकर वैसा ही छोड दिया था । आज मैं और देवदासभाई उनसे मिलने गये थे । उसका हाल देवदासभाईने आपको लिखा ही है, अतएव उस विषयमें मैं कुछ नहीं लिख रही हूं । जेलमें उनके साथ जिस तरहका बर्ताव किया जाता है, उसका हाल जानकर मनके धर्मके अनुसार, मुझे कुछ दुःख हुआ । पर अब उसका असर बिलकुल नहीं है । जब-जब मैं सोचती हूं तब-तब यही मालूम होता है कि ऊपरसे उन्हें चाहे कितना ही कष्ट दिया जाय, पर यदि ईश्वरकी कृपा होगी तो उन्हें और मुझे उसके सहन करनेका बल प्राप्त होगा । आप मेरी चिंता न कीजिएगा । क्योंकि यदि आपकी लड़की ही इतनेसे दुःखसे दुःखी होकर रोने-पीटने लगे तो फिर आपको इस संग्राममें विजय ही कैसे प्राप्त हो । मैं आपसे इतना तो जरूर चाह सकती हूं कि आप यह आशीर्वाद दीजिए कि ईश्वर मुझे यह सहन करनेका बल दे ।"

मेरी आशीष तो हुई है । पर मैं आशीर्वाद देने वाला कौन ? भारतकी महिलाएं तो अपने ही तपोबलसे साहस प्राप्त कर रही हैं । एक-दो आदमी तो जेल गये ही नहीं हैं । कितने ही लोग गये हैं और बहुतोंकी धर्मपत्नियां हिम्मत और धीरज धारण कर रही हैं और खुशी-खुशी अपने पतिको तथा दूसरे रिश्तेदारोंको जेलमें भेज रही हैं और स्वयं भी

जानेको तैयार होती है । मुझे यह खबर मिल गई है कि श्री देसाईके साथ जो निष्ठुर व्यवहार किया जा रहा था।वह अब बद कर दिया गया है । धीरज तथा विनययुक्त वर्तावसे अनुचित दुखका निवारण हुए विना रह ही नही सकता । पर ऐसा हो चाहे न हो, जेलके दुख चाहे कितने ही भयानक क्यो न हो, उनको सहन किये विना दूसरी गति ही नही है । (हिं० न० ८.१.२२)

: ८७ :

प्रागजी देसाई

एक भाई प्रागजी देसाई थे । उन्होने अपने जीवनमें कभी धूप-जाडा नही सहा था । और यहा तो जाड़ा था, धूप थी और बारिशका मौसिम था । हमने अपना श्रीगणेश तो तबूमें रहकर दिया था । मकान बँधकर तैयार हो तव उनमे सोये । करीव दो महीनोके अदर मकान तैयार हो गये । मकान टीनके थे, इसलिए उनको वनानेमें कोई देरी नही लगी । आवश्यक आकार-प्रकारकी लकडी तैयार मिल सकती थी । केवल नाप-जोख कर टुकड़ेमात्र करना पड़ते । दरवाजे---खिडकिया आदि ज्यादा नही बनाने थे । इसलिए इतने समयमें सभी मकान तैयार हो गये, पर इस काम-काजने भाई प्रागजीकी खूब खवर ले डाली । जेलकी बनिस्वत फार्मका काम जरूर ही अधिक सख्त था । एक दिन तो परिश्रम और बुखारके कारण वह बेहोश तक हो गये । पर वह यो इतनी जल्दी हारने वाले आदमी नही थे । यहा उन्होने अपने शरीरको पूरी तरह मेहनत पर चढा दिया और अतमें इतनी शक्ति प्राप्त कर ली कि वह सबके साथ-साथ काम करने लग गये । (द० अ० स० १९२५)

: ८८ :

भूलाभाई देसाई

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन, राष्ट्रीय ऋणके सबधमें जाच करनेके लिए महासमिति (आल इडिया काग्रेस कमेटी) ने जो समिति नियत की थी, उनकी रिपोर्ट, विशेपकर वर्तमान अवसरपर, एक अत्यत महत्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा, काग्रेसका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे विना न रहेगा। श्री वहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल शाह और कुमारप्पा अपने इस प्रेम—परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनदनके अविकारी है। 'यग इडिया'के विदशी पाठक जानते है कि श्री वहादुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनो ही एक वार एडवोकेट-जनरल थे। इन्होने एडवोकेट-जनरलके पद का उपयोग किया है, यह वात यो ही छोड दी जाय तो दोनो धूमधामसे चलनेवाले धधेके व्यवसायी और अनुभवी कानून विशेपज्ञ है। एडवोकेट-जनरलके पदने इनकी प्रतिष्ठामें कुछ वृद्धि की है ऐसी कोई वात नही है। यह तो उनकी प्रतिष्ठा की और उनके व्यवसायमें उनका जो पद है, उसकी स्वीकृति-मात्र है। खुशाल शाह भारतप्रख्यात अर्थशास्त्री है, कितनी ही वहुमूल्य पुस्तकोके लेखक है और वहुत वर्ष तक, आज अभी तक, वबई यूनिवर्सिटीके अर्थशास्त्रके अध्यापक थे। ये तीनो सज्जन सदैव काममें रुके रहते है, इसलिये राष्ट्रीय महासभाके सौंपे हुए इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा सावारण त्याग नही था। . . रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोका लिखा हुआ लेख नही, वरन जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले है और जो वाक्लीवाज उपदेशक नही, वरन स्वय जिस विपयके ज्ञाता है, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोको

तौलकर व्यवहारमें लाने वालोकी यह कृति है। (हिं० न०, ६ ८ ३१)

बारडोलीके किसानोकी वहादुरीने और उनकी आफतो व मुसीवतोने श्री भूलाभाई देसाई-जैसोको जनताकी सेवाका काम सभाल लेनेकी प्रेरणा दी, वरना वे एक मशहूर सरकारी नौकर रहे होते और ववई हाईकोर्टके जज बनकर उन्होने अपना काम पूरा किया होता। कानूनके एक पडितके नाते उनकी होशियारीके कारण जव आजाद हिंद फौजके कैदी रिहा कर दिए गये तो उनकी कीर्ति अपनी अतिम सीमा तक पहुच गई। उनके बेटे और उनकी बहूके शोकमें मै और मेरे-जैसे दूसरे वहुतेरे उनके हिस्सेदार है। आशा है कि स्वर्गीय भूलाभाईमें देश-सेवाका जो प्रेम था, उसे विरासतमें पाकर वे दोनो अपने शोकको आनदमें बदल डालेंगे। यही एक चीज है, जो जीवनको जीने योग्य बनाती है। (ह० से०, १२ ५.४६)

: ८९ :

महादेव देसाई

पाठक यह जानकर खुश होगे कि महादेव देसाईका स्वास्थ्य अब दिन-प्रतिदिन उन्नति करता जा रहा है। लगातार कई सालसे स्वास्थ्य पर जोर पडनेके बाद विश्राम तो उन्हें लेना ही चाहिए था, पर वह नही ले सके। और मैंने भी आग्रह नही किया। अच्छा हुआ कि दयालु प्रकृतिने आकर उन्हे विश्राम लेनेके लिए बाध्य कर दिया, जिसे कि स्वेच्छापूर्वक लेनेको वह तैयार न होते। श्री राजकुमारी अमृतकौर उन्हे अपने घर शिमला ले गई है। वहा पहाडोकी शुद्ध ताजी हवा तो है ही, पर इससे भी अधिक जो स्वास्थ्यप्रद चीज उन्हें वहा मिल रही है वह है राजकुमारीकी प्रेमपूर्ण सेवा और उपचार। इससे निश्चय ही शिमलाके

शक्तिवर्द्धक जलवायुमें उनका स्वास्थ्य उन्नति करेगा। (ह० से०, २३.१०.३८)

... .

महादेवकी अकस्मात मृत्यु हो गई। पहले जरा भी पता नही चला। रात अच्छी तरह सोये। नाश्ता किया। मेरे साथ टहले। सुशीला और जेलके डाक्टरोंने जो कुछ कर सकते थे किया; लेकिन ईश्वरकी मर्जी कुछ और थी। सुशीला और मैने शवको स्नान कराया। शरीर शातिसे पडा है, फूलोसे ढका है, धूप जल रही है। सुशीला और मै गीता-पाठ कर रहे है। महादेवकी योगी और देशभक्तकी भाति मृत्यु हुई है। दुर्गा, बावला और सुशीलासे कहो, शोक करनेकी मनाई है। ऐसी महान् मृत्युपर हर्ष ही होना चाहिए। अत्येष्टि मेरे सामने हो रही है। भस्म रख लूगा। दुर्गाको सलाह दो कि आश्रममें रहे, लेकिन अगर वह जाना ही चाहे तो घरवालोंके पास जा सकती है। आशा है, बावला बहादुरीसे काम लेगा और महादेवका सुयोग्य उत्तराधिकारी बननेके लिए अपनेको तैयार करेगा। सप्रेम, (आगा खा महलसे १५.८.४२को दिया तार)

... ..

भावना तो महादेवकी खुराक थी (का० क० ३)

... . . .

महादेवका बलिदान कोई छोटी चीज नही है। अकेला भी वह बहुत काम करेगा। (का० क० १६.८ ४२)

. .. .

(बा कह रही थीं, "देखो, महादेव गये। ब्राह्मणकी मृत्यु हुई, अपशकुन है न। इतनी बड़ी ताकतके खिलाफ बापू लड़ रहे हैं, कैसे जीतेंगे!" बापूने सुना तो कहने लगे—)

"मैं इसे शुभ शकुन मानता हू। शुद्धतम बलिदान हुआ है, इसका परिणाम अशुभ नही हो सकता।" (का० क०, २८.८.४२)

... .

(आज 'बॉम्बे क्रानिकल' के सब पुराने अक आगये। मालूम होता है, महादेवभाईकी मृत्युको देशने चुपचाप सह लिया है। यह चीज बापूको काफी चुभी है। घूमते समय कहने लगे—)

आखिर तो महादेव इनके जेलमें मरा है न? महादेवका खून इनके सिर है। मैं उस दिन गवर्नरको लिखने वाला था, मगर फिर काट डाला। जिन्दा रहा तो किसी दिन मैं जरूर उन्हें यह सुनाऊगा कि महादेवकी मृत्युका कारण आप है। मैं मानता हू कि वह जेल न आते तो कम-से-कम इस वक्त तो हर्गिज न मरते। बाहर वह कई तरहके कामोमें उलझे रहते। यहा वह एक ही विचारमें डूबे रहे, एक ही चिंता उनके सिरपर सवार रही। वह उन्हें खागई। उनपर भावनाका कुछ इतना जोर पड़ा कि वह खतम हो गये। देशने कुछ भी नही किया। बैकुठ मेहताकी श्रद्धाजलि तो आने ही वाली थी और बरेलवीकी भी। मगर महादेव तो सारे देशके थे और देशके लिए वह गये है। भगतसिहकी मृत्युके बाद जब मै लॉर्ड अर्विनसे समझौता करके कराची जा रहा था तो लोगोके झुड-के-झुड हर स्टेशनपर मेरे पास आते थे और चिल्लाते थे, "लाओ भगतसिहको!" इसी तरह इस बार भी वे सरकारको कह सकते थे, "लाओ महादेवको!" सरकार लाती तो कहासे? कह देती कि जो लोग इतने भावुक, इतने विक्षुब्ध और इतने सवेदनशील है वे जेलमें आते ही क्यो है? न आए—वगैरा।

(फिर बापू कहने लगे—)

मगर लोग शायद सोचते होगे कि आज सरकारके साथ ऐसा घमासान युद्ध चल रहा है कि उसमें दूसरी किसी चीजका विचार करनेका अवकाश ही कहा रह जाता है?

(मैंने कहा, "और आपने भी तो तारमें लिखा था न कि जो किया जा सकता था, किया गया! इसके कारण भी लोग शान्त रह

गये होंगे। समझे होंगे कि यह तो स्वाभाविक मृत्यु थी, जो कहीं भी हो सकती थी।" बापूने कहा—)

सो तो है, लेकिन मृत्यु हुई तो सरकारके जेलमें न ? (का० क०, १०.६.४२)

.. ..

(शामको महादेवभाईके समाधि-स्थानसे लौट रहे थे तब बापू कहने लगे—)

यहा आ जाना मेरे लिए बहुत शातिदायक है और उससे जो प्रेरणा मुझे लेनी होती है मै ले लेता हू।

(मैंने कहा, "अब आप महादेवभाईसे प्रेरणा लेते हैं, कभी वह आपसे लेते थे!" कहने लगे—)

क्यो नही, प्रेरणा तो एक बच्चेसे भी ले सकते हैं, और बच्चा चला जाता है, तो भी क्या? उसका स्मरण तो २४ घटे चलता ही है। जो राजाजी ने कहा है वह बिलकुल सही है। महादेव मेरा अतिरिक्त शरीर था। कितनी दफा मैंने उसे मैक्सवैलके पास भेजा है, दूसरोंके पास भेजा है। मान लेता था कि महादेवको काम सौंपा है तो वह कर लेगा।" (का० क०, १८.६.४२)

(सुबह घूमते समय बापू कहने लगे—) महादेवको मेरा वारिस होना था, पर मुझे उसका वारिस होना पडा है। मीराबहनको महादेवभाईकी समाधिपर मेरा जाना खटकता है, मगर मेरे लिए वह बिलकुल-सहज बन गया है। मैं न जाऊ तो बेचैन हो जाऊ। वहा जाकर मैं कुछ करना नहीं चाहता, समय भी नही देना चाहता, मगर हो आता हू, इतना ही मेरे लिए बस है। अगर मैं जिंदा रहा तो यह जमीन आगाखासे माग लूगा। वह न दे, यह सभव हो सकता है। मगर किसी रोज तो हिंदुस्तान आजाद होगा। तब यह यात्राका स्थान बनेगा। मैं वहा जाता हू तो महादेवके गुणोका स्मरण करनेके लिए, उन्हें ग्रहण

करनेके लिए। मै उसकी स्मृतिको खोना नहीं चाहता। और जिस तरहसे वह यहा मरा, उससे उसकी स्त्री और उसके लड़कके प्रति मेरी वफादारी भी मुझे बताती है कि मुझे वहा नियमित रूपसे जाना चाहिए। हो सकता है कि मेरी जिन्दगीमें यह जगह मुझे न मिल सके और इस जगहको यात्रा-स्थल वनते मै न देख सकू, मगर किसी-न-किसी दिन वह जरूर वनेगा, इतना मै जानता हू। आज तो मै सब काम उसका काम समझकर करता हूं। बाहर जाऊगा तब भी उसीका काम करूंगा। (का० क०, १०.९.४२)

. .   . .   . .

(सुबह समाधिसे लौटते समय बापू महादेवभाईवाली गीताजीके पन्ने उलट रहे थे। आखिरी पन्ने पर 'आउज बिल्ला'वाली आयत लिखी हुई थी। पूछने लगे—)

ये किसके अक्षर है? महादेवके या प्यारेलालके?

(मैंने बताया कि १ अगस्तको बम्बईसे चलते समय महादेवभाईने भाईको वह आयत लिख देनेको कहा था, सो भाईके अक्षर हैं। बापू कहने लगे—)

बस छः दिन उसने यह आयत गाई।

(फिर थोडा ठहरकर बोले—)

लगता ही नही है कि महादेव सदाके लिए गया। कल रातको स्वप्नमें वह लड़की . . कहती है, "महादेवभाई कहा है?" मै उत्तर देता हू, "बहन, मै तो उसे स्मशानमें छोड आया हू।" पीछे वह पागल-सी हो जाती है। कहती है, "लाओ महादेवभाईको! उसे वहा क्यो छोड़ आए?" (का० क०, २३ १२ ४२)

. .   . .

(भाईसे कहने लगे—) मान लो इस उपवासके कारण मै लोप हो जाऊ तो तुम लोगोंसे मै क्या आशा रक्खूगा, यह समझ लो। महादेवकी

मैं भाटकी तरह स्तुति करता हू, मगर मेरा मन उसकी शिकायत भी करता है। उसकी मिसाल सपूर्ण या आदर्श नही मानना चाहिए। वह इस विचारका जप करते-करते चला गया कि 'मै वापूके वाद क्या कर सकता हू? वापूसे पहले चला जाऊ तो अच्छा है।' मगर उसे तो कहना चाहिए था कि 'नही, मुझे तो जिंदा रहना है और वापूका काम करना है।' यह दृढ सकल्प उसे मरनेसे रोक भी लेता। (का० क०, ६ २.४३)

...   .   ..

मेरे विचारसे महादेवके चरित्रकी सवसे वडी खूबी थी, मौका पड़नेपर अपनेको भूलकर शून्यवत वनजानेकी उनकी शक्ति। (ह० से०, १२.८.४६)

.   . .   ...

जमनालाल, मगनलाल और महादेव—इनमेसे हरएक अपने-अपने क्षेत्रमें अनूठे थे। मेरा खयाल है कि उनकी जगह दूसरे नही ले सकते। मगर मै कहूगा कि इन तीनोमेंसे महादेव मुझमें पूरी तरह खो गया था। मै यह कह सकता हू कि मुझसे अलग उसकी कोई हस्ती ही नही रह गई थी।

महादेवकी एक वड़ी खूवी यह थी कि जो काम उन्हें सौंपा जाता था, उसे करनेके लिए वे सदा तैयार रहते और वडे उत्साहसे करते थे। इसी तरह वे एक अच्छे लेखक, अच्छे रसोइया और अच्छे कुली वन सके थे। अक्सर जो लोग मेरे साथ काम करनेके लिए आते है, वे ऐसे ही वन जाते है। (ह० से०,.८.१८ ४६)

. .   ..

महादेव गुलावका फूल है। (ह० से०, १८.८.४६)

...   .

वे मेरे वॉसवेल (जीवनी लिखनेवाले) वनना चाहते थे, फिर भी मुझसे पहले मरना चाहते थे। इससे वेहतर वे क्या कर सकते थे? सो वे तो चले गये और मुझे उनकी जीवनी लिखनेके लिए छोड गये।....

बच्चे अपने मा-बापके पहले मरना चाहें तो इससे बढकर बेरहमी और क्या हो सकती है? यह उनका निरा स्वार्थ है। भले ही मैं दूसरोको इस बातका यकीन न दिला सकू लेकिन यह मै जरूर महसूस करता हू कि मौत कभी वक्तसे पहले नही आती दुनियामें अपना काम खत्म करनेसे पहले कोई मर्द या औरत कभी नही मरता। महादेवने पचास सालमें सौ बरसका काम पूरा कर डाला था। सो वह आराम करने चले गए, जिसपर उनका पूरा हक था। (ह० से० १८.८ ४६)

... .

महादेव देसाईके मित्र और प्रशसक उनके प्रिय काम करके ही उनकी बरसी मनाते है। वे बडे शक्तिशाली पुरुष थे। वे सुदर और सुडौल अक्षर लिखते थे। वे कई चीजोसे प्यार करते थे। लेकिन उन सबमें चर्खेकी जगह पहली थी। एक कलाकार होनेके नाते वे नियमसे बहुत बढिया कताई करते थे। कामकाजके भारी बोझसे थककर चूर हो जाने पर भी वे हमेशा कातनेका वक्त निकाल लेते थे। चर्खा उन्हें फिर तरो-ताजा बना देता था।

उनकी कई खूबियोमें उनके बेजोड अक्षर भी कोई कम महत्व नही रखते थे। उसमें कोई उनका सानी न था। रामदासस्वामीने अपने एक दोहेमे खूबसूरत अक्षरोकी चमकीले मोतियोसे तुलना की है। महा-देवकी कलमसे निकले हुए अक्षर खरे मोती जैसे होते थे।

उनकी तीसरी खूबी थी, हिंदुस्तानकी भाषाओंसे उनका प्रेम। आप सबको भी यह गुण अपनेमे पैदा करनेकी कोशिश करनी चाहिए। वे भाषाशास्त्री थे। बगाली, मराठी और हिंदीपर उनका पूरा अधिकार था और वे उर्दू भी सीख चुके थे। जेलमें उन्होने ख्वाजा साहब एम० ए० मजीदसे, जो उनके साथ कैद थे, फारसी और अरबी सीखनेकी भी कोशिश की थी। (ह०से० ८.९.४६)

: ९० :

जयरामदास दौलतराम

मुझे जिनके बारेमें चेतावनी दी गई है उनमे सबसे आखिरी नबर है श्री जयरामदास और डा० चोइथरामका। जयरामदासके नामपर तो मैं कसम खा सकता हू। इनसे अधिक सच्चा आदमी मुझे अपनी जिदगी-में अभी नही मिला। जेलमें इनके चाल-चलनपर हम लोग लट्टू थे। उनकी नेकचलनीकी सीमा न थी। इनके दिलमें मुसलमानोके विरुद्ध रत्तीभर भाव नही। डा० चोइथरामसे मेरी जान-पहचान तो पहलेसे है, पर मैं उन्हें पूरी तरह नही जानता, परतु जितना मैं उन्हें जानता हू, उतने परसे मैं उनका परिचय सिवा इसके दूसरी तरह देनेसे इन्कार करता हू कि वे हिंदू मुसलमान एकताके सभी हामी है। (हिं० न० १ .६ २४)

: ९१ :

आनंदशंकर ध्रुव

श्रीआनदशंकर भाईकी क्षति न केवल गुजरातको अपितु काशी हिंदू विश्वविद्यालयकी उनकी वर्षोकी अमूल्य सेवाके कारण यू० पी० को भी उतनी ही मालूम होगी। आनदशकर भाईकी जोड ढूढना असभव नही तो कठिन तो है ही। वे अत तक शिक्षक और शिक्षा-शास्त्री ही रहे। उनकी मृत्युसे अनेक विद्यार्थियोने अपना निजी मित्र गवाया है। मालवीय जीके तो वे दाहिने हाथ ही थे। उनकी इस समयकी मनोदशाकी तो हम कल्पना ही कर सकते है।

परतु आनदशकरभाई केवल शिक्षा-शास्त्री ही न थे। उनकी रुचि अनेक प्रकारकी थी। वे राजनीतिके गहरे अभ्यासी थे। स्वतन्त्रताके पुजारी थे। समाज-सुधारक थे। सनातनियोके साथ उनकी खूब पटती थी, क्योकि उनके वहुतसे रिवाजोका वे अनुसरण करते थे। परतु उनकी वुद्धि और उनका हृदय हमेशा सुधारकोके साथ ही था। वे निर्भयतासे अपने विचार व्यक्त करते थे। सस्कृतके विद्वान् और शास्त्रोके जानकार होनेकी वजहसे उनके विचारोका सब आदर करते थे। हिंदूधर्मको उन्होने शोभित किया था।

स्वय मुझे तो उनकी सहायता मिला ही करती थी। वे मजदूरो और मालिकोके एक समान मित्र थे और दोनोके विश्वासपात्र थे। इसलिए वे दोनोकी अच्छी सेवा कर सके थे।

आनदशकर भाईके कुटुबी यह समझें कि उनके इस शोकमें वहुतेरे उनके साथ है, क्योकि उन्होंने अपने कुटुवका वहुत विस्तार किया था। (ह० से०, १६ .४.४२)

: ६२ :

नटेसन

यह कहें तो अत्युक्ति न होगी कि इस समय प्रवासी भारतवासियोके दुखोपर विचार करनेवाले, उनकी सहायता करनेवाले, उनके विषयमें उचित रीतिसे और ज्ञानपूर्वक लिखनेवाले सारे भारतवर्षमे अकेले नटेसन ही थे। मेरे और उनके वीच वरावर नियमित रूपसे पत्र-व्यवहार चल रहा था। जव ये देशनिकालेकी सजा पाये हुए भाई मदरास पहुचे तव मि० नटेसनने उनकी हर तरहसे सेवा-सहायता की। भाई नायडू-

जैसे समझदार आदमी उनके साथमें थे। इसलिए मि० नटेसनको भी काफी सहायता मिली। स्थानीय चंदा एकत्रकर मि० नटेसनने उनकी इस कदर सेवा की कि उन्हें यह याद तक नही होने पाया कि वे घर-बार छोडकर देश-निकालेकी सजामें आये थे। (द० अ० स०१९२५)

: ९३ :

गुलजारीलाल नन्दा

गुजरातमें ओतप्रोत हो जानेवाला प्यारेलालकी तरह यह दूसरा पंजाबी है। प्यारेलालसे भी एक तरहसे बढकर है, क्योकि प्यारेलालके रास्तेमें आनेवाला कोई नही है। इसके सामने स्त्री-बच्चे वगैरह बहुतोका विरोध है और यह आदमी बडी व्यवस्था-शक्तिवाला और सत्यका जबरदस्त पुजारी है। (म० डा०)

: ९४ :

चार निडर नवयुवक

इस लोकेशनका कब्जा म्युनिसिपैलिटीने ले तो लिया, परंतु तुरत ही हिंदुस्तानियोको वहासे हटाया नही था। हा, यह तय जरूर हो गया था कि उन्हें दूसरी अनुकूल जगह देदी जायगी। अबतक म्युनिसिपैलिटी वह जगह निश्चित न कर पाई थी। इस कारण भारतीय लोग उसी 'गंदे' लोकेशनमें रहते थे। इससे दो बातोमें फर्क हुआ। एक तो यह

कि भारतवासी मालिक न रहकर सुधार-विभागके किरायेदार बने और दूसरे गदगी पहलेसे अधिक बढ गई। इससे पहले तो भारतीय लोग मालिक समझे जाते थे। इससे वे अपनी राजीसे नही तो डरसे ही, कुछ-न-कुछ तो सफाई रखते थे, किंतु अब 'सुधार' का किसे डर था? मकानोमें किरायेदारोकी भी तादाद बढी और उसके साथ ही गदगी और अव्यवस्थाकी भी वढती हुई।

यह हालत हो रही थी, भारतवासी अपने मनमें झल्ला रहे थे, कि एकाएक 'काला प्लेग' फैल निकला। यह महामारी मारक थी। यह फेफडेका प्लेग था और गाठवाले प्लेगकी अपेक्षा भयकर समझा जाता था। किंतु खुशकिस्मतीसे प्लेगका कारण यह लोकेशन न था, बल्कि एक सोनेकी खान थी। जोहान्सवर्गके आसपास सोनेकी अनेक खानें है। उनमे अधिकाश हब्शी लोग काम करते हैं। उनकी सफाईकी जिम्मेदारी थी सिर्फ गोरे मालिकोके सिर। इन खानोपर कितने ही हिंदुस्तानी भी काम करते थे। उनमेंसे तेईस आदमी एकाएक प्लेगके शिकार हुए और अपनी भयकर अवस्था लेकर वे लोकेशनमें अपने घर आए।

इन दिनो भाई मदनजीत 'इडियन ओपीनियन' के ग्राहक बनाने और चदा वसूल करने यहा आये हुए थे। यह लोकेशनमें चक्कर लगा रहे थे। वह काफी हिम्मतवर थे। इन बीमारोको देखते ही उनका दिल टूक-टूक होने लगा। उन्होने मुझे पेंसिलसे लिखकर एक चिट भेजी, जिसका भावार्थ यह था.

"यहा एकाएक काला प्लेग फैल गया है। आपको तुरत यहां आकर कुछ सहायता करनी चाहिए, नहीं तो बड़ी खराबी होगी। तुरंत आइए।"

मदनजीतने बेधड़क होकर एक खाली मकानका ताला तोड डाला और उसमे इन बीमारोको लाकर रक्खा। मै साइकिलपर चढकर लोके-

शनमें पहुंचा। वहांसे टाउन-क्लर्कको खबर भेजी और कहलाया कि किस हालतमें मकानका ताला तोडना पडा।

× × ×

डाक्टर विलियम गाडफ्रे जोहांसवर्गमें डाक्टरी करते थे। वह खबर मिलते ही दौडे आए और बीमारोंके डाक्टर और परिचारक दोनो बन गये, परन्तु बीमार थे तेईस और सेवक थे हम तीन। इतनेसे काम चलना कठिन था।

अनुभवोंके आधारपर मेरा यह विश्वास बन गया है कि यदि नीयत साफ हो तो सकटके समय सेवक और साधन कही-न-कहींसे आ जुटते है। मेरे दफ्तरमें कल्याणदास, माणिकलाल और दूसरे दो हिंदुस्तानी थे। आखिरी दोके नाम इस समय मुझे याद नही है। कल्याणदासको उसके बापने मुझे सौंप रखा था। उनके जैसे परोपकारी और केवल आज्ञा-पालनसे काम रखनेवाले सेवक मैंने वहा बहुत थोडे देखे होंगे। सौभाग्यसे कल्याणदास उस समय ब्रह्मचारी थे। इसलिए उन्हें मै कैसे भी खतरेका काम सौंपते हुए कभी न हिचकता। दूसरे व्यक्ति माणिकलाल मुझे जोहान्सबर्गमे ही मिले थे। मेरा खयाल है कि वह भी कुवारे ही थे। इन चारोंको चाहे कारकुन कहिए, चाहे साथी या पुत्र कहिए, मैंने इसमें होम देनेका निश्चय कर लिया। कल्याणदाससे तो पूछनेकी जरूरत ही नही थी, और दूसरे लोग पूछते ही तैयार हो गये। "जहा आप तहा हम"—यह उनका सक्षिप्त और मीठा जवाब था।

मि० रीचका परिवार बडा था। वह खुद तो कूद पडनेके लिए तैयार थे, किन्तु मैंने ही उन्हे ऐसा करनेसे रोका। उन्हें इस खतरेमें डालनेके लिए मै बिलकुल तैयार न था, मेरी हिम्मत ही नही होती थी। अतएव उन्होंने ऊपरका सब काम सम्हाला।

शुश्रूषाकी यह रात भयानक थी। मै इससे पहले बहुत-से रोगियोकी सेवा-शुश्रूषा कर चुका था। परन्तु प्लेगके रोगीकी सेवा करनेका अवसर

मुझे कभी न मिला था। डाक्टरोकी हिम्मतने हमे निडर बना दिया था। रोगियोकी शुश्रूषाका काम बहुत न था। उन्हें दवा देना, दिलासा देना, पानी-वानी दे देना, उनका मैला वगैरा साफ कर देना—इसके सिवा अधिक काम न था।

इन चारो नवयुवकोके प्राणपणसे किये गए परिश्रम और ऐसे साहस और निडरताको देखकर मेरे हर्षकी सीमा न रही।

डाक्टर गाडफ्रेकी हिम्मत समझमे आ सकती है, मदनजीतकी भी समझमें आ जाती है—पर इन नवयुवकोकी हिम्मतपर आश्चर्य होता है। ज्यो-त्यो करके रात बीती। जहा तक मुझे याद पडता है, उस रात तो हमने एक भी बीमारको नही खोया। (आ० क० १९२७)

: ९५ :

दादाभाई नवरोजी

दादाभाईका एक पवित्र स्मरणीय प्रसग लिख देना चाहता हू। दादाभाई कमिटीके अध्यक्ष नही थे, तथापि हमें तो यही मालम हुआ कि रुपये आदि इन्हीके द्वारा भेजना शोभा देगा। फिर वे भले ही हमारी ओरसे अध्यक्षको दे दिया करें। पर पहले-पहल ही जो रुपये उन्हे भेजे गये, उन्हें उन्होने लौटा दिया और लिखा कि रुपए आदि भेजनेका कमिटी-सबधी काम हमे सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा ही करना चाहिए। दादाभाईकी सहायता तो थी ही, पर कमिटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा काम लेने हीसे बढती। मैंने यह भी देखा कि यद्यपि दादाभाई इतने वयोवृद्ध थे, तथापि पत्र आदि भेजनेके काममें बडे ही नियमित थे। अगर उनके पास लिखनेके लिए

और कुछ न होता तो कम-से-कम हमारे पत्रकी पहुच तो लौटती डाकसे अवश्य ही आ पहुचती। उस पत्रमे भी आश्वासनके दो-एक शब्द रहते। ऐमे भी वे स्वय ही लिखते और उन पहुचनेवाले पत्रोको भी अपने टिश्यू पेपर बुकमे छाप लेते। (द० अ० स०, १९२५)

. . . . .

दादाभाई नवरोजीकी सौवी जयती आगामी ४ सितबरको पडती है। श्रीभरूचाने समयपर ही उसकी याद हमें दिला दी है। हम दादाभाईको भारतका पितामह कहते थे। दादाभाईने अपना सारा जीवन भारतके अर्पण कर दिया था। दादाभाईने भारतकी सेवाको एक धर्म बना डाला था। स्वराज्य शब्द उन्हीसे हमें मिला है। वे भारतके गरीबोके मित्र थे। भारतकी दरिद्रताका दर्शन पहले-पहल दादाभाईने ही हमें कराया था। उनके तैयार किये अकोको आजतक कोई गलत साबित न कर पाया। दादाभाई हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई किसीमें भेद-भाव न रखते थे उनकी दृष्टिमें वे सब भारतकी सतान थे। और इसलिए सब समान रूपमे उनकी सेवाके पात्र थे। उनका यह स्वभाव उनकी दो पौत्रियोमें सोलहो आना दीख पडता है।

इस महान् भारत-सेवककी शताब्दी हम किस तरह मनावें? सभाए तो होगी ही, वह भी अकेले शहरोमें नही, बल्कि देहातमें भी, जहा-जहा तक महासभाकी आवाज पहुंचती है, वहा सब जगह। वहा करेंगे क्या? उनकी स्तुति? यदि यही करना हो तो फिर भाट-चारणोको बुलाकर, उनकी कल्पना-शक्तिका तथा उनकी वाणीके प्रवाहका उपयोग करके क्यों न बैठ रहें? पर यदि हम उनके गुणोका अनुकरण करना चाहते हो तो हमें उनकी छानबीन करनी होगी और अपनी अनुकरण-क्षमताकी नाप निकालनी होगी।

दादाभाईने भारतकी दरिद्रता देखी। उन्होने सिखाया कि 'स्वराज्य'

उसकी औषधि है। परतु स्वराज्य प्राप्त करनेकी कुजी तलाश करनेका काम वह हमारे जिम्मे छोड गये। दादाभाईकी पूजाका मुख्य कारण दादाभाईकी देशभक्ति थी और उस भक्तिमे वे बडे लीन हो गये थे।

हम जानते है कि स्वराज्य प्राप्त करनेका सबसे बडा साधन चरखा है। भारतकी दरिद्रताका कारण है भारतके किसानोका सालमें छ या चार मास तक बेकार रहना। और यदि यह अनिवार्य बेकारी ऐच्छिक हो जाय अर्थात् काहिली हमारा स्वभाव बन बैठे तो फिर इस देशकी मुक्ति-का कोई ठिकाना नही। यही नही, बल्कि सर्वनाश इसका निश्चित भविष्य है। उस काहिलीको भगानेका एक ही उपाय है--चरखा। अतएव चरखा-कार्यको प्रोत्साहित करनेवाला हरेक कार्य दादाभाईके गुणोका अनुकरण है।

चरखेका अर्थ है खादी, चरखेका अर्थ है विदेशी कपडेका बहि-ष्कार; चरखेका अर्थ है गरीबोके झोपडोमें ६० करोड रुपयोका प्रवेश।

अखिल-भारत-देशबधु स्मारकके लिए भी चरखा ही तजवीज हुआ है। अतएव इस कोषके लिए उस दिन द्रव्य एकत्रित करना मानो दादा-भाईकी जयती ही मनाना है। इसलिए उस दिन एकत्र होकर लोग विदेशी कपडोका सर्वथा त्याग करें। सिर्फ हाथ-कते सूतकी खादी पहनें, निरतर कम-से-कम आधा घटा सूत कातनेका निश्चय दृढ करें और खादी-प्रचारके लिए धन एकत्र करें। कपास पैदा करनेवाले अपनी जरूरतका कपास घरमें रख लें।

परतु जिसे चरखेका नाम ही पसद न हो वह क्या करे? उसके लिए मै क्या उपाय बताऊ? जिसे स्वराज्यका नाम तक न सुहाता हो उसे मै शताब्दी मनानेका क्या उपाय सुझाऊ? उसे अपने लिए खुद ही कोई उपाय खोज लेना चाहिए। मेरी सूचना सार्वजनिक है। यही हो भी सकता है। दादाभाईके अन्य गुणोकी खोज करके कोई उनका

अनुकरण चाहे तो जुदी बात है। वैसे दूसरे तरीकेसे जयती मनाने-का उसे हक है। अथवा फर्ज कीजिए, शहरोमे स्वराज्यवादी दल कोई खास बात करना चाहे तो वह अवश्य करे। मै तो सिर्फ वही बात बता सकता हू जिसे क्या शहराती और क्या देहाती क्या वृद्ध और क्या बालक, क्या स्त्री और क्या पुरुष, क्या हिंदू और क्या मुसलमान, सब कर सकते है।

यदि हम लोग मेरी तजवीजके अनुसार ही दादाभाईकी जयती मनाना चाहते हो तो हमें आजसे ही तैयारी करनी चाहिए। आजसे हम उनके लिए चरखा चलाने लग जाय। आज हीसे हम उसके निमित्त खादी उत्पन्न करें और ऐसी सभाए स्थान-स्थानपर करे जो हमें तथा देशको शोभा दे। (हि० न०, ६ ८.२५)

• • •

दूसरे, जिन कानूनोको मैने पढा उनमें भारतवर्षके कानूनोका नाम तक न था। न यह जाना कि हिंदू-शास्त्र तथा इस्लामी कानून क्या चीज है। अर्जी-दावा तक लिखना न जानता था। मै बडी दुविधामें पडा। फीरोजशाह मेहताका नाम मैने सुना था। वह अदालतमें सिंह-समान गर्जना करते है। यह कला वह इग्लैडमें किस प्रकार सीखे होगे? उनके जैसी निपुणता इस जन्ममे तो नही आनेकी, यह तो दूरकी बात है, किन्तु मुझे तो यह भी जबरदस्त शक था कि एक वकीलकी हैसियतसे मै पेट पालनेतकमें भी समर्थ हो सकूगा या नही।

यह उथल-पुथल तो तभी चल रही थी, जब मै कानूनका अध्ययन कर रहा था। मैने अपनी यह कठिनाई अपने एक-दो मित्रोके सामने रखी। एकने कहा—दादाभाईकी सलाह लो। दादाभाईके नाम परिचय-पत्रका उपयोग मैने देरसे किया। ऐसे महान पुरुषसे मिलने जानेका मुझे क्या अधिकार है? कही यदि उनका भाषण होता तो मै सुनने चला जाता और एक कोनेमें बैठकर आख-कानको तृप्त करके वापस लौट आता।

उन्होने विद्यार्थियोके सपर्कमें आनेके लिए एक मडलकी स्थापना की थी। उसमें मै जाया करता। दादाभाईकी विद्यार्थियोके प्रति चिंता और दादाभाईके प्रति विद्यार्थियोके आदर-भाव देखकर मुझे बडा आनद होता। आखिर हिम्मत बाधकर वह पत्र एक दिन दादाभाईको दिया। उनसे मिला। उन्होने कहा—"तुम जब कभी मिलना चाहो और सलाह-मशविरा लेना चाहो, जरूर मिलना।" लेकिन मैंने उन्हें कभी तकलीफ न दी। बगैर जरूरी कामके उनका समय लेना मुझे पाप मालूम हुआ। इसलिए उस मित्रकी सलाहके अनुसार, दादाभाईके सामने अपनी कठिनाइयोको रखनेकी मेरी हिम्मत न हुई। (आ० क०, १६२७)

(मद्यनिषध विरोधी शिष्टमडलसे बातचीत करते हुए गाधीजीने कहा—)

शराबबदी मुझे सिखानेवाले स्व० दादाभाई नवरोजी थे। मद्यनिषेध और मितपानके बीच भेद करना भी उन्होंने ही मुझे सिखाया था। (ह० से०, ७ ६ ३६)

: ६६ :

हरदयाल नाग

उन्होने अनासक्तियोग साधा है। (म० डा० १० ७ ३२)

. . . . .

प्रिय हरदयाल बाबू,

आपका पत्र पाकर हम सबको बहुत आनद हुआ। इतनी पकी उमरमें आपने तकली सीखी, यह जानकर मुझे आपसे ईर्षा होती है। और यह भी बड़ी खुशीकी बात है कि आपका वजन १६ पौड बढ गया।

सेवा करनेके लिए आप बहुत वर्ष जियें ! आपके और आपकी तदुरुस्तीके बारेमें हम बहुत बार बातें करते हैं। हम सबका नमस्कार। (म० डा०, ५.८ ३२)

.. . ..

ऐन मौक़ेपर सच्चा सदेश भेजनेमें आप हमेशा नियमित रहे है। इतनी उम्रमें इतना उत्साह दिखाकर आप देशके नौजवानोंको शरमाते हैं। अभीके जैसा ही जोश कायम रखकर ईश्वर आपसे सौ बरस काम कराए। (म० डा०, १०.१० ३२)

: ६७ :

नागप्पा

ट्रासवालका जाडा बडा सख्त होता है। जाडा इतना भयकर पडता था कि सुबह काम करते-करते हाथ-पैर ठिठुर जाते थे। ऐसी स्थितिमें कितने ही कैदियोंको एक छोटी-सी जेलमें रखा गया, जहा उन्हें कोई मिलने भी न पाए। इस दलमें नागप्पा नामक एक नौजवान सत्याग्रही था। उसने जेलके नियमोका पालन किया। उसे जितना काम दिया गया, सभी कर डाला। सुबह, पौ फटते ही सडकोपर मिट्टी डालनेको वह जाता। नतीजा यह हुआ कि उसे फेफडेका सख्त रोग हो गया और अतमें उसने अपने प्यारे प्राण अर्पित कर दिये। नागप्पाके साथी कहते हैं कि अत समय तक उसे लडाईकी ही धुन थी। जेल जानेसे उसे कभी पश्चात्ताप नही हुआ। देश-कार्य करते-करते आई मृत्युका उसने एक मित्रकी तरह स्वागत किया। हमारे नापसे नापा जाय तो नागप्पाको निरक्षर ही कहना पडेगा। अग्रेजी, जुलु आदि भाषाए वह अपने अभ्यासके कारण बोल सकता

था, कुछ-कुछ अग्रेजी लिख भी सकता था। पर विद्वानोकी पक्तिमें तो उसे कदापि नही रखा जा सकता था। फिर भी नागप्पाके धीरज, उसकी शाति, देश-भक्ति और मौतकी घडी तक दिखाई गई उसकी दृढतापर विचार किया जाय तो कहना होगा कि उसमें किसी ऐसी वातकी न्यूनता न थी कि जिसकी हमे उससे आशा करनी चाहिए। हमें वहुत बडे-वडे विद्वान नही मिले, पर फिर भी ट्रासवालका युद्ध रुका नही। यदि नागप्पा जैसे शूर सिपाही हमे नही मिलते तो क्या वह युद्ध चल सकता था ?
(द० अ० स०, १६२५)

: ६८ :

थंबी नायडू

थबी नायडू तामिल सज्जन थे। उनका जन्म मारीशसमें हुआ था। उनके माता-पिता मद्रास इलाकेसे वहा आजीविकाके लिए गये हुए थे। श्री नायडू एक सामान्य व्यापारी थे। उन्होने कोई भी शिक्षा पाठशालामें नही पाई। पर उनका अनुभव-ज्ञान वडे ऊचे दर्जेका था। अग्रेजी अच्छी तरह वोल और लिख भी सक्ते थे, हालाकि भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे उसमें वे अवश्य गलतिया करते थे। तामिल भाषाका ज्ञान भी अनुभवसे ही प्राप्त किया था। हिंदुस्तानी अच्छी तरह समझ लेते और वोल भी सकते थे। तेलगूका भी कुछ ज्ञान रखते थे। पर हिंदी और तेलगूकी लिपियोका ज्ञान उन्हे जरा भी न था। मारीशसकी भाषा भी, जिसका नाम क्रीओल है और जो अपभ्रष्ट फ्रेंच कही जा सकती है, उन्हे वहुत अच्छी तरह अवगत थी। इतनी भाषाओका ज्ञान दक्षिण अफ्रीकामें कोई आश्चर्य-जनक वात न थी। दक्षिण अफ्रीकामे आपको ऐसे सैकडो भारतीय मिलेंगे

जिन्हें इन सभी भाषाओंका मामूली ज्ञान है। और उन सबके अतिरिक्त हबशियोंकी भाषाका ज्ञान तो उन्हें अवश्य ही होता है। इन सभी भाषाओंका ज्ञान वे अनायास प्राप्त करते हैं कर भी सकते हैं। इसका कारण मैंने यह देखा कि विदेशी भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करते-करते उनके दिमाग थके हुए नहीं होते। उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र होती है। उन भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियोंके साथ बोल-बोलकर और अवलोकन करके ही वे उन भाषाओंका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इससे उनके दिमागको जरा भी कष्ट नहीं होता, बल्कि उस रोचक व्यायामके कारण उनकी बुद्धिका स्वाभाविक विकास ही होता है। यही हाल थबी नायडूका हुआ। उनकी बुद्धि भी बहुत तीव्र थी। नवीन प्रश्नोंको वे बड़ी फुर्तीके साथ समझ लेते। उनकी हाजिरजवाबी आश्चर्यजनक थी। भारत कभी नहीं आए थे पर फिर भी उनका उस पर अगाध प्रेम था। स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमें भरा हुआ था। उनकी दृढ़ता चेहरेपर ही चित्रित थी। उनका शरीर बड़ा मजबूत और कसा हुआ था। मेहनतसे कभी थकते ही न थे। कुर्सीपर बैठकर नेतापन करना हो तो उस पदको भी शोभा बढ़ा दे। पर साथ ही हरकारेका काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीतिसे वे कर सकते थे। सिरपर बोझा उठाकर बाजारसे निकलनेमें थबी नायडू जरा भी न शरमाते थे। मेहनतके समय न रात देखते, न दिन। कौमके लिए अपने सर्वस्वकी आहुति देनेके लिए हर किसीके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे। अगर थबी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता तो आज यह वीर पुरुष ट्रान्सवालमें काछलियाकी अनुपस्थितिमें आसानीसे कौमका नेतृत्व ग्रहण कर सकता था। ट्रांसवालके युद्धके अंत तक उनके क्रोधका कोई विपरीत परिणाम नहीं हुआ था, बल्कि तबतक उनके अमूल्य गुण जवाहिरोंके समान चमक रहे थे। पर बादमें मैंने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रबल शत्रु साबित हुए और उन्होंने उनके गुणोंको छिपा दिया। पर कुछ भी हो, दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-

युद्धमें थबी नायडूका नाम हमेशा पहले ही वर्गमें रहेगा । (द० अ० स०, १९२५)

: ९९ :

पी० के० नायडू

देश-निकालेकी सजा पाये हुए भाइयोके विषयमे यही तय हुआ कि उनके लिए वह सब किया जाय जो सहानुभूति और हमदर्दी कर सकती है । उनको आश्वासन दिया गया कि उनकी सहायताके लिए भारतमे यथाशक्ति व्यवस्था की जायगी । पाठकोको यह स्मरण रखना चाहिए कि इनमेंसे अधिकाश तो गिरमिट-मुक्त ही थे । भारतमें कोई रिश्तेदार वगैरा उन्हें नही मिल सकते थे । कितनोका तो जन्म ही अफ्रीकाका था । सबको भारतवर्ष विदेशके समान मालूम होता था । इस तरहके निराधार मनुष्योको भारतके किनारेपर उतारकर उन्हें यहा-वहा भटकनेके लिए छोड देना तो जघन्य दुष्टता होती । इसलिए उनको यह विश्वास दिलाया गया कि भारतमें उनके लिए पूरी व्यवस्था कर दी जायगी ।

यह सब कर देनेपर भी उन्हे तबतक शाति कैसे मिल सकती थी, जबतक कि कोई खास मददगार उनके साथ न कर दिया जाय ? देश-निकालेकी सजा पानेवालोका यह पहला ही दल था । स्टीमर छूटनेको कुछ ही घटोकी देरी थी । पसदगी करनेके लिए समय नही था । साथियोमेंसे भाई पी० के० नायडूपर मेरी नजर गई । मैंने पूछा—

"इन गरीब भाइयोको भारत छोड़नेके लिए आप जा सकते है ?"

"बडी प्रसन्नताके साथ ।"

"पर स्टीमर तो अभी खुलने ही को है ।"

"तो मुझे कौन देरी है ?"

"पर आपके कपडे वगैरह और खर्चा?"

"कपडे तो शरीरपर है ही। रही खर्चेकी बात, सो तो स्टीमरमें ही मिल जायगा।"

मेरे हर्ष और आश्चर्यकी सीमा न रही। पारसी रुस्तमजीके मकानपर यह बातचीत हुई थी। वहीसे उनके लिए कुछ कपडे, कबल वगैरा माग-मूग कर उन्हें रवाना कर दिया।

'देखिए भाई, राहमें इन भाइयोको अच्छी तरह सभालकर ले जाइए। इनको सुलाकर फिर आप सोइए और खिलाकर खाइए। मदरासके मि० नटेसनके नाम मै तार भेज देता हू। वह जैसा कहें वही कीजिए।'

"एक सच्चा सिपाही बननेको मै कोशिश करूँगा।" यह कहकर वह निकल पडे। मुझे निश्चय हो गया कि जहा ऐसे-ऐसे वीर पुरुष है, वहा कभी हार हो ही नही सकती। भाई नायडूका जन्म दक्षिण अफ्रिकामें ही हुआ था। उन्होने कभी भारतवर्षका दर्शन तक नही किया था।
(द० अ० स० १६२५)

: १०० :

श्रीमती सरोजिनी नायडू

सरोजिनीदेवी आगामी वर्षके लिए महासभाकी सभानेत्री निर्वाचित हो गईं। यह सम्मान उनको पिछले वर्ष ही दिया जाने वाला था। बडी योग्यता द्वारा उन्होंने यह सम्मान प्राप्त किया है। उनकी असीम शक्तिके लिए और पूर्व और दक्षिण अफ्रीकामें राष्ट्रीय प्रतिनिधिके रूपमें की गई महान सेवाओके लिए वे इस सम्मानकी पात्र है और आजकलके दिनोमें जब कि स्त्री-जातिके अदर भारी जागृति हो रही है, स्वागत-

कारिणी-समितिका भारतवर्षकी एक सर्वोत्तम प्रतिभाशालिनी पुत्रीको सभापति चुनना भारतवर्षकी स्त्री-जातिका समुचित सम्मान करना है। उनके सभापति चुने जानेसे हमारे प्रवासी देशभाइयोको पूर्ण सतोष होगा और इससे उनके अदर वह साहस पैदा होगा, जिससे वे अपने सामने उपस्थित लडाईको लड सकेंगे। राष्ट्रद्वारा दिये जानेवाले सबसे ऊचे पदपर उनका होना स्वतन्त्रताको हमारे अधिक समीप लावे।
(हि० न०, ८.१०.२५)

... .

अमेरिकाके लिए श्री सरोजिनीदेवीने गत १२ ता० को हिंदुस्तानका किनारा छोडा। यूरोप, अमेरिका, इत्यादि मुल्कोमें अपनी स्थायी सभाए स्थापित करके या समय-समयपर अपने प्रतिनिधि भेजकर हमारे बारेमें जो झूठी मान्यताए प्रचलित हो गई है, उन्हें दूर करनेकी आशा अनेको आदमी रखते है। मुझे यह आशा हमेशा ही गलत जान पडी है। ऐसा करनेसे हम सार्वजनिक धनका और जिनका और अच्छा उपयोग हो सकता है उन लोगोके समयका दुरुपयोग करेंगे। किंतु पश्चिममें अगर किसीका जाना फल सकता है तो सरोजिनी देवीका या कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका जाना अवश्य फल सकता है। सरोजिनीदेवीका नाम उनके काव्योसे पश्चिममे प्रसिद्ध है। उनमें चतुराई भी वैसी ही है। उन्हें यह भली भाति मालूम है कि कहा, क्या और कितना कहना चाहिए। किसीको दु ख पहुचाये विना खरी-खरी सुना देनेकी कला उन्होने साधी है। जहा कही वे जाती है, उनकी बात सुने विना लोगोका काम चलता ही नही है। दक्षिण अफ्रीकामे अपनी शक्तिका सपूर्ण उपयोग करके उन्होने वहाके अग्रजोका मनहरण किया था और सुदर विजय प्राप्त करके सर हबीबुल्ला-प्रतिनिधि-मडलका रास्ता साफ किया था। वहाका काम कठिन था। किंतु वहापर उन्होने अपनी मर्यादा निश्चित करके कानूनके जालपेंचोमें न पड़ते हुए, मुख्य बातमें लगे रहकर अपना काम भलीभाति किया

था और हिंदुस्तानका नाम चमकाया था। ऐसा ही काम वे अमेरिका आदि देशोंमें भी करेंगी। अमेरिकामें उनकी हाजिरी ही मिस मेयोके असत्यका जवाब हो जायगी। उनका साहस भी उनकी दूसरी शक्तियोंके ही समान है। परदेश जानेमें न तो उन्हें किसीकी सहायताकी आवश्यकता रहती है और न किसी मन्त्रीकी ही। जहा कही जाना हो वे अकेले निर्भयतासे विचर सकती हैं। उनकी ऐसी निर्भयता स्त्रियोंके लिए तो अनुकरणीय है ही पुरुषोंको भी लजानेवाली है। हम अवश्य यह आशा रख सकते हैं कि उनकी पश्चिमकी यात्रामेंसे अच्छा फल निकलेगा। (हिं० न०, २०-६-२८)

. . . .

अमेरिकासे कई-एक मित्रोंके पत्र बराबर मेरे पास आते रहते हैं, जिनमें सरोजिनीदेवीके कामकी प्रशंसा रहती है। मित्र लिखते हैं कि सरोजिनी देवी अमेरिकामें बड़े महत्वका काम कर रही हैं और अपनी सारी ईश्वरदत्त प्रतिभाका इस देशके लिए पूरा-पूरा उपयोग कर रही हैं। इसमें शका नहीं कि उन्होंने अमेरिकावासियोंका मन मोह लिया है। कनाडाकी एक बहनने एक लंबे पत्रमें अपने कुछ अनुभव लिखकर भेजे हैं, उसमें थोडी से बातें नीचे देता हू ·

"सरोजिनीदेवी थोडे समयके लिए मेरी मेहमान बनी थीं। आपके उन मित्र और दूतसे मिलकर मैंने अपने आपको बड़भागी पाया है · मैं खुद एक स्त्री हू, वह भी स्त्री ही हैं। साथ ही वह तो कवि और सुधारक हैं, इसीलिए उन्होंने मेरा हृदय और भी चुरा लिया है। उनकी आत्माका मुझपर बहुत ज्यादा असर हुआ है और इतने दिनके बाद भी उनके मिलापकी बात हमारे हृदयमें जैसी-की-तैसी बनी हुई है। जिस गिरजाघरमें सरोजिनीदेवीने व्याख्यान दिया था वह तो श्रोताओंसे खचाखच भर गया था। उनके ज्ञानकी, उनके अनुभवोंकी, उनकी काव्यशक्तिकी, उनके मधुर कोकिल कंठ की, उनके विनोदकी

और अंग्रेजी भाषापर उनके प्रभुत्वकी मैं आपसे क्या बात कहूं ? जैसे-जैसे उनकी वाणीका प्रवाह बढता गया, वैसे-वैसे लोग मारे आश्चर्यके चकित होते गये और आखिरकार उनके गुणोंपर पूरे-पूरे मुग्ध होगये। उन्होंने हमारे सामने जितनी भी समस्याए रक्खीं, हममेंसे कोई भी उनका उत्तर न दे सका। मेरे पास एक व्यवहार-कुशल व्यापारी बैठे हुए थ, उन्होंने समाधिवत् होकर उनका सारा व्याख्यान सुना। जो प्रश्न पूछे गये सरोजिनीदेवीने उनके ठीक-ठीक उत्तर दिये और बीच-बीचमें जिस ढगसे उन्होंने विनोदका सहारा लिया उसे देखकर तो पूर्वोक्त व्यापारी महाशयसे बोले बिना न रहा गया। उन्होंने कहा, "ऐसी शक्ति तो मैने किसी भी दूसरी स्त्रीमें नहीं देखी। अगर सच कहू, मेरी रायमें कोई भी पुरुष इनके मुकाबलेमें खडा नहीं रह सकता।" वर्तमान भारतके विषयमें उन्होंने जो कुछ कहा, वह बहुत ज्यादा असर करनेवाला था। उन्होंने हमारी न्याय-प्रियताको जागृत किया, हमारे हृदयोको पानी-पानी कर दिया और हमें उसी समय यह अनुभव होने लगा कि आपके वहां भी उसी तरहका राज्यतत्र होना चाहिए जैसा हमारे यहा है। सरोजिनीदेवीकी रचनामें मालूम होता है, ईश्वरने कई रग पूरे हैं। उन्हें भोजनके समय मिलिये या सम्मेलनोंमें मिलिये, सामान्य वार्तालापके लिए मिलिये अथवा और किसी कामके लिए, हर हालतमें उनकी प्रतिभा बिजली पडती थी। उनके उत्साहका तो पार ही नहीं है। कई निमत्रणोको स्वीकार कर चुकी हैं, एक ही दिनमें कई जगह जाती हैं, लेकिन मालूम नहीं होता कि थकी हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके पास शक्तिका कोई अटूट भडार है! लोकप्रियतासे वह फूल नहीं उठतीं। यहाकी सब अच्छी चीजें उन्हें पसंद हैं। वह बच्चोको प्यार करती हैं, सुंदर फूल उनका मन चुरा लेते हैं, हमारे वृक्ष, हमारे सरोवर और हमारी नदियां उन्हें आनंद प्रदान करती हैं, फिर भी वह भविष्यको नहीं भूलतीं। यानी, स्त्री-

जातिमें जो कमजोरियां रहती है और प्रशसाके कारण जिस तरह बहुधा स्त्रिया अपना आपा भूल जाती है, उस तरहका भय मुझे सरोजिनीदेवीके बारेमें नहीं है।"

मै नही समझता कि इन बहनने जिस शब्दोमें सरोजिनीदेवीकी शक्तिका वर्णन किया है उनमें कोई बात बढाकर लिखी गई है। सरोजिनीदेवीमें वस्तुस्थितिको पलभरमें समझ लेनेकी अपूर्व शक्ति है। वह अपनी मर्यादाको समझती है। अर्थशास्त्रियो और राजनैतिक नेताओकी बारीकीमे वह कभी नही उतरती। इस तरहके ज्ञानका न तो वह कभी दावा करती है और न आडबर ही। साधारण आदमीके पास जितना ज्ञान होता है, उतने ही ज्ञानकी पूजीसे वह अपना काम इतनी चतुराईसे कर लेती है कि सामनेवाला आदमी उन्हें कभी उलझनमे डाल ही नही सकता। उलटे जो कुछ उनसे ग्रहण करता है उसीमे इतना सतोष अनुभव करता है, मानो उसे सबकुछ मिल गया हो। (हिं० न०, २१ २ २६)

... .

सरोजिनी नायडूको वह चीज लागू नही होती। वह कोई आश्रमवासी तो है नही; बहुत चीजोमें मेरा विरोध भी कर लेती है। मैं तो गुणोको ही देखता हू। मै खुद कहा दोपरहित हू कि किसीके दोप देखू! वह तो अपना स्वतत्र स्थान रखती है। उसने अपना मार्ग निकाल लिया है। (का०क०,२४.६ ४२)

... .

'मैने रात भी कहा था कि यह सब जो तुम लोगोने किया है,[1] करने जैसा नही था। सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढिया कर लेती है, मगर सच्ची सस्कृतिकी कीमत देकर। जो चीज मैं कहता हू उसमें सच्ची सस्कृति है ..' (का०क०,३-१०-४२)

---

[1] 'अपने जन्मोत्सवकी ओर सकेत है।'

: १०१ :

जयप्रकाश नारायण

श्री जयप्रकाश नारायण और श्री सपूर्णानदजीने साफ शब्दोमें कह दिया है कि हम २६ जनवरीको ली जानेवाली प्रतिज्ञामे जो भाग जोडा उसके खिलाफ है। मुझे उनका बडा लिहाज है। वे योग्य है, वीर है और उन्होने देशकी खातिर कष्ट उठाए है। लडाईमें वे मेरे साथी बन सके तो इसे मै अपना सौभाग्य समझू। मै उन्हे अपने विचारका बना सकू तो मुझे कितनी खुशी हो। लडाई आनी ही है और मुझे उसका नायक बनना है तो यह काम मै ऐसे सहायकोके भरोसे नही कर सकता, जिनका कि कार्य-क्रम पर अधूरा विश्वास हो या जिनके दिलमे उसके बारेमें शकाए हो।

श्री जयप्रकाश नारायणने अपनी और समाजवादी दलकी स्थिति साफ करके अच्छा किया। रचनात्मक कार्य-क्रमके बारेमें वे कहते है—हमने इस अपनी लडाईके एकमात्र या पूरी तरह कारगर हथियारके रूपमें कभी स्वीकार नहीं किया है। इन मामलोमें हमारे विचार ज्यो-के-त्यो बने हुए है। मौजूदा सकटकालमें हमारे राष्ट्रीय नेताओकी लाचारी देखकर वे विचार कुछ मजबूत ही हुए है। उस दिन विद्यार्थियोको स्कूल-कालेजोसे निकल आना चाहिए और मजदूरोको काम बंद कर देना चाहिए।

अगर अधिकाश काग्रेसियोका यही विचार है जो श्री जयप्रकाशने समाजवादी दलकी तरफसे प्रकट किया है तो मै इस तरहकी सेनाको साथ लेकर सफलता पानेकी कभी आशा नही रख सकता। उनकी न कार्य-क्रममे श्रद्धा है, न वर्तमान नेताओमे। मेरे खयालसे जिस कार्यक्रमपर वे सिर्फ राष्ट्रके नेताओकी इच्छाके कारण ही चलनेकी बात कहते है

उनकी उन्होने बिल्कुल अनजानमे ही सही निंदा कर दी। जरा ऐसी फौजकी कल्पना तो कीजिए जो लडाईके लिए कूच करनेवाली है, लेकिन न तो जिन हथियारोंसे काम लेना है उनमें उसका विश्वास है और न जिन नेताओंने यह हथियार बताये है उनपर श्रद्धा है। ऐसी सेना तो अपना, अपने नायकोंका और कामका सत्यानाश ही कर सकती है। मैं श्री जयप्रकाशकी जगह होऊ और मुझे लगे कि मैं अनुशासनका पालन कर सकता हू तो मैं अपने दलको चुपचाप घरमें बैठे रहनेकी सलाह दू। अगर ऐसा न कर सकू तो निकम्मे नेताओंकी बुरी योजनाओंको मटियामेट करनेके लिए खुली बगावतका झंडा फहरा दू।

श्री जयप्रकाश चाहते है कि विद्यार्थी स्कूल-कालिजोसे निकल आए और मजदूर काम छोड बैठें। यह तो अनुशासन भग करनेका पाठ पढाना हुआ। मेरी चले तो मैं हर विद्यार्थीसे कहू कि छुट्टी न मिले या प्रिंसीपल छब्बीस जनवरीको उत्सवमे भाग लेनेके लिए स्कूल या कालिज बद करनेका फैसला न करें तो उन्हें स्कूल या कालेजमे ही रहना चाहिए। इसी तरहकी सलाह मैं मजदूरोको दूगा। श्री जयप्रकाशकी शिकायत है कि स्वाधीनताके दिन जो काम करना है उसके बारेमे कार्यसमितिने कोई तफसील नही बनाई। मैंने समझा था कि जब भाईचारेका और खादीका कार्यक्रम है तो फिर तफसीलवार हिदायतें देनेकी क्या जरूरत है? मुझे आशा है कि हर जगह कांग्रेस-कमेटिया कताई-प्रदर्शन, खादी-फेरी और ऐसे ही दूसरे आयोजन करेंगी। मैं देखता हू कि कुछ कमेटिया तो ऐसा कर भी रही है। मैंने काग्रेस कमेटियोसे आशा तो यह रक्खी थी कि जिस दिन कार्यसमितिका प्रस्ताव प्रकाशित हो जाय उसी दिनसे तैयारिया शुरू हो जायगी। मैं राष्ट्रकी तैयारी सिर्फ इसी बातसे नही जानूगा कि देश-भरमे कितना सूत काता गया, बल्कि मुख्यत इस बातसे जानूगा कि खादी कितनी बिकी।

अतमे श्री जयप्रकाशका कहना है कि हमने अपनी तरफसे तो एक

नया कार्य-क्रम मजदूर और किसान सगठनका वनाया है, ताकि उसके पायेपर क्रातिकारी सार्वजनिक आदोलन चलाया जाय।

इस तरहकी भाषासे मुझे डर लगता है। मैंने भी सगठन तो किसान और मजदूर दोनोका किया है, मगर शायद उस तरहपर नही किया जैसा श्री जयप्रकाशके जीमें है। उनके वाक्यको और खोलकर समझानेकी जरूरत है। अगर उनका सगठन पूरी तरह शातिपूर्ण न हो तो उससे अहिंसक कारंवाईको उसी तरह नुकसान पहुच सकता है जिस तरह कि रोलट कानून-वाले सत्याग्रहको पहुचा था और वादमें ब्रिटिश युवराजके आने पर ववईकी हड़तालके समय पहुचा था। (ह० से०, २०,१.४०)

• • • •

श्री जयप्रकाश नारायणकी गिरफ्तारी एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। वे कोई साधारण कार्यकर्त्ता नही है। समाजवादके वे महान् विशेषज्ञ है। कहा जा सकता है कि पाश्चात्य समाजवादकी जो वात उन्हें मालूम है उसे हिंदुस्तानमें और कोई भी नही जानता। वे कुशल योद्धा भी है। देशकी स्वाधीनताके लिए उन्होने सर्वस्व त्याग किया है। वे अविरत उद्योगशील है। उनकी कष्टसहिष्णुता अतुलनीय है। मै नही जानता कि उनका कौन-सा भाषण कानूनके पजेमें आ गया है। लेकिन अगर दफा १२४ 'ए' या भारत-रक्षा कानूनकी अति क्रत्रिम धाराए असुविधाजनक व्यक्तियोको गिरफ्तार करनेके काममें लाई जाती है तो कोई भी व्यक्ति, जिसे अधिकारी चाहें, कानूनकी वदिशमें आ सकता है। मै इससे पहले ही कह चुका हू कि सरकार चाहे तो सघर्ष अविलव आरभ कर सकती है। ऐसा करनेका उसे पूरा हक है। लेकिन मै दृढतासे यह आशा वाधे हू कि युद्धको उसी समय तक अपने उचित मार्गपर चलने दिया जायगा जबतक कि वह सर्वथा अहिंसात्मक रहेगा। चाहे जो हो, भ्रमजाल नही चलने देना चाहिए। अगर श्री जयप्रकाश नारायण पर हिंसा का अभियोग है तो उसे प्रमाणित किया जाना चाहिए। सच तो यह है कि इस

गिरफ्तारीसे लोगोंको ऐसा लगने लगा है कि ब्रिटिश सरकार दमन करना चाहती है। ऐसी स्थितिसे इतिहासकी पुनरावृत्ति होगी। पहले सविनय-भग आन्दोलनके समय सरकारने अली-बन्धुओंको गिरफ्तार कर दमनका श्रीगणेश किया था। पता नहीं कि यह गिरफ्तारी पूर्व निश्चित कार्यक्रमके अनुसार की गई है या किसी बहुत जोशीले अधिकारीकी भूल है। अगर यह किसी अधिकारीकी भूल ही है तो इसका सुधार हो जाना चाहिए। (ह० से०, २३ ३ ४०)

. . . . .

श्रीजयप्रकाशनारायणने अदालतमें जो बयान दिया उसकी नकल उन्होंने मेरे पास भेजी थी। यह उनके योग्य है, वीरोचित है, छोटा-सा और मुद्देसर है। जैसा कि उन्होंने खुद कहा है, यह दुर्भाग्यकी बलिहारी है कि उन्हें देश-प्रेमके लिए सजा दी जा रही है। जो बात लाखों सोचते और हजारों बातचीतमें कहते हैं वही श्रीजयप्रकाशने सार्वजनिक रूपमें और जो लोग लड़ाईका सामान तैयार करते हैं, उन्हींके सामने कह दी। यह नहीं है कि उनकी बातका असर हो और वह बार-बार कही जाय तो सरकार तग होगी। मगर इस तरह तग होकर उसे किसी देश-भक्तको, उसके खुलकर विचार करनेका दड देनेके बजाय, यह सोचना चाहिए कि हिंदुस्तानके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए।

बयानके आखिरी हिस्सेसे बयान देनेवालेकी गहरी मानवीयताका प्रमाण मिलता है। उनके दिलमें कोई मैल नहीं। वे साम्राज्यवाद और नात्सीवादका नाश करना चाहते हैं। उनका अग्रेजो या जर्मनोसे कोई झगड़ा नहीं। उन्होंने सच कहा है कि इग्लैंड साम्राज्यवाद छोड दे तो न सिर्फ भारत, बल्कि तमाम दुनियाके स्वतन्त्रता-प्रेमी मनुष्य नात्सीवादकी हार और स्वतत्रता और लोकतन्त्रकी विजयके लिए पूरी कोशिश करेंगे (ह० से०, ३०.३ ४०)

. . . .

श्री जयप्रकाशनारायण और डॉक्टर राममनोहर लोहियाके नाम तो आपने सुने ही है। दोनो विद्वान् है। उन्होने अपनी विद्वत्ताका प्रयोग पैसा कमानेके लिए नही किया। देशकी गुलामीको देखकर वे अधीर हो उठे। उन्होने अपना सवकुछ देशके अर्पण कर दिया और उसकी गुलामीकी जजीरोको तोड़नेमें लग गये। सरकारको उनसे डर लगा और उसने उन्हें जेलमें डाल दिया। अगर मै राज्य चलानेवाला होऊ तो शायद मै भी ऐसे लोगोसे डरू और उन्हें जेलमे रखू।

सरकारने यह समझकर कि अब हमें आजादीसे वचित नही रखना है, श्री जयप्रकाशनारायण और श्री राममनोहर लोहियाको छोड दिया है। सरकार समझ गई है कि उन्होने उसका पाप भले ही किया हो, सत्याग्रही गाधीका भी पाप किया हो, लेकिन ४० करोड जनताका उन्होने कोई पाप नही किया। जेलसे भागना आदि मेरी समझमें पाप है। लेकिन मै जानता हू कि उनके मनमें भी आजादीकी उतनी ही लगन है, जितनी मेरेमे। इसलिए वे मेरी नजरमें गिरते नही है। मै उनकी वहादुरीकी कदर करता हू।

सरकारका उन दोनोको और आजाद हिंद फौजवालोको छोड़ देना मेरी समझमें शुभ शकुन है। उसके लिए हम सरकारको धन्यवाद दें और ईश्वरका उपकार मानें कि उसने उसे सन्मति दी। (ह० से० २१ ४.४६)

: १०२ :

निवारणबाबू

पुरुलियाके निवारणवावू, जिनका अभी हालमें स्वर्गवास हो गया है, वड़े ही विनम्र स्वभावके पुरुष थे। जिस तरह हरिजनोके सच्चे सेवक

थे, उसी तरह वे समस्त दीन-हीनोके सच्चे वधु थे। अहिंसाकी अनुपम मृदरताका उन्होंने खूव गहरे जाकर साक्षात्कार किया था और उसे अपने जीवनमें उतारनेका वे अहर्निश प्रयत्न करते रहते थे। उनका जीवन उनके अनेक मित्रो और अनुयायियोके लिए प्रेरणाप्रद था और वे भारीसे भी भारी सकटके समय निवारण वावूसे पथ-प्रदर्शन तथा आश्वासनकी आशा रखते थे। उनके मित्रो और अनुयायियोको उनके जीवनकी स्मृति सदा शक्तिप्रद रहे और उन्हें सन्मार्गपर उत्तरोत्तर प्रगति करनेकी स्फूर्ति दे। (ह० से०, ६ ८.३५)

: १०३ :

भगिनी निवेदिता

मैं भूल ही नही सकता कि इसने पहली ही मुलाकातमें अग्रेजोके लिए अत्यत तिरस्कार और द्वेपके वचन कहे थे। मुझपर कुछ दिखावटकी छाप पडी थी, मगर दूसरे कई लोग कहते है कि वह गरीव-से-गरीव भगियोके मुहल्लेमें रहती थी। इसलिए यह सवूत मेरे लिए काफी है। दूसरी वार पादशाहके यहा मिली थी। वहा पादशाहकी वूढी माने एक कटाक्ष किया था वह याद रह गया है—इस वहनसे कहिये कि इसने अपना धर्म तो छोड दिया है। अव मुझे क्या मेरा धर्म समझाती है? (म० डा० १ ८ ३२)

: १०४ :

कमला नेहरू

गत १६ तारीखको इलाहाबादमें मुझे कमला नेहरू स्मारक अस्पताल की आधार-शिला रखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह अस्पताल एक सच्ची देश-सेविका और महान् आध्यात्मिक सौन्दर्य रखनेवाली महिलाका न केवल उपयुक्त स्मारक होगा, बल्कि उन्हे दिये हुए मेरे इस वचनकी पूर्ति भी उससे हो जायगी कि उनकी मृत्युके बाद भी मैं यह देखते रहनेका प्रयत्न करता रहूगा कि जिस कामकी उन्होने अपने ऊपर जिम्मेदारी ले रक्खी थी वह ठीक तरहसे चल रहा है या नही। वे अपने स्वास्थ्यकी शोधमें यूरोप जा रही थी। उनकी वह यूरोप-यात्रा मृत्यु-शोधकी यात्रा साबित हुई। जाते वक्त उन्होने मुझे लिखा था कि मैं या तो उनके साथ-साथ बबईतक चलू या उन्हें देखने सीधे बबई पहुच जाऊ। मैं बबई गया। उन्हें जो थोडा-सा वक्त मैं दे सका, उस बीचमे उन्होने मुझसे कहा—"अगर मेरा शरीर यूरोपमें छूट जाय तो जवाहरलालजीने स्वराज्य-भवनमें जो अस्पताल खोल रक्खा है और जिसे कायम रखनेके लिए मैंने इतना परिश्रम किया है उसे देखते रहनेका आप प्रयत्न करते रहेंगे न कि उसकी नीव स्थायी हो गई है?" मैंने उन्हें वचन दे दिया कि मुझसे जो कुछ हो सकेगा वह जरूर करूगा। इस स्मारक-कोषके लिए जो अपील निकाली गई थी उसमे मेरे शामिल होनेका आधार अशत मेरा यह वचन भी था। (ह० से०, २५.११.३६)

: १०५ :

जवाहरलाल नेहरू

महासभाके सभापतिकी जिम्मेदारी हरसाल अधिकाधिक बढती जाती है। इस वक्त हमारे सामने वह गभीर प्रश्न उपस्थित है कि अगले सालके लिए राष्ट्रपतिका ताज कौन पहने ? क्योंकि अबकी बार तो मेरी सम्मतिमें पडित जवाहरलाल नेहरूको यह ताज पहनना चाहिए। अगर मैं निर्णयके समय अपना प्रभाव डाल सका होता तो वह चालू वर्षके भी राष्ट्रपति होते, मगर बगालकी जोरदार मागने 'पुराने साथी' को ही सिहासनपर बैठानेको विवश किया।

बूढे नेता अब अपना कार्यकाल समाप्त कर चुके है। भावी सग्राममें जूझनेका काम नवयुवकों और नवयुवतियोंका है। और यह उचित ही है कि उनके नेतृत्वके लिए उन्हींमें से कोई खडा किया जाय। बूढोको चाहिए कि समयकी गतिको परखें, नही तो जो चीज वे अपनी सहज उदारतासे न देगे वह उनसे जबर्दस्ती छीन ली जायगी। जब जिम्मेदारीका बोझ सरपर आ पड़ेगा, नौजवान अपने आप सौम्य और गभीर बनेंगे और उस उत्तरदायित्वको उठानेके लिए तैयार रहेंगे, जो उन्हीको सम्हालना है। पडित जवाहरलाल हर तरह सुयोग्य है। उन्होने वर्षोंतक अनन्य योग्यता और निष्ठाके साथ महासभाके मत्रीका काम किया है। अपनी बहादुरी, दृढ सकल्प, निष्ठा, सरलता, सचाई और धैर्यके कारण उन्होने देशके नौजवानोका मन मुट्ठीमें कर लिया है। वह किसानो और मजदूरोके भी सपर्कमें आये है। यूरोपीय राजनीतिका जो सूक्ष्म परिचय उन्हें है, उनसे उन्हें स्वदेशकी राजनीतिको समझने और निर्माण करनेमें बडी सहायता मिलेगी।

लेकिन कुछ वयोवृद्ध नेता कहते है कि जबकि हमें सभवत महासभाके

बाहरके अनेक दलोके साथ गभीर और नाजुक चर्चा छेडनी पडेगी, जब सभवत ब्रिटिश कूटनीतिसे मोर्चा लेनेका भी समय आवेगा और जबकि हिंदू-मुस्लिम समस्या अभी हमारे सामने उलझी ही पडी है, ऐसे समयमें नेतृत्वके लिए आप-जैसे किसी व्यक्तिके हाथमे देशकी बागडोरका होना आवश्यक है। इस दलीलमें तथ्यकी जितनी बात है, उसका पर्याप्त उत्तर इस कथनमे आ जाता है कि क्षेत्र-विशेषके लिए मुझमे जो भी खूबिया है, उनका प्रयोग मै उस हालतमे और भी अच्छी तरह कर सकूगा जबकि मै हर तरहके पद-भारसे मुक्त और पृथक रहूगा। जबतक जनताका मुझ-पर विश्वास और प्रेम बना हुआ है, इस बातका जरा भी डर नही है कि पदाधिकारी न होनेकी वजहसे मै, अपनी शक्तियोका, जो मुझमें हो सकती है, सपूर्ण उपयोग न कर सकूगा। ईश्वर-कृपासे बिना किसी पदको स्वीकार किये ही मै १९२० से देशके जीवनको प्रभावित करनेमें समर्थ हो सका हू। मै नही समझता कि बेलगाव महासभाका सभापति बननेसे मेरी सेवा-क्षमता थोडी बढी हो।

और जिन्हें यह पता है कि जवाहरलालका और मेरा क्या सबध है, वे यह भी जानते है कि वह सभापति हुए तो क्या और मै हुआ तो क्या। विचार या बुद्धिके लिहाजसे हममें मतभेद भले ही हो, हमारे दिल तो एक है। दूसरे, यौवन-सुलभ उग्रताके रहते हुए भी, अपने कडे अनुशासन और एकनिष्ठादि गुणोके कारण वह एक ऐसे अद्वितीय सखा है, जिनमें पूरा-पूरा विश्वास किया जा सकता है।

इतनेमें एक दूसरे आलोचक कानोके पास आकर कहते है—क्या जवाहरलालका नाम अग्रेज-बुलके लिए लाल चीथडेका काम नही करेगा? मै कहता हू कि जब हम इन कल्पित आलोचककी तरह तर्क करते है तब न तो राजनीतिज्ञोकी व्यवहार-पटुता और कूट चातुर्यकी कद्र करते है और न स्वय अपनी शक्तिमें ही विश्वास रखते है। राष्ट्रपति चुनते समय इस बातका खयाल रखना कि अग्रेज राजनीतिज्ञ

हमारे चुनावपर क्या कहेंगे, अपनेमें आत्मविश्वासकी कमी प्रकट करना है। आलोचक अग्रेज-स्वभावके जितने पारखी हो सकते है, उनसे अधिक उसका पारखी मैं हू। एक अग्रेजकी दृष्टिमें सच्चाई वीरता, धैर्य और स्पष्टवादिता बहुमूल्य गुण है और जवाहरलालमें ये सब प्रचुर परिमाणमें पाये जाते है। अतएव अगर चुनावके समय ब्रिटिश राजनीतिज्ञोका भी विचार कर लिया जाय तो भी पडित जवाहरलाल उनके अदाजसे किसी कदर कम नही उतरते।

और आखिर यह तो है कि महासभाका सभापति कोई एकाधिकारी या निरकुश नही होता। उसका दर्जा एक प्रतिनिधिका है, जिसे एक प्रख्यात परपरा और सुसघटित सगठनके भीतर रहकर काम करना होता है। ब्रिटेनके राजाको जनतापर अपने विचार लादनेका जितना हक है उससे ज्यादा हमारे राष्ट्रपतिको हो नही सकता। महासभा एक ४५ वर्ष पुरानी सस्था है और उसका महत्व एव प्रतिष्ठा उसके अत्यत सुप्रसिद्ध सभापतियोसे भी बढकर है। दूसरे जब समय आवेगा, ब्रिटिश राजनीतिज्ञोको किसी एक व्यक्तिसे नही, बल्कि सारी महासभासे मोर्चा लेना पडेगा। अतएव सब तरह विचार करनेके बाद उन लोगोको, जिन पर इस विषयका उत्तरदायित्व है, यही सलाह देता हू कि वे मेरा विचार छोड दें और पूरी-पूरी आशा और विश्वासके साथ पडित जवाहरलालको ही उच्चपदके लिए वरण करें। (हिं० न० १.८ २९)

. . . . .

बहादुरीमें कोई उनसे बढ नही सकता और देश-प्रेममें उनसे आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते है कि वह जल्दबाज और अधीर है। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहा उनमें एक वीर योद्धाकी तेजी और अधीरता है वहा एक राजनीतिज्ञका विवेक भी है। वह स्फटिक मणिकी भाति पवित्र है, उनकी सत्यशीलता सदेहके परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा है। राष्ट्र उनके हाथमें सुरक्षित है। ('प० जवाहर

लाल नेहरू'—श्रीरामनाथ 'सुमन,' पृष्ठ २)

• • • •

. जवाहरलालके समान नवयुवक राष्ट्रपति हमें बार-बार नही मिलेंगे। भारतमें युवकोकी कमी नही है, लेकिन जवाहरलालके मुकाबलेमें खडे होनेवाले किसी नवजवानको मैं नही जानता। इतना मेरे दिलमे उनके लिए प्रेम है, या कहिये कि मोह है। लेकिन यह प्रेम या मोह उनकी शक्तिके अनुभवपर स्थापित है और इसलिए मैं कहता हू कि जबतक उनके हाथमे लगाम है, हम अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त करलें तो कितना अच्छा हो। लेकिन हम तभी कुछ कर सकेंगे, जब मुझे आप लोगोकी पूरी-पूरी मदद मिलेगी। मुझे आशा है कि स्वराज्यके भावी संग्राममें आप लोग सबसे आगे होगे। अगर नौ वर्षोंका यहाका आपका अनुभव सफल हुआ हो और आपको अपने आचार्योंके प्रति सच्चा आदर तथा प्रेम हो तो उसे बतानेका, आपमे जो जौहर हो उसे प्रकट करनेका, समय आगे आ रहा है। ('विद्यार्थियोसे,' पृष्ठ २०३)

•

.पडित नेहरूने अपने देश और उसकी वेदीपर अपने जीवनकी समस्त अभिलाषाओ तथा ममताओका बलिदान किया है। सबसे बडी विशेषताकी बात यह है कि उन्होने किसी दूसरे देशकी सहायतासे मिलनेवाली अपने देशकी आजादीको कभी सम्मानपूर्ण नही समझा।

जवाहरलालका जहातक सवाल है, हम जानते है कि हममेसे किसीका भी एक-दूसरेके बिना काम नही चल सकता, क्योकि हम लोगोमें ऐसी आत्मीयता है जिसे कोई बौद्धिक मतभेद नष्ट नही कर सकते। (ह० से०, ३ ६ ३९)

• • • • •

हमें अलग करनेके लिए केवल मतभेद ही काफी नही है। हम जिस क्षणसे सहकर्मी बने है उसी क्षणसे हमारे बीचमें मतभेद रहा है, लेकिन

फिर भी मैं वर्षोंसे कहता रहा हू और अब भी कहता हू कि जवाहरलाल मेरा उत्तराधिकारी होगा, राजाजी नही। वह कहता है कि मेरी भाषा उसकी समझमें नही आती। वह यह भी कहता है कि उसकी भाषा मेरे लिए अपरिचित है। यह सही हो या न हो, किंतु हृदयोकी एकतामें भाषा बाधक नही होती।

और मैं यह जानता हू कि जब मैं चला जाऊगा, जवाहरलाल मेरी ही भाषामें बात करेगा।(ह०, २५. १ ४२)

• •

सवाल—आपने भी उस रोज वर्धामें कहा था कि जवाहरलाल आपके कानूनी वारिस है। आपके कानूनी वारिसने जापानियोके खिलाफ छापेमारीसे लड़नेकी जो हिमायत की है, उसकी कल्पना आपको कैसी लगती है? जब जवाहरलाल खुल्लमखुल्ला हिंसाका प्रचार कर रहे है और राजाजी सारे देशको शस्त्र और शस्त्रोकी शिक्षा देना चाहते है, तो आपकी अहिंसाका क्या होगा ?

उत्तर—जिस तरह आपने लिखा है, उसे देखते हुए तो परिस्थिति भयकर मालूम होती है, मगर आपको जितनी भयकर वह लगती है, दर-असल उतनी है नही। पहली बात तो यह है कि मैंने कानूनी वारिस शब्द अपने मुहसे नही कहा। मेरी तकरीर हिंदुस्तानीमें थी। मैंने तो कहा था कि वे मेरे कानूनी वारिस नही, बल्कि असली वारिस है। मेरा मतलब यह था कि जब मैं न रहूगा, तो वे मेरी जगह लेंगे। उन्होने मेरे तरीकेको पूरे तौरपर कभी अगीकार नही किया। उन्होने तो उसकी साफ-साफ आलोचना की है। परतु बावजूद इसके काग्रेसकी नीतिका उन्होने वफा-दारीके साथ पालन भी किया है। यह नीति या तो मेरी ही निर्धारित की हुई थी, या अधिकाशमें मुझसे प्रभावित थी। सरदार वल्लभभाई जैसे नेता, जिन्होंने हमेशा बिना किसी प्रकारकी शका या सवालके मेरा अनुसरण किया है, मेरे वारिस नही कहे जा सकते। यह तो हर कोई

स्वीकार करता है कि और किसीमें जवाहरलालकी-सी क्रियात्मक शक्ति नही है। और क्या मै यह नही कह चुका हू कि मेरे चले जानेके बाद वे तमाम मतभेदको, जिसका जिक्र वे अकसर किया करते है, भूल जायगे।

मुझे इस बातका खेद है कि कावेवाजीकी युद्ध-प्रणालीने उनके दिलमें घर कर लिया है। मगर मुझे जरा भी शक नही कि वह चार दिनकी चादनी ही साबित होगी। देशपर उसका कुछ असर न होगा। यहाकी भूमि उसके अनुकूल नही। २२ वर्ष तक जिस अहिंसाका लगातार आचार और प्रचार हुआ है चाहे वह कितना ही अपूर्ण क्यो न रहा हो, उसका असर जवाहरलालजी या राजाजीकी इच्छासे—फिर वे कितने ही प्रभावशाली क्यो न हो—एक क्षणमे नही मिट सकता। इसलिए मैं जवाहरलालजी या राजाजीके अहिसा-मार्गसे च्युत होनेसे विचलित नही होता। अपने प्रयत्नके होनेपर वे नई शक्ति और नए उल्लासके साथ अहिंसा-मार्गपर लौटेंगे। उनमेंसे कोई भी हिंसाको इसलिए ग्रहण नही करना चाहता कि वह उन्हें पसद है। अगर आज वे हिंसाकी शरण लेते भी है, तो गालिबन इसलिए कि उनको लगता है कि अहिंसापर आनेसे पहले हिंदुस्तानको हिंसाके दावानलमें से गुजरना ही चाहिए। (ह० से०, २६.४.४२)

• • •

(शामको घूमते समय कुछ दिन पहलेके इस प्रश्नके उत्तरमें कि सत्याग्रही जडवत-से क्यो लगते है, बापूने कहा—) सत्याग्रही जडवत लगते है, यह मै स्वीकार कर लेता हू। इसके कारणको ढूढो तो पहली याद रखनेवाली बात यह है कि किस वर्गमेसे मेरे पास सत्याग्रही आए। लेनिनके पास काम करनेवाले धनहीन थे, क्योकि वह उनके लिए काम कर रहा था। कुछ भी हो, लेनिनको उनसे सतोष मानना था। इसी तरह मेरे पास जो कार्यकर्त्ता है उनसे मुझे सतोष मानना है। दूसरी बात यह है कि जबतक वे लोग मेरे अकुशके नीचे रहकर काम करते है, उन्हें जडवत लगना

ही है। कारण यह है कि सत्याग्रहका सचालक मै रहा। मुझसे आगे उनमेंसे कोई कैसे जा सकता है ? वे लोग अपनी बुद्धि चलाने लगें तो उनका राजाजी-जैसा हाल होगा। मैंने राजाजीसे कहा था कि जबतक मै हू, तुम मुझे समझानेका प्रयत्न करो। न समझा सको तो अतमें तुम्हे मेरी बात मानकर चलना चाहिए। वे कहने लगे, "कभी नही।" तो मैंने कहा, "अच्छी बात है। ऐसे ही कह तो जवाहरलाल भी देता है कि 'कभी नही', मगर पीछे करता वही है जो मै कहता हू। (का० क०, २.१२.४२)

• • •

अगर लोग जरा-सी समझदारीसे चले तो स्वराज्य उनके हाथोंमें आ चुका है, क्योंकि हमारी सरकारके उप-प्रधान जवाहरलालजी है। वाइसराय प्रधान है सही, पर उन्हें अब शातिसे बैठना है। आपके असली बादशाह जवाहरलाल है। वे ऐसे बादशाह है जो हिंदुस्तानको तो अपनी सेवा देना चाहते ही है, पर उनके मार्फत सारी दुनियाको अपनी सेवा देना चाहते है। उन्होंने सभी देशोंके लोगोंसे परिचय किया है और उनके राजदूतोंका सत्कार करनेमें वह बडे कुशल है। लेकिन वह अकेले वहातक कर सकते है ?

वह बेताजके बादशाह आपके खिदमतगार है। तो क्या वह बदूकसे आपकी बदअमनीको दबा देंगे ? अगर आज एकको दबायगे तो कल दूसरेको उसी तरह दबाना पडेगा। फिर वह स्वराज्य तो नही हुआ। पचायती राज्य भी नही हुआ। जब आप लोग अनुशासनसे रहेंगे तभी जवाहरलालकी बादशाहत चलेगी और हमारा स्वराज्य सुखरूप होगा।

खुद जवाहरलालजी भी किस तरह अनुशासनमे रहते है इसका उदाहरण सुनिए। पिछले वर्ष जब वह काश्मीर चले गए थे तब वेवल साहबको उनकी जरूरत पड़ गई। मौलाना साहबने उन्हे बुलाना चाहा

और मेरे समझानेपर वह वहाका सघर्ष छोडकर राष्ट्रपतिका हुक्म मानकर यहा चले आये थे।

आज भी जवाहरलालका चित्त काश्मीरमें है, जहा प्रजाके नेता शेख अब्दुल्ला सीखचोमें वद पडे है। मैंने जवाहरलालसे कहा है कि तुम्हारी आवश्यकता यहापर ज्यादा है। इसलिए जरूरत हुई तो मैं काश्मीर जाऊगा और तुम्हारा काम करूगा। तुम यही रहो। मैंने यह भी उनसे कहा कि यद्यपि मै वचनसे विहार और नवाखालीमें ही करने या ,मरनेके लिए वधा हूँ, परतु काश्मीरमें भी मुसलमान भाइयोका ही सवाल है, इसलिए वहा जा सकता हू। वहा जाकर काश्मीरके राजासे मित्रता करूगा और मुसलमानोकी भलाईका काम करूगा। लेकिन जवाहरलालने अभी इस वातकी 'हा' नही भरी है। (प्रा० प्र०, १.४.४७)

• •　　　　　　　　　• • •

कल मैंने जवाहरलालजीके अमूल्य कामके वारेमें जिक्र किया था। मैंने उन्हे हिंदुस्तानका वेताजका वादशाह कहा था। आज जव अग्रेज अपनी ताकत यहासे उठा रहे है तव जवाहरलालकी जगह कोई दूसरा ले नही सकता। जिसने विलायतके मशहूर स्कूल हैरो और कैंब्रिजके विद्यापीठमें तालीम पाई है और जो वहा वैरिस्टर भी वने हैं उनकी आज अग्रेजोके साथ वातचीत करनेके लिए वहुत जरूरत है। (प्रा० प्र०, २.४.४७)

•　　　　• • •　　　　•

मैं परसो हरिद्वार जाऊगा। मेरे साथ जवाहरलाल जायगे। वे तो युक्तप्रातमें अद्वितीय है। आज तो वे सारे हिंदुस्तानमें भी अद्वितीय हो रहे हैं। (प्रा० प्र०, २६.४.४७)

•　　　　　　　•

लेकिन आज क्या हो रहा है? सरदार ऊचा सिर रखकर चलने-वाला, आज मै आपको कहता हू कि उसका सिर नीचा हो गया है। वह

जवाहरलाल, वह बहादुर जवाहरलाल, हवामें उडनेवाला, किसीकी परवाह न करनेवाला, आज वह लाचार बनकर बैठ गया है। क्यो लाचार बना? हमने उसको लाचार बनाया। .. वह जवाहरलाल कोई ईश्वर तो है नही। सरदार ईश्वर थोडे ही है। दूसरे जो उनके मत्री पड़े है वे ईश्वर तो है नही। उनके पास ईश्वरीय ताकत तो कोई नही है। बाहरकी ताकत, दुनियाकी ताकत भी, कहा उनके पास पडी है? (प्रा० प्र०, १३.६.४७)

... . ..

दूसरी बात यह है कि यहा जितने दु खी लोग है, उनके लिए तो पडित जी—उनको मै बहुत पहचानता हू—ऐसे है कि दूसरोको सुलाकर सोनेवाले है। मानो एक ही बिछौना है, जो सूखा है, बाकी गीला है, तो वह सूखेमें दु.खीको सुलायगे, खुद चाहे घूमते रहें। मै यह पढकर बहुत खुश हुआ। वे कहते है कि उनके घरमें जगह नही है, दूसरे आदमी भी चले आते है, इसलिए जगह नही रहती है। वह तो मुख्य प्रधान है। तो मिलनेवाले जाते है, दोस्त है, अग्रेज भी जाते है, तो क्या वहासे उनको निकाल दें? तो भी कहते है कि मेरी तरफसे एक कमरा या दो कमरा, जितना निकल सकता है निकालूगा और दु खी लोगोंको रखूगा। फिर दूसरे मुख्य प्रधान भी करें, फिर फौजके अफसर है वे भी ऐसा करें। इस तरहसे सब अपने धर्मका पालन करें तो कोई दु खी नही रहेगा। ऐसा जो जवाहरने किया, उसे देखा; तो मै उनको और आपको धन्यवाद देता हू कि हमारे यहा एक रत्न है। (प्रा० प्र०, २१ १ ४८)

.

अब मेरा दिल आगे बढ़ता है कायदे आजम जिन्नाकी तरफ। उनको मैं पहचानता हू। मै तो उनके घर जाता था और एक दफा तो १८ बार गया था। मै उसको तपश्चर्या मानता हू। बादमें भी उन्होने और मैने एक चीजमें दस्तखत किये थे और उसमें भी हम दोनो हिस्सेदार

बन गये थे। तब भी उनके साथ मीठी बातें होती थी। इसलिए मैं तो उनसे, लियाकतअली साहबसे और उनके मन्त्रिमडलसे कहूगा कि यह बात है कि आप जवाहरलाल-जैसे आदमीको कहते है कि आप धोखेबाजी करते है। जवाहरलाल और उनकी सरकारको इसमें धोखेबाजी क्या करनी थी! मैं कहूगा कि जवाहर तो किसीसे भी धोखा करनेवाला नही है, जैसा उसका नाम है वैसा उसका गुण है। उनकी सरकारमें सरदार या जो दूसरे आदमी है उनको भी मै पहचानता हू। वे भी कोई धोखेबाज नही है। अगर वे काश्मीरसे मशविरा करना चाहते है तो उसका यह मतलब नही है कि वे फुसला रहे है। जवाहरलाल तो पहले भी उनसे बाते करता था और अकेला शेख अब्दुल्लाके लिए उनसे लडता था। तो उसको इसमे धोखा क्या करना था! (प्रा० प्र०, २११४७)

. . . .

वे आसानीसे पिता, भाई, लेखक, यात्री, देशभक्त या अतर्राष्ट्रीयताके रूपमे प्रकाशमान है, तो भी पाठकोके सामने इन लेखोमेंसे उनका जो रूप उभरेगा वह अपने देश और उसकी स्वतत्रताके, जिसकी वेदीपर उन्होंने अपनी दूसरी सभी कामनाओका बलिदान कर दिया है, निष्ठावान भक्त-का रूप होगा। यह श्रेय उन्हें मिलना ही चाहिए कि वे किसी अन्य देशकी सहायताकी कीमतपर अपने देशकी आजादी प्राप्त करना अपनी शानके खिलाफ समझेंगे। उनकी राष्ट्रीयता अतर्राष्ट्रीयता-जैसी है। ('नेहरू-यौर नेबर' के प्राक्कथनसे)

: १०६ :

मोतीलाल नेहरू

महासभाका सभापतित्व अब फूलोका कोमल ताज नही रह गया है। फूलके दल तो दिनो-दिन गिरते जाते है और काटे उघड़ते जाते है। अब इस काटोंके ताजको कौन धारण करेगा ? बाप या बेटा ? सैकडो लडाइयोंके लडाका पडित मोतीलाल नेहरू इस काटोके ताजको पहनेंगे या नयम-नियमके पक्के जवान सिपाही पडित जवाहरलाल नेहरू, जिन्होने अपनी योग्यता और महत्तामे देशके युवकोके हृदयोपर अधिकार कर लिया है ? श्रीयुत वल्लभभाई पटेलका नाम स्वभावत ही सबकी जबान पर है। पडितजी एक व्यक्तिगत पत्रमें लिखते है कि इस समय तो वल्लभभाई पटेलको ही, उनकी वीरताके लिए सभापति चुनना चाहिए और सरकारको यह दिखला देना चाहिए कि उनपर सारे राष्ट्रका विश्वास है। खैर, मगर अभी तो श्री वल्लभभाईका कोई प्रश्न ही नही हो सकता। इस समय उनके पास काम भी इतना पड़ा हुआ है कि वे बारडोली छोडकर दूसरी ओर ध्यान ही नही दे सकते। और फिर दिसबर आनेसे पहले ही सभव है कि वे सरकारके अनेक बदीगृहोमेंसे किसी एकमें उसके अतिथि बनकर पहुच जाय। मेरा अपना विचार तो यह है कि यह काटोका ताज पडित जवाहरलालको ही मिलना चाहिए। भविष्य तो देशके युवकोके ही हाथमें होना चाहिए। मगर बगाल तो अगले साल, जबकि बहुतसे तूफानोका भय है, पडित मोतीलालके ही हाथो महासभाकी पतवार देना चाहता है। हम लोगोमें आपसमें फूट है और चारो ओरसे हमें एक ऐसा शत्रु घेरे हुए है जो जितना शक्तिशाली है, उतना ही नीति-अनीतिसे लापरवाह भी। बगालको इस समय किसी बडे-बूढेकी विशेष आवश्यकता है और वह भी ऐसे आदमीकी जिसने, उसके गाढे अवसरपर, उसे सभाला

हो। अगर सारे हिंदुस्तानके लिए आगे सुखका समय नही आनेवाला है तो बगालके लिए तो और भी नही। इसके तो हजारो कारण है कि पडित मोतीलालजीको ही क्यो यह काटोका ताज धारण करना चाहिए। वे वीर है, उदार है, उनपर सभी दलोंका विश्वास है, मुसलमान उन्हें अपना मित्र मानते है, उनके विरोधी भी उनका आदर करते है और अपनी जोरदार दलीलोसे वे उन्हें प्राय ही अपनी रायमे सहमत कर लेते है और फिर इसके अलावा उनके स्वभावमें सधि और समझौतेकी भावनाकी ऐसी पुट भरी हुई है, जिससे वे किसी ऐसे राष्ट्रके अत्यत योग्य दूत होने लायक है, जिसे सम्मानित समझौतेकी आवश्यकता है और जो उसे करनेके लिए तैयार है। इन्ही वातोपर विचार करके, अत्यत साहसी बगाली देशभक्त पडित मोतीलाल नेहरूको ही अगले वर्षके लिए राष्ट्रका कर्णधार बनाना चाहते है। (हिं० न०, २६ ७ २८)

•

हमारे देशके इस बहादुर वीरके शवके सामने खडे होकर गगा और जमुनाके किनारे हममेसे हर पुरुष और स्त्रीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि जबतक हिंदुस्तान आजाद न होगा वह चैन न लेंगे, इसलिए कि यही वह काम है जो मोतीलालजी दिलसे चाहते थे। इसी खातिर उन्होने अपनी जान देदी। ('कोई शिकायत नही', पृष्ठ ७३)

• • •

मेरी हालत विधवा स्त्रीसे भी बुरी है। एक विधवा अपने पतिकी मृत्युके बाद वफादारीसे जीवन बिताकर अपने पतिके अच्छे कामोका फल पा सकती है। मैं कुछ भी नही पा सकता। मोतीलालजीकी मृत्युसे जो कुछ मैने खोया है वह मेरा सदाके लिए नुकसान है। ('कोई शिकायत नही', पृष्ठ ७३)

• • • • • • •

मोतीलालजीकी मृत्यु हरेक देशभक्तके लिए ईर्ष्यास्पद होनी चाहिए,

क्योंकि अपना सबकुछ न्यौछावर करके वे मरे हैं और अंत समय तक देशका ही ध्यान करते रहे हैं। इस वीरकी मृत्युसे हमारे अंदर भी बलिदानकी भावना आनी चाहिए। हममेंसे हरेकको चाहिए कि जिस स्वतंत्रताके लिए वे उत्सुक थे और जो हमारे बहुत नजदीक आ पहुंची है, उसको प्राप्त करनेके लिए अपना सर्वस्व नहीं तो कम-से-कम इतना बलिदान तो करें ही कि जिससे वह हमें प्राप्त हो जाय।

(मोतीलालजीकी मृत्युपर, ७ फरवरीको, इलाहाबादमें दिया संदेश।)

• • •

मैं श्री मोतीलाल नेहरू इत्यादिकी याद आपको दिला दूंगा जिन्होंने अपनी कानूनी लियाकत बिल्कुल मुफ्त बांटी और अपने देशकी बड़ी अच्छी तथा विस्तृत सेवा की। आप मुझे शायद ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमें बड़ी लंबी फीस लेते थे। मैं इस तर्कको इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा और सबसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोंने भारतको आवश्यकता पड़नेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई संबंध नहीं है। मैंने उनको बड़े संतोषसे दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हिं० न०, १२.११.३१)

• • •

स्वर्गीय मोतीलालजीके चित्रके उद्घाटनका जो सम्मान तुम लोगोंने मुझे दिया है, उसके लिए मैं तुम्हारा आभारी हूं। तुम्हारे पास उनकी छवि रहे और उनके पवित्र भावोंको तुम सदा अपने हृदयमें अंकित रक्खो, यह उचित ही है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि जैसा संबंध दो सगे-सहोदर भाइयोंके बीच होता है, वैसा ही प्रगाढ प्रेम-संबंध मोतीलालजीके और मेरे बीच था। मोतीलालजीकी देश-सेवा, मोतीलालजीका त्याग, मोतीलालजीका अपने पुत्र-पुत्रियोंके प्रति अनुपम प्रेम, इन सब बातोंका

परिचय जैसा मुझे था, लगभग वैसा ही तुम्हें भी होना चाहिए। जबसे मुझे मोतीलालजीका प्रथम परिचय प्राप्त हुआ, तबसे उनके जीवनके अंतिम समयतक उनके निकट ससर्गमे रहनेका सद्भाग्य ईश्वरने मुझे दिया था। मैंने देखा कि वह प्रतिक्षण स्वदेशहितका ही चिन्तन करते थे। उनके लिए स्वराज्य स्वप्न नही, बल्कि प्राण था। स्वराज्यकी उन्हें सदा तृष्णा-पिपासा रही और वह दिन-दिन बढती ही गई। ऐसे आदर्श देशभक्तका चित्र अपने सम्मुख रखना उचित ही है। इतनी आशा मुझे अवश्य है कि स्वर्गीय पडितजीके गुणोका तुम लोग अनुकरण करोगे। पडित मोतीलालजीके सद्गुणोमें एक गुण यह भी था कि वह अस्पृश्यता नही मानते थे। वह मानो एक राजपुरुष थे। उन्होने तो बेहद रुपया कमाया, उसे सत्कार्योंमें, स्वराज्यके कार्योंमें लुटाया। मुझे उनके ऐसे दृष्टात मालूम हैं कि उनके हृदयमें ऊच-नीचका भाव था ही नही। (ह० से०, २६.१२.३३)

.. ...

उस जमानेमें हमने विदेशी कपडेके पहाड चिन-चिनकर जला दिये थे और कोई यह नही कहता था कि इससे राष्ट्रकी निधि बरबाद हो रही है। श्रीमती नायडूने अपनी पेरिसकी साडी जला दी थी और स्व० मोतीलालजीने भी अपने विलायती कपडोमें दियासलाई लगा दी थी। उनके पास तो आलमारी-की-आलमारिया विदेशी कपडे थे। इसके बाद जब वे जेल गए तब उन्होने मेरे पास एक खत भेजा था—आज वह खत मैं खोज नही सकता—पर उसमें था कि मैं सच्चा जीवन अब ही जी रहा हू, आनदभवनमे मेरे पास जो समृद्धि थी उससे मुझे यह सुख नही मिलता था। वहा उन्हे सिगार, शराब, गोश्त कुछ नही मिलता था। पूरा भोजन भी नही मिलता था, फिर भी उसमे उन्हें सुख मालूम हुआ। यह सही है कि उनकी यह चीज हमेशा नही चली। (प्रा० प्र०, २० ६ ४७)

: १०७ :

सुशीला नैयर

सुशीलाबहन बहावलपुर चली गई है। बहावलपुरमे दुखी आदमी है। उनको देखनेके लिए चली गई है। . फ्रेंड्स सर्विसके लेसली क्रॉसके साथ चली गई है। फ्रेड्स यूनिटमेंसे किसीको भेजनेका मैंने इरादा किया था, ताकि वह वहा लोगोको देखें, मिले और मुझको वहाके हाल बता दे। उस वक्त सुशीलाबहनके जानेकी बात नही थी, लेकिन जब सुशीलाबहनने सुन लिया तो उसने मुझसे कहा कि इजाजत देदो तो मै क्राससाहबके साथ चली जाऊ। वह जब नोआखालीमें काम करती थी तबसे वह उनको जानती थी। वह आखिर कुशल डाक्टर है और पजाबके गुजरातकी है। उसने भी काफी गवाया है, क्योकि उसकी तो वहा काफी जायदाद है, फिर भी दिलमे कोई जहर पैदा नही हुआ है। तो उसने बताया कि मै वहा क्यो जाना चाहती हू, क्योकि मै पजाबी बोली जानती हू, हिंदुस्तानी जानती हू, उर्दू और अग्रेजी भी जानती हू, तो वहा मैं क्राससाहबको मदद दे सकूगी। तो मै यह सुनकर खुश हो गया। वहा खतरा तो है, लेकिन उसने कहा कि मुझको क्या खतरा है? ऐसा डरती तो नोआखाली क्यो जाती? पजाबमें बहुत लोग मर गये है, बिल्कुल मटियामेट हो गये है, लेकिन मेरा तो ऐसा नही है। खाना-पीना सब मिल जाता है। ईश्वर सब करता है। अगर आप भेज दें और क्राससाहब मुझे ले जाय तो वहाके लोगोको देख लूगी। तो मैंने क्राससाहबसे पूछा कि क्या आपके साथ सुशीलाबहनको भेजू? तो वे खुश हो गये और कहा कि यह तो बडी अच्छी बात है। मैं उनके मारफत दूसरोसे अच्छी तरह बातचीत कर सकूगा। मित्रवर्गमे हिंदुस्तानी जाननेवाला कोई रहे तो वह बडी भारी चीज हो जाती है। इससे बेहतर क्या हो सकता है? वे रेडक्रासके है।. . तो डाक्टर

सुशीला ब्राससाहबके साथ गई है या डाक्टर सुशीलाके साथ ब्रास-साहब गये है यह पेचीदा प्रश्न हो जाता है। लेकिन कोई पेचीदा है नही, क्योकि दोनो एक-दूसरेके दोस्त है और दोनो एक दूसरेको चाहते है, मोहब्बत करते है। वे सेवा-भावसे गये है, पैसा कमाना तो है नही। वे जो देखेंगे, मुझे बतायगे और सुशीलाबहन भी बतायगी। मै नही चाहता कि कोई ऐसा गुमान रखे कि वह तो डाक्टर है और ब्राससाहब दूसरे है। कौन ऊचा है, कौन नीचा है, ऐसा कोई भेदभाव न करें। (प्रा०प्र०, २९ १ ४८)

: १०८ :

वल्लभभाई पटेल

श्रीयुत वल्लभभाई पटेल पुराने सिपाही है और सेवाके सिवा उनका दूसरा काम भी नही है। (हिं० न०, १५ ८.२७)

.. .. ..

अभी जो भयकर अफवाहें उड रही है उनको ध्यानमें रखकर मुझे यह स्पष्ट कर देना आवश्यक मालूम होता है कि बारडोलीसे मेरा क्या सबध है। पाठक जान लें कि बारडोली सत्याग्रहके आरभसे ही मै उसमें शामिल हू। उसके नेता वल्लभभाई है। उन्हे जब कभी मेरी जरूरत हो, वे मुझे वहा ले जा सकते है। यह कोई बात नही कि उन्हे मेरी सलाहकी आवश्यकता हो, तथापि कोई भी भारी काम करनेसे पहले वे मुझसे परा-मर्श करते है। पर वहाका सारा काम, चाहे वह छोटा हो या बडे-से-बडा, वे अपनी जिम्मेदारीपर ही करते है। इस बातके विषयमें मैने उनसे पहले हीसे समझौता कर लिया है कि मै सभा आदिमें नही जाऊगा।

मेरा शरीर अब इस लायक नही रहा कि मैं हरएक काममें दिलचस्पी ले सकू । इसलिए उन्होने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अहमदाबादमें या गुजरातमें अन्यत्र विना कारण वे मुझे नही ले जावेंगे, और इस प्रतिज्ञाका उन्होने अक्षरश पालन किया है । इस सत्याग्रहमें उनके साथ मेरी सपूर्ण सहानुभूति रही है । अब तो गभीर स्थिति खडी होनेकी सभावना है और उसका सामना करनेके लिए वल्लभभाई जो-जो करेंगे उसमें भी उनके साथ मेरी पूरी सहानुभूति रहेगी । यदि वे कही पकडे गये तो बारडोली जानेके लिए भी मैं पूरी तरह तैयार हू । उनके बारडोलीमें रहते वहा जाने अथवा अन्य किसी तरह सक्रिय भाग लेनेकी न मुझे कोई जरूरत दिखाई दी, न उन्हें । जहा आपसमें सपूर्ण विश्वास है वहा शिष्टाचार अथवा किसी प्रकारके बाह्य आडवरकी जरूरत नही होती । (हिं० न०, १३.३ १९२९)

. . . . . .

जिस सरदारके सेनापतित्वमें आपने इस प्रतिज्ञाका इतना सुदर पालन किया उसीके सेनापतित्वमें आप यह भी करें । ऐसा स्वार्थत्यागी सरदार आपको और नही मिलेगा। यह मेरे सगे भाईके समान है, तथापि इतना प्रमाण-पत्र उन्हें देते हुए मुझे जरा भी सकोच नही होता । ('विजयी बारडोली', पृष्ठ ३२५)

. .

वल्लभभाई जैसे नामके पटेल है वैसी ही उनकी साख भी है । बारडोलीकी विजय प्राप्तकर उन्होने अपनी साखको कायम रखा। (विजयी बारडोली', पृष्ठ ४२६)

. . . .

सरदार वल्लभभाई हसीमें कहा करते थे कि उनके हाथकी रेखाओंमें जेलकी रेखा नही है। उन लोगोके लिए जेल है ही नही, जिनके मनमें जेल महलके समान है और जो जेल और महलमें कोई भेद नही सम-

झते। जहा आज सरदार विराजे है, वहा हम सबको जाना है। पर बिना योग्यता प्राप्त किये जेल नही मिलती। सरदार वल्लभभाईकी अमूल्य सेवाओके हम पात्र थे या नही, इसे प्रमाणित करनेका अवसर अब आ गया है। उन्हें गुजरातसे आशा क्यो न हो? उन्होने मजदूरोकी सेवामें कौन कमी रक्खी है? डाकवालों और रेलवेके नौकरोने उनके पास बैठकर स्वराज्यका पाठ कौन कम पढा है? अहमदावादका ऐसा कौन नागरिक है जो नही जानता कि उन्होने अपना सर्वस्व होम कर शहर-की सेवा की है? शहरमें जब भीषण महामारी फैली थी, उन दिनो गरीबोकी सेवाका इतजाम करने वाला कौन था? वल्लभभाई। अकाल पडनेपर अकाल पीडितोकी मददके लिए दौड पडनेवाला कौन था? वल्लभभाई। गुजरातमे ऐतिहासिक बाढ आई, लाखो लोग घरबार-विहीन बन गये, खेतोकी फसल बह गई। उस समय सारे गुजरातका सकट टालनेके लिए सैकडो स्वयसेवकोको तैयार करनेवाला, लोगोके लिए एक करोड़ रुपए सरकारके खजानेसे निकलवानेवाला कौन था? वल्लभ-भाई ही। और वह भी वल्लभभाई ही थे, जिन्हें बारडोलीकी जीतके लिए ऋणी जनताने सरदार कहकर पुकारा और जो सपूर्ण स्वराज्यकी आखिरी लडाईके लिए जनताको तैयार कर रहे थे। वल्लभभाई तो अपने कर्तव्यका पालन करते हुए जेल पहुच गये। अब हमें क्या करना चाहिए? इस सवालका एक जवाब तो साफ ही है। हम हिम्मत न हारें, उलटे हममेंसे हरएक दुगुनी दृढता और दुगुनी हिम्मतके साथ सवि-नय भगके लिए तैयार हो जाय और जेलकी, या मौत मिले तो मौतकी राह पकड़ ले। सरदारके जानेके बाद अब रहनुमा कौन होगा? इस तरहका नामर्दीसे भरा हुआ सवाल कोई अपने मनमे न उठने दे।....जिसे सविनय भग करना है, उसके पास आज बहुतेरे साधन पडे हुए है और सरकार नए-नए साधन पैदा कर रही है। जैसे हमारे लिए यह जीवन-मरणका खेल है, वैसे ही सरकारके लिए भी है। मालूम होता है कि उसकी

हस्तीका आधार ही स्वतंत्र स्वभावके मनुष्योको दबानेपर है, नही तो वह वल्लभभाईके समान शांतिरक्षाके लिए प्रसिद्ध आदमीको क्यो पकडती ? (हिं० न०, १३.३.३०)

सरदारके लिए सब समान है, एक नन्हा बालक भी इसे जानता है। उन्हें तो गरीबमात्रकी सेवा करनी है। फिर भले ही वह भगी हो या ब्राह्मण, गुजराती हो या मद्रासी। राष्ट्रने उनकी इस विशेषताको पहचाना और पहचानकर राष्ट्रपति बनाया। (हिं० न, १४.५.३१)

•

वल्लभभाईके लिफाफोकी और संस्कृतकी पढ़ाईकी तारीफ हर पत्रमें करते है। कल काकाके खतमें लिखा था कि·

उच्चै श्रवाकी गतिसे वल्लभभाईकी पढाई चल रही है।

आज प्यारेलालको लिखा·

वल्लभभाई अरबी घोडेकी तेजीसे दौड रहे है। संस्कृतकी किताब हाथसे छूटती ही नही। इसकी मुझे आशा नही थी। लिफाफोमें तो कोई उनकी बराबरी नही कर सकता। लिफाफे वे नापे बिना बनाते है और अंदाजसे काटते हैं, मगर बराबरके निकलते है और फिर भी ऐसा नही लगता कि इसमें बहुत समय लगता है। उनकी व्यवस्था आश्चर्यजनक है। जो कुछ करना हो उसे याद रखनेके लिए छोडते ही नही। जैसे आया वैसे ही कर डाला। कातना जबसे शुरू किया है, तबसे बराबर समयपर कातते है। इस तरह सूतमें और गतिमें रोज सुधार होता जा रहा है। हाथमें लिया हुआ भूल जानेकी बात तो शायद ही होती है। और जहा इतनी व्यवस्था हो, वहा घावली तो हो ही कैसे ? (म० डा०, २८.८ ३२)

... ...

सरदार वल्लभभाई पटेलके साथ रहना मेरा बडा सौभाग्य था। उनकी अनुपम वीरतासे मै अच्छी तरह परिचित था, परतु पिछले १६

महीनेमें जिस प्रकार रहा वैसा सौभाग्य मुझे कभी नहीं मिला था। जिस प्रकार उन्होने मुझे स्नेहमे ढक लिया वह मुझे मेरी माकी याद दिलाता है। मैं यह कभी नही जानता था कि उनमें माके गुण भी है।....बार-डोली और खेडाके किसानोंके लिए उनकी चिंता मै कभी नही भूल सकता। (म० डा०)

. . . .

दूसरी वात तो यह है कि हर जगहसे शिकायतें आ रही हैं। यह ठीक था कि अग्रेजी जमानेमें तो जो देशी रियासतें थी वे अपने दिलमें आए वैसा करती थीं। थोडा-सा अकुश तो अग्रेजी सल्तनत रखती थी। उसको तो रखना ही था, क्योंकि उसको सल्तनत चलानी थी। आज तो वह चली गई है। हा, यह तो है कि आज सरदार पटेल हैं—उनके हाथमें उनका महकमा है, इसलिए वह तो कुछ करें? लेकिन वे वेचारे क्या कर सकते हैं? उनकी तो अपनी जवान पडी है—हिंदुस्तानकी सेवा कर ली है, इसलिए सरदार बने हैं। लेकिन उनके पास तलवार नही, बदूक नही, लश्कर नही। वे खुद थोड़े लश्करी हैं, वे कमाडर भी नही है कि उनका हुक्म चले। (प्रा० प्र०, २२.१०.४७)

. . . .

पीछे सरदारका नाम आ जाता है। वे कहते है कि सरदारको हटा दो, तुम अच्छे हो। पीछे सुनाते है कि जवाहर भी अच्छा है। तुम हकूमतमें आ जाओ तो हकूमत अच्छी चले। सब अच्छे है, सरदार अच्छे नही हैं। तो मै मुसलमानोसे कहूगा कि मुसलमान ऐसा कहेगे तो कोई बात चलनी नही है। क्यो नही? क्योंकि आपका हाकिम वह मत्रिमडल है। हकूमतमें न अकेला सरदार है और न जवाहर है। वे आपके नौकर हैं। उनको आप हटा सकते है। हा, ऐसा है कि सिर्फ मुसलमान तो हटा नही सकते है, लेकिन इतना तो करें कि सरदार जितनी गलती करते हैं—लोगोमें आपस-आपसमे बात करनेसे निपटता नही है—उनको बताओ।

ऐसा नही कि उन्होंने यह बात कही, वह बात कही, लेकिन उन्होंने किया क्या, यह बताओ। मुझको बता दो। उनसे मैं मिलता रहता हूं और सुनता भी हू तो मैं कह दूगा। वही जवाहर, वही सरदार दोनों हकूमत चलाते है। जवाहर तो उनको निकाल सकते है, लेकिन ऐसा नही करते है तो कुछ हैं। वे उनकी तारीफ करते है। फिर मत्रि-मडल है, वह हकूमत है। सरदार जो कुछ करता है उसके लिए सारी हकूमत जवाबदार है। आप भी जवाबदार हैं, क्योकि वे आपके नुमायदे हैं।

. . . सरदार सीधी बात बोलनेवाले है। वे बोलते है तो कड़वी लगती है। वह सरदारकी जीभमें है। मैंने उनसे कहा कि आपकी जीभसे कोई बात निकली कि काटा हो गई। तो उनकी जीभ ही ऐसी है कि काटा है; दिल वैसा नही है। उसका मै गवाह हू। उन्होंने कलकत्तेमें कह दिया, लखनऊमें कह दिया कि सब मुसलमानोंको यहा रहना है, रह सकते हैं। साथ ही मुझको यह भी कहा कि उन मुसलमानोका एतबार नही करता हू, जो कल तक लीगवाले थे और अपनेको हिंदू-सिखका दुश्मन मानते थे; वे जब कलतक ऐसे थे तब आज एक रातमें दोस्त कैसे बन सकते हैं? पीछे ऐसा है कि लीग रहेगी तो वे लोग किसकी मानेंगे—हमारी हकूमतकी या पाकिस्तानकी? लीग अभी भी वैसा ही कहती है तो उनको शक होता है। उनको शक करनेका अधिकार है। सबको शक करनेका अधिकार है। सरदारने जो कहा है उसका सीधा अर्थ निकाल लें तो काम बन जाता है। जैसे कोई मेरा भाई है, लेकिन उसपर शक है तो क्या करू? शक साबित हो तब काट, यही मै कर सकता हू। लेकिन मै पहलेसे ही भाईकी बुराई करू, ऐसा कैसे हो सकता है? वे कहते है कि हमारे दिलमें आज मुस्लिम लीगके मुसलमानोंके बारेमें एतबार नही है, उनपर कैसे भरोसा रखें? मुसलमान सबूत दें कि वे ऐसे नही है। ऐसा करें तो सब अजाम पहुंच जाता है। पीछे मुझे यह कहनेका हक मिल जाता है

कि हिंदू, सिख क्या करे। इस यूनियनमे सरदार क्या करे, जवाहर क्या करे, उसमें कोई भी क्या करे, मै क्या करू ? (प्रा० प्र०, १३ १.४८)

•

"आपने कहा है कि मुसलमान भाई अपने डरकी और अपनी असुरक्षितताकी कहानी लेकर आपके पास आते है, तो आप उन्हें कोई जवाब नहीं दे सकते। उनकी शिकायत है कि सरदार--जिनके हाथोमें गृह-विभाग है--मुसलमानोके खिलाफ है। आपने यह भी कहा है कि सरदार पटेल पहले आपकी हां-में-हा मिलाया करते थे, 'जीहुजूर' कहलाते थे, मगर अब ऐसी हालत नहीं रही। इससे लोगोके मनपर यह असर होता है कि आप सरदारका हृदय पलटनेके लिए उपवास कर रहे है। आपका उपवास गृह-विभागकी नीतिकी निंदा करता है। अगर आप इस चीजको साफ करेंगे तो अच्छा होगा।"

मै समझता हू कि मै इस वातका साफ-साफ जवाव दे चुका हू। मैंने जो कहा है, उसका एक ही अर्थ हो सकता है। जो अर्थ लगाया गया है, वह मेरी कल्पनामें भी नही आया। अगर मुझे पता होता कि ऐसा अर्थ किया जा सकता है तो मै पहलेसे इस चीजको साफ कर देता।

कई मुसलमान दोस्तोने शिकायत की थी कि सरदारका रुख मुसलमानोके खिलाफ है। मैंने कुछ दु खसे उनकी वात सुनी, मगर कोई सफाई पेश न की। उपवास शुरू होनेके वाद मैंने अपने ऊपर जो रोक-थाम लगाई हुई थी वह चली गई। इसलिए मैंने टीकाकारोंको कहा कि सरदारको मुझसे और पडित नेहरूसे अलग करके और मुझे और पडित नेहरूको खामख्वाह आसमानपर चढाकर वे गलती करते है।

इससे उनको फायदा नही पहुच सकता। सरदारके वात करनेके ढगमें एक तरहका अक्खडपन है, जिससे कभी-कभी लोगोका दिल दुख जाता है, अगरचे सरदारका इरादा किसीको दु खी वनानेका नही होता।

उनका दिल बहुत बड़ा है। उसमें सबके लिए जगह है। सो मैंने जो कहा, उसका मतलब यह था कि अपने जीवनभरके वफादार साथीको एक बेजा इलजामसे बरी कर दूं। मुझे यह भी डर था कि सुननेवाले कहीं यह न समझ बैठें कि मैं सरदारको अपना 'जीहुजूर' मानता हूं। सरदारको प्रेमसे मेरा 'जीहजूर' कहा जाता था। इसलिए मैंने सरदारकी तारीफ करते समय कह दिया कि वे इतने शक्तिशाली और मनके मजबूत हैं कि वे किसीके 'जीहुजूर' हो ही नहीं सकते। जब वे मेरे 'जीहुजूर' कहलाते थे तब वे ऐसा कहने देते थे; क्योंकि जो कुछ मैं कहता था वह अपने आप उनके गले उतर जाता था। वे अपने क्षेत्रमें बहुत बड़े थे। अहमदावाद म्युनिसिपैलिटीमें उन्होंने शासन चलानेमें बहुत काबलियत बताई थी। मगर वह इतने नम्र थे कि उन्होंने अपनी राजनैतिक तालीम मेरे नीचे शुरू की। उन्होंने उसका कारण मुझे बताया था कि जब मैं हिंदुस्तानमें आया था उन दिनों जिस तरहका राज-काज हिंदुस्तानमें चलता था, उसमें हिस्सा लेनेका उन्हें मन नहीं होता था। मगर अब जब सत्ता उनके गले आ पड़ी तब उन्होंने देखा कि जिस अहिंसाको वे आजतक सफलतापूर्वक चला सके अब वह नहीं चला सकते। मैंने कहा है कि मैं समझ गया हूं कि जिस चीजको मैं और मेरे साथी अहिंसा कहा करते थे वह सच्ची अहिंसा न थी। वह तो नकली चीज थी और उसका नाम है निष्क्रिय प्रतिरोध। हां, किनके हाथोंमें निष्क्रिय प्रतिरोध किसी कामकी चीज है? जरा सोचिए तो सही कि एक कमजोर आदमी जनताका प्रतिनिधि बने तो वह अपने मालिकोंकी हँसी और बेइज्जती ही करवा सकता है। मैं जानता हूं कि सरदार कभी उन्हें सौंपी हुई जिम्मेदारीको दगा नहीं दे सकते। वे उसका पतन बर्दाश्त नहीं कर सकते। मैं उम्मीद करता हूं कि यह सब सुननेके बाद कोई ऐसा खयाल नहीं करेंगे कि मेरा उपवास गृह-विभागकी निंदा करनेवाला है। अगर कोई ऐसा खयाल करनेवाला है तो मैं उसको कहना चाहता हूं कि वह अपने-आपको नीचे गिराता है और अपने-आपको

नुकसान पहुचाता है, मुझे या सरदारको नही। (प्रा० प्र०, १५ १ ४८)

. . . .

सरदारने बबईमें क्या कहा, उसे गौरसे पढें तो पता चल जायगा कि सरदार और पडित नेहरू दूर नही है, अलग-अलग नही है। कहनेका तरीका अलग हो सकता है, लेकिन करते एक ही चीज है। वे हिंदुस्तान या मुसलमानके दुश्मन नही हो सकते। जो मुसलमानका दुश्मन है वह हिंदुस्तानका भी दुश्मन है, इसमें मुझे कोई शक नही। (प्रा० प्र०, २० १ ४८)

: १०९ :

विट्ठलभाई जे० पटेल

पाठकोको एक खुशखबरी न सुनानेका मुझे खेद है। अब वह नीचे दिये गए श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल और मेरे बीचके पत्र-व्यवहारसे प्रकट होगा ·

(१)

आर्य-भवन
सैंडहर्स्ट रोड, बबई,
१० मई, १९२९

प्रिय महात्माजी,

जब मैंने लेजिस्लेटिव असेम्बलीका सभापतित्व स्वीकार किया था तो उस समय अपने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि मेरे वेतनसे जो कुछ बचत होगी, उसका किसी राष्ट्रोपकारी काममें उपयोग करूगा। कई कारणोंसे, पहले ६ महीनोमें मै कुछ कहने-सुनने लायक रकम नहीं बचा सका। पिछले महीनेसे, मुझे कहते हुए खुशी होती है कि, मै कठि-

नाइयोंसे पार हो गया हूं और एक भारी रकम बचा सकता हू । मैं देखता हूं कि मुझे औसतन दो हजार रुपये महीनेकी जरूरत पडती है । इन्कम टैक्स देकर, मेरा माहवारी वेतन ३,६२५) रुपये है। इसलिए मैं चाहता हू कि पिछले महीनेसे शुरू करके मैं हर महीने १,६२५) रु० अलग निकाल दू और इसका आप जिस काममें, जैसे चाहें, उपयोग करें । खैर, मेरे मनमें इस विषयमें कुछ विचार तो है, और समयानुसार मैं उनपर आपसे चर्चा करूंगा, मगर आप मुझसे उन विचारोंमें सहमत हो या नहीं, यह रकम आपके अधिकारमें रहेगी । सायमें अप्रेल मासके वेतनमेंसे मैं १६२५) रु० का एक चेक भेजता हू ।

मुझे विश्वास है कि इस जिम्मेदारीको आप अस्वीकार नहीं करेंगे ।

आपका
(ह०) वी० जे० पटेल

(२)

'सुखडेल'
शिमला, ३१ मई, १६२६

प्रिय महात्माजी,

सायमें मैं ४३२५) रु० का चेक भेजता हूं। इसमें १,६२५) रु० तो मईके मेरे वेतनमेंसे मेरा हिस्सा है और २७००) रु० उस ३२००) रु० के बाकी है जो बंबई कार्पोरेशनके मेरे सहकारियोंने मेरे कार्पोरेशनके सभापतित्वका कार्यकाल समाप्त होनेपर, ५,०००) रु० की थैली मुझे भेंट करनेके लिए, इकट्ठे किये थे । आखिरी बार जब मैं आपसे साबर-मतीमें मिला था तो मैंने आपको समझा दिया था कि इस रकमको जो मैंने यों साधारणतः स्वराजदलके या बंबई-राष्ट्रीय-म्युनिसिपल-दलके, ऐसे कामोंके लिए खर्च करनेका निश्चय किया था, जिन्हें मैं उचित समझता,

अब उसे क्यो आपको देना चाहता हूं ताकि मेरे वेतनमें से मेरी मासिक सहायताके कोषमें वह मिला दिया जाय।

आपका
(ह०) वी० जे० पटेल

(३)

आश्रम
साबरमती, २५-७-२६

प्रिय विट्ठलभाई,

मेरे पास आपके पत्र और सब मिलाकर ७,५७५) रु० के चेक मिले जिसमें असेम्बलीके प्रमुखके रूपमें आपके तीन महीनोके वेतनके हिस्से है और ५०००) की थैलीकी बचत है। आप मुझे यह रकम किसी ऐसे देशोपकारी काममें खर्च करनेको कहते है, जिसे मै पसद करू। वह पत्र लिखनेके बाद आपने मेरे साथ अपने सुदर दानके उपयोगके विषयमें अपने विचारोकी चर्चा करली है। मैने इसपर खूब विचार किया है कि उस रकमका मै सचमुचमे क्या उपयोग करू और अतमें इस निश्चयपर आया हू कि अभी हालमे तो उसे जमा होते जाने दू। इसलिए आश्रमके एजेन्सी खातेमें उसे ६ महीनेकी बधी मुद्दतके लिए जमा करता जा रहा हू जिसमें सूदकी अच्छी रकम इकट्ठी हो सके और दलादलीका झगडा खत्म होते ही कुछ पारस्परिक मित्रोकी सहायता लेकर, आपकी और उनकी सलाहसे किसी प्रशसनीय राष्ट्रीय काममें लगाऊ।

इस बीचमें मै आपको इस उदार भावके लिए, जिससे आप अपने वेतनका एक बडा भाग सार्वजनिक कामके लिए दे देते है आपको साधुवाद देता हू। मै आशा करता हू कि आपका उदाहरण और लोगों-पर असर करेगा।

आपका
(ह०) मो० क० गाधी

(४)

२०, अकबर रोड
नई दिल्ली, ६ मार्च, १६२७

प्रिय महात्माजी,

जैसा कि आप जानते है, मैने आपको पहले ही जैसा, पिछले अप्रेल मासके मेरे पत्रमें वतलाये हुए कामके लिए, हर महीने कोई ऐसी रकम देनेका निश्चय किया है, जो मै अपने वेतनमें से वचा सकूंगा। असेम्बलीके सभापतित्वके सारे कार्य-काल भर, जहा तक सभव हो, मै यही प्रबंध जारी रखना चाहता हू।

फरवरीके अंत तक जो कुछ बचत हो सकी है, उसके लिए २०००) रु० का चेक सायमें भेजता हूं।

आपका
(ह०) वी० जे० पटेल

यह पत्र-व्यवहार, श्रीयुत विट्ठलभाई पटेलकी इच्छासे ही रुका रहा। चुनावके दिनोमे इसे प्रकाशित करनेमे उन्हे कुछ सकोच-सा मालूम हुआ। चुनावोंके वाद भी मै पिछले ही हफ्ते, उनकी स्वीकृति पा सका। अगर इसके प्रकाशनमें सार्वजनिक लाभ न होता तो मै स्वय इस झिझक-को वटावा ही देता। मै जानता हू कि विट्ठलभाई चाहते है कि लोग उनके उदाहरणकी नकल करें। अगर किसी-न-किसी कारणसे, हिंदुस्तानकी स्थितिके हिसाबसे, वेहिसाव वडे वेतन जरूर लेने ही पडें तो उनका एक अच्छा हिस्सा, सार्वजनिक लाभके किसी कामके लिए, अलग निकालकर रक्खा जा सकता है। मै जानता हू कि ऐसे कितने ही बडे वेतनोवाले आदमी है जो अपनी आमदनी, अपनी व्यक्तिगत मौजमे नही उडाते, मगर सार्वजनिक सेवामे लगाते है। मगर उसका खर्च अपनी ही इच्छाके अनुसार करते है। विट्ठलभाई ऐसे चदोका एक विशेप कोप खोलना चाहते है जिसका प्रवध जाने-सुने प्रतिष्ठित पुरुप करे। अगर इस उद्देश्यको

सफल होना है तो ट्रस्टियोका,मडल राष्ट्रीय हो और उसमें उन सभी दलोके प्रतिनिधि हो जो एक कार्यक्रमपर सहमत हो सकें। इसलिए जिन लोगोको यह प्रस्ताव पसद हो, उनसे मै आलोचनाए और सूचनाए मागता हू। कोषकी सारी जिम्मेदारी लेने या केवल उन्ही कामोमे उसका उपयोग करनेकी मेरी इच्छा नही है, जिनके लिए मैंने अपना जीवन उत्सर्ग किया हुआ है। मै जानता हू कि मैं विट्ठलभाईके महान उपहारका मतलब सबसे अच्छी तरह पूरा कर सकूगा अगर मै उन सबका सहयोग मागू जो सहायता करनेको तैयार हो। (हि० न०, १७.३.२७)

* * *

धारासभाके सभापति और सरकारके बीचके मतभेदका परिणाम चाहे जो हो, इतना तो सच है कि धारासभाने श्री विट्ठलभाई पटेलको अपना सभापति चुनकर जो काम किया था उसके औचित्यका श्री पटेलने अपने कार्य द्वारा जरूरतसे ज्यादा प्रमाण दे दिया है। अपनी कठोर निष्पक्षता द्वारा उन्होने अपने पदके सम्मानकी रक्षा की है। साथ ही परपरा द्वारा और कानून द्वारा जो मर्यादा उनके लिए बन चुकी है, उसके भीतर रहकर भी, राष्ट्रीय हितका एक भी अवसर उन्होने हाथसे नही जाने दिया है। इस कारण सहज ही उनमें और सरकारमें हर बार मतभेद पैदा होता गया है। फिर भी हरएक वक्त जीत उनकी ही हुई है। वह ऐसे अवसरोपर भी विजयी हुए है जब कि उपस्थित समस्याकी विकटताके कारण ऐसा भ्रम होता था कि वह अपना सहज उदात्त स्वभाव कायम न रख सकेंगे। ऐसा होनेपर भी दूसरे ही दिन उन्होने स्वेच्छासे, उपयुक्त, सम्मानपूर्ण, शब्दोमें प्रार्थना करते हुए अपनी गलती सुधार ली है। उन्होने कभी अपने हृदयके भाव छिपाये नही है। सभापति की हैसियतसे निर्भीकता-पूर्वक कार्य-सचालन करके उन्होने राष्ट्रकी प्रतिष्ठाको बढाया है।

अतएव यहा उनकी महान् सफलताके कारणकी जाच करना अनुचित न होगा। उनका अपना कोई स्वार्थ नही है। सादा जीवन

वितानेके कारण उनकी आर्थिक जरूरतें बहुत थोडी हैं । यही कारण है कि न तो ऊचा पद और न बडा वेतन ही उन्हें ललचा पाते हैं । अपनी इस विरक्तिके कारण उनका उद्यम घटा नही, बल्कि आश्चर्यकारक ढगसे बढ गया है, जिसके कारण इतने उच्च पदका कार्य-सचालन करनेके लिए जिन नियमो और कार्य-प्रणालीका ज्ञान आवश्यक है, उस पर उनका अनन्य प्रभुत्व हो गया है । विट्ठलभाई पटेलके लिए राजनीति फुर्सतके वक्तका मनोरजन नही है, वह तो उनके जीवनका प्रधान अग बन गई है । अतएव उन्होने राजनीतिके अध्ययनमें अपनी सारी बुद्धि और सारा समय खर्च कर दिया है । फलस्वरूप अपने क्षेत्रमें उन्होने अपने आपको अजेय बना लिया है । (हिं० न०, १८ ४ २९)

•

विट्ठलभाई पटेलने अपनी आखिरी कारगुजारी द्वारा अपूर्व साहस और जागरूकताका परिचय दिया है । धारासभाके प्रति मुझे कभी मोह पैदा हुआ ही न था । अब तो वह पहलेसे भी ज्यादा बुरी मालूम होती है । इस धारासभाकी वजहसे हिंदू-मुसलमानोमें दुश्मनी बढी है । नेताओके स्वार्थमें वृद्धि हुई है । फिर भी अगर किसीका धारासभामे जाना सार्थक और सफल हुआ है तो वह विट्ठलभाईका ही । बडी धारासभाके अध्यक्षके नाते उन्होने अपना सारा जौहर जताया है और भारतवर्षका गौरव बढाया है । (हिं० न०, २५ ४ २९)

•

सन् १९१७ की गोधराकी राजनैतिक परिषद्के अवसरपर विट्ठल-भाई को मैंने हरिजन-बस्तीमें जो देखा था, वह दृश्य कभी भूलनेका नहीं । राजनैतिक परिषद्के साथ-साथ गोधरामें दूसरे सम्मेलन भी किये जाने थे । उनमें एक सुधार-सम्मेलन भी वहा था । उसमे एक प्रस्ताव हरिजनोके सबधका था । मैंने परिषद्में कहा कि जहा उगलियोपर गिनने लायक भी हरिजन मौजूद न हो वहा उस प्रस्तावका रखना व्यर्थ है । इसमे

यह अच्छा होगा कि रातको हरिजन-बस्तीमें जाकर वह प्रस्ताव पास किया जाय। सभाको यह बात पसद आ गई। हरिजन-बस्ती सवर्ण हिंदुओसे खूब भर गई। गोधराके इतिहासमें यह बात अपूर्व थी। तिल रखनेको जगह न थी। अब्बास साहब, उनकी बेगम साहिबा वगैरा तो थे ही। पर वहा मैने एक दाढीवाले भाईको कफनी, धोती और साधुओ-का-सा कनटोप लगाए देखा। इस अजीब भेषमें विट्ठलभाईको इससे पहले कभी नही देखा था। इसलिए मै उन्हे झटसे पहचान न सका। पर जब पहचाना तब तो हम एक-दूसरेसे लिपट गये और खूब ही हसे। इस भेषमे विट्ठलभाईका एक नाटकीय स्वाग तो था ही, किन्तु इसके अदर उनकी सादगी और जनसाधारणमें घुल-मिल जानेकी एक कला भी थी। विट्ठलभाईकी वहाकी उपस्थितिसे मैंने उनके हरिजन-प्रेमका परिचय पाया। और फिर ज्यो-ज्यो उनका अधिक अनुभव मुझे होता गया, यह सिद्ध हुआ कि उनका उस दिन हरिजन-बस्तीमे जाना शुद्ध हार्दिक था।

उनके अदर छुआछूतके लिए जरा भी जगह न थी। ऊच-नीच-भाव उनमे नही था। उनका दृढ विश्वास था कि जो अधिकार या पद सवर्ण हिंदुओको प्राप्त हो सकें, वही सब हरिजनोको भी मिलने चाहिए। उनका यह विश्वास ही नही, बर्ताव भी इसी प्रकारका था। इसीसे मैं आशा करता हू कि आगामी ९ नवबरको जब उनके शवका अग्नि-सस्कार भारतमें होगा, उस दिन समस्त जनताके आसुओमें हरिजन भी अपने श्रद्धापूर्ण आसू मिलाएगे। (ह० से०, १० ११.३३)

. . .

सिर्फ विट्ठलभाईका चित्र कालेज हालमे लटका देनेसे ही तुम लोग उत्तीर्ण नही हो सकते। उनसे ऋणमुक्त तो तुम तभी हो सकोगे जब उनकी नि स्वार्थता, उनकी सेवा-भावना और उनकी सादगीको तुम लोग ग्रहण करोगे। वह चाहते तो वकालत या दूसरा कोई अच्छा-सा धधा

करके लाखो रुपया कमाकर मालामाल हो जाते। पर वह तो सारी जिदगी सादगीमे ही रहे और अतमें गरीबीकी हालतमें ही मरे। क्या ही अच्छा हो कि तुम लोग भी स्व० विट्ठलभाई पटेलका इसी तरह पदानु-सरण करो। ('विद्यार्थियोसे' पृष्ठ १७२)

: ११० :

विजयालक्ष्मी पण्डित

आप सब श्रीमती विजयालक्ष्मी पडितको जानते है। वह हिंदुस्तानी नुमाइदा-मडलकी मुखिया इसलिए नही है कि पडित जवाहरलालकी बहन है, बल्कि इसलिए है कि वह इसके लायक है और अपना काम होशियारीसे करती है। (प्रा० प्र०, १६ ११ ४७)

: १११ :

नागेश्वरराव पन्तलु

नागेश्वररावमें विनय है और सचाई कूट-कूटकर भरी है। मुझे उनकी मित्रता और साथी होनेका गर्व है। मेरा जबमे उनके साथ परिचय हुआ है, मैंने उनमे यह विशेषता देखी है कि जिन्हें उनकी या उनकी सहा-यताकी आवश्यकता होती है उनके हाथमें वे अपनी गर्दन दे देते है। उनके दाहिने हाथका दिया हुआ उनके बाये हाथको मालूम नही होता। (ह० से०, १२ १ ३४)

: ११२ :

पेस्तनजी पादशाह

यहा मुझे पेस्तनजी पादशाह याद आते है। विलायतसे ही उनका मेरा मधुर सबध हो गया था। पेस्तनजीसे मेरा परिचय लदनके अन्नाहारी भोजनालयमे हुआ था। उनके भाई बरजोरजी एक 'सनकी' आदमी थे। मैने उनकी ख्याति सुनी थी, पर मिला न था। मित्र लोग कहते, वह 'चक्रम' (सनकी) है। घोडेपर दया खाकर ट्राममे नही बैठते, शतावधानकी तरह स्मरण-शक्ति होते हुए भी डिग्रीके फेरमें नही पडते। इतने आजाद मिजाज कि किसीके दम-झासेमे नही आते और पारसी होते हुए भी अन्नाहारी! पेस्तनजीकी डिग्री इतनी बढी हुई नही समझी जाती थी, पर फिर भी उनका बुद्धि-वैभव प्रसिद्ध था। विलायतमें भी उनकी ऐसी ही ख्याति थी, परतु उनके मेरे सबधका मूल तो था उनका अन्नाहार। उनके बुद्धि-वैभवका मुकाबला करना मेरे सामर्थ्यके बाहर था।

बबईमे मैने पेस्तनजीको खोज निकाला। वह प्रोथोनोटरी थे। जब मै मिला तब वह बृहद् गुजराती शब्द-कोषके काममें लगे हुए थे। दक्षिण अफ्रीकाके काममे मदद लेनेके सबधमें मैने एक भी मित्रको टटोले बिना नही छोडा था। पेस्तनजी पादशाहने तो मुझे ही उलटे दक्षिण अफ्रीका न जानेकी सलाह दी—'मै तो भला आपको क्या मदद दे सकता हू, पर मुझे तो आपका ही वापस लौटना पसद नही। यही, अपने देशमें ही, क्या कम काम है? देखिए, अभी अपनी मातृ-भाषाकी सेवाका ही कितना क्षेत्र सामने पडा हुआ है? मुझे विज्ञान-सबधी शब्दोके पर्याय खोजने है। यह हुआ एक काम। देशकी गरीबीका विचार कीजिए। हा, दक्षिण अफ्रीकामे हमारे लोगोको कष्ट है; पर उसमें आप जैसे लोग खप जाय, यह मुझे बरदाश्त नही हो सकता। यदि हम यही राज-सत्ता

अपने हाथमें ले सके तो वहा उनकी मदद अपने-आप हो जायगी। आपको शायद मैं न समझा सकूगा; परतु दूसरे सेवकोको आपके साथ ले जानेमें मैं आपको हरगिज सहायता न दूगा।' ये बातें मुझे अच्छी तो नही लगी, परतु पेस्तनजी पादशाहके प्रति मेरा आदर बढ गया। उनका देश-प्रेम व भाषा-प्रेम देखकर मैं मुग्ध हो गया। उस प्रसगकी बदौलत मेरी उनकी प्रेम-गाठ मजबूत हो गई। उनके दृष्टि-बिंदुको मैं ठीक-ठीक समझ गया, परतु दक्षिण अफ्रीकाके कामको छोडनेके बदले, उनकी दृष्टिसे भी, मुझे तो उसी पर दृढ होना चाहिए—यह मेरा विचार हुआ। देश-प्रेमी एक भी अगको, जहातक हो, न छोडेगा, और मेरे सामने तो गीताका श्लोक तैयार ही था—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

(गीता ३।३५)

बढे-चढे पर-धर्मसे घटिया स्वधर्म अच्छा है। स्वधर्ममें मौत भी उत्तम है, किंतु पर-धर्म तो भयकर्त्ता है। (आ० क०)

: ११२ :

जी० परमेश्वरन् पिल्ले

यहा मुझे बड़ी-से-बड़ी सहायता स्वर्गीय जी० परमेश्वरन् पिल्लेसे मिली। वह 'मद्रास स्टैंडर्ड' के सपादक थे। उन्होने इस प्रश्नका अच्छा अध्ययन कर लिया था। वह बार-बार अपने दफ्तरमें बुलाते और सलाह देते। 'हिंदू'के जी० सुब्रह्मण्यम्से भी मिला था। उन्होने तथा डा० सुब्रह्मण्यम्ने भी पूरी-पूरी हमदर्दी दिखाई, परतु जी० परमेश्वरन् पिल्लेने

तो अपना अखबार इस कामके लिए मानो मेरे हवाले ही कर दिया और मैंने भी दिल खोलकर उसका उपयोग किया। (आ० क०)

: ११४ :

पुरुषोत्तम (बापू गायधनी)

श्रीयुत जी० वी० केतकरने महान् वीरताकी एक घटनाका हाल भेजा है, जो यहा उल्लेखनीय है.

"श्रीयुत पुरुषोत्तम, जो बापू गायधनीके नामसे अधिक पहचाने जाते है, नासिकके एक नौजवान कार्यकर्ता थे। पिछले कुछ वर्षोसे वह नासिककी गुलालवाडी सार्वजनिक व्यायामशालाके सहायक मत्रीका काम कर रहे थे। वह समय-समयपर महासभा और स्वदेशी प्रचारके कामोमें भी हाथ बटाया करते थे। ४ अप्रेलके दिन नासिकमें एक मकानमें आग लगी। बापू गायधनीने आग बुझानेके काममे बहुत अधिक मेहनत की। यह मालूम होने-पर कि मकानमें बालक रह गये है, परिणामकी तनिक भी चिंता न करके, वह मकानमें घुस पडे और बच्चोको निकाल लाये। ढोरोको बचानेके लिए वह फिरसे घरमें घुसे। बदकिस्मतीसे इस वक्त तक आग चारो ओर फैल चुकी थी। एक जलता हुआ पाट अरराकर उनके सरपर फट पड़ा। वह बुरी तरह जल गये और शरीर कई जगह घायल हो गया। घायल दशामें वह सिविल अस्पताल पहुचाए गये, जहा ११ वी अप्रेलको उनका स्वर्गवास हो गया।"

उनके माता-पिताको, अगर वे जीवित है, अपने बहादुर पुत्रके लिए गर्व होना चाहिए। बापू गायधनी ऐसी भव्य मृत्यु पाकर अमर हो गये है। (हि० न०, ३०.४.३१)

: ११५ :

सरदार पृथ्वीसिंह

'हरिजन' के पाठक जानते हैं कि सरदार पृथ्वीसिंह पच्चीस सालके वाद आजाद हुए है। इन पच्चीस सालोंका एक भाग तो उन्होंने जेलमें विताया और सोलह साल फरारीकी हालतमें इधर-उधर छिपते हुए। उन सोलह सालकी जिदगीको वह आजादीकी जिदगी नही कह सकते, जवकि खुफिया पुलिस उनके पीछे लगी रहती थी और जब जैसा अवसर हो उसके अनुसार वह नए-नए नाम रखते और नए-नए भेस धारण करते रहते थे। पाठकोको याद होगा कि पिछले साल जव मैं स्वास्थ्य-सुधारके लिए जुहूमे था तव पृथ्वीसिहने मुझसे मिलकर अपने पिछले पापोको स्वीकार करने और भविष्यमें मेरे आदेशानुसार अपना जीवन वनानेका निश्चय किया। मैंने उन्हें सलाह दी कि पुलिसको आत्म-समर्पण कर दो और अपने पिछले पापोंसे मुक्त होनेके लिए स्वेच्छा-पूर्वक जेलके नियमोंका पालन करनेवाले कैदी वन जाओ। मैंने उनसे कहा था कि मैं तुम्हें रिहा करानेकी कोशिश तो करूगा, लेकिन तुम्हें यह न समझना चाहिए कि मै उसमें सफल हो ही जाऊंगा, वल्कि जरूरत हो तो अपना शेष जीवन जेलमें काटनेमें ही सतोष करना चाहिए। वडी प्रसन्नता और सच्चे जीके साथ वह आजन्म कारावास भुगतनेके लिए तैयार हो गये। सच्चे जीसे उन्होंने यह सचाई कवूल कर ली कि स्वेच्छापूर्ण कैदसे भी देशकी शायद उतनी ही सेवा होगी, जितनी कि जेलसे वाहर रहकर की जा सकती है। मैं वडी खुशीके साथ यह कह सकता हूं कि वह अपनी वातके पक्के रहे हैं। पाठक जानते हैं कि महादेव देसाईने रावलपिडी-जेलमे उनसे मिलनेके वाद उस मुलाकातका वर्णन करते हुए उन्हें सौ फीसदी आदर्श कैदी वतलाया था। वह अपने जेलरोंके प्रिय वन गये हैं और जेलरोंने उनमें

जो विश्वास किया उसके लिए उन्हें कभी पछताना नही पडा। वहा उन्होंने ऊन और सूतकी कताई सीखी और ऊन-कताईका काम ऐसी मेहनतसे किया कि उनका हट्टा-कट्टा शरीर भी लगातार परिश्रमसे थक जाता था। सरदार पृथ्वीसिंहके आदर्श जेल-जीवनके बारेमें पहले प्यारेलालने और फिर महादेव देसाईने जो कुछ कहा उसपरसे मैंने अपने कर्तव्यका निश्चय कर लिया। महादेव देसाईको इस बातका पूरा विश्वास हो गया कि उनके मामलेमें वह सफलताके साथ सर सिकदर हयातखासे बातचीत कर सकते है। मैंने उन्हें इसकी आज्ञा देदी। सर सिकदर भी बडी उदारतासे पेश आये। महादेवने जो कुछ कहा उसकी सचाईसे, जिसकी पुष्टि पृथ्वीसिंह जिन जेलोमें रहे उनके अफसरो द्वारा प्राप्त रिपोर्टोसे भी होती थी, वह प्रभावित हुए। महादेवने इसके लिए वाइसराय-भवनके भी द्वार खटखटाए। इस सबका फल यह हुआ कि २२ सितबरको अधिकारियोने सरदार पृथ्वीसिंहको लाकर मेरे पास छोड दिया। मैंने उनका स्वागत करते हुए कहा—"तुमने अपनेको एक जेलमे दूसरी जेलमे बदल दिया है, जो किसी कदर ज्यादा ही सख्त है।" उन्होंने हँसकर अपनी हार्दिक स्वीकृति प्रकट की। वह जानते है कि वह कसौटीपर कसे जा रहे है। अपने देशकी आजादीके लिए एकमात्र हिंसामें उनका पक्का विश्वास रहा। उन्होंने ऐसे-ऐसे साहसपूर्ण काम किये है, जिनकी बराबरी चाहे कोई कर सके, लेकिन उनसे बढकर किसी भी क्रातिकारीने नही किया है। उनका जीवन अद्भुत घटनाओसे भरा हुआ है। लेकिन धीरजके साथ आत्म-निरीक्षण करनेसे उन्हे मालूम पडा कि मूलभूत रूपमे उनका जीवन असत्यपूर्ण है और असत्यसे सच्ची मुक्ति कभी नही हो सकती। लुका-छिपीके उनके जीवनमे जो मोहकता थी और उनके साहसपूर्ण कार्योसे चकाचौध होकर उनके मित्र उनकी जो सहायता करते थे, उसके बावजूद वह लुका-छिपीके ऐसे असत्यपूर्ण जीवनसे ऊब गये। सैकडो नौजवानोको उन्होंने जो व्यायाम सिखलाया, उससे उन्हें कोई सतोष नही हुआ। सौभा-

ग्यवश, उन्हें दक्षिणामूर्तिके नानाभाई जैसे साथी मिल गये। उन्होंने उनके कदम मेरी तरफ मोडे। मैंने उनसे कह दिया कि मुझे तवतक सतोष न होगा, जबतक कि वह सक्रिय रूपमे अहिंसाके ऐसे उदाहरण न वन जाय जैसा कि मै कभी भी हो सकता हू। मै तो सक्रिय रूपमे कभी पूरा हिंसक नही रहा, बल्कि हिंसाकी जो भावना मुझमे रही वह कायरोकी-सी ही थी। लेकिन वह तो हिंसाके मूर्त्तरूप ही रहे है। अब अगर उन्होंने अहिंसा-को हृदयगम कर लिया है। तो उनकी अहिंसा पहलेकी उनकी हिंसासे अधिक अद्भुत और शाश्वत रूपमें समृद्ध होनी चाहिए। ईश्वरकी कृपासे उन्हे इस लोकोक्तिको पूरा करके वतलाना चाहिए कि "जो जितना अधिक पापी होता है वह उतना ही वडा सत वनता है।" उन्होंने मुझे अपनी डायरीके वे प्रामाणिक पृष्ठ दिखलाये है, जिनमें उन्होंने स्वेच्छापूर्ण कैदी-के रूपमें विताई अपनी पहली रातका मृत्युके रूपमें वर्णन किया है। उनमेंसे नीचे लिखे महत्वपूर्ण वाक्य मै यहा देता हू

"आज मेरे आत्म-समर्पणका दिन है, जवकि दैवी आदेशसे प्रेरित होकर मैं ऐसी हरएक वस्तुका समर्पण करता हू जिसे कि मै अपनी कह सकू। २५ साल तक मैंने सव खतरोका सामना करते हुए ऐसा प्रकाश पानेके लिए सख्त मेहनत की है जो मुझे सेवाका मार्ग वतला सके। काफी अनुभववाला क्रातिकारी होनेके कारण मैं अपनी सफलताओंपर गर्व करता था। १९ मईका दिन मेरे जीवनमें एक महत्वपूर्ण दिन है। यह वह दिन है जव मुझे यह महसूस हो गया है कि उसी चले हुए रास्तेपर चलकर मैं न तो अपने राष्ट्रको समृद्ध कर सकूगा और न मानवताके उद्धारमें ही अपनी कोई देन दे सकूगा। १९ मईका यह दिन मेरे जीवनमें सवसे वडे साहसका दिन है। वर्तमान जीवनका मेरे लिए न कोई आकर्षण है और न कोई अर्थ। मुझे नए जीवनमें प्रवेश करना ही चाहिए। मृत्युका आलिंगन किये विना भला मैं उसे कैसे पा सकता हू? लेकिन मृत्युका आलिंगन करना कोई उद्देश्य नही है। उद्देश्य तो नया जीवन ही है। किंतु मृत्युके सिवा और कैसे

मै उसे पा सकता हू ? तर्ककी इसमे विशेष गुजाइश नही। यह तो श्रद्धा थी, जिसने मुझे चुनावका रास्ता बतलाया।"

क्या अच्छा हो कि सरदारको जो आजादी अब मिली है वह इस बातको सिद्ध कर दे कि उनका यह नोट गर्म कल्पनाकी उपज नही, बल्कि छटपटाती हुई आत्माका प्रदर्शन है। (ह० से०, ३०.६ ३६)

: ११६ :

हेनरी पोलक

तीसरे मित्र पोलक है। वेस्टकी तरह इनके साथ भी मेरा परिचय भोजन-गृहमें हुआ। वह ट्रासवालके 'क्रिटिक' के उप-सपादककी जगह छोड़कर 'इडियन ओपीनियन' में आये थे। सब कोई जानते है कि उन्होने युद्ध (सत्याग्रह) के लिए इग्लैंड और सारे भारतवर्षमे भ्रमण किया था। रिच विलायत गये कि मैने उन्हें फिनिक्समे अपने दफ्तरमें बुला लिया। वहा आर्टिकल्स दिये और ये भी वकील बन गये। बादमें उन्होने शादी की। मिसेज पोलकको भी भारतवर्ष जानता है। इस महिलाने भी अपने युद्धके काममे पतिकी बडी सहायता की थी। एक दिन भी उसमें विघ्न नही डाला। और यद्यपि आज वे दोनो असहयोगमें हमारा साथ नही दे रहे है, तथापि वह यथाशक्ति भारतकी सेवा अब भी किया ही करते है। (द० अ० स० १६२५)

• • •

गोखलेकी इच्छा थी कि पोलक भारतवर्ष जाकर उनकी कुछ सहायता करें। मि० पोलकका स्वभाव ही ऐसा है कि वे जहा कही रहें, मनुष्यके लिए उपयोगी हो जाते है। जिस कामको वे उठाते है उसीमें तन्मय हो

जाने है। इसलिए उनको भारतवर्प भेजनेकी तैयारिया चल रही थी। मैने तो लिख दिया था कि वे चले जावे। पर विना मुझसे मिले, सभी सूचनाए प्रत्यक्ष मेरे मुहसे सुने विना ही वे जाना नही चाहते थे। इसलिए उन्होने इस सफरमें ही मुझसे मिल लेनेकी इजाजत मागी। मैने उन्हें तारसे उत्तर दिया—"गिरफ्तार हो जानेकी जोखिम उठाना चाहे तो चले आवें।" सिपाही सभी आवश्यक जोखिमोंका स्वागत कर लेते हैं। यह युद्ध तो ऐसा था कि सरकार यदि सबको पकडना चाहती तो सभीको गिरफ्तार हो जाना चाहिए था। जबतक सरकार गिरफ्तार नही करती है तबतक गिरफ्तार होनेके लिए सरल और नीतियुक्त कोशिशें करते जाना धर्म था। इसलिए मि० पोलक अपनी गिरफ्तारीकी जोखिम उठाकर भी आ पहुचे।

हम लोग हेडलबर्गके करीब पहुच चुके थे। नजदीकवाले स्टेशनसे उतरकर वे हमें वही मिले। हमारी बात-चीत हो रही थी। अभी वह पूरी भी नही हो पाई थी। दोपहरके तीन बजे होगे। हम दोनो दलके मुहानेपर थे। दूसरे साथी भी हमारी बातें सुन रहे थे। शामको मि० पोलकको डरबन जानेवाली ट्रेन पकडनी थी। किंतु रामचद्रजी जैसे महापुरुषतकको राजतिलकके समय वनवास मिला। फिर पोलक कौन होते थे ? हमारी बातचीत हो रही थी कि एक घोड़ा-गाड़ी सामने आकर ठहर गई। उसमे ऐशियाई विभागके उच्च अधिकारी मि० चमनी और एक पुलिस अधिकारी भी थे। दोनो नीचे उतरे। मुझे जरा दूर ले जाकर कहा, "मैं आपको गिरफ्तार करता हू।" इस तरह चार दिनमें मैं तीन बार पकड़ा गया। मैंने पूछा—"इस दलको ?"

"यह सब होता रहेगा।"

मै कुछ न बोला। केवल अपने गिरफ्तार होनेकी खबर देनेका समय ही मुझे दिया गया। मैंने पोलकसे कह दिया कि वे दलके साथ जावें। (द० अ० स० १९२५)

• • • • • •

जिस तरह वेस्टसे मेरी मुलाकात निरामिष भोजनालयमें हुई, उसी तरह पोलकसे भी हो गई। एक दिन मेरे खानेकी मेजसे दूरकी मेजपर एक नवयुवक भोजन कर रहा था। उसने मुझसे मिलनेकी इच्छासे अपना नाम मुझतक पहुचाया। मैंने उन्हे अपनी मेजपर खानेके लिए बुलाया और वह आये।

"मै 'क्रिटिक' का उप-सपादक हू। प्लेग-सबधी आपका पत्र पढनेके बाद आपसे मिलनेकी मुझे बड़ी उत्कठा हुई।' आज आपसे मिलनेका अवसर मिला है।"

मि० पोलकके शुद्ध भावने मुझे उनकी ओर खीचा। उस रातको हमारा एक-दूसरेसे परिचय हो गया और जीवन-सबधी अपने विचारोमें हम दोनोको बहुत साम्य दिखाई दिया। सादा जीवन उन्हें पसद था। किसी बातके पट जानेके बाद तुरत उसपर अमल करनेकी उनकी शक्ति आश्चर्यजनक मालूम हुई। उन्होने अपने जीवनमें कितने ही परिवर्तन तो एकदम कर डाले।(आ० क० १९२७)

. . . .

फिनिक्स जैसी संस्था स्थापित करनेके बाद मैं खुद थोडे ही समय उसमे रह सका। इस बातपर मुझे हमेशा बडा दु ख रहा है। उसकी स्थापनाके समय मेरी यह कल्पना थी कि मै भी वही बसूगा। वही रहकर जो-कुछ सेवा हो सकेगी वह करूगा और फिनिक्सकी सफलताको ही अपनी सेवा समझूगा, परतु इन विचारोके अनुसार निश्चित व्यवहार न हो सका।

हमारी धारणा यह थी कि हम लोग खुद मिहनत करके अपनी रोजी कमायगे, इसलिए छापेखानेके आस-पास हरएक निवासीको तीन-तीन एकड जमीनका टुकडा दिया गया। इसमें एक टुकडा मेरे लिए भी नापा गया। हम सब लोगोकी इच्छाके खिलाफ उनपर टीनके घर बनाए गये। इच्छा तो हमारी यह थी कि हम मिट्टी और फूसके, किसानोके लायक

अथवा ईंटके मकान बनावे, पर वह न हो सका। उसमें अधिक रुपया लगता था और अधिक समय भी जाता था। फिर सब लोग इस बातके लिए आतुर थे कि कब अपने घर बसा लें और काममें लग जाय।

यद्यपि 'इडियन ओपिनियन' के सपादक तो मनसुखलाल नाजर ही माने जाते थे, तथापि वह इस योजनामें सम्मिलित नही हुए थे। उनका घर डरबनमें ही था। डरबनमें 'इडियन' ओपिनियन' की एक छोटी-सी शाखा भी थी।

छापेखानेमें कपोज करने यानी अक्षर जमानेके लिए यद्यपि वैतनिक कार्यकर्त्ता थे, फिर भी उसमें दृष्टि यह रखी गई थी कि अक्षर जमानेकी क्रिया सब संस्थावासी जान लें और करें। क्योंकि यह है तो आसान, पर इसमें समय बहुत जाता है। इसलिए जो लोग कपोज करना नही जानते थे वे सब तैयार हो गये। मैं इस काममें अततक सबसे ज्यादा पिछडा रहा और मगनलाल गाधी सबमे आगे निकल गये। मेरा हमेशा यह मत रहा है कि उन्हें खुद अपनी शक्तिकी जानकारी नही रहती थी। उन्होने इससे पहले छापेखानेका कोई काम नही किया था, फिर भी वह एक कुशल कपोजीटर बन गये और अपनी गति भी बहुत बढा ली। इतना ही नहीं, बल्कि थोड़े ही समयमें छापेखानेकी सब क्रियाओमें काफी प्रवीणता प्राप्त करके, उन्होने मुझे आश्चर्य-चकित कर दिया।

यह काम अभी ठिकाने लगा ही न था, मकान भी अभी तैयार न हुए थे कि इतनेमें ही इस नए रचे कुटुबको छोड़कर मुझे जोहासबर्ग भागना पड़ा। ऐसी हालत न थी कि मैं वहाका काम बहुत समयतक यों ही पटक रखता।

जोहासबर्ग आकर मैंने पोलकको इस महत्त्वपूर्ण परिवर्तनकी सूचना दी। अपनी दी हुई पुस्तकका[1] यह परिणाम देखकर उनके आनदकी

---

[1] रस्किनकी 'अनटू दिस लास्ट'

सीमा न रही । उन्होने वडी उमगके साथ पूछा—"तो क्या मै भी इसमे किसी तरह योग नही दे सकता ?"

मैने कहा—"हा क्यो नही, अवश्य दे सकते है । आप चाहें तो इस योजनामे भी शरीक हो सकते है ।"

"मुझे आप शामिल कर ले तो मुझे तैयार ही समझिए ।" पोलकने जवाब दिया ।

उनकी इस दृढताने मुझे मुग्ध कर लिया । पोलकने 'क्रिटिक' के मालिकको एक महीनेका नोटिस देकर अपना इस्तीफा पेश कर दिया और मियाद खतम होनेपर फिनिक्स आ पहुचे । अपनी मिलनसारीसे उन्होने सबका मन हर लिया और हमारे कुटुबी बनकर वहाँ बस गये । सादगी तो उनके रगोरेशेमें भरी हुई थी, इसलिए उन्हें फिनिक्सका जीवन जरा भी अटपटा या कठिन न मालूम हुआ, वल्कि स्वाभाविक और रुचिकर जान पड़ा ।

पर खुद मै ही उन्हे वहा अधिक समयतक न रख सका । मि० रिचने विलायतमे रहकर कानूनके अध्ययनको पूरा करनेका निश्चय किया । दफ्तरके कामका बोझा मुझ अकेलेके वसका न था । इसलिए मैने पोलकसे दफ्तरमे रहने और वकालत करनेके लिए कहा । इसमें मैने यह सोचा था कि उनके वकील हो जानेके वाद अतको हम दोनो फिनिक्समें आ पहुचेंगे ।

हमारी ये सव कल्पनाए अतको झूठी सावित हुई, परतु पोलकके स्वभावमे एक प्रकारकी ऐसी सरलता थी कि जिसपर उनका विश्वास बैठ जाता उसके साथ वह हुज्जत न करते और उसकी सम्मतिके अनुकूल चलनेका प्रयत्न करते । पोलकने मुझे लिखा—"मुझे तो यही जीवन पसद है और मै यही सुखी हू । मुझे आशा है कि हम इस सस्थाका खूब विकास कर सकेंगे । परतु यदि आपका यह खयाल हो कि मेरे वहा आनेसे हमारे आदर्श जल्दी सफल होगे तो मै आनेको भी तैयार हू ।"

मैने इस पत्रका स्वागत किया और पोलक फिनिक्स छोड़कर

जोहासबर्ग आये और मेरे दफ्तरमें मेरे सहायकका काम करने लगे। (आ० क० १९२७)

... ..

पोलकको मैंने अपने साथ रहनेका निमत्रण दिया और हम सगे भाईकी तरह रहने लगे। पोलकका विवाह जिस देवीके साथ हुआ उससे उनकी मैत्री बहुत समयसे थी। उचित समयपर विवाह कर लेनेका निश्चय दोनोंने कर रखा था, परंतु मुझे याद पड़ता है कि पोलक कुछ रुपया जुटा लेनेकी फिराकमें थे। रस्किनके ग्रथोका अध्ययन और विचारोका मनन उन्होंने मुझसे बहुत अधिक कर रखा था, परतु पश्चिमके वातावरणमें रस्किनके विचारोके अनुसार जीवन बितानेकी कल्पना मुश्किलसे ही हो सकती थी। एक रोज मैंने उनसे कहा, "जिसके साथ प्रेम-गाठ बध गई है उसका वियोग केवल धनाभावसे सहना उचित नही है। इस तरह अगर विचार किया जाय तब तो कोई गरीब बेचारा विवाह कर ही नही सकता। फिर आप तो मेरे साथ रहते हैं। इसलिए घर-खर्चका खयाल ही नहीं है। सो मुझे तो यही उचित मालूम पड़ता है कि आप शादी कर लें।"

पोलकसे मुझे कभी कोई बात दुबारा कहनेका मौका नही आया। उन्हें तुरत मेरी दलील पट गई। भावी श्रीमती पोलक विलायतमें थी, उनके साथ चिट्ठी-पत्री हुई। वह सहमत हुईं और थोड़े ही महीनोंमें वह विवाहके लिए जोहासबर्ग आ गईं।

विवाहमें खर्च कुछ भी नही करना पड़ा। विवाहके लिए खास कपड़े-तक नही बनाए गये और धर्म-विधिकी भी कोई आवश्यकता नही समझी। श्रीमती पोलक जन्मत. ईसाई और पोलक यहूदी थे। दोनो नीति-धर्म-के माननेवाले थे।

परतु इस विवाहके समय एक मनोरजक घटना हो गई थी। ट्रासवालमें जो कर्मचारी गोरोके विवाहकी रजिस्ट्री करता वह कालेके विवाह-की नही करता था। इस विवाहमें दोनोका पुरोहित या साक्षी मैं ही था।

हम चाहते तो किसी गोरे-मित्रकी भी तजवीज कर सकते थे, परतु पोलक इस बातको बरदाश्त नही कर सकते थे। इसलिए हम तीनो उस कर्मचारीके पास गये। जिस विवाहका मध्यस्थ एक काला आदमी हो उसमे वर-वधू दोनो गोरे ही होगे, इस बातका विश्वास सहसा उस कर्मचारीको कैसे हो सकता था? उसने कहा कि मै जाच करनेके बाद विवाह रजिस्टर करूगा। दूसरे दिन बडे दिनका त्यौहार था। विवाहकी सारी तैयारी किए हुये वर-वधूके विवाहकी रजिस्ट्रीकी तारीखका इस तरह बदला जाना सबको बडा नागवार गुजरा। बडे मजिस्ट्रेटसे मेरा परिचय था। वह इस विभागका अफसर था। मै इस दपतीको लेकर उनके पास गया। किस्सा सुनकर वह हँसा और चिट्ठी लिख दी। तब जाकर यह विवाह रजिस्टर हुआ।

आजतक तो थोडे-बहुत परिचित गोरे पुरुष ही हम लोगोके साथ रहे थे, पर अब एक अपरिचित अग्रेज महिला हमारे परिवारमें दाखिल हुई। (आ० क० १९२७)

.. .. ..

पोलकसे बढकर ईमानदार अग्रेज और तुम्हें कहा मिलेगा? तुम उसके समागममें खूब आये हो। यह आदमी तो साफ मानता है कि अग्रेजोने इस देशका भला ही किया है। फिर दूसरे ऐसा माने तो इसमे आश्चर्य ही क्या? यह तो ईसाई मिशनकी वृत्ति है। (म० डा० भाग २ ९९१३)

.. ..

"वह (पोलक) बहुत जल्दी चिढ जाता था। वह और श्रीमती पोलक पहले मित्र थे। इथीकल सोसाइटी (Ethical Society) के सदस्य बने, वहासे मित्रता शुरू हुई, आखिर मैंने उनकी शादी कराई। वे सोचते थे कि कुछ पैसे हो जाय तब शादी करें। मगर मैंने कहा, 'यह निकम्मी बात है, और पैसेकी जरूरत हो तो मै भी तो तुम्हारे पास पड़ा हू न!" पोलकका

यह प्रेम-सबंध था। मगर वह कई बार अपना सतुलन खो बैठता था। वैसे तो श्रीमती पोलक दो की चार सुनानेवाली थीं, मगर जब पोलक गुस्सेमें होता था तो उससे बड़े प्रेमसे पेश आती थी। कहती, "तुम्हें हुआ क्या है ?" और हँस देती थी। मैं कहा करता था कि यह क्या बात है कि पहले तो तुम इतने मित्र थे, और अब शादी हो गई है तो क्या लडना ही चाहिए ? जैसे मैंने तुम्हारी शादी कराई है वैसे ही तलाक भी करवाना होगा क्या ? श्रीमती पोलककी कार्य-कुशलताका नतीजा यह है कि वे आज एक दूसरेको पूजते हैं और मुझे छोड़ दिया है। (का० क०, १९ ६ ४२)

: ११७ :

फकीरी

फकीरीकी मौत तो ऐसी हुई जो आश्रमको शोभा देनेवाली नही कही जा सकती। आश्रम अभी नया था। फकीरीपर आश्रमके सस्कार न पडे थे। फिर भी फकीरी बहादुर लडका था। मेरी टीका है कि वह अपने भोलेपनकी बलि हो गया। उसकी मृत्यु मेरी परीक्षा थी। मुझे ऐसा याद है कि आखिरी दिन उसकी बगलमें सारी रात मैं ही बैठा रहा।

सवेरे मुझे गुरुकुल जानेके लिए ट्रेन पकडनी थी। उसे अरथीपर सुलाकर, पत्थरका कलेजा करके मैंने स्टेशनका रास्ता लिया। फकीरीके बापने फकीरी और उसके तीन भाइयोको यह समझकर मुझे सौंपा था कि मैं फकीरी और दूसरोके बीच भेद न करूंगा। फकीरी गया तो उसके तीन भाइयोको भी मैं खो बैठा। ('आश्रमवासियोसे', ३० ५ ३२)

: ११८ :

रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स

डोकके ही जैसा सबध रखनेवाले और बहुत भारी सहायता करने-वाले एक और पादरी सज्जन थे। उनका नाम था रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स। वहुत वर्ष पहले वे ट्रान्सवालमे काग्रीगेशनल मिनिस्टर थे। उनकी सुशीला स्त्री भी उनकी बडी सहायता करती। (द० अ० स० १९२५)

: ११९ :

जमनालाल बजाज

मनुष्यके जीते हुए उसकी जीवनीका प्रकट होना सामान्यतया अयोग्य है, परतु इसमे अपवाद भी है। जमनालालजीको मै मुमुक्षु या आत्मार्थी समझता हू। ऐसे पुरुषोकी जीवनीमेंसे दूसरोको कुछ-न-कुछ नैतिक लाभ मिलता है। इस दृष्टिसे इस जीवनीके प्रकट करनेके औचित्यके लिए मुझसे पूछा गया तब मैने इसको उचित माना। इसके एक-दो प्रक-रण मैने सुने है। इसपरसे मेरा विश्वास है कि इसमें अतिशयता या अयोग्य स्तुति नही है। मै आशा करता हू कि जिन्होने सेवाधर्मको स्वीकार किया है उनको जमनालालजीके जीवनमें से वहुत-सी बातें अनुकरणीय प्रतीत होगी। ('सेठ जमनालाल वजाज' से)

. . . .

उनको नजरबद रखना तो समझमें आ जाता है क्योंकि वे उस हुक्म की अदूली करना चाहते है जो उनके अपने जन्म-प्रदेशमें प्रवेश करनेसे

रोकता है। अधिकारियोको यह मालूम है कि सेठजी एक आदर्श कैदी है, वे जेलके नियन्त्रणका पूरी तरह पालन करनेमें विश्वास रखते है। उन्हें जिस प्रकार बाहरकी सारी दुनियासे अलग कर दिया गया है, क्या यह अत्याचार और निर्दयता नही है ? (ह० से०, ६ ५ ३९)

• •• • •

सेठ जमनालाल बजाजको छीनकर कालने हमारे बीचसे एक शक्तिशाली व्यक्तिको छीन लिया है। जब-जब मैंने धनवानोके लिए यह लिखा कि वे लोककल्याणकी दृष्टिसे अपने धनके ट्रस्टी बन जाए तब-तब मेरे सामने सदा ही इस वणिक्शिरोमणिका उदाहरण मुख्य रहा। अगर वह अपनी संपत्तिके आदर्श ट्रस्टी नही बन पाए तो इसमें दोष उनका नही था। मैंने जानबूझकर उनको रोका। मैं नही चाहता था कि वे उत्साहमें आकर ऐसा कोई काम कर लें, जिसके लिए बादमें शात मनसे सोचनेपर उन्हें पछताना पडे। उनकी सादगी तो उनकी अपनी ही चीज थी। अपने लिए उन्होने जितने भी घर बनाए, वे उनके घर नही रहे, धर्मशाला बन गये। सत्याग्रहीके नाते उनका दान सर्वोत्तम रहा। राजनैतिक प्रश्नोकी चर्चामें वह अपनी राय दृढतापूर्वक व्यक्त करते थे। उनके निर्णय पक्के हुआ करते थे। त्यागकी दृष्टिसे उनका अतिम कार्य सर्वश्रेष्ठ रहा। वे किसी ऐसे रचनात्मक काममें लग जाना चाहते थे, जिसमें वे अपनी पूरी योग्यताके साथ अपने जीवनका शेष भाग तन्मय होकर विता सकें। देशके पशुधनकी रक्षाका काम उन्होने अपने लिए चुना था और गायको उसका प्रतीक माना था। इस काममें वह इतनी एकाग्रता और लगनके साथ जुट गये थे कि जिसकी कोई मिसाल नही। उनकी उदारतामें जाति, धर्म या वर्णकी सकुचितताको कोई स्थान न था। वे एक ऐसी साधनामें लगे हुए थे, जो कामकाजी आदमीके लिए विरल है। विचार-सयम उनकी एक बडी साधना थी। वे सदा ही अपनेको तस्कर विचारोसे बचानेकी कोशिशमें रहते थे। उनके अवसानसे वसुन्धरा

का एक रत्न कम हो गया है। उनको खोकर देशने अपना एक वीर-से-वीर सेवक खोया है। जिस कार्यके लिए उन्होंने अपना शेष जीवन समर्पित कर दिया था, उसे अब उनकी विधवा जानकीदेवीने स्वय करनेका निश्चय किया है। उन्होंने अपनी समस्त निजी संपत्तिको, जो करीव ढाई लाखके आस-पास है, कृष्णार्पण कर दिया है। ईश्वर उन्हें अपने इस अगीकृत कार्यमे सफल होनेकी शक्ति दे। (ह० से०, १५ २ ४२)

[जमनालालजी अकेले एक व्यक्ति ही नहीं थे। वे सच्चे अर्थमें देशकी एक संस्था थे। उनके आकस्मिक स्वर्गवासके बाद गांधीजीने तय किया कि उनकी तमाम सार्वजनिक प्रवृत्तियोको पहलेकी तरह अखंड रूपमें चलाए रखना ही उनका सच्चा स्मारक हो सकता है। इस हेतुको सफल बनानेके लिए उन्होंने जमनालालजीके करीब दो सौ ऐसे मित्रोको, जिन्हें उनके जीवन-कार्यसे सहानुभूति थी, अपनी सहीसे निमन्त्रण भेजकर सलाह-मशविरेके लिए वर्धा बुलाया। जमनालालजीके राष्ट्रभाषा प्रचारके सिद्धांतोको ध्यानमें रखकर निमंत्रण-पत्र हिंदी और उर्दू दोनों लिपियोमें छापा गया था। वर्धाके नवभारत विद्यालयमें २० और २१ फरवरीको दोपहर इस निमित्तसे आये हुए भाई-बहनोकी दो सभाए हुई। इस अवसरपर गांधीजीने जो भाषण किया वह अपनी मिसाल आप ही है। उनके मुंहसे ऐसे वचन इस प्रकारके अवसरपर शायद पहले कभी सुननेमें नहीं आये। रुपए-पैसे द्वारा ईंट-पत्थरका स्मारक बनानेकी बात को छोड़कर जमनालालजीकी मृत्युको आत्मोन्नतिका और उनके जीवन-कार्यको आगे बढ़ानेका एक साधन बना लेनेकी सलाह देते हुए उन्होंने वहा एकत्र मित्र-मडलसे कहा :]

आजका-सा अवसर मेरे जीवनमे इससे पहले कभी नही आया था और जहा तक मैं सोच पाता हू आगे भी कभी नही आयेगा। आप देखते है कि जो कार्रवाही आज हम यहा करने जा रहे है उसके लिए कोई सभापति

नहीं चुना गया है। मैं तो सभापति हू ही नही। क्यो नही हू, सो आप खुद ही थोडे समयमें समझ जाइयेगा।

कहा जाता है कि मेरे साथ जमनालालजीका सबध करीब-करीब तभीसे शुरू हुआ जबसे मैंने हिंदुस्तानके सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया। उन्होंने मेरे सभी कामोको पूरी तरह अपना लिया था, यहातक कि मुझे कुछ करनाही नही पडता था। ज्योही मै किसी नए कामको शुरू करता वे उसका बोझ खुद उठा लेते थे। इस तरह मुझे निश्चिंत कर देना, मानो उनका जीवन-कार्य ही बन गया था। यो हमारा काम मजेमें चल रहा था, लेकिन अब तो वे खुद ही चले गये है और उनके सब कामोको चलानेका भार मेरे कधोपर आ पडा है। इसलिए मैंने सोचा कि मै उनके उन सब मित्रोको जो उनके अनेकानेक सेवाकार्योमें सहायक होते रहते थे, यहा बुलाऊ और उनसे निवेदन करू कि वे इस असह्य बोझको उठानेमे अपनी ताकतभर मेरी मदद करके इसे हलका करें। आज मैं आपके सामने एक भिक्षुककी हैसियतसे यहा खडा हू। फिर इस सभाका सभापति कैसे बन सकता हू?

अपना भिक्षापात्र लेकर मैं आपके सामने खडा होता हू। लेकिन मैं धन-दौलतकी भीख नही मांगता। वैसी भीख भी मैंने जीवनमें खूब मागी है। गरीबकी कौडी और अमीरोके करोडोकी मुझे जरूरत नही है। लेकिन आज जो काम मुझे करना है उसमें रुपए-पैसेकी कम ही जरूरत है। अगर मैं चाहता तो आजके दिन जमनालालजीके सब धनिक मित्रोको यहा इकट्ठा करके उनपर दबाव डाल सकता था, उनकी खुशामद कर सकता था और उनकी भावनाओको द्रवित करके थैलियोके मुह खुलवा सकता था। यह धधा भी मैंने अपने जीवनमे जी-भरकर किया है और वह मुझे अच्छी तरह आता भी है। लेकिन वही सब आज मैं यहा करने बैठता तो उस व्यक्तिके नाम को बडा धब्बा लगता। मुझे अपना कर्त्तव्य देकर वह चल बसा है, जो मेरे पास आया तो मेरी परीक्षा लेनेको,

मगर पुत्र वनकर वैठ गया और मेरा सारा वोझ उठाता रहा। मुझे जो भिक्षा आज आपसे मागनी है वह तो यह है कि जमनालालजीके उठ जानेसे जो वोझ वढ गया है उसको उठानेमें कौन-कौन मेरी मदद करेंगे? अकेले एक आदमीकी मददसे काम नही चलेगा। मदद तो सवको मिलकर देनी होगी और काम बाट लेना होगा।

इस सवधमें आगे कुछ कहनेके पहले मैं आपको यह बता दू कि अभी तक मैंने क्या किया है। ११ फरवरीको जब मैं जमनालालजीके द्वारपर पहुचा तो उनका देहात हो चुका था। मेरे पास वर्धासे सदेशा तो सिर्फ यही आया था कि खूनका दौरा कम करनेकी दवा भेजें। मैं दवा भेजकर अपने दिलकी तसल्ली कर सकता था। लेकिन उस दिन मैंने महसूस किया कि नही, मुझे खुद ही जाना चाहिए। जब वहा पहुचा तो मामला कुछ और ही पाया। मैं उस अवसरपर भी निर्दयी वन गया। जानकीदेवी तो पतिके शवके साथ सती होनेकी वात करती थीं। मैंने कहा कि सचमुच सती वनना है तो जीती-जागती सती वन जाओ। धनका जितना त्याग कर सको कर दो। यह तो उनके लिए एक मामूली वात थी। आखिर धनसे वह कितना सुख और आराम भोग सकती थीं? लेकिन दूसरी चीज उतनी आसान नही थी। सभव है, वह भी उतनी आसान न हो। मैंने कहा कि वह अपने पतिका स्थान ले लें। उन्हें सकोच हुआ, फिर भी मैंने उनसे प्रतिज्ञा करा ही ली। इतना कठोर मैं वन गया।

इस तरह जानकीदेवीने तो त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली। लेकिन फिर मैंने सोचा कि उनके लड़के-लडकियो और दामाद वगैराको भी ऐसा ही त्याग करना चाहिए। मैं उनके साथ भी कठोर हो गया। मैंने उनसे कहा, "वेशक आप जमनालालजीकी तरह व्यापार कीजिए, लेकिन उसमे उनकी विशेषताको निवाहते रहिए, याने व्यापार भी सेवाभाव अथवा धर्मभावसे कीजिए। जितना कमाए, नीति-पूर्वक कमाइए और उसे खर्च

भी पुण्य कार्यके लिए कीजिए। अपने ऐश-आरामके लिए नही, यानी आप अपने कमाए धनके भी सरक्षक बनकर रहिए।

जमनालालजी करीब ६ लाख रुपया अपने लडकोके पास जोड गये थे ताकि वे उसका उपयोग सेवार्थ करें। यानी इससे मेरे जैसे भिखारियोंकी झोलिया भरें। लडके कह सकते थे कि एक बार हमें जी-भरकर ऐश-आराम करने दीजिए, फिर हम त्याग भी करते रहेंगे। लेकिन नहीं, एक-दो दिनके गभीर विचारके बाद उन्होने वह सारी रकम सेवा-कार्यके लिए दे दी। इसके सिवा जमनालालजीके जीवन-कालमे काग्रेसजनोके और दूसरे कार्यकर्ताओके आतिथ्य पर हरसाल करीब २० हजार रुपया खर्च होता था। उन्होंने इसको भी पहलेकी तरह जारी रखनेका निश्चय किया और सारे खर्चकी जवाबदारी बच्छराज जमनालाल कपनीकी तरफसे अपने कधोपर उठा ली। सेठजीने बजाजवाडीका एक हिस्सा जानकीदेवीके लिए और बच्चोके लिए रखा था। लेकिन उनके परिवार-वालोंने यह तय किया कि उनमेंसे कोई उन बगलोमें नही रहेंगे। उनका प्रयोग सिर्फ अतिथि-सत्कारके लिए अथवा सार्वजनिक कामके लिए ही होगा। वे खुद तो अभी गोपुरीमें ही रहना पसद करते है।

इस तरह शुभ सकल्पोके साथ यह काम शुरू हुआ है। जमनालाल-जीकी आख बद होते ही मैंने उनके बोझका बंटवारा कर लिया है। आप देखेंगे कि जमनालालजीके कामोकी फेहरिस्त आपको भेजी गई है। उसमें उनके आखिरी कामको पहला स्थान मिला है। यह काम स्वराज-प्राप्तिके कामसे भी कठिन है। स्वराज्य मिलनेमे वह अपने आपही नही हो जायगा। यह सिर्फ पैसेसे होनेवाला काम नही। मै इस बातका साक्षी हू कि आजीवन अलौकिक निष्ठासे काम करनेवाले उस व्यक्तिने किस अपूर्व निष्ठासे इस कामको शुरू किया था। इन्हें इस तरह काम करते देख एक दिन सहज ही मेरे मुहसे निकल गया था कि जिस वेगसे वह इस कामको कर रहे है उसको उनका शरीर सह सकेगा या नही? कही बीचमे

ही वह धोखा तो नही दे जायगा । आज मेरा वह कथन भविष्यवाणी सिद्ध हुआ है मानो उस समय भगवान ही मेरे मुहसे बोल रहे थे। साराश यह कि यह काम पैसेसे नही, एक निष्ठासे होनेवाला है। जानकीदेवीने जो ढाई लाख रकम दान की है उसमेंसे ढाई हजार रुपये खादीके काममें खर्च करनेका वह पहले ही सकल्प कर चुकी थी। इसके सिवा वर्धामें एक प्रसूतिगृह बनानेकी उनकी इच्छा थी। कुछ रुपया उसमें लगेगा। बाकी करीब सवा दो लाख गोमाताके कामके लिए रह जाता है। बीस-पच्चीस हजार रुपया अखिल गोसेवा सघका था, वह भी आज हमारे पास है। जानकीदेवीके दानकी रकमके साथ मिलकर यह रकम हमारी आजकी आवश्यकताके लिए काफी है, लेकिन कार्यकर्त्ता काफी नही है। गोसेवाका काम आजतक जिस तरह चला उससे न जमनालालजीको सतोष था, न मुझे। इस कामको सतोषजनक रूपमें चलानेके लिए मुझे आपकी तन, मन, धन-से मदद मिलनी चाहिए। जब तक यह न हो जायगा मुझे चैन न पडेगा। असलमें वारिस तो उन्हें मेरा बनना चाहिए था; पर वह तो चले गये और जी गए। अब परीक्षा मेरी है। मै एक नए रूपमें उनका वारिस बन गया हू। यानी उनके सारे के-सारे कामोको मैने अपने जिम्मे ले लिया है। लेकिन यह तो एक ऐसी चीज है जिसके वारिस आप सब बन सकते हैं। जब आप सब मिलकर इन कामोको उठा लेगे तो यह पहलेसे भी ज्यादा व्यवस्थित और सतोष-जनक रीतिसे चलेंगे और तभी मै इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो पाऊगा।

जमनालालजी तो बडभागी थे। उनकी तरह हम भी अपनेको बडभागी साबित कर सकते हैं, बशर्तेकि जो चीज उनके रहते हमे साफ नही दिखाई दी वह उनके बाद हमे साफ दिखाई देने लगे। जो जाग्रति हममें उनके जीवित रहते नही आई वह अब सबमें आ जाय। यह सब कठिन है। मगर एक तरहसे आसान भी है। अगर आप यह कठिन काम कर सकते है तो करें। परतु मै नही चाहता कि आप कुछ शरमा-शरमी करें।

इससे तो आप जमनालालजीके प्रति अपनी सच्ची श्रद्धाका सबूत नही दे सकेंगे। लेकिन बिना किसी संकोचके सोच-समझकर उनके काममें थोड़ी-सी मदद पहुचायगे तो आप यहांसे एक बडा काम करके चले जायगे।

उनका सबसे बडा काम गोसेवाका था। वैसे तो यह काम पहले भी चलता था; लेकिन धीमी चाल से। इसमें उन्हें सतोष न था। उन्होने उसे तीव्र गतिसे चलाना चाहा, और इतनी तीव्रतासे चलाया कि खुद ही चल बसे! अगर हमें गायको जिदा रखना है तो हमें भी इसी तरह उसकी सेवामें अपने प्राण होमने होंगे। इसी तीव्रतासे काम करना होगा। अगर हम गायको बचा पाये तो हम भी बच जायगे। उसका एक रास्ता तो वह है जो पश्चिम वालोंने अख्तियार कर रखा है। यानी उसको बेचें और उसकी मिट्टीसे अपना पेट भरकर मोटे-ताजे बनें। परन्तु उनका यह न्याय न मुझे मजूर है, न आपको और न जमनालालजीको। इसलिए इसकी जो मर्यादा उन्होंने अपने लिए बनाई थी उसके अदर रहकर ही हमें काम करना होगा। . जमनालालजी हमें अपना रास्ता बता गये है। शायद आपको मालूम हुआ होगा कि उन्होने गोसेवाकी दो योजनाए तैयार की थी। एक सारे देशके लिए, दूसरी वर्धाके लिए।. .

× × ×

अब दूसरी चीज लीजिए। मिसालके तौरपर खादीके काममें उनकी दिलचस्पी मुझसे कम न थी। खादीके लिए जितना समय मैंने दिया उतना ही उन्होने भी दिया। उन्होने इस कामके पीछे मुझसे कम बुद्धि खर्च नहीं की थी। इसलिए कार्यकर्त्ता भी वे ही ढूढ-ढूढकर मेरे पास लाया करते थे। थोडेमें यह कह लीजिए कि अगर मैंने खादीका मत्र दिया तो जमनालालजीने उसको मूर्त रूप दिया। खादीका काम कुछ होनेके बाद मैं तो जेलमें जा बैठा, मगर वे जानते थे कि मेरे नजदीक खादी हीमे स्वराज्य है। अगर उन्होने तुरत ही उसमें रत होकर उसे सगठित

रूप न दिया होता तो मेरी गैरहाजिरीमें सारा काम तीन-तरह हो जाता।

यही बात ग्रामोद्योगकी थी। उन्होंने इसके लिए तो मगनवाडी दी ही थी। साथ ही उसके सामनेकी कुछ जमीन भी वे मगनवाडीके लिए खरीदनेका सकल्प कर चुके थे। अब चि० कमलनयनने वह जमीन भी मगनवाडीको देदी है। ग्रामोद्योगका काम इतना व्यापक है कि इसमें अटूट रुपया खर्च किया जा सकता है।. .

× × ×

एक बात और जमनालालजी कई बार कहा करते थे कि लोग और सब जगह तो खादी पहनकर चले जाते हैं, लेकिन बैंकमें नही जाते। अगर बैंकमे वह अपनी मारवाडी पगडी पहनकर न जाय तो उनके ख्यालमें इसमें उनकी प्रतिष्ठाकी हानि होती है। मगर खुद जमनालालजी ने कभी इसकी कोई चर्चा नही की। फिर उसका नतीजा कुछ भी क्यो न हुआ हो! अत मै यह चाहता हू कि हममें इतनी स्वतत्रता और इतना आत्म-गौरव पैदा हो जाना चाहिए कि हम अपनी खादीकी पोशाकमें हर जगह बिना झिझकके जा सके।

आज हमारे सिर एक बहुत बडा सकट मडरा रहा है। सिंगापुर गया, रगून जाता नजर आता है। खुद कलकत्ता खतरेमें है। ऐसी हालतमें अगर कलसे कोई दूसरी ताकत हिंदुस्तानमे आ पहुचे तो क्या पहलेकी तरह हम फिर अपने व्यापारके लालचसे उसकी खुशामद करने लग जावेंगे और अपनी स्वतत्रता उनके हाथो बेच देंगे?' अथवा यह कहेंगे कि हम इनकी गुलामीसे निकलकर आपकी सरदारीको स्वीकार करना नही चाहते? जमनालालजीकी आत्मा आज हमसे पूछती है! इस सबधमें उनका अपना क्या जवाब होता, सो तो मै उतनी ही अच्छी तरह से जानता हू, जितना अपनेको जानता हू।...

× × ×

अबतक इस देशकी आजादीको खोनेमें व्यापारी-समाजकी खास जिम्मेदारी रही है। जमनालालजीको यह चीज बराबर खटका करती थी। इसीलिए आज आपके सामने मुझे यह सारी बातें रखनी पडी हैं। . . .

जमनालालजीके दूसरे कामोंके बारेमे मै आपका इस वक्त ज्यादा समय नही लेना चाहता। वे सब आपकी आखोके सामने ही है। महिला-आश्रमको ही लीजिए। यह उनकी अपनी एक विशेष कृति है। उन्हीकी कल्पनाके अनुसार यह अबतक काम करता रहा है। जमनालालजीके सामने सवाल यह था कि जो लोग देशके काममें जुटकर भिखारी बन जाते हैं, उनके बाल-बच्चोंकी शिक्षाका क्या प्रबंध हो ? उन्होंने कहा कि कम-से-कम उनकी लडकियोंको सरकारी मदरसोंके मुकाबलेमें अच्छी ही तालीम मिल सकेगी। बस, इसी खयालसे महिला-आश्रमकी स्थापना हुई। आज इस आश्रमके लिए एक त्यागी और सुशिक्षित महिलाकी आवश्यकता है। आप इस आवश्यकताकी पूर्तिमें सहायक हो सकते हैं। बुनियादी तालीम और हरिजन सेवक सघके कामका भी यही हाल है। आप इनमें शरीक हो सकते हैं। हिंदु-मुस्लिम एकताके लिए उनके दिलमें खास लगन थी। उनके अदर साप्रदायिक द्वेषकी बू तक न थी। आप उनके जीवनमे इस गुणको ग्रहण कर सकते हैं। .

जमनालालजीका स्मृति-स्तभ खडा करके हम उनकी यादको चिरस्थायी नहीं बना सकते। स्तभपर खुदे हुए शिला-लेखको तो लोग पढकर थोडे ही समयमें भूल जायगे, परतु जिस आदमीने दुनियाके लिए इतना कुछ किया है उसके कामको चिरस्थायी रखनेका सकल्प कोई कर लें तो वह उनका सच्चा स्मारक हो रहेगा। किंतु इसके लिए मै जबरदस्ती नही करना चाहता और न मैं आपसे ही वैसी कोई आशा रखता हू। जिसे जो कुछ भी करना हो आत्मोन्नतिके लिए करे। अगर दिखावेके लिए कुछ भी होगा तो उससे मुझे और जमनालालजीकी आत्माको उल्टा कष्ट ही होगा।

[इसपर कई सूचनाएं गांधीजीके सामने रखी गईं, परन्तु वे उन्हें पसंद न आईं। अपनी मनोदशाको और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने पुनः जोरदार शब्दोंमें कहा :]

मैंने आज जानबूझकर अनियमित ढगसे सारा काम चलाया है, क्योंकि मैं इस काममें थोडी भी कृत्रिमता नही चाहता। मैं इसे अपने जीवनका एक अत्यन्त गभीर अवसर मानता हू। जो शुद्ध धर्म-भावना अतिम समयमे जमनालालजीकी थी उसे मैं कायम रखना चाहता हू। इसलिए जिसे जो कुछ करना हो उसी भावनासे करें। एकातमें बैठें, अतर्मुख बने और ईश्वरको साक्षी रखकर जो सकल्प करना हो करे। (सेवाग्राम, २८ २.४२)

मै क्या सदेश भेजू ? जमनालालजीकी स्तुति करू ? कैसे करू ? मेरे हाथ कट गये है। जिसका द्वारपाल गया है वह उसके लिए क्या लिख सकता है ? ('समाज-सेवकसे')

... .

गाधीजीने आते ही जमनालालजीके सिरपर हाथ रखा। जमनालालजीकी धर्मपत्नी, श्री जानकीदेवी, तो कुछ हक्की बक्की सी रह गई थीं। गाधीजीको देखते ही वह आशाकी तरंगोमें उछलने लगीं—

"बापूजी, ओ बापूजी! आप पासमें होते तो यह न मरते। मैंने आपको इनकी तबीयत बिगडते ही जल्दी खबर क्यो न भेज दी। इन्हें जिंदा कर दीजिए। क्या आप इन्हें जिला नहीं सकते ?" गांधीजीने कहा :

जानकी, अब तुम्हें रोना नही है। तुम्हे तो हँसना है और बच्चोको हँसाना है। जमनालाल तो जिंदा ही है। जिसका यश अमर है, तो फिर उसकी मृत्यु कैसी! उसकी मृत्यु तो तभी हो सकती है जब तुम उसका मार्ग अनुसरण करनेसे मुह मोडो। जमनालालने परमार्थकी

जिंदगी विताई। तुम्हारी जैसी साध्वी स्त्री उन्हें मिली, तो फिर रोना कैसा! जो काम उसने अपने कंधोपर लिया था उसे अब तुम सम्हालो। उसी ध्येयके लिए तुम अपने आपको संपूर्णतया अर्पण कर दो। और जमनालाल जिंदा ही है, ऐसा मानो। तुम जानती हो कि मृत सत्यवानको सावित्रीने अपने तपसे पुनर्जीवित कर लिया था। वह पुनर्जीवन शरीरका क्या हो सकता था? शरीर तो नाशवान ही है। सावित्रीने अपने तपसे सत्यवानके तपको सदाके लिए अमरत्व दे दिया। यही सावित्री-सत्यवान की कथाका सच्चा अर्थ है। तुम भी अपने तपसे अपने पतिके यशको जागृत रखोगी, तो फिर जमनालाल जिंदा ही है, ऐसा हम मान सकते हैं।

"बापूजी, मैं तो अपने आपको अर्पण करनेको तैयार हूं। पर मेरी शक्ति ही क्या? मेरा तप ही क्या? मैं उनके कामको कैसे चलाऊंगी? कैसे उनके तपको जागृत रखूंगी? आप इन्हें मरने मत दीजिए। आप क्या इन्हें जिला नहीं सकते। तो क्या यह मर ही गये। क्या अब बोलेंगे नहीं।"

मैं तुम्हें झूठा धीरज नहीं देने आया हूं। जमनालालका शरीर मर गया, पर असल जमनालाल तो जिंदा ही है और आगेके लिए उसे जिंदा रखना हमारा काम है।"

('जमनालालजी', पृष्ठ १०)

•

शामको घूमते समय अंग्रेजी न जाननेवालोंकी बातें चलीं। चर्चा मीराबहनने चलाई थी। मैंने कहा, "जमनालालजी भी तो अंग्रेजी नहीं जानते थे, मगर वह अपना काम खासा चला लेते थे।" बापू कहने लगे:

मगर जमनालाल अंग्रेजीकी बातें सब समझ लेता था। अंग्रेजीमें प्रस्ताव वगैरा आते थे, उनमें वह एक भी चीज छोडता नहीं था। व्याकरण नहीं जानता था, मगर शब्दोंका उपयोग ठीक जानता था। इसलिए अपने भाषणों वगैराका तर्जुमा दुरुस्त किया करता था। उसके जैसा बारीकी-

से हरेक चीजको पकडनेवाला आदमी भाग्यसे ही कही मिलता है। जमनालाल किसी चीजको वर्किंग कमेटीमें छोडता नही था। वह बुद्धिशाली था और व्यवहार-कुशल भी। वह अपनी जगह पर अद्वितीय था।" (का० का०, २६ ६ ४२)

•

मैंने कहा, "मगर आज हमारे पास ट्रस्टीशिपका कोई नमूना है तो जमनालालजीका है। जमनालालजीकी बहुत चीजें सेवाके काममें इस्तेमाल होती थीं। कितनी ही जायदाद उन्होने दे भी डाली। तो भी उनके मनमें यह तो था ही कि वे देते हैं—दान करते हैं।" बापू कहने लगे ·

जमनालालजीने महा प्रयत्न किया, मगर वह पूरी तरहसे ट्रस्टी बन नही सके। वह उनकी अपूर्णताका नतीजा था। (का० क०, ३ १२ ४२)

: १२० :

बहादुरजी

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन, राष्ट्रीय ऋणके सबधमें जाच करनेके लिए काग्रेस महासमितिने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्तमान अवसरपर एक अत्यत महत्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा काग्रेसका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे विना न रहेगा। श्रीबहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल शाह और श्रीकुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनदनके अधिकारी है। 'यग इडिया'के विदेशी पाठक जानते है कि श्रीबहादुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनो ही एक बार एडवोकेट-

जनरल थे। उन्होने एडवोकेट-जनरलके पदका उपयोग किया है, यह बात योही छोड़ दी जाय, तो दोनो धूमधामसे चलनेवाले धंधेके व्यवसायी और अनुभवी कानून विशेषज्ञ है। एडवोकेट-जनरलके पदने इनकी प्रतिष्ठा-में कुछ वृद्धि की है, ऐसी कुछ बात नही है। यह तो उनकी प्रतिष्ठाकी और उनके व्यवसायमें उनका जो पद है, उसकी स्वीकृतिमात्र है। खुशाल-शाह भारत-प्रख्यात अर्थशास्त्री है, कितनी ही बहुमूल्य पुस्तकोके लेखक है और बहुत वर्ष तक, आज अभी तक, बबई यूनिवर्सिटीमें अर्थशास्त्रके अध्यापक थे। यह तीनो सज्जन सदैव कामसें घिरे रहते है, इसलिए राष्ट्रीय महासभाके सौपे हुए इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नही था। रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोका लिखा हुआ लेख नही, वरन जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले है, और जो थायलीबाज उपदेशक नही, वरन् स्वय जिस विषयके ज्ञाता है, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोको तौल-तौलकर व्यवहारमें लाने वालोकी यह कृति है। (हिं० न०, ६.८.३१)

: १२१ :

व्रजलाल

व्रजलाल बडी उम्रमें, शुद्ध सेवा-भावसे आश्रममे आए थे और सेवा करते हुए ही मृत्युका आलिगन करके अमर हो गये और आश्रमके लिए शोभा रूप हुए। एक लड़केका घडा कुएसे निकालते हुए डोरमें फसकर फिसल गए और प्राण तजे। ('यरवदा मदिरसे' ३०.५ ३२)

: १२२ :

अब्दुलबारी

जैसी हिंदुओके बारेमे चेतावनिया मुझे दी गई है, वैसी ही मुसलमानोके विषयमें भी मिली है। यहा मै सिर्फ तीन ही नाम पेश करूगा। मौलाना अब्दुलबारी साहब एक धर्मोन्मत्त हिंदू द्वेष्टाके रूपमें मेरे सामने पेश किए गये है। मुझे उनके कितने ही लेख दिखाए गये है जिन्हें मै समझ नही सकता। मैंने तो इस विषयमें उनसे पूछताछ भी नही की, क्योकि वे तो खुदाके एक भोले-भाले बच्चे है। मैंने उनके अदर किसी तरहका छल-कपट नही देखा। बहुत बार वे बिना विचारे कह डालते है, जिससे उनके अभिन्न मित्रोको भी परेशानी उठानी पडती है। पर वे कडवी बातें कह बैठनेमें जितनी जल्दी करते है उतनी जल्दी अपनी भूलके लिए क्षमा मागनेको भी तैयार रहते है। जिस वक्त जो बात बोलते है उस वक्त वे सच्चे दिलसे बोलते है। उनका क्रोध और उनकी क्षमा दोनो सच्चे दिलसे होती है। एक बार वे मौ० मुहम्मदअलीपर बिना उचित कारणके बिगड बैठे। मै उस वक्त उनका अतिथि था। उनके मनमें लगा तो उन्होने मुझे भी कुछ सख्त-सुस्त कह डाला। उसी समय मौ० मुहम्मदअली और मै कानपुर जानेके लिए स्टेशन जानेकी तैयारीमें थे। हमारे विदा हो जानेके बाद उन्हे लगा कि उन्होने हमारे साथ अनुचित बरताव किया है। मौ० मुहम्मदअलीके साथ सचमुच अनुचित बरताव किया गया था। मेरे साथ नही। पर उन्होने तो हम दोनोके पास कानपुरमें अपनी तरफसे कुछ लोगोको भेजकर हम दोनोसे माफी मागी। इस बातसे वे मेरी नजरोमें ऊचे उठ गये। ऐसा होते हुए भी मैं स्वीकार करता हू कि मौलाना साहब किसी वक्त एक खतरनाक दोस्तका काम दे सकते है। पर मेरा मतलब यह है कि ऐसा होते हुए भी वे दोस्त ही रहेंगे।

उनके पास 'खानेके और, दिखानेके और' यह बात नही है। उनके दिलमें कोई दाव-पेंच नही है। ऐसे मित्रमें सहस्रो दोषोके होते हुए भी मैं उनकी गोदीमें अपना सिर रखकर चैन से सोऊगा, क्योकि मैं जानता हू ये छिपकर वार कभी न करेंगे। (हि० न०, १ ६.२४)

: १२३ :

बाल्डविन

सबसे ज्यादा साफ बात करनेवाला बाल्डविन है। उसे मैंने कहा कि मेरी यह दलील है कि अग्रेजी राजसे हमारा कुछ भी भला नही हुआ। तब वह कहने लगा, मुझे कहना चाहिए कि हमारे लोगोने हिंदुस्तानमें जो कुछ किया है उसके लिए मुझे गर्व है। और इसमें आश्चर्य ही क्या? रामकृष्ण भाडारकर अक्षरश मानते थे कि एक मामूली टामी (अग्रेज सिपाही) भी हमसे बढकर है। (म० डा०, ४.७ ३७)

• •• •

बाल्डविन तो मुझसे मिलना ही नही चाहता था। सर सैमुएल होरने उससे मिलनेका प्रबंध कर दिया। वह भी लार्ड लिनलियगोकी तरह बाह्य शिष्टाचार खूब बरतता था। बाल्डविनके पास तो मैं पद्रह मिनट भी नही बैठा। मैंने अपना केस रखनेकी कोशिश की। बताया कि हम तो ऐसा मानते हैं कि अग्रेजी राज्यमें हिंदका हमेशा अहित ही रहा है। आप लोगोसे हमने कुछ सीखा है, मगर वह आप लोगोंके सम्पर्कमें आनेके कारण। आप राजा न होते और हम आपके सम्पर्कमें आते तब भी सीखते—तब शायद ज्यादा सीखते। आपके पास सुन्दर भाषा है। उसमें इतना काम किया गया है, इतना साहित्य लिखा

गया है। उसकी हमें कदर है। हम हिंदुस्तानमे सीमित होकर नही रहना चाहते.। सारे जगतके साथ सवध रखना चाहते है, मगर आजाद होकर। हमे स्वतत्रता चाहिए। अग्रेजी भाषामें 'इडिपेन्डेन्स' शब्दका जो अर्थ है, वह स्वतत्रता हमे चाहिए, किसी खास तरहकी नही, क्योकि हम मानते है कि हिंदुस्तानमे अग्रेजी राज वुरी चीज है। वह कहने लगा, इसमें हमारा मतभेद है, मुझे तो अपनी कौमका और भारतमें अपने शासनका गर्व है। मैंने कहा, "ऐसा है तो मुझे आपसे और कुछ नही कहना।" (का० क०, ३ १२ ४२)

: १२४ :

बालासुंदरम्

'नेटाल इडियन काग्रेस' में यद्यपि उपनिवशोमे जन्मे भारतीयोने प्रवेश किया था, कार्कुन लोग शरीक हुए थे, फिर भी उसमे अभी मजूर गिरमिटिया लोग सम्मिलित न हुए थे। काग्रेस अभी उनकी न हुई थी। वे चदा देकर, उसके सदस्य होकर, उसे अपना न सके थे। काग्रेसके प्रति उनका प्रेम पैदा तभी हो सकता था, जव काग्रेस उनकी सेवा करे। ऐसा अवसर अपने आप आ गया और सो भी ऐसे समय, जवकि खुद मै अयवा काग्रेस उसके लिए मुश्किलसे तैयार थी, क्योकि अभी मुझे वकालत शुरू किए दो-चार महीने भी मुश्किलसे हुए होगे। काग्रेस भी वाल्यावस्थामें ही थी। इन्ही दिनो एक दिन एक मदरासी हाथमें फेंटा रखकर रोता हुआ मेरे सामने आकर खडा हो गया। कपडे उसके फटे-पुराने थे। उसका शरीर काप रहा था। सामनेके दो दात टूटे हुए थे और मुहसे खून वह रहा था। उसके मालिकने उसे वेदर्दीसे पीटा था। मैंने अपने मुशीसे, जो

तामिल जानता था, उसकी हालत पुछवाई। बालासुंदरम् एक प्रतिष्ठित गोरेके यहां मजूरी करता था। मालिक किसी बातपर उसपर बिगड़ पड़ा और आग-बबूला होकर उसने उसे बुरी तरह पीट डाला, जिससे बालासुंदरम्के दो दांत टूट गये।

मैंने उसे डाक्टरके यहां भेजा। उस समय गोरे डाक्टर भी वहां थे। मुझे चोट संबंधी प्रमाण-पत्रकी जरूरत थी। उसे लेकर मैं बालासुंदरम्को अदालतमें ले गया। बालासुंदरम्ने अपना हलफिया बयान लिखवाया। पढ़कर मजिस्ट्रेटको मालिकपर बड़ा गुस्सा आया। उसने मालिकको तलब करनेका हुक्म दिया।

मेरी इच्छा यह न थी कि मालिकको सजा हो जाय। मुझे तो सिर्फ बालासुंदरम्को उसके यहांसे छुड़वाना था। मैंने गिरमिट-संबंधी कानूनको अच्छी तरह देख लिया। मामूली नौकर यदि नौकरी छोड़ दे तो मालिक उसपर दीवानी दावा कर सकता है, फौजदारीमें नहीं ले जा सकता। गिरमिट और मामूली नौकरोंमें यों बड़ा फर्क था, पर उसमें मुख्य बात यह थी कि गिरमिटिया यदि मालिकको छोड़ दे तो वह फौजदारी जुर्म समझा जाता था और इसलिए उसे कैद भोगनी पड़ती। इसी कारण सर विलियम विलसन हंटरने इस हालतको 'गुलामी'-जैसा बताया है। गुलामकी तरह गिरमिटिया मालिककी संपत्ति समझा जाता। बालासुंदरम्को मालिकके चंगुलसे छुड़ानेके दो ही उपाय थे या तो गिरमिटियोंका अफसर, जो कानूनके अनुसार उनका रक्षक समझा जाता था, गिरमिट रद कर दे या दूसरेके नामपर चढ़ा दे अथवा मालिक खुद उसे छोड़नेके लिए तैयार हो जाय। मैं मालिकसे मिला और उससे कहा—"मैं आपको सजा कराना नहीं चाहता। आप जानते हैं कि उसे सख्त चोट पहुंची है। यदि आप उसकी गिरमिट दूसरेके नाम चढ़ानेको तैयार होते हों तो मुझे संतोष हो जायगा।" मालिक भी यही चाहता था। फिर मैं उस रक्षक अफसरसे मिला। उसने भी रजामंदी तो

जाहिर की, पर इस शर्तपर कि मै बालासुदरम्के लिए नया मालिक ढूढ दू ।

अब मुझे नया अग्रेज मालिक खोजना था । भारतीय लोग गिरमिटियोको रख नही सकते थे । अभी थोडे ही अग्रेजोसे मेरी जान-पहचान हो पाई थी । फिर भी एकसे जाकर मिला । उसने मुझपर मेहरबानी करके बालासुदरम्को रखना मजूर कर लिया । मैंने कृतज्ञता प्रदर्शित की । मजिस्ट्रेटने मालिकको अपराधी करार दिया और यह बात नोट कर ली कि अपराधीने बालासुदरम्की गिरमिट दूसरोके नामपर चढा देना स्वीकार किया है ।

बालासुदरम्के मामलेकी बात गिरमिटियोमें चारो ओर फैल गई और मै उनके बधुके नामसे प्रसिद्ध हो गया । मुझे यह सबध प्रिय हुआ । फलत मेरे दफ्तरमे गिरमिटियोकी बाढ आने लगी और मुझे उनके सुख-दुख जाननेकी बडी सुविधा मिल गई ।

बालासुदरम्के मामलेकी ध्वनि ठेठ मदरास तक जा पहुची । उस इलाकेके जिन-जिन जगहोसे लोग नेटालकी गिरमिटमे गये उन्हें गिरमिटियोने इस बातका परिचय कराया । मामला कोई इतना महत्त्वपूर्ण न था, फिर भी लोगोको यह बात नई मालूम हुई कि उनके लिए कोई सार्वजनिक कार्यकर्ता तैयार हो गया है । इस बातसे उन्हें तसल्ली और उत्साह मिला ।

मैंने लिखा है कि बालासुदरम् अपना फेंटा उतारकर उसे अपने हाथमे रखकर मेरे सामने आया था । इस दृश्यमे बडा ही करुण रस भरा हुआ है । यह हमें नीचा दिखानेवाली बात है । मेरी पगडी उतारनेकी घटना पाठकोको मालूम ही है । कोई भी गिरमिटिया तथा दूसरा नवागत हिंदुस्तानी किसी गोरेके यहा जाता तो उसके सम्मानके लिए पगडी उतार लेता—फिर टोपी हो या पगडी, अथवा फेटा हो । दोनो हाथोसे सलाम करना काफी न था । बालासुदरम्ने सोचा कि मेरे सामने भी इसी तरह

जाया जाता होगा। बालासुदरम्का यह दृश्य मेरे लिए पहला अनुभव था। मै शर्मिन्दा हुआ। मैंने बालासुदरम्से कहा, "पहले फेंटा सिरपर बाध लो।" बडे सकोचसे उसने फेंटा बाधा, पर मैंने देखा कि इससे उसे बडी खुशी हुई। मै अबतक यह गुत्थी न सुलझा सका कि दूसरोको नीचे झुकाकर लोग उनमें अपना सम्मान किस तरह मान सकते होगे। (आ० क०, १९२७)

: १२५ :

घनश्यामदास बिड़ला

वल्लभभाई—"मगर पुरुषोत्तमदास और बिड़लाका क्या हाल है?" बापूने कहा : ये लोग होरको कोई वचन दे चुके हो ऐसी बात नही है। मगर कमजोरी आ गई होगी। बिडला होरके हाथ बिक जाय तो उसे आत्म-हत्या करनी चाहिए। और अभी तो मालवीयजी बाहर बैठे हैं। बिडला मालवीयजी से पूछे बिना एक कदम भी रखे ऐसा आदमी नही है। नही, मुझे भरोसा है कि व्यापारियोमे ये लोग नही है। (म० डा०, १५.७.३२)

•• ••• •••

इस सस्थाका जन्म सेठ शिवनारायणजीके दो पौत्र रामेश्वरदास और घनश्यामदासकी पढनेकी इच्छामेंसे हुआ। सेठजीको यह अच्छा नही लगा कि केवल उनके पौत्र ही पढें और गावके दूसरे लडकोको इसका लाभ न मिले। पाच रुपये मासिकका उन्होने एक शिक्षक रखा और बिडला-पाठशाला खोल दी। इसी बीजमेसे निकलकर यह महावृक्ष इतना बडा हुआ है। स्वार्थके साथ परोपकारका मेल

साधना बिडला-वधुओके स्वभावमे उतरा है। शिक्षण, आरोग्य आदिमें अधिक-से-अधिक दिलचस्पी सेठ घनश्यामदासने ली और पिलानी की विशाल शिक्षण-सस्थामे घनश्यामदासजीने जो रस लिया, अपनी बुद्धि लगाई और ध्यान दिया, उसके लिए सस्था उनकी आभारी है। सर मॉरिस ग्वायर वगैरह यह सस्था देख आये है और उन्होने इसकी मुक्त कठसे प्रशसा की है । इस कॉलेजको सब तरहसे आदर्श कॉलेज बनानेका घनश्यामदासजीका बरसोसे प्रयास चल रहा है। पर चूकि पिलानी एक देशी रियासतके अतर्गत है, इसलिए सब धीमे-धीमे ही होता है। आशा है कि ऐसी अच्छी शिक्षण-प्रवृत्तिको जयपुर राज्य पूरा प्रोत्साहन देगा और कॉलेजको पूर्ण बनानेकी इजाजत भी तुरत दे देगा। मेरा मत है कि इतनी व्यवस्था और ध्यानसे चलनेवाली सस्थाएं हिंदुस्तानमे थोडी ही है।

आधुनिक कॉलेजोकी अगर आवश्यकता स्वीकार की जाए तो बिडला-कॉलेजमें जितनी चीजोका मेल किया गया है, दूसरी जगह वह शायद ही देखनेमें आयेगा। (ह० से०, २७.७ ४०)

: १२६ :

बृजकिशोर

बृजकिशोरबाबू दरभंगासे और राजेद्रबाबू पुरीसे यहा आए। यहा जो मैने देखा तो यह लखनऊवाले बृजकिशोरप्रसाद नही थे। उनके अदर बिहारीकी नम्रता, सादगी, भलमनसी और साधारण श्रद्धा देखकर मेरा हृदय हर्षसे फूल उठा। बिहारी वकील-मडलका उनके प्रति आदर-भाव देखकर मुझे आनद और आश्चर्य दोनो हुए।

तबसे इस वकील-मडल और मेरे बीच जन्म-भरके लिए स्नेह-गाठ

बध गई। बृजकिशोरबाबूने मुझे सब बातोंमें वाकिफ करा दिया। वह गरीब किसानोंकी तरफ से मुकदमे लड़ते थे। ऐसे दो मुकदमे उस समय चल रहे थे। ऐसे मुकदमोंके द्वारा वह कुछ व्यक्तियोंको राहत दिलाते थे, पर कभी-कभी इसमें भी असफल हो जाते थे। इन भोले-भाले किसानोंसे वह फीस लिया करते थे। त्यागी होते हुए भी बृजकिशोरबाबू या राजेंद्रबाबू फीस लेनेमें सकोच न करते थे। "पेशेके काममें अगर फीस न ले तो हमारा घर-खर्च नही चल सकता और हम लोगोंकी मदद भी नही कर सकते।"—यह उनकी दलील थी। उनकी तथा बगाल-बिहारके बैरिस्टरोंकी फीसके कल्पनातीत अक सुनकर मैं तो चकित रह गया। " को हमने 'ओपीनियन' के लिए दस हजार रुपये दिए।' हजारोंके सिवाय तो मैंने बात ही नही सुनी।

इस मित्र-मडलने इस विषयमें मेरा मीठा उलाहना प्रेमके साथ सुना। उन्होंने उसका उलटा अर्थ नही लगाया।

मैंने कहा—"इन मुकदमोंकी मिसलें देखनेके बाद मेरी तो यह होती है कि हम यह मुकदमेबाजी अब छोड़ दें। ऐसे मुकदमोंसे बहुत कम लाभ होता है। जहा प्रजा इतनी कुचली जाती है, जहा सब लोग इतने भयभीत रहते हैं, वहा अदालतोंके द्वारा बहुत कम राहत मिल सकती है। इसका सच्चा इलाज तो है लोगोंके दिलमें डरको निकाल देना। इस-लिए अब जबतक यह 'तीन कठिया' प्रथा मिट नही जाती तबतक हम आराममें नही बैठ सकते। मैं तो अभी दो दिनमें जितना देख सकू, देखने-के लिए आया हू, परतु मैं देखता हू कि इस काममें दो वर्ष भी लग सकते हैं, परतु इतने समयकी भी जरूरत हो तो मैं देनेके लिए तैयार हू। यह तो मुझे सूझ रहा है कि मुझे क्या करना चाहिए, परतु आपकी मददकी जरूरत है।"

मैंने देखा कि बृजकिशोरबाबू निश्चित विचारके आदमी हैं। उन्होंने शातिके साथ उत्तर दिया—"हमसे जो-कुछ बन सकेगी वह मदद हम

जरूर करेंगे, परतु हमें आप वतलाइए कि आप किस तरहकी मदद चाहते हैं।"

हम लोग रात-भर वैठकर इस विषयपर विचार करते रहे। मैंने कहा—"मुझे आपकी वकालतकी सहायताकी जरूरत कम होगी। आप जैसोसे मै लेखक और दुभाषिएके रूपमें सहायता चाहता हू। सभव है, इस काममें जेल जानेकी भी नौवत आजाय। यदि आप इस जोखिममें पड सके तो मैं इसे पसद करूगा, परतु यदि आप न पडना चाहें तो भी कोई वात नही। वकालतको अनिश्चित समयके लिए वद करके लेखकके रूपमें काम करना भी मेरी कुछ कम माग नही है। यहाकी वोली समझने-में मुझे वहुत दिक्कत पडती है। कागज-पत्र सव उर्दू या कैथीमें लिखे होते है, जिन्हें मै पढ नही सकता। उनके अनुवादकी मैं आपसे आशा रखता हू। रुपये देकर यह काम कराना चाहें तो वह अपने सामर्थ्यके वाहर है। यह सव सेवा-भावसे विना पैसेके होना चाहिए।"

वृजकिशोरवावू मेरी वातको समझ तो गये, परतु उन्होने मुझसे तथा अपने साथियोसे जिरह शुरू की। मेरी वातोका फलितार्थ उन्हें वताया। मुझसे पूछा—"आपके अदाजमें कवतक वकीलोको यह त्याग करना चाहिए, कितना करना चाहिए, थोड़े-थोडे लोग थोडी-थोडी अवधि-के लिए आते रहे तो काम चलेगा या नही ?" इत्यादि। वकीलोसे उन्होंने पूछा कि आप लोग कितना-कितना त्याग कर सकेगे ?

अतमे उन्होने अपना यह निश्चय प्रकट किया—"हम इतने लोग तो आप जो काम सौंपेगे करनेके लिए तैयार रहेगे। इनमेंसे जितनोको आप जिस समय चाहेंगे आपके पास हाजिर रहेंगे। जेल जानेकी वात अलवत्ता हमारे लिए नई है, पर उसकी भी हिम्मत करनेकी हम कोशिश करेंगे।" (आ० क०, १६२७)

... . ..

वृजकिशोरबाबू और राजेंद्रबाबूकी जोड़ी अद्वितीय थी। उन्होने

प्रेमने मुझे ऐसा अपग बना दिया था कि उनके बिना मैं एक कदम भी आगे न रख सकता था। (आ० क०, १९२७)

: १२७ :

ए० डब्ल्यू० बेकर

मि० बेकर वकील और साथ ही कट्टर पादरी भी थे। अभी वह मौजूद है। अब तो सिर्फ पादरीका ही काम करते है। वकालत छोड दी है। खा-पीकर सुखी है। अबतक मुझसे चिट्ठी-पत्री करते रहते है। चिट्ठी-पत्रीका विषय एक ही होता है। ईसाई-धर्मकी उत्तमताकी चर्चा वह भिन्न-भिन्न रूपमे अपने पत्रोमे किया करते है और यह प्रतिपादन करते है कि ईसामसीहको ईश्वरका एकमात्र पुत्र तथा तारनहार माने बिना परमशान्ति कभी नही मिल सकती।

हमारी पहली ही मुलाकातमें मि० बेकरने धर्म-सबधी मेरी मनोदशा जान ली। मैंने उनसे कहा—"जन्मत मै हिंदू हू, पर मुझे उस धर्मका विशेष ज्ञान नही। दूसरे धर्मोका ज्ञान भी कम है। मै कहा हू, मुझे क्या मानना चाहिए, यह सब नही जानता। अपने धर्मका गहरा अध्ययन करना चाहता हू। दूसरे धर्मोका भी यथाशक्ति अध्ययन करनेका विचार है।"

यह सब सुनकर मि० बेकर प्रसन्न हुए और मुझसे कहा—"मै खुद 'दक्षिण अफ्रीका जनरल मिशन' का एक डाइरेक्टर हू। मैंने अपने खर्चसे एक गिरजा बनाया है। उसमें मै समय-समयपर धर्म-सबधी व्याख्यान दिया करता हू। मैं रग-भेद नही मानता। मेरे साथ और लोग भी काम करनेवाले है। हमेशा एक बजे हम कुछ समयके लिए मिलते है और

आत्माकी शाति तया प्रकाश (ज्ञानके उदय) के लिए प्रार्थना करते है। उसमे आप आवा करेगे तो मुझे खुशी होगी। वहा अपने साथियोका भी परिचय आपसे कराऊगा। वे सव आपसे मिलकर प्रसन्न होगे और मुझे विश्वास है कि आपको भी उनका समागम प्रिय होगा। आपको कुछ धर्म पुस्तके भी मै पढनेके लिए दूगा, परतु सच्ची पुस्तक तो वाइबिल ही है। मै खास तौरपर सिफारिश करता हू कि आप इसे पढें।"

मैने मि० बेकरको धन्यवाद दिया और कहा कि जहा तक हो सकेगा आपके मडलमे एक बजे प्रार्थनाके लिए आया करूगा। (आ० क० १९२७)

• • •

मेरे भविष्यके सबधमे मि० बेकरकी चिता दिन-दिन बढती जा रही थी। वह मुझे वेलिग्टन कन्वेशनमें ले गये। प्रोटेस्टेंट ईसाइयोमें, कुछ-कुछ वर्षो बाद, धर्म-जागृति अर्थात् आत्मशुद्धिके लिए विशेष प्रयत्न किए जाते है। इसे धर्मका पुन प्रतिष्ठा अथवा धर्मका पुनरुद्धार कहा करते है। ऐसा एक सम्मेलन वेलिग्टनमें था। उसके सभापति वहाके प्रख्यात धर्मनिष्ठ पादरी रेवरड एड्रू मरे थे। मि० बेकरको ऐसी आशा थी कि इस सम्मेलनमें होनेवाली जागृति, वहा आनेवाले लोगोका धार्मिक उत्साह, उनका शुद्ध भाव, मुझपर ऐसा गहरा असर डालेगा कि मै ईसाई हुए बिना न रह सकूगा।

परतु मि० बेकरका अतिम आधार था प्रार्थना-बल। प्रार्थनापर उनकी भारी श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि अत करण-पूर्वक की गई प्रार्थनाको ईश्वर अवश्य सुनता है। वह कहते, "प्रार्थनाके ही बलपर मुलर (एक विख्यात भावुक ईसाई) जैसे लोगोका काम चलता है।" प्रार्थनाकी यह महिमा मैने तटस्थ भावसे सुनी। मैने उनसे कहा कि मेरा अतरात्मा पुकार उठे कि मुझे ईसाई हो जाना चाहिए तो दुनियाकी कोई शक्ति मुझे रोक नही सकती। अतरात्माकी पुकारके अनुसार चलनेकी

आदत तो मै कितने ही वर्षोसे डाल चुका था । अतरात्माके अधीन होते हुए मुझे आनद आता । उसके विपरीत आचरण करना मुझे कठिन और दु खदाई मालूम होता था ।

हम वेलिग्टन गये । मुझ 'श्यामल साथी' को साथ रखना मि० बेकरके लिए भारी पडा । कई बार उन्हें मेरे कारण असुविधा भोगनी पडती । रास्तेमें हमें मुकाम करना पडा था, क्योकि मि० बेकरका सघ रविवारको सफर न करता था और बीचमें रविवार पड गया था । बीचमें तथा स्टेशनपर मुझे होटलवालेने होटलमे ठहरनेसे तथा चख-चख होनेके बाद ठहरनेपर भी भोजनालयमें भोजन करने देनेसे इन्कार कर दिया, पर मि० बेकर आसानीसे हार माननेवाले न थे । वह होटलमे ठहरनेवालोके हकपर अडे रहे, परतु मैने उनकी कठिनाइयोका अनुभव किया । वेलिग्टनमें भी मै उनके पास ही ठहरा था । वहा उन्हे छोटी-छोटी-सी बातोमे असुविधा होती थी । वह उन्हें ढाकनेका शुभ प्रयत्न करते थे, फिर भी वे मेरे ध्यानमें आ जाया करती थी । (आ० क०, १९२७)

: १२८ :

एनी बेसन्ट

हम ऐसे कई बूढोको जानते हैं जिनमे जवानी की उद्यम-प्रियता पाई जाती है और कई ऐसे नौजवानोके देखते है, जो जवान होते हुए भी उद्यम की दृष्टिसे बूढोके समान शिथिल होते है । विदुषी एनी बेसन्ट वृद्ध होती हुई भी जवानके बराबर काम करती है । समयकी पाबदी और सुरक्षामें उनकी बराबरी करनेवाले बहुत थोडे आदमी पाए जाते है । जोशमें भी वह किसीसे कम नही है । (हि० न०, ७ ३ २९)

: १२६ :

सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी

यह देखकर मुझे दुःख होता है कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीकी आवाज आज सुनाई नही देती है। उनके और मेरे मतोंके बीच आज उत्तर और दक्षिण ध्रुवोके जितना अतर है। पर मतोके बीच अतर होनेसे ही परस्पर शत्रुता का भाव या व्यवहार होना कही उचित नही है। मुझे स्मरण है जब मै बालक था तब सुरेन्द्रनाथ देशकी वह सेवा कर रहे थे, जिसका हमें कृतज्ञ होना चाहिए। (कलकत्ता-भाषण. १२ १२ २०)

... ...

'बगालके देव' सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीसे तो मिलना ही था। उनसे जब मै मिलने गया तब दूसरे मिलनेवाले उन्हे घेरे हुए थे। उन्होने कहा, "मुझे अदेशा है कि आपकी बातमे यहाके लोग दिलचस्पी न लेंगे। आप देखते ही है कि यहा हम लोगोको कम मुसीबते नही हैं। फिर भी आपको तो भरसक कुछ-न-कुछ करना ही है। इस काममे आपको महाराजाओकी मदद की जरूरत होगी। 'ब्रिटिश इडिया एसोसियेशन' के प्रतिनिधियोसे मिलिएगा। राजा सर प्यारीमोहन मुकर्जी और महाराजा टागोरसे भी मिलिएगा। दोनो उदार हृदय है और सार्वजनिक कामोमें अच्छा भाग लेते है।" मै इन सज्जनोसे मिला, पर वहा मेरी दाल न गली। दोनोने कहा, "कलकत्तामें सभा करना आसान बात नही, पर यदि करना ही हो तो उसका बहुत-कुछ दारोमदार सुरेंद्रनाथ बैनर्जीपर है।" (आ० क०, १९२७)

... ...

सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीकी मृत्यु क्या हुई मानो भारतके राजनैतिक जीवनसे ऐसा पुरुष उठ गया जो अपने व्यक्तित्वकी गहरी छाप उसपर छोड

गया है। नये आदर्श और नई आशाए ली हुई जनताकी नजरोंमें यदि वे पीछे हट गये तो क्या हुआ? हमारा वर्तमान हमारे भूतकालका ही तो परिणाम है। सर सुरेन्द्रनाथ-जैसे पथ-दर्शक लोगोके बहुमूल्य कार्यके बिना वर्तमान समयके आदर्श और उच्च आकाक्षाओका होना सभव ही न था। एक ऐसा समय था जबकि विद्यार्थी लोग उनको अपना आराध्य देव समझते थे, जबकि देशके राष्ट्रीय कामोमें उनकी सलाह लेना अनिवार्य समझा जाता था और उनके वक्तृत्वसे लोग मत्र-मुग्धसे हो जाते थे। जब हमें वग-भगके समय की दिल दहला देनेवाली घटनाओका स्मरण होता है तब उसके साथ ही सर सुरेन्द्रकी उस समय की गई अनुपम सेवाओंकी स्मृति, कृतज्ञता और अभिमान-पूर्वक हुए बिना नही रह सकती। ऐसे ही समयमें सर सुरेन्द्रनाथको अपने कृतज्ञ देश-बधुओसे 'कभी न झुकनेवाला' की पदवी मिली थी। वग-भगके युद्धकी भाषण स्थितिमें भी सर सुरेन्द्र-कभी डावाडोल न हुए, कभी निराश न हुए। वे अपनी पूरी शक्तिके साथ उस आदोलनमें कूद पडे थे। उनके उत्साहसे सारे बगालमे उत्साह फैल गया। सरकारकी 'नान्यथा' को 'अन्यथा' करनेके दृढ सकल्पमें वे अचल रहे। उन्होने हमको हिम्मत और दृढताकी शिक्षा दी। उन्होने हमें मदान्ध अधिकारियो से 'नही' कहना सिखलाया।

राजनैतिक क्षेत्रके अनुसार ही शिक्षा-विभागमे भी उनका काम बहुत ऊचे दरजेका था। रिपन कालेजके द्वारा हजारो विद्यार्थियोको उनकी सीधी देख-रेख और लगातार असरमें रहनेके कारण बड़ी उदार शिक्षा मिली। अपने नियमित जीवन के कारण वे हमेशा तन्दुरुस्त और सशक्त बने रहे और उन्हे दीर्घ जीवन—हिंदुस्तानमे समझा जानेवाला दीर्घ जीवन—मिला। अत समय तक वे अपनी मानसिक शक्तियोको कायम रख सके। ७७ वर्षकी उमरमें अपने दैनिक 'बगाली' पत्रका सपादन-भार लेना कोई मामूली शक्ति का काम न था। अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति कायम रहनेके सबधमे उनकी ऐसी दृढ धारणा थी कि दो मास

पहले जब मुझे बारकपुरमे उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था तब उन्होने मुझसे कहा था कि मैं ६१ वर्षकी आयु तक जीवित रहनेकी उम्मीद करता हू। इसके बाद मुझे जीनेकी इच्छा नही है, क्योकि उसके बाद मेरी शक्ति कायम न रह सकेगी। पर भाग्य ने तो उसका उलटा कर दिखाया। बिना सूचना दिए ही उसने उन्हें हमसे छीन लिया। किसी को इसकी कल्पना तक न थी। गुरुवार ता० ६ के प्रात कालतक उनकी मृत्यु का कोई चिह्न दिखाई नही दिया। यद्यपि आज उनका शरीर हमारे बीचमें नही है तो भी उनकी देश-सेवा तो कभी भुलाई नही जा सकती। वर्तमान भारतके निर्माण करनेवालोमें उनका नाम सदा अमर रहेगा। (हि० न०, २० ८ २५)

: १३० :

जनरल बोथा

दक्षिण अफ्रीकाका जनरल बोथा कौन था? वह भी तो बारडोलीके किसानोके समान एक किसान ही था। वह ४०,००० भेडें रखता था। भेडोकी परीक्षा करनेमें उसके जैसा कोई चतुर न था। यद्यपि उसकी कीर्ति तो योद्धाकी हैसियतसे फैली, पर उसके जीवनमें लडनेके प्रसग तो बहुत कम आए। उसके जीवनका अधिकाश भाग रचनात्मक कामोमे ही व्यतीत हुआ। इतना भारी व्यवसाय करने वाले के लिए कितने रचना-कौशलकी जरूरत पडी होगी? ('विजयी बारडोली', पृष्ठ ३९)

: १३१ :

सुभाषचन्द्र बोस

प्र०—क्या सुभाषबाबूका यह कहना सही नहीं है कि कांग्रेसके सत्ताधारी नेताओंकी—जिनमें आप भी शामिल हैं—मनोवृत्ति सुधारवादी और नरम है ?

उ०—अवश्य सही है। दादाभाई नौरोजी एक महान् सुधारवादी थे। गोखले नरम दलके एक महान् प्रतिनिधि थे। इसी तरह बंबई प्रांतके बेताजके बादशाह फीरोजशाह मेहता और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भी नरम थे। अपने समयमें वे ही राष्ट्रके लिए लड़नेवाले थे। हम उन्हीके उत्तराधिकारी हैं। वे न होते तो हम भी न होते। सुभाषबाबू आगे बढ़नेकी अधीरतामें यह भूल जाते हैं कि मेरे जैसे लोग सुधारवादी और नरम मनोवृत्तिके होते हुए भी उनके साथ देशभक्तिमें होड लगा सकते हैं। मगर मैंने उनसे कहा है कि आपके सामने जवानी है, आपमें जवानीका जोश होना ही चाहिए। मैंने या और किसीने उनका हाथ नही पकड रखा है। वे ऐसे आदमी भी नही हैं, जिन्हें पकड़कर रखा जा सके। उन्हे उनकी दूरदेशीने ही रोक रखा है और इस तरह वे भी उतने ही सुधारवादी और नरम हैं जितना मैं हू। अंतर इतना ही है कि उनमें जो गुण हैं उन्हें अनुभवी होनेके कारण मैं जानता हू, पर जवानी के जोशमें वे नही देख सकते। सुभाषबाबूका और मेरा दृष्टिकोण अलग-अलग होते हुए और उनपर कांग्रेसकी तरफसे प्रतिबंध होनेपर भी मेरा निमन्त्रण है कि वे शांत युद्धमें अपना जौहर बताए तो फिर लेखक देखेंगे कि मैं उनके पीछे-पीछे चल रहा हू। मैं उनसे आगे निकल गया तो वे मेरे पीछे-पीछे चलेंगे, यह मुझे भरोसा है। मगर मुझे तो इसी आशा पर जीना है कि हम अपना समान ध्येय दूसरी लडाईके बिना ही प्राप्त कर लेंगे।

वर्धा लौटते हुए नागपुर-स्टेशनपर एक नवयुवकने यह सवाल पूछा कि कार्य-समितिने सुभाषबाबूकी गिरफ्तारीकी तरफ क्यो कुछ ध्यान नही दिया ? चूकि सोमवारका दिन था, मेरा मौन चल रहा था, मैंने कुछ भी जवाब नही दिया। मगर नवयुवकका यह प्रश्न मुझे ठीक लगा। मैंने उसे ध्यानमें रख लिया। मेरे दिलमें जरा भी शक नही कि हजारो नही तो सैकड़ो लोग यही सवाल, जो इस नवयुवकने नागपुर-स्टेशनपर पूछा, अपने दिलमें पूछ रहे होगे। और यह बात है भी ठीक। सुभाषबाबू दो बार लगातार काग्रेसके राष्ट्रपति चुने जा चुके है। अपनी जिंदगीमें उन्होने भारी आत्मबलिदान किया है। वह एक जन्म-जात नेता हैं। मगर सिर्फ इस वजहसे कि उनमें यह सब गुण है, यह साबित नही होता कि उनकी गिरफ्तारीके विरुद्ध कार्य-समिति अपनी आवाज ऊची करे। हा, यदि गुण-दोषका विचार करनेके बाद कार्य-समितिको ऐसा लगे कि अमुक गिरफ्तारी निंदाके योग्य है तो वह जरूर उसकी ओर अपना ध्यान देगी। मगर सुभाषबाबूने काग्रेसकी आज्ञासे सरकारी कानूनका भग नही किया। उन्होने तो खुद कार्य-समितिकी आज्ञाका भी, साफ ऐलानके साथ और छाती ठोककर, उल्लघन किया है। अगर उन्होंने इस घड़ी कोई दूसरी-तीसरी विना पर लड़ाईके लिए कार्य-समितिसे आज्ञा मागी होती तो मेरा विचार है कि वह उसे देनेसे इन्कार ही करती। सुभाषबाबूने जो सवाल उठाया, वैसे तो उससे भी बड़े महत्त्वके सैकड़ो सवाल शायद देशमें मिलेंगे। मगर देशने इस समय केवल एक प्रश्नपर, यानी स्वतन्त्रताके प्रश्नपर अपना सारा ध्यान जमा दिया है। अवसर आनेपर इस सिल-सिलेमे सत्याग्रह शुरू करनेके लिए तैयारिया भी की जा रही हैं। इसलिए सुभाषबाबूने जो कदम उठाया है अगर उसके बारेमे कार्य-समिति कोई कार्रवाई करती तो वह सिर्फ यही हो सकती थी कि वह अपनी नापसदगी प्रकट करे। मगर उसे यह नही करना था। मैं भी चाहता तो इस नव-युवकके सवालको जवाब दिए बिना ही रख छोड़ता। मगर मुझे लगा कि

इस गिरफ्तारीको इसके ठीक रूपमें जनताके आगे रखनेमें कुछ नुकसान नही। श्री सुभाषबाबू-जैसे बडे आदमीकी गिरफ्तारी कोई ऐसी-वैसी बात नही है। मगर सुभाषबाबूने अपनी युद्धकी योजना खूब सोच-विचारके बाद और साहसके साथ गढी है। उनके खयालमें उनका रास्ता सर्वोत्तम है। वह ईमानदारीसे यह मानते है कि कार्य-समिति गलत रास्तेपर है, और 'टाल-मटोल' की नीतिसे कुछ भला होनेवाला नहीं। उन्होने साफ शब्दोमें मुझसे कह दिया था कि जो काम कार्य-समिति न कर सकी वह उसे करके बताएगे। उनका धीरज चला गया था और विलब वह सहन नही कर सकते थे। मैंने जब उनसे कहा कि अगर उनकी योजनाके परिणाम-स्वरूप मेरी जिंदगीमें स्वराज मिल गया तो सबसे पहले उन्हें मेरी तरफसे धन्यवादका तार मिलेगा। और अगर उनके उठाए हुए युद्धके दरमियान मेरा विचार उनके जैसा हो गया तो मै खुले दिलसे उनका नेतृत्व स्वीकार करनेका ऐलान करूगा और उनके झडेके नीचे बतौर एक सिपाहीके आकर खुद भरती हो जाऊगा। लेकिन इसके साथ-साथ मैंने उन्हें यह चेतावनी भी दी थी कि वह गलत रास्तेपर चढे है।

मगर मेरी राय कुछ बहुत मानी नही रखती। जबतक श्री सुभाष-बाबू किसी एक रास्तेको ठीक समझते है तबतक उस रास्तेपर डटे रहनेका उनका अधिकार और धर्म है, चाहे काग्रेसको वह पसद हो या न हो। मैंने उनसे कहा कि यह अधिक ठीक होगा कि वह काग्रेसमेंसे बिलकुल निकल जाए, मगर मेरी राय उन्हें जची नही। लेकिन यह सबकुछ होते हुए भी अगर उनका प्रयत्न सफल हो और हिंदुस्तानको स्वतत्रता मिल जाय तो उनका काग्रेसके विरुद्ध विद्रोह करना ठीक ही सिद्ध होगा और काग्रेस न सिर्फ उनके इस विद्रोहको क्षमा ही करेगी, बल्कि देशके तारनहारके तौरपर वह उनका स्वागत भी करेगी।

सत्याग्रहके युद्धमें आग्रह करके जेल जाना प्रशसनीय गिना जाता है। इसलिए देशके समान्य कानूनका भग करनेकी वजहसे किसीको कैदकी सजा

मिले तो उसके खिलाफ आवाज नही उठाई जा सकती। इसके विपरीत, गिरफ्तार होनेपर सविनय-भग करनेवालोको धन्यवाद देने और दूसरे काग्रेसवादियोको उनका अनुकरण करनेका निमत्रण देनेकी प्रथा रही है। यह स्पष्ट है कि सुभाषबाबूके बारेमे कार्य-समिति ऐसा नही कर सकती थी। मै यहा यह भी कह दू कि देशमे जगह-जगह जो गिरफ्तारिया आज हो रही है—और उनमें प्रख्यात काग्रेसके सदस्य भी शामिल है—उनके बारेमे भी कार्य-समितिने कोई कारंवाई नही की। इसका मतलब यह नही कि कार्य-समितिको इससे आघात नही पहुचा, मगर जीवन-सग्राममे कईएक अन्यायोका मूक सहन करना कभी-कभी धर्म हो जाता है। अगर वह इरादतन सहन किया जाए तो उसमेसे एक बड़ी शक्ति पैदा होगी। (ह० से०, १३ ७ ४०)

• •　　　•

नेताजीके जीवनसे जो सबसे बड़ी शिक्षा ली जा सकती है वह है उनकी अपने अनुयायियोमे ऐक्यभावनाकी प्रेरणाविधि, जिससे कि वे सब साप्रदायिक तथा प्रातीय बधनोसे मुक्त रह सके और एक समान उद्देश्यके लिए अपना रक्त बहा सके। उनकी अनुपम सफलता उन्हें निस्सदेह इतिहासके पन्नोमे अमर रखेगी।

नेताजीके प्रत्येक अनुगामीने जो भारत लौटनेपर मुझसे मिले, निर्विवाद रूपसे यह कहा कि नेताजीका प्रभाव उनपर जादू-सा करता था और वे उनके अधीन एकमात्र भारतकी आजादी प्राप्त करनेके उद्देश्यसे काम करते थे। उनके दिलोमें साप्रदायिक और प्रातीय या और कोई भी भेद-भाव कभी भी अकुरित नही हुआ था।

नेताजी एक महान गुणवान पुरुष थे। वे व्युत्पन्नमति और प्रतिभा-सपन्न थे। उन्होने आई० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की, किंतु नौकरी उन्होने नही की। भारत लौटनेपर वे देशबधुदाससे प्रभावित हुए और कलकत्ता कार्पोरेशनके मुख्य एक्जीक्यूटिव, आफिसर नियुक्त हुए। बादमें

वे राष्ट्रीय महासभाके भी दो बार राष्ट्रपति बने, परन्तु उनकी उल्लेखनीय सफलताओंमे, भारतसे बाहरके, उस समयके कार्य है, जब वे देशसे भागे और काबुल, इटली, जर्मनी और अन्य देशोमे होकर अतमें जापान पहुचे। विदेशी चाहे कुछ भी कहें, पर मै विश्वासके साथ यह अवश्य कहूगा कि आज भारतमे एक भी ऐसा आदमी नही है जो उनके इस प्रकार भागनेको अपराध मानता है। 'समरथको नहि दोष गुसाई'—सत तुलसीदासके इस कथनके अनुसार नेताजी पर भागनेका दोष नही लगाया जा सकता। जब सर्वप्रथम उन्होंने सेना तैयार की तो उसकी तुच्छ सख्या की उन्होंने कोई चिंता नही की। उनका निश्चय था कि सख्या चाहे कितनी ही कम क्यो न हो, पर भारतको आजाद करानेके लिए उन्हें सामर्थ्यभर यत्न करना ही चाहिए।

नेताजीका सबसे महान् और स्थिर रहनेवाला कार्य था सब प्रकारके जातीय और वर्गभेदका उन्मूलन। वह केवल बगाली ही नही थे। उन्होंने अपने आपको कभी सवर्ण हिंदू नही समझा। वह आमूलचूल भारतीय थे। इससे अधिक क्या कि उन्होंने अपने अनुगामियोमें भी यही आग प्रज्वलित की, जिससे प्रेरित होकर वे उनकी उपस्थितिमें सभी भेदभाव भूल गये थे और एकसूत्र होकर काम करते थे। ('नेताजी : हिज लाइफ एण्ड वर्क')

• • • • • •

एक बात और। वह यह कि जो आजाद हिंद फौज सुभाषबाबूने बनाई थी और उसके लिए हम सब सुभाषबाबूकी होशियारी, बहादुरीकी तारीफ करते है और तारीफ करनेकी बात है, क्योकि जब वह हिंदुस्तानसे बाहर था तब उसने सोचा कि चलो थोड़ा फौजी काम भी कर लू। वह कोई लड़वैया तो था नही। एक मामूली हिंदुस्तानी था। जैसे दूसरे वकील, बैरिस्टर रहते है वैसे सुभाषबाबू भी थे। फौजकी कोई तालीम तो पाई नहीं थी। हा, सिविल सर्विसमें जैसा आमतौरपर होता है, थोड़ी

घुड़सवारी सीख ली होगी। लेकिन पीछे उन्होने फौजी-शास्त्र थोड़ा पढ लिया होगा। इस प्रकार उनके मातहत जो सेना बनी थी, मैं सुनता हू कि उसके दो बड़े अफसर, जिनसे मैं जेलमे तथा उसके बाहर भी मिला था, काश्मीरपर हमला करनेवालोसे मिले हुए हैं। यह मुझको बहुत चुभता है। ये सुभाषबाबूके मातहत खास काम करनेवाले थे और हमेशा उनके साथ रहा करते थे। सुभाषबाबू लश्करसे कोई बात छिपाकर रख तो सकते नही थे; क्योकि उन्हें उनके मारफत काम लेना पडता था। वे आज लुटेरोके सरदार होकर जाते है तो मुझको चुभता है। अगर उनको अखबार मिलते है या जो मै कहता हू उसको वे सुनले तो मै अपनी यह नाकिस आवाज उनको पहुचाता हू कि आप इसमे क्यो पडते है और सुभाषबाबूके नामको क्यो डुबाते है ? आप ऐसा क्यो करते है कि हिंदूका पक्ष लें या मुसलमानका पक्ष लें ? आपको तो जातिभेद करना नही चाहिए। सुभाषबाबू तो ऐसे थे नही। उनके साथ हिंदू-मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, हरिजन आदि सब रहते थे। वहा न हरिजनका भेद था, न इतरजनका। वहा तो हिंदुस्तानियोमें जातपातका कोई भेदभाव था ही नही। यो तो सब अपने धर्मपर कायम थे, कोई धर्म तो छोड बैठे थे नही। लेकिन सुभाषबाबूने कब्जा कर लिया था, उनके चित्तका हरण कर लिया था, शरीरका हरण नही किया था। ऐसा तो चलता नही था कि अगर आजाद हिंद फौजमें शामिल नही होता है तो काटो। लोगोको इस तरह काटकर वे हिंदुस्तानको रिहाई दिलानेवाले नही थे। इस तरहसे बडे हुए और बडप्पन पाया। तब आप इतने छोटे क्यो बनते है और इस छोटे काममे क्यो पडते है ? अगर कुछ करना ही है तो सारे हिंदुस्तानके लिए करो। वहा जो मुसलमान है, अफरीदी है, उनको कहें कि यह जाहिलपन क्यो करना ? लोगोको लूटना और देहातोको जलाना क्या ? चलो, महाराजासे मिले, शेख अब्दुल्लासे मिलें, उनको चिट्ठी लिखें कि "हम आपसे मिलना चाहते है, हम यहा कोई लूट करने तो आए नही

हैं। आप इस्लामको दबाते हैं, इसलिए आपको बताने आए हैं। यह तो मैं समझ सकता हूं। तब तो आप सुभाषबाबूका नाम उज्ज्वल करेंगे और उन अफरीदी लोगोंके सच्चे शिक्षक बनेंगे। अफरीदी लोग कैसे रहते हैं, उनमें भी लुटेरे हैं या नहीं है, यह मैं नहीं जानता हूं। लेकिन मेरी निगाहमें वे भी इन्सान हैं। उनके दिलमें भी वही ईश्वर या खुदा है, इसलिए वे सब मेरे भाई हैं। अगर मैं उनमें रहूं तो उनसे कहूंगा कि लूट क्या करना, एक-दूसरेपर गुस्सा क्या करना! मैं यह तो कहता नहीं कि तुम्हारे पास जो बंदूकें या तलवारें हैं, उन्हें छोड दो। उनको रखो, लेकिन जो दूसरे लोग डरे हुए हैं, मुफलिस हैं, औरतें हैं, बच्चे हैं, उनको बचानेके लिए। उनमें क्या है, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान। तो मैं कहूंगा कि ये जो दो अफसर हैं, जिनका नाम मैंने सुन लिया है, वे सुभाषबाबूका नाम याद करें। वे तो मर गये, लेकिन उनका नाम नहीं मरा, काम तो नहीं मरा। (प्रा० प्र०, २ ११ ४७)

• • • • • • • •

आज सुभाषबाबूकी जन्म-तिथि है। मैंने कह दिया है कि मैं तो किसीकी जन्म-तिथि या मृत्यु-तिथि याद नहीं रखता। वह आदत मेरी नहीं है। सुभाषबाबूकी तिथिकी मुझे याद दिलाई गई। उससे मैं राजी हुआ। उसका भी एक खास कारण है। वे हिंसाके पुजारी थे। मैं अहिंसाका पुजारी हूं। पर इसमें क्या? मेरे पास गुणकी ही कीमत है। तुलसीदासजीने कहा है न

"जड़-चेतन गुन-दोषमय विश्व कीन्ह करतार।
संत-हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥"

हंस जैसे पानीको छोडकर दूध ले लेता है, वैसे ही हमें भी करना चाहिए। मनुष्यमात्रमें गुण और दोष दोनों भरे पडे हैं। हमें गुणोंको ग्रहण करना चाहिए। दोषोंको भूल जाना चाहिए। सुभाषबाबू बडे देश-प्रेमी थे। उन्होंने देशके लिए अपनी जानकी बाजी लगा दी थी और वह करके भी

वता दिया। वह सेनापति वने। उनकी फौजमे हिंदू, मुसलमान, पारसी, सिख सव थे। सव वगाली ही थे, ऐसा भी नही था। उनमें न प्रातीयता थी, न रगभेद, न जातिभेद। वे सेनापति थे, इसलिए उन्हें ज्यादा सहूलियत लेनी या देनी चाहिए, ऐसा भी नही था (प्रा०, प्र०, २३ १ ४८)

: १३२ :

भगवान्दास

जव काशी विद्यापीठके अध्यापक कृपलानी और उनके विद्यार्थी पकड़े गये, मैंने अपने मित्रोसे कहा था, "क्या ही अच्छा हो, यदि वावू भगवान्दास गिरफ्तार हो जाय। आखिर अध्यापक कृपलानी वनारसके रहनेवाले है। लेकिन वावू भगवान्दास नही पकड़े जायगे।" उस समय मुझे यह पता नही था कि वावू भगवान्दास ही उस पुस्तिकाके रचयिता थे, जिसे अध्यापक कृपलानी वेच रहे थे। पुस्तक लिखनेमें लेखकने वडी सावधानीसे काम लिया था। दूसरे ही दिन उनके पुत्रका शुभ सवाद मुझे मिला कि वावूजी पकडे गये। गिरफ्तारी पर वे सतुष्ट थे। वावू भगवान्दास असहयोगी है—ऐसे असहयोगी जो मनसा, वाचा, कर्मणा हमेशा हिंसासे दूर रहते है। आप सस्कृत साहित्यके अच्छे पडित है। वडे ही धर्मनिष्ठ है। जमीदार है। श्रीमती वेसेंट यदि सेंट्रल हिंदू कालेजकी जन्मदात्री है तो वावू भगवान्दास उसके निर्माता है। अतएव उनकी गिरफ्तारी एक ऐसा वलिदान है जो ईश्वरको रुचिकर हुए बिना नही रह सकता। और वह पतित-पावनी विश्वनाथपुरी इससे अच्छा वलिदान और क्या करती? अस-

वारोके पढनेवाले लोग जानते ही होंगे कि वाबू भगवान्‌दास महासभाके द्वारा स्वराज्यकी योजना तैयार करानेका प्रयत्न कर रहे थे। उसके लिए आप स्वय भी दीर्घ परिश्रम कर रहे थे। आपने मुझे कितने ही सूचक प्रश्नोकी एक लवी सूची भेजी है, जिसपर मै इन वर्तमान घटनाओके कारण अभी तक कोई कार्रवाई नही कर सका। दगा-फसाद न होने देनेकी वे वडी चिंता रखते थे। यदि उनकी गिरफ्तारीसे भी सरकारकी हिंसा-काडको न्योता देनेकी उत्सुकताका पता न चलता हो तो मै नही कह सकता कि किस वातमे चलेगा। (हि० न०, २५ १२ २१)

: १३३ :

गोकुलभाई भट्ट

सिरोही राजपूतानेकी एक रियासत है, जिसकी आवादी १,८६,६३६ और आमदनी ६, ७०, ०००) रु० है। अखवारोमें इसकी चर्चा उस लाठी-चार्जके लिए हुई है, जो एक सभामें और कहते है कि विना किसी उत्तेजनाके किया गया। श्री गोकुलभाई भट्टसे, जो सिरोहीके ही रहनेवाले है और एक सुयोग्य अध्यापक तथा वफादार काग्रेस-कार्यकर्त्ताके रूपमें जिन्होने प्रसिद्धि पाई है, मुझे इस घटनाकी प्रामाणिक जानकारी मिली है। वह अहिंसाकी भावनामें ओतप्रोत है। हाल हीमें वह सिरोही गये है और प्रजाके लिए प्राथमिक अधिकार प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे है। (ह० से०, २३ ६ ३६)

: १३४ :

भंसाली

सुबह घूमते समय भंसालीभाईकी ही बातें होती रहीं। मेरे मनमें उनकी साधुताके प्रति बहुत मान रहा है। बापूके बाद मेरी नजरमें भंसालीभाई ही साधु हैं। बापू कहने लगे---

मैं उसे अपनेसे ऊंचा समझता हूं। तीनों काल निर्भय रहता है। यह साधुका लक्षण है। वह जो कर सकता है, मैं नहीं कर सकता।

मैंने पूछा, "भंसालीभाईको क्या लगता होगा ?" बोले,

कुछ नहीं, वह तो महाभारतको भी घोटकर पी गया है। महाराष्ट्रियोंमें धर्म-ग्रंथोंमेंसे अद्भुत नतीजे निकालनेकी विलक्षण क्षमता है। (का० क०, २४ ११.४२)

.. ..

भंसालीकी मृत्युकी खबर आवेगी तो मेरा हृदय कांप भले ही उठे, मगर खुशीसे नाचेगा भी। ऐसी संपूर्ण अहिंसक मृत्यु आजतक हुई ही नहीं है। भंसालीको मैं जानता हूं। उसके हृदयमें वैरभावका लेश भी नहीं है। हमारे लोगोंमें इतना मैल भरा है कि उसे निकालनेके लिए कइयोंको तो जल मरना होगा। (का० क०, २४ १२.४२)

: १३५ :

बड़े भाई

बड़े भाईने तो मुझपर बहुतेरी आशाएं बांध रखी थीं। उन्हें धनका, कीर्तिका और ऊंचे पदका लोभ बहुत था। उनका हृदय बादशाहके जैसा था। उदारता उड़ाऊपनतक उन्हें ले जाती। इसमें तथा उनके भोलेपनके कारण मित्र बनाते उन्हें देर न लगती। उन मित्रोंके द्वारा उन्होंने मेरे लिए मुकदमे लानेकी तजवीज कर रखी थी। उन्होंने यह भी मान लिया था कि मैं खूब रुपया कमाने लगूंगा और इस भरोसेपर उन्होंने घरका खर्च भी खूब बढ़ा लिया था। मेरे लिए वकालतका क्षेत्र तैयार करनेमें भी उन्होंने कसर न उठा रखी थी।

इधर जातिका झगड़ा अभी खड़ा ही था। उसमें दो दल हो गये थे। एक दलने मुझे तुरत जातिमें ले लिया। दूसरा न लेनेके पक्षमें अटल रहा। जातिमें लेलेनेवाले दलको संतुष्ट करनेके लिए, राजकोट पहुंचनेके पहले, भाईसाहब मुझे नासिक ले गये। वहां गंगा-स्नान कराया और राजकोटमें पहुंचते ही जाति-भोज दिया गया।

यह बात मुझे रुचिकर न हुई। बड़े भाईका मेरे प्रति अगाध प्रेम था। मेरा खयाल है कि मेरी भक्ति भी वैसी ही थी। इसलिए उनकी इच्छाको आज्ञा मानकर मैं यंत्रकी तरह बिना समझे, उसके अनुकूल होता चला गया। (आ० क०, १९२७)

• • • •

'ट्रस्टी' यों करोड़ोंकी सम्पत्ति रखते हैं, फिर भी उसकी एक पाईपर भी उनका अधिकार नहीं होता। इसी तरह मुमुक्षुको अपना आचरण रखना चाहिए—यह पाठ मैंने गीताजीसे सीखा। अपरिग्रही होनेके लिए, सम-भाव रखनेके लिए, हेतुका और हृदयका परिवर्तन आवश्यक

है, यह बात मुझे दीपकी तरह स्पष्ट दिखाई देने लगी। बस, तुरत रेवाशकर भाईको लिखा कि बीमेकी पालिसी बद कर दीजिए। कुछ रुपया वापस मिल जाय तो ठीक, नही तो खैर। बाल-बच्चो और गृहिणी की रक्षा वह ईश्वर करेगा जिसने उनको और हमको पैदा किया है। यह आशय मेरे उस पत्रका था। पिताके समान अपने बडे भाईको लिखा—"आजतक मै जो कुछ बचाता रहा आपके अर्पण करता रहा। अब मेरी आशा छोड दीजिए। अब जो-कुछ बच रहेगा वह यहीके सार्वजनिक कामोमे लगेगा।"

इस बातका औचित्य मै भाईसाहबको जल्दी न समझा सका। शुरूमें तो उन्होने बडे कडे शब्दोमें अपने प्रति मेरे धर्मका उपदेश दिया—"पिताजीसे बढकर अक्ल दिखानेकी तुम्हें जरूरत नही। क्या पिताजी अपने कुटुबका पालन-पोषण नही करते थे ? तुम्हे भी उसी तरह घरबार सम्हालना चाहिए।" आदि। मैने विनय-पूर्वक उत्तर दिया—"मै तो वही काम कर रहा हू, जो पिताजी करते थे। यदि कुटुबकी व्याख्या हम जरा व्यापक कर दें तो मेरे इस कार्यका औचित्य तुरत आपके खयालमें आ जायगा।"

अब भाईसाहबने मेरी आशा छोड दी। करीब-करीब अ-बोला ही रखा। मुझे इससे दु ख हुआ, परतु जिस बातको मैने अपना धर्म मान लिया, उसे यदि छोडता हू तो उससे भी अधिक दु ख होता था। अतएव मैने उस थोडे दु खको सहन कर लिया। फिर भी भाईसाहबके प्रति मेरी भक्ति उसी तरह निर्मल और प्रचड रही। मै जानता था कि भाईसाहबके इस दु खका मूल है उनका प्रेम-भाव। उन्हें रुपए-पैसेके सद्व्यवहारकी अधिक चाह थी।

पर अपने अतिम दिनोमें भाईसाहब मुझपर पसीज गये थे। जब वह मृत्यु-शय्यापर थे तब उन्होने मुझे सूचित कराया कि मेरा कार्य ही उचित और धर्म्य था। उनका पत्र बडा ही करुणाजनक था। यदि पिता पुत्रसे

माफी माग सकता हो तो उन्होंने उसमें मुझसे माफी मागी थी। लिखा कि मेरे लडकोंका तुम अपने ढगसे लालन-पालन और शिक्षण करना। वह मुझसे मिलनेके लिए बडे अधीर हो गये थे। मुझे तार दिया। मैंने तार द्वारा उत्तर दिया—"जरूर आजाइए।" पर हमारा मिलाप ईश्वरको मजूर न था।

अपने पुत्रोंके लिए जो इच्छा उन्होंने प्रदर्शित की थी वह भी पूरी न हुई। भाईसाहबने देशमें ही अपना शरीर छोडा था। लडकोपर उनके पूर्व-जीवनका असर पड चुका था। उनके सस्कारोमें परिवर्तन न हो पाया। मैं उन्हें अपने पास न खीच सका। (आ० क० १९२७)

: १३६ :

रामकृष्ण भांडारकर

रामकृष्ण भाडारकर मुझसे उसी तरह पेश आए, जिस तरह पिता पुत्रसे पेश आता है। मैं दोपहरके समय उनके यहा गया था। ऐसे समय भी मैं अपना काम कर रहा था, यह बात इस परिश्रमी शास्त्रज्ञको प्रिय हुई और तटस्थ अध्यक्ष बनानेके मेरे आग्रहपर ('दैट्स इट', 'दैट्स इट') 'यही ठीक है', 'यही ठीक है' उद्गार सहज ही उनके मुहसे निकल पडे।

बातचीतके अतमें उन्होंने कहा—

"तुम किसीसे भी पूछोगे तो वह कह देगा कि आजकल मैं किसी भी राजनैतिक काममें नहीं पडता हू; परतु तुमको मैं विमुख नहीं कर सकता। तुम्हारा मामला इतना मजबूत है और तुम्हारा उद्यम इतना स्तुत्य है कि मैं तुम्हारी सभामें आनेसे इन्कार नहीं कर सकता। श्रीयुत तिलक और श्रीयुत गोखलेसे तुम मिल ही लिये हो, यह अच्छा

हुआ। उनसे कहना कि दोनो पक्ष जिस सभामें मुझे बुलावेंगे, आ मैं जाऊगा और अध्यक्ष का स्थान ग्रहण कर लूंगा। समयके बारेमें मुझसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं। जो समय दोनो पक्षोंको अनुकूल होगा उसकी पाबदी मैं कर लूगा।"

यह कहकर मुझे धन्यवाद और आशीर्वाद देकर उन्होंने विदा किया। (आ० क०, १९२७)

: १३७ :

गोपीचन्द भार्गव

डॉ० गोपीचद मेरे साथी कार्यकर्ता है। मै उन्हे वहुत मानता हू। मैं वरसोसे उन्हें एक योग्य सयोजकके नाते जानता हू, जिनका पजावियोपर वडा प्रभाव है। उन्होंने हरिजन-सेवक-सघ, अखिल भारत चरखा-सघ और अखिल भारत ग्रामउद्योग-सघके लिए काफी काम किया है। मुझे यह नही सोचना चाहिए कि पूर्वी पजावका काम उनकी ताकतके वाहर है। लेकिन अगर पानीपत उनकी कार्य-कुशलताका नमूना न हो तो यह उनकी सरकारके लिए बडी बदनामीकी बात है। पहलेसे विना सूचना दिए इतने निराश्रित पानीपतमें क्यो उतारे गए? उन्हें ठहरानेके लिए वहा नाकाफी वदोवस्त क्यो है? अफसरोको पहलेसे ही यह सूचना क्यों नहीं दी जानी चाहिए कि कौन और कितने निराश्रित पानीपत भेजे जा रहे हैं? उसके साथ ही कल मुझे यह भी सूचना मिली है कि गुडगाव जिलेमें तीन लाख ऐसे मुसलमान है, जिन्होंने डरकर अपना घर-वार छोड दिया है। आम सडकके दोनो तरफ खुलेमें इस आशासे पडे है कि उन्हे अपने

औरत, बच्चे और मवेशियोंके साथ पंजाबकी कड़ी सर्दीमें ३०० मीलका रास्ता तय करना है। मैं इस बातपर विश्वास नहीं करता। मेरा खयाल है कि मुझे दोस्तोंने जो बात सुनाई है उसमें कुछ गलती है। अभी भी मैं आशा करता हूं कि यह बात गलत है या बढ़ा-चढ़ा कर कही गई है। लेकिन पानीपतमें मैंने जो कुछ देखा, उससे मेरा यह अविश्वास डिग गया है। फिर भी मुझे आशा है कि डा० गोपीचंद और उनकी केबिनेट समय रहते चेत जाएंगे और तबतक चैन नहीं लेंगे, जबतक सारे निराश्रितोंकी अच्छी देखभालका पूरा इंतजाम नहीं हो जाता। यह बंदोबस्त दूरदेशी और हद दरजेकी सावधानी से ही किया जा सकता है। (प्रा० प्र०, १०-११-४८)

: १३८ :

दो सच्चरित्र भारतवासी

मवक्किलोंकी तो मेरे आस-पास भीड़ ही लगी रहती थी। इनमेंसे लगभग सब या तो बिहार इत्यादि उत्तर तरफके या तामिल-तेलगू इत्यादि दक्षिण प्रदेशके लोग थे। वे पहली गिरमिटमें आये थे और अब मुक्त होकर स्वतंत्र पेशा कर रहे हैं।

इन लोगोंने अपने दु:खोंको मिटानेके लिए भारतीय व्यापारी वर्गसे अलग अपना एक मंडल बनाया था। उसमें कितने ही बड़े सच्चे दिलके उदारभाव रखनेवाले और सच्चरित्र भारतवासी थे। उनके अध्यक्षका नाम था श्री जैरामसिंह और अध्यक्ष न रहते हुए भी अध्यक्षके जैसे ही दूसरे सज्जन थे श्री बदरी। अब दोनों स्वर्गवासी हो चुके हैं। दोनोंकी तरफसे मुझे अतिशय सहायता मिली थी। श्री बदरीके परिचयसे मैं

बहुत ज्यादा आया था और उन्होंने सत्याग्रहमे आगे बढकर हिस्सा लिया था। इन तथा ऐसे भाइयोके द्वारा मै उत्तर-दक्षिणके बहु-सख्यक भारत-वासियोके गाढ सपर्कमे आया और मै केवल उनका वकील ही नही, बल्कि भाई बनकर रहा और उनके तीनो प्रकारके दु खोमें उनका साझी हुआ। सेठ अब्दुल्लाने मुझे 'गाधी' नामसे सबोधित करनेसे इन्कार कर दिया। और 'साहब' तो मुझे कहता और मानता ही कौन ? इसलिए उन्होंने एक बडा ही प्रिय शब्द ढूढ निकाला। मुझे वे लोग 'भाई' कहकर पुकारने लगे। यह नाम अत तक दक्षिण अफ्रीकामें चला। पर जब ये गिरमिट-मुक्त भारतीय मुझे 'भाई' कहकर बुलाते तब मुझे उसमें एक खास मिठास मालूम होती थी। (आ० क०)

: १३६ :

मजहरुलहक

मौलाना मजहरुलहक और मै एक साथ लदनमें पढते थे। उसके बाद हम बबईमें १६१५ की काग्रेसमे मिले थे। उस साल वह मुसलिम लीगके सभापति थे। उन्होंने पुरानी पहचान निकालकर जब कभी मै पटना आऊ तो अपने यहा ठहरनेका निमत्रण दिया था। इस निमत्रणके आधार-पर मैंने उन्हे चिट्ठी लिखी और अपने कामका परिचय भी दिया। वह तुरत अपनी मोटर लेकर आए और मुझसे अपने यहा चलनेका आग्रह करने लगे। इसके लिए मैंने उनको धन्यवाद दिया और कहा—"मुझे अपने जानेके स्थानपर पहली ट्रेनसे रवाना कर दीजिए। रेलवे गाइडसे मुकामका मुझे कुछ पता नही लग सकता।" उन्होंने राजकुमार शुक्लके साथ बात की और कहा कि पहले मुजफ्फरपुर जाना चाहिए। उसी दिन

शामको मुजफ्फरपुरकी गाडी जाती थी। उसमें उन्होंने मुझे रवाना कर दिया। (आ० क०, १९२७)

. .. ..

मौलाना मजहरुलहकने मेरे सहायकके रूपमें अपना हक लिखवा रखा था और महीनेमें एक-दो वार आकर मुझसे मिल जाया करते। उस समयके उनके ठाट-वाट और शानमें तथा आजकी सादगीमें जमीन-आसमानका अंतर है। वह हम लोगोंमें आकर अपने हृदयको तो मिला जाते परंतु अपने साहवी ठाट-वाटके कारण वाहरके लोगोंको वह हमसे भिन्न मालूम होते थे। (आ० क०)

: १४० :

किशोरलाल मशरूवाला

वे एक पुराने कार्यकर्त्ता हैं और अभी-अभी तक गुजरात विद्यापीठके महामात्र (रजिस्ट्रार) थे। किंतु वीमारीके कारण उन्हें उस पदका त्याग करना पडा है। भारतमें चुप-चाप काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओंमें से वे एक अत्यत विचारशील पुरुष हैं। हरएक शब्दको वे तौल-तौलकर लिखते और वोलते भी हैं। (हि० न०, २६ ५ २७)

... .

किशोरलाल मशरूवाला हमारे विरले कार्यकर्त्ताओंमेंसे एक है। काम करते हुए वह कभी थकते नहीं। वह अत्यत जागरूक रहते हैं। उनकी जाग्रत दृष्टिसे व्योरेकी कोई भी वात नही छूट पाती। वह एक तत्ववेत्ता हैं और गुजरातीके एक लोकप्रिय लेखक। गुजरातीके वह जैसे विद्वान है वैसे ही मराठीके भी हैं। वह जातीय, साप्रदायिक या

प्रातीय अहकार या दुराग्रहसे बिलकुल मुक्त हैं। वह एक स्वतन्त्र चितक है। वह राजनीतिज्ञ नही, एक पैदाइशी समाज-सुधारक हैं। समस्त धर्मोंके विद्यार्थी हैं। उनमें धार्मिक कट्टरताका कोई चिह्न नही। वह जिम्मेदारी ओढने और विज्ञापनवाजीसे भागते हैं। इतनेपर भी कोई ऐसा आदमी न मिलेगा जो जिम्मेदारी ले लेनेपर उसे उनकी अपेक्षा अधिक पूर्णताके साथ पूरा कर सके। वडी मुश्किलोसे मैं उन्हें गाधी-सेवा-सघ-का अध्यक्ष वननेको राजी कर सका था। उनकी परिश्रमशीलता और सरल श्रद्धाके कारण ही सघको इतनी महत्ता और उपयोगिता प्राप्त हुई। उन्होने अपने स्वास्थ्यके प्रति पूरी लापरवाही (मैं सार्वजनिक कार्यकर्तामे इसे कोई गुण नही, वल्कि अवगुण मानता हू) रखकर सदा अपना द्वार सत्यशोधकोंके लिए खुला रखा। कोई आश्चर्य नही कि इस सबसे वह सघके एक अभिन्न अग बन गये। असीम सावधानीके साथ उन्होने सघ-के लिए एक ऐसा विधान बनाया जो ऐसी किसी भी सस्थाकेलिए नमूनेका काम दे सकता है। (ह० से०, २ ३ ४०)

• • •

श्री किशोरलालने एक स्वतन्त्र ग्रंथ लिखा है। अगर उनका शरीर काम दे तो वे उस तरहकी और चीज लिख सकते हैं। उनके ग्रथको शास्त्र कहना शायद ठीक न हो, तो भी वह शास्त्रके नजदीककी चीज है, ऐसा तो माना जा सकता है। लेकिन इस वक्त जैसी उनकी तदुरुस्ती है, उसे देखते हुए मैं मानता हू कि वे इस बोझको उठा नही सकेंगे। मैं तो उठानेको कहूगा ही नही। वे भी अपने समयको व्यर्थ नही जाने देते। अनेक मित्रोके जीवनकी समस्याओको सुलझानेमें उनका बहुत-सा समय वीत जाता है और दिनडूबे वे लस्त होकर पड जाते है। (ह० से०, ३.३.४६)

: १४१ :

जमशेद महता

जमशेद महताको पवित्र व्यक्ति मानता हू। (म० डा०, १० १० ३२)

: १४२ :

व्रजलाल महता

ब्रह्मदेशमे धनोपार्जनके लिए जाकर रहनेवाले अनेक हिन्दुस्तानी है। उनमेसे कुछने धधेके साथ सेवाको भी स्थान दिया है। उनमें से एक व्रजलाल महता थे। कुछ ही दिन पहले उनका स्वर्गवास हो गया। वह महासभाका काम करते थे, पर हमें उसका पता नही। उनके पास दो पैसे थे। वह हरएक फडमें कुछ-न-कुछ देते और दूसरोसे दिलवाते। लेकिन इसके लिए वह सम्मानकी इच्छा नही रखते थे। दरिद्रनारायणके वह भक्त थे। खादीपर उनकी पूरी श्रद्धा थी और चर्खासघके वह प्रतिनिधि थे। जिसे सम्मानकी, पुरस्कारकी, इच्छा नही, जो सेवाके लिए ही सेवा करता है, वह वदनीय है। भाई व्रजलाल महता ऐसोमे ही थे। उनके कुटुबको धन्यवाद। (हि० न०, ६ ८ ३१)

: १४३ :

दाऊद महमद

पहले सेठ दाऊद महमदका परिचय सुना दू। वह नेटाल इडियन काग्रेसके अध्यक्ष और दक्षिण अफ्रीकामें आए हुए व्यापारियोमें सबसे पुराने थे। वह सूरती सुन्नत जमातके बोहरा थे। बडे ही चतुर पुरुष। इस बातमें उनकी बराबरी करनेवाले बहुत ही थोडे भारतीय मैंने दक्षिण अफ्रीकामें देखे। उनकी ग्राहकशक्ति बडी तेज थी। अक्षर-ज्ञान तो मामूली-सा था; पर अनुभवसे वह अग्रेजी और डच भी अच्छी तरह बोल सकते थे। अग्रेजी व्यापारियोके साथ अपना काम चलानेमें उन्हें जरा भी कठिनाई नही पडती थी। उनकी दानशीलता प्रसिद्ध थी। नित्य पचास महमान-से कम तो कभी उनके यहा होते ही नही थे। कौमी चदोमें उनका नाम अग्रसरोमे ही रहता। उनके एक लडका था। लडका क्या था, एक अमूल्य रत्न था। चारित्र्यमे उनसे भी श्रेष्ठ और हृदय स्फटिकके समान। उसके चारित्र्य वेगको दाऊद सेठने कभी नही रोका। दाऊद सेठ अपने लडकेकी पूजा करते थे, यह अत्युक्ति नही, यथार्थ सत्य है। वह चाहते थे कि उनका एक भी ऐब हसनको नही लगने पावे। इगलैड भेजकर उन्होने उसे बढिया शिक्षा दी। पर दुर्भाग्यसे दाऊद सेठ उस लडकेसे भरजवानीमें हाथ धो बैठे। हसनको क्षयने घेरा और उसका प्राण हरण कर लिया। वह घाव कभी नही भरा। हसनके साथ-साथ भारतीय जनताकी बडी-बडी आशाए मिट्टीमे मिल गईं। हसनके लिए तो हिंदू और मुसलमान दोनो अपनी दाहिनी-बाईं आखोके समान थे। उसका सत्य तेजस्वी था। आज दाऊद सेठ भी नही रहे! (द० अ० स०, पृष्ठ ४२)

: १४४ :

बाई फातमा महेताब

न्यूकासलमें द्राविड बहनोको जेल जाते देखकर बाई फातमा महेताब-से न रहा गया। वह भी अपनी मा और सात वर्षके बच्चेको लेकर जेल जानेके लिए निकल पडी। मा-बेटी तो गिरफ्तार हो गई, पर सरकारने बच्चेको अदर लेनेसे साफ इन्कार कर दिया। पुलिसने बाई फातमाकी उंगलियोकी छाप लेनेकी खूब कोशिश की, पर वे निडर रही और आखीरतक उन्होने पुलिसको अपनी उगलियोकी छाप नही दी। (द० अ० स०, पृष्ठ १५३)

: १४५ :

लुई माउंटबेटन

माउटबेटन यदि गवर्नर-जनरल बनते है तो वे हिंदुस्तानके खिदमतगार या नौकर होकर ही बनते हैं। आप कह सकते हैं कि यह तो बच्चोको फुसलानेकी-सी बात हुई। जो माउटबेटन इगलैडके शाही घरानेसे सबध रखते है वह क्या तुम्हारी नौकरी करनेवाले है, आप तो धोखा देते है। मुझे आपको धोखा देकर माउटबेटनसे कोई इनाम नही चाहिए। मै तो आजतक उनसे लडता आया हू तो आज उनकी खुशामद करनेकी मुझे क्या जरूरत पडी है? आप शायद यह कहेंगे कि काग्रेसी नेता उनके फुसलावेमें आ गए है। इसका मतलब यह हुआ कि जवाहरलालजी, सरदार और राजाजी ऐसे पागल है कि

अपना सब नूर गंवाकर बैठे है, वे खुशामदी बन गये हैं। मै वहातक नही जा सकता। यह तो सही है कि मै जो चाहता था वह नही बना और बहुत दफा मै यह कह भी चुका हू। मगर मै हर चीजका सीधा मतलब निकालता हू। हम लोग माउटबेटनको गवर्नर-जनरल बनाते है, इसीलिए तो वह बनते है। यदि हम न चाहते तो वह नहीं बन सकते। परन्तु जिन्ना साहबने यह सोचा होगा कि सारी दुनिया कैसे मानेगी कि मैने पाकिस्तान ले लिया, इसलिए मै क्यो न गवर्नर-जनरल बनू। हमें इसपर ईर्ष्या क्या करना और गुस्सा भी क्या करना! उनको गवर्नर-जनरल बनकर यह सारी दुनियाको बताना है कि इस्लाम क्या चीज है। यह देखना है कि वह वहाके खादिम बनते है या बादशाह।

अखबारोसे मुझे मालूम हुआ कि पहले हिंदुस्तान और पाकिस्तान—दोनोके लिए एक ही गवर्नर-जनरल रखना तय हुआ था। मगर बादमें जिन्ना साहब मुकर गये। तब कौन उन्हे पाकिस्तानका गवर्नर-जनरल बननेसे रोकनेवाला था? मेरी निगाहमे उन्होने ठीक नही किया। एक दफा जब उन्होने कहा था तो माउटबेटनको बनने देते और पीछे यदि कोई गोलमाल होता तो उनको हटा देते। परन्तु अब इस्लामकी परीक्षा जिन्ना साहबके मार्फत होनेवाली है। सारी दुनियाके सामने वे पाकिस्तान स्टेटके गवर्नर-जनरल बन रहे है। अत पाकिस्तानकी खूबिया ही देखने-मे आनी चाहिए। काग्रेस तो हमेशा अग्रेजोसे लडती आई है। जवाहर-लालजी तो सीधे आदमी है, मगर सरदार तो हमेशा लडनेवाले है। वे तो मेरे साथ लडते थे कि तू इनका एतबार करता है। जब वही इनके दावमें आ गए तो आपकी तथा हमारी बात ही क्या है। जब वे यह कबूल करते है कि वाइसराय गवर्नर-जनरल बनकर रहे तो हमें कबूल करनेमें क्या सकोच है? हम देखते है कि वे हिंदुस्तानके खादिम बनकर गवर्नर-जनरल हो रहे है या दगा देनेके लिए। एक नया अनुभव हमको मिलेगा। अत इसमें दूरदेशी है और फिर हम कुछ खोते तो है ही नही। आखिर

डोमीनियन स्टेट्स भी हमने उनके कहने पर स्वीकार किया है। वे एक बहुत बडे एडमिरल हैं, बडी लडाई लडनेवाले हैं। उनको हम रखें तो सही। यदि कोई बुराई निकली तो हम उनसे लड लेंगे।

× × ×

जब मैं वाइसरायसे मिलने गया था तब उन्होंने मुझसे कहा कि जिस लडके से एलिजाबेथकी सगाई हुई वह मेरे लडके-जैसा ही है। आशा है, कल आप आशीर्वादके तौरपर कुछ शब्द लिखेंगे। सो परसो जब वाइसरायकी लडकी यहा आई तब मैंने उसके हाथ मुबारकबादीका एक खत लिखकर भेज दिया। कितनी सादी लडकी है वह। प्रार्थनाके समय मैंने उसे कुर्सीपर बैठनेके लिए कहा, मगर कुर्सीपर न बैठकर वह हमारे साथ ही दरीपर बैठ गई। और फिर राजकुमारी अमृतकौरने तो आज मुझे यह भी बताया कि जिस लडकीकी सगाई हुई है वही इगलैडकी रानी बनेगी, क्योंकि बादशाहके कोई लडका नहीं है। वाइसरायके भी कोई लडका नहीं है। खैर, वाइसराय अगर बुरा होता तो मै आशीर्वाद लिखकर क्यो भेजता ? मै उसे बुरा नहीं मानता। उनकी जगह अगर जवाहरलालजी या सरदार पटेल गवर्नर-जनरल बनकर बैठ जाते तो उन्होंने बहुत खतरनाक काम किया होता। इसके अलावा गवर्नर-जनरलके हाथमें किसी प्रकारकी सत्ता नही होगी। जवाहरलालजी या उनकी केबिनट जो कहेगी वही उसको करना होगा। उसको तो केवल अपने दस्तखत देने होगे।

मगर लार्ड माउंटबेटन एक बडा आदमी है और अंग्रेज शैतानियत ही कर सकते है, ऐसा हम लोगोका खयाल बन गया है। तो माउंटबेटनको भी अपनी शराफत और इंसाफ-पसंदीका सबूत देना होगा, और मुझे विश्वास है कि वह इन्साफ करनेके लिए ही यहा आया है। (प्रा० प्र०, १२७४७)

: १४६ :

लेडी माउंटबेटन

लेडी माउंटबेटन मुझसे मिलने आई थी'। वह दयाकी देवी बन गई है। वह हमेशा दोनो उपनिवेशोका दौरा किया करती है, अलग-अलग छावनियोमें निराश्रितोंसे मिलती है, बीमारों और दु खियोको देखती हैं और इस तरह जितना भी ढाढम उन्हें बधा सकती है, बधानेकी कोशिश करती है। (प्रा० प्र०, ८.११.४७)

: १४७ :

माता-पिता

मेरे पिताजी कुटुब-प्रेमी, सत्यप्रिय, शूर और उदार परतु साथ ही क्रोधी थे। मेरा खयाल है, कुछ विषयासक्त भी रहे होंगे। उनका अंतिम. विवाह चालीस वर्षकी अवस्थाके बाद हुआ था। वह रिश्वतसे सदा दूर रहते थे और इसी कारण अच्छा न्याय करते थे, ऐसी प्रसिद्धि उनकी हमारे कुटुबमे तथा बाहर भी थी। वह राज्यके बडे वफादार थे। एक बार असिस्टेट पोलिटिकल एजेंटने राजकोटके ठाकुरसाहबसे अपमान-जनक शब्द कहे तो उन्होने उसका सामना किया। साहब बिगडे और कबा गाधीजीसे कहा, माफी मागो। उन्होने साफ इन्कार कर दिया। इससे कुछ घटेके लिए उन्हें हवालातमे भी रहना पडा। पर वह टस-से-मस न हुए। तब साहबको उन्हें छोड़ देनेका हुक्म देना पडा।

पिताजीको धन जोडनका लोभ न था। इससे हम भाइयोके लिए वह बहुत थोडी संपत्ति छोड गए थे।

पिताजीने शिक्षा केवल अनुभव द्वारा प्राप्त की थी। आजकी अपर प्राइमरीके बराबर उनकी पढाई हुई थी। इतिहास, भूगोल बिलकुल नहीं पढे थे। फिर भी व्यावहारिक ज्ञान इतने ऊचे दर्जेका था कि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रश्नोको हल करनेमें अथवा हजार आदमियोसे काम लेनेमें उन्हे कठिनाई न होती थी। धार्मिक शिक्षा नहींके बराबर हुई थी। परतु मदिरोमें जानेसे, कथा-पुराण सुनने से, जो धर्मज्ञान असख्य हिंदुओको सहज ही मिलता रहता है, वह उन्हे था। अपने अतिम दिनोमें एक विद्वान् ब्राह्मणकी सलाहसे, जोकि हमारे कुटुबके मित्र थे, उन्होने गीता पाठ शुरू किया था, और नित्य कुछ श्लोक पूजाके समय ऊचे स्वरसे पाठ किया करते थे।

माताजी साध्वी स्त्री थी, ऐसी छाप मेरे दिलपर पडी है। वह बहुत भावुक थी। पूजा-पाठ किए बिना कभी भोजन न करती, हमेशा हवेली—वैष्णव मदिर—जाया करती। जबसे मैंने होश सभाला, मुझे याद नहीं पडता कि उन्होने कभी चातुर्मास छोडा हो। कठिन-से-कठिन व्रत वह लिया करती और उन्हें निर्विघ्न पूरा करती। बीमार पड जानेपर भी वह व्रत न छोडती। ऐसा एक समय मुझे याद है, जब उन्होने चाद्रायणव्रत किया था। बीचमें बीमार पड गई, पर व्रत न छोडा। चातुर्मासमें एक बार भोजन करना तो उनके लिए मामूली बात थी। इतनेसे सतोष न मानकर एक बार चातुर्मासमें उन्होने हर तीसरे दिन उपवास किया। एक साथ दो-तीन उपवास तो उनके लिए एक मामूली बात थी। एक चातुर्मासमें उन्होने ऐसा व्रत लिया कि सूर्यनारायणके दर्शन होनेपर ही भोजन किया जाय। इस चौमासेमे हम लडके लोग आसमानकी तरफ देखा करते कि कब सूरज दिखाई पडे और कब मा खाना खाय। सब लोग जानते है कि चौमासेमें बहुत बार सूर्य-दर्शन

मुश्किलसे होते है। मुझे ऐसे दिन याद है, जबकि हमने सूर्यको निकला हुआ देखकर पुकारा है—"मा-मा, वह सूरज निकला।" और जबतक मा जल्दी-जल्दी दौडकर आती है, सूरज छिप जाता था। मा यह कहती हुई वापस जाती कि "खैर, कोई बात नही, ईश्वर नही चाहता कि आज खाना मिले," और अपने कामोमे मशगूल हो जाती।

माताजी व्यवहार-कुशल थी। राजदरबारकी सब बातें जानती थी। रनवासमें उनकी बुद्धिमत्ता ठीक-ठीक आकी जाती थी। जब मैं बच्चा था, मुझे दरबारगढमें कभी-कभी वह साथ ले जातीं और 'बा-मा साहेब' (ठाकुर साहबकी विधवा माता) के साथ उनके कितने ही सवाद मुझे अब भी याद है। (आ० क०, १९२७)

• • •

सिगरेटके टुकडे चुराने तथा उसके लिए नौकरके पैसे चुरानेसे बढ कर चोरीका एक दोष मुझसे हुआ है और उसे मैं इससे ज्यादा गभीर समझता हू। बीडीका चस्का तब लगा जब मेरी उम्र १२-१३ सालकी होगी। शायद इससे भी कम हो। दूसरी चोरीके समय १५ वर्षकी रही होगी। यह चोरी थी मेरे मासाहारी भाईके सोनेके कडेके टुकडेकी। उन्होने २५) के लगभग कर्जा कर रखा था। हम दोनो भाई इस सोचमें पडे कि यह चुकावें किस तरह। मेरे भाईके हाथमे सोनेका एक ठोस कडा था। उसमेंसे एक तोला काटना कठिन न था।

कडा कटा। कर्ज चुका, पर मेरे लिए यह घटना असह्य हो गई। आगे-से कदापि चोरी न करनेका मैंने निश्चय किया। मनमें आया कि पिता-जीके सामने जाकर चोरी कबूल करलू। पर उनके सामने मुह खुलना मुश्किल था। यह डर तो न था कि पिताजी खुद मुझे पीटने लगेंगे, क्योकि मुझे नही याद पडता कि उन्होने हम भाइयोमेंसे कभी किसीको पीटा हो। पर यह खटका जरूर था कि वह खुद बड़ा सताप करेंगे, शायद अपना सिर भी पीट लें। तथापि मैंने मनमें कहा—"यह जोखिम उठाकर भी अपनी

बुराई कबूल कर लेनी चाहिए, इसके बिना शुद्धि नहीं हो सकती।"

अंतमें यह निश्चय किया कि चिट्ठी लिखकर अपना दोष स्वीकार कर लूं। मैंने चिट्ठी लिखकर खुद ही उन्हें दी। चिट्ठीमें सारा दोष कबूल किया था और उसके लिए सजा चाही थी। आजिजीके साथ यह प्रार्थना की थी कि आप किसी तरह अपनेको दुःखी न बनावें और प्रतिज्ञा की थी कि आगे मैं कभी ऐसा न करूंगा।

पिताजीको चिट्ठी देते हुए मेरे हाथ कांप रहे थे। उस समय वह भगंदरकी बीमारीसे पीड़ित थे। अतः खटियाके बजाय लकड़ीके तख्तों-पर उनका बिछौना रहता था। उनके सामने जाकर बैठ गया।

उन्होंने चिट्ठी पढ़ी। आंखोंसे मोतीके बूंद टपकने लगे। चिट्ठी भीग गई। थोड़ी देरके लिए उन्होंने आंखें मूंद ली। चिट्ठी फाड़ डाली। चिट्ठी पढ़नेको जो वह उठ बैठे थे सो फिर लेट गए।

मैं भी रोया। पिताजीके दुःखको अनुभव किया। यदि मैं चितेरा होता तो आज भी उस चित्रको हूबहू खींच सकता। मेरी आंखोंके सामने आज भी वह दृश्य ज्यों-का-त्यों दिखाई दे रहा है।

इस मोती-बिंदुके प्रेमबाणने मुझे बींध डाला। मैं शुद्ध हो गया। इस प्रेमको तो वही जान सकता है, जिसे उसका अनुभव हुआ है—

रामबाण वाग्यां रे होय ते जाणे[1]

मेरे लिए यह अहिंसाका पदार्थ-पाठ था। उस समय तो मुझे इसमें पितृ-वात्सल्यसे अधिक कुछ न दिखाई दिया; पर आज मैं इसे शुद्ध अहिंसा-के नामसे पहचान सका हूं। ऐसी अहिंसा जब व्यापक रूप ग्रहण करती है तब उसके स्पर्शसे कौन अलिप्त रह सकता है? ऐसी व्यापक अहिंसाके बलको नापना असंभव है।

ऐसी शांतिमय क्षमा पिताजीके स्वभावके प्रतिकूल थी। मैंने तो यह

---

[1]प्रेम-बाणसे जो बिंधा हो, वही उसके प्रभावको जानता है—अनु०

अदाज किया था कि वह गुस्सा होंगे, सख्त-सुस्त कहेंगे, शायद अपना सिर भी पीट लें। पर उन्होंने तो असीम शातिका परिचय दिया। मैं मानता हू कि यह अपने दोषको शुद्ध हृदयसे मजूर कर लेनेका परिणाम था।

जो मनुष्य अधिकारी व्यक्तिके सामने स्वेच्छापूर्वक अपने दोष शुद्ध हृदयसे कह देता है और फिर कभी न करनेकी प्रतिज्ञा करता है, वह मानों शुद्धतम प्रायश्चित्त करता है। मैं जानता हू कि मेरी इस दोष-स्वीकृतिमे पिताजी मेरे सबधमें निशक हो गये और उनका महाप्रेम मेरे प्रति और भी बढ गया। (आ० क०, १६२७)

• •

मुझे तो अपनी माताकी गोदमें ही अपना धर्म सिखाया गया था। मेरी माता तो विना पढ़ी-लिखी थी। अपने दस्तखत भी नही कर सकती थी। छोटा-सा नाम था और वह भी लिखना नही सीखा था। हमको तो वह पढ़नेके लिए स्कूल भेज देती थी और खुद पढी नही थी। उन दिनो शिक्षक रखकर कोई पढता नही था और यह भी काठियावाड-जैसे जगली प्रदेशमें। यह मैं ७० साल पहलेकी बात करता हू। पिताजी एक दीवान तो थे मगर उस जमानेमें दीवान कोई बहुत अग्रेजी पढा-लिखा थोडे ही होता था। वे तो एक अगरखा पहनते थे और पावोंमे सादी जूतिया होती थी। पतलूनका तो नाम भी नही जानते थे। परतु इस हालतमें भी मेरी मा मुझे यह सिखाती थी कि वेटा, तुझे रामनाम लेना चाहिए। वह मेरा धर्म जानती थी। (प्रा० प्र०, २८ ६ ४७)

• • • • • •

जब हम बच्चे थे तब मेरी मा कहती थी कि नवरात्रिको खाना नही खाना चाहिए। अगर खाना ही है तो फल खाओ, ज्यादा-से-ज्यादा दूध पियो; लेकिन अनाज न खाओ। अगर सचमुच पूरा-का-पूरा उपवास करो तो सबसे अच्छा है। मेरी मा तो बड़ी उपवास करनेवाली थी, जिसका मैं तो कोई मुकाबला नही कर सकता था। मेरे बडे भाई तो मुकावला

कर ही नही सकते थे—मैं थोडा-सा मुकाबला करता था। लेकिन उसमें उपवास करनेकी जो शक्ति थी उसके सामने मैं एक खिलौना हू, बच्चा हूं। (प्रा० प्र०, २२.१०.४७)

: १४८ :

दो मातायें

इस समय हड़ताल पूरे जोरमें थी। पुरुषोकी तरह उसमें स्त्रिया भी शामिल होती जा रही थी। उनमें दो माताए अपने बच्चोको साथमें लिए हुए थी। एक बच्चेको कूचमें जाडा हो गया और वह मृत्युकी गोदमें जा सोया। दूसरीका बालक एक नाला पार करते हुए गोदमेंसे पानीमें गिरकर डूब गया। पर माता निराश नही हुई। दोनोने अपनी कूचको उसी प्रकार शुरू रक्खा। एक ने कहा

"हम मरेहुओंका शोक करके क्या करेंगी? इससे वे कहीं लौटकर थोड़े ही आ सकते है! हमारा धर्म तो है जीवितोंकी सेवा करना।"

उस शात वीरताके, ऐसी असीम आस्तिकताके और अगाध ज्ञानके कई उदाहरण मैंने उन गरीबोमें देखे। (द० अ० स०, पृष्ठ १५३-४)

: १४६ :

वी० पी० माधवराव

उस दिन बगलोरमे ८५ वर्षकी अवस्थामे श्री वी० पी० माधवराव-का स्वर्गवास हो गया। मै दिवगत आत्माके शोकाकुल परिवारके साथ सादर समवेदना प्रकट करता हू। श्री माधवराव त्रावणकोर, बडौदा और मैसूर राज्यके दीवान रह चुके थे। अवकाश ग्रहण करनेके बाद वह अपना समय समाज-सेवामे लगाया करते थे। यद्यपि वह इतने वृद्ध हो गये थे तो भी स्थानीय हरिजन-सेवक-सघका अध्यक्षपद उन्होने सहर्ष स्वीकार कर लिया था। ईश्वर उनकी स्वर्गीय आत्माको शाश्वत शाति प्रदान करे। (ह० से०, २१ १२ ३४)

: १५० :

गोविन्द मालवीय

पडित मदनमोहन मालवीयजीके सबसे छोटे पुत्र गोविंद तथा उनके भतीजे कृष्णकात मालवीय एक बार पकडे गए, सजा पाई और छोड दिये गए। व्याख्यान देनेके कारण अब दुबारा गिरफ्तार किये गए है और उन्हे डेढ़ वर्षकी कठोर कैदकी सजा दी गई है। इसे मै भारतवर्षका सद्भाग्य मानता हू। श्रीमालवीयजीके पुत्रका असहयोगके कारण जेल जाना तो हमे अपने प्राचीन धर्मकी याद दिलाता है। श्रीगोविंदजीने मालवीयजीसे आज्ञा प्राप्त करनेमें किसी बातकी कसर नही रक्खी। जहा-तक उनसे कहा गया तहातक उन्होने अपने पूज्य पिताजीकी इच्छाका

आदर किया। पिताने भी पुत्रको पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी थी। जब प० जवाहरलाल नेहरू आदिके पकडे जानेपर श्रीगोविंदसे न रहा गया तब उन्होंने अपने पिताको एक बडा ही विनयपूर्ण पत्र लिखा और आप रणांगणमें कूद पडे। मैं जानता हू कि गोविंदको पितृभक्तिमे जरा भी कमी नही हुई। मुझे दृढ विश्वास है कि पडितजीके दिलमे भी गोविंदकी इस कृतिके विषयमें जरा भी रोष नही है। इन पिता-पुत्रका सबध ऐसा ही मीठा रहा है और रहेगा। इस प्रकार इस स्वराज्य-यज्ञमे सब लोग अपनी अपनी अतरात्माकी पुकारके अनुसार काम कर रहे है और हम पिता-पुत्रको जुदा-जुदा मैदानमे देख रहे है। ये सब धर्मजागृतिके, स्वराज्यके ही चिन्ह है। (हि० न०, ८ १ २७)

: १५१ :

मदनमोहन मालवीय

प० मदनमोहन मालवीयका नाम तो जनतापर जादू कर देता है। देशसेवामें जितना आत्मत्याग तथा परिश्रम पडितजीने किया है वह सब जानते है। (१९२० की विशेष काग्रेसके एक भाषणका अश—१५ ९ २०)

• • • •

इसी समय मुझे बनारसकी घटनाका भी स्मरण आ गया है। पडित मदनमोहन मालवीय पर जो कटाक्ष किया जा रहा है उससे जनताकी अवस्थाका पता चलता है। यदि इस देशमें किसीका स्वप्नमें भी अनादर नहीं होना चाहिए तो वे पडितजी है। पजाबकी जो सेवाए उन्होंने की है वह अभी ताजी है। यह केवल उन्हीके परिश्रमका फल है कि काशी विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई है। उनकी देशभक्ति भी किसीसे कम नही

है । वे इतने सज्जन है कि उनसे भूल हो ही नही सकती । यदि उनकी समझमें हम लोगोकी बातें नही आ रही है और वे अपने आदर्शको छोडकर हम लोगोके दलमें नही शामिल हो रहे है तो इसे हम देशका दुर्भाग्य कहेंगे, इसमें उनका कोई दोष नही है । उनका जिस तरहसे अपमान किया गया है उसे पढकर हार्दिक दुख होता है । यदि सस्कृतके विद्यार्थी अथवा सन्यासी छात्रोने धरना देकर मार्गमें बाधा डालना उचित समझा था तो पडितजीका भी यह कर्तव्य था कि वे उस मामलेमे हस्तक्षेप करते और सहयोगी विद्यार्थियोके लिए मार्ग दिलवाते । यदि पुलिसने प्रधान कार्य-कार्ताओको गिरफ्तार कर लिया तो उसने कोई बुराई नही की । उसकी कार्यवाई सर्वथा उचित थी । (य० इ०, १६ ३ २१)

• •

यह असहयोग-सग्राम अपने ढगका निराला ही है । कितने ही परि-वारोमें इसके बदौलत मतभेद और कृति-भेद उत्पन्न हो गया है । यह इसका सबसे अद्भुत प्रभाव है । और तिसमें भी मालवीय-परिवारमें इसने जो द्विविधा-भाव उत्पन्न कर दिया है वह तो विशेष रूपसे उल्लेखयोग्य है । मेरी रायमें तो यह भारतवासियोके लिए सहिष्णुता और सविनय कानून-भगका खासा वस्तु-पाठ ही है । श्री मालवीयजीकी सहिष्णुता तो वास्तव-में अनुपम है । मै इस बातको जानता हू कि वे जेलको निमत्रण देनेके खिलाफ है । मै यह भी जानता हू कि यदि वे उसके कायल होते तो वे ऐसे आदमी नही है जो उससे दुम दबाते । और जब उनके दुखकी मात्रा हद दर्जे तक पहुच जायगी और जबकि मेरी तरह उनका भी विश्वास ब्रिटिश न्यायसे पूरा-पूरा उठ जायगा तब यदि वे जेलको निमत्रण देनेमें सबसे आगे बढ जाय तो मुझे तनिक भी आश्चर्य न होगा । परतु यद्यपि वे आज स्वय सविनय कानून भगके विरुद्ध है तथापि उन्होने कभी उन लोगोके भी सकल्पोमें हस्तक्षेप नही किया जो उनके आत्मीय है और जिन पर अपने प्रेम अथवा बडे-बूढे होने के कारण उनकी अदम्य सत्ता

है। वल्कि इसके विपरीत उन्होने अपने पुत्रोको अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार वरतनेकी पूरी आजादी दे दी है। गोविंदके सविनय कानून भगका उदाहरण मेरी दृष्टिमे एक सग्रहणीय रत्नके सदृश है। पडितजीने अपने मृदुल मधुर ढगसे अपने उस वीर पुत्रको इस मार्गसे हटानेका वहुत-कुछ प्रयत्न किया। गोविंदने भी अततक अपने पूज्य पिताकी इच्छाके अनुसार चलनेका भरसक प्रयत्न किया। उसने ईश्वरसे प्रार्थना की कि मुझे मार्ग वता। वह परस्पर विरुद्ध कर्तव्योकी कैंचीमे फस गया। नेहरू-परिवारकी गिरफ्तारीका गोविंदपर वडा असर हुआ और अपने विशाल हृदय पिताजी की आशीष प्राप्त करके उसने इस रणक्षेत्रमे कूद पडनेका निश्चय किया। जेलोंमे भी गोविंदसे वढकर हर्ष-पूर्ण हृदय शायद किसीका न देखा होगा। यह साहसके साथ कहा जा सकता है कि अपनी इस सविनय कानून भगकी कृतिके द्वारा गोविंदने अपने देशकी तरह अपने पूज्य पिताजीके प्रति भी अपनी कर्तव्य-परायणता सिद्ध की है। वालकोंके कर्तव्य-परायण सविनय कानून-भगमे गोविंदकी यह कृति हमारे समयके लिए एक नमूना है। मुझे यकीन है कि इससे पिता-पुत्रके वीच किसी तरहकी अनवन नही है। वल्कि शायद मालवीयजी, गोविन्दके जेलको स्वीकार करनेके पहलेकी अपेक्षा, अव उसके विपयमे अधिक अभिमान रखते होगे। ऐसे ही सत्ययुक्त कार्योके द्वारा मुझे इस युद्धकी धार्मिक प्रकृतिका प्रमाण मिलता है। (हि० न०, १५ १ २२)

.. ..

मुझे पडित मालवीयके वारेमे चेतावनी दी गई है। उनपर यह इल्जाम है कि उनकी वातें वडी गहरी छुपी हुई होती है। कहा जाता है कि वे मुसलमानोके शुभचिंतक नही है, यहातक कि वे मेरे पदसे ईर्ष्या करनेवाले वताए जाते है, जवसे १९१५ में हिंदुस्तान आया तवसे मेरा उनके साथ वहुत समागम है और मै उन्हें अच्छी तरह जानता हू। मेरा उनके साथ गहरा परिचय रहता है। उन्हें मै हिंदू-ससारके श्रेष्ठ

व्यक्तियोमें मानता हू । कट्टर और पुराने खयालातके होते हुए भी वडे उदार विचार रखते हैं । वे मुसलनमानोके दुश्मन नही हैं । उनका किसी-से ईर्ष्या रखना असभव है । उनकी उदारता ऐसी है कि उसमें उनके दुश्मनोके लिए भी जगह है । उन्हें कभी शासनकी चाह न रही और जो शासन आज उनके पास है वह उनकी मातृभूमिकी आजतककी लवी और अखड सेवाका फल है । ऐसी सेवाका दावा हममेसे वहुत कम लोग कर सकते है । उनकी और मेरी विशेषता अलग-अलग है, लेकिन हम दोनो एक दूसरेको सगे भाई-सा प्यार करते हैं । मेरे और उनके बीच कभी जरा विगाड़ न हुआ । हमारे रास्ते जुदे-जुदे हैं । इसलिए हमारे बीच स्पर्धा और डाहका सवाल पैदा ही नही हो सकता (हि० न०, १ ६ २४)

... .

एक पाठक पूछते हैं

"अपने करांचीमें विषय-समितिको दक्षिण भारतके सदस्योको कार्य-समितिमें न रखनेका कारण तो समझाया, पर यह नहीं बताया कि मालवीयजीको क्यो अलग रक्खा ।"

वात इतनी स्पष्ट थी कि किसीने कुछ पूछा ही नही । मालवीयजीका अपमान करनेका तो इसमे कोई सवाल हो नहीं सकता । वह अपमानसे परे है। कोई भी सस्था उन्हे अपना सदस्य वनाकर उनकी स्थिति या उनके महत्त्वको वढा नही सकती । हा, उनकी सदस्यतासे सस्थाकी प्रतिष्ठा वढ सकती है । कार्यसमितिने जानवूझकर उन्हें अलग रक्खा, जिसमे समय पडनेपर उनकी स्वतत्रता और काम करनेकी आजादी कायम या सुरक्षित रह । सदस्य न होते हुए भी, जवसे नेता लोग छूटे हैं, वह वरावर कार्य-समितिकी वैठकोमे उपस्थित रहे हैं । चूकि कार्य-समितिमें उनका काम मूल्यवान रहा है, सदस्योने यह सोचा कि उन्हें समितिके अनुशासनमें ले लेना कही उनके लिए कष्टप्रद न सिद्ध हो । डॉक्टर असारी

तो मालवीयजीको समितिमे रखनेके लिए इतने उत्सुक थे कि उनके लिए स्वय हट जाना उन्हें पसद था। पर जिस विचारका मैं ऊपर जिक्र कर आया हू, जमनालालजीने उसे ऐसे प्रभावशाली ढगसे समितिके सामने रखा था कि डॉक्टर अंसारीको भी इस बातके लिए राजी होना पडा कि मालवीयजी अलग रक्खे जाय। इस व्यवस्थासे समिति अपनी बैठकोमें मालवीयजीकी सलाहसे लाभ भी उठा सकती है और साथ ही उनकी कार्य-स्वतत्रतामें किसी प्रकारकी बाधा नही पडती। गोलमेज परिषद्में उन्हें अलगसे निमत्रित करके तो सरकारने भी समाजमें उनकी अद्वितीय स्थितिको स्वीकार किया है। (हि० न०, १९ ४ ३१)

• • • •

विरलाको पत्र लिखते हुए हिंदीमें लिखा—

आशावाद और भोलेपनमें मैं भेद करता हू। पडितजीमें दोनो है। दृष्टिमर्यादापर निराशाके चिह्न होते हुए भी और जानते हुए भी जो आशा रखता है वह आशावादी है। यह गुण पडितजीमे काफी मात्रा में है। आशाकी बाते कोई कह देवे और उसपर विश्वास लाना वह भोलापन है। यह भी पडितजीमें है। उसे मै त्याज्य समझता हू। पडितजी महान व्यक्ति है, इसलिए उनको ऐसे भोलेपनसे हानि नही हुई है। हमें ऐसे भोलेपनका अनुकरण कभी नही करना चाहिए। आशावाद अतर्नादपर निर्भर है, भोलापन बाह्य बातोपर। (म० डा०, २७ ५ ३२)

• •

देशके सार्वजनिक जीवनको उनकी बहुत बडी देन है। उनका सबसे बडा कार्य हिंदू विश्वविद्यालय बनारस है, इस विद्यालयके प्रेमसे हमें हार्दिक प्रेम है। महामना मालवीयजीने उसके लिए जब कभी मेरी सेवाएं चाही है, मैंने दी है।

मालवीयजी एक सफल व महान् भिखारियोमेंसे एक है, विश्वविद्या-

लयके लिए कितना चदा कर सकते है, इसका अनुमान उस अपीलसे किया जा सकता है, जो उन्होने केवल पाच करोड रुपएके लिए निकाली थी। ('विद्यार्थियोसे', पृष्ठ २६२)

•

आप जानते है कि मालवीयजी महाराजके साथ मेरा कितना गाढ सबध है। अगर उनका कोई काम मुझसे हो सकता है तो मुझे उसका अभिमान रहता है और अगर मै उसे कर सकू तो अपने को कृतार्थ समझता हू। इसलिए जब सर राधाकृष्णन्का पत्र मुझे मिला तो मैने निमत्रण स्वीकार कर लिया। यहा आना मेरे लिए तो एक तीर्थमे आनेके समान है।

यह विश्वविद्यालय मालवीयजी महाराजका सबसे बडा और प्राणप्रिय कार्य है। उन्होने हिंदुस्तानकी बहुत-बहुत सेवाए की है, इससे आज कोई इन्कार नही कर सकता। लेकिन मेरा अपना खयाल यह है कि उनके महान् कार्योमें इस कार्यका महत्त्व सबसे ज्यादा रहेगा। २५ साल पहले, जब इस विश्वविद्यालयकी नीव डाली गई थी, तब भी मालवीयजी महाराजके आग्रह और खिचावसे मै यहा आ पहुचा था। उस समय तो मै यह सोच भी न सकता था कि जहा बडे-बडे राजा-महाराजा और खुद वाइसराय आनेवाले है, वहा मुझ-जैसे फकीरकी क्या जरूरत हो सकती है। तब तो मै 'महात्मा' भी नही बना था।

उस समय भी मालवीयजी महाराजकी कृपादृष्टि मुझपर थी। कही भी कोई सेवक हो, वे उसे ढूढ निकालते है और किसी-न-किसी तरह अपने पास खीच ही लाते है। यह उनका सदाका धधा है।

लोग मालवीयजी महाराजकी बडी प्रशसा करते है। आज भी आपने उनकी कुछ प्रशसा सुनी है। वे सब तरह उसके लायक है। मै जानता हू कि हिंदू विश्वविद्यालयका कितना बड़ा विस्तार है। ससारमें मालवीयजीसे बढकर कोई भिक्षुक नही। जो काम उनके सामने आ जाता है, उसके लिए—अपने लिए नही—उनकी भिक्षाकी झोलीका

मुह हमेशा खुला रहता है। वे हमेशा मागा ही करते है, और परमात्माकी भी उनपर बडी दया है कि जहा जाते है, उन्हे पैसे मिल ही जाते है, तिनपर भी उनकी भूख कभी नही बुझती। उनका भिक्षा-पात्र सदा खाली रहता है। उन्होने विश्वविद्यालयके लिए एक करोड इकट्ठा करनेकी प्रतिज्ञा की थी। एक करोडकी जगह डेढ करोड दस लाख रुपया इकट्ठा हो गया, मगर उनका पेट नही भरा। अभी-अभी उन्होने मुझसे कानमे कहा है कि आजके हमारे सभापति महाराजा साहब दरभंगाने उनको एक खासी बडी रकम दानमें और दी है।

मैं जानता हू कि मालवीयजी महाराज स्वय किस तरह रहते है। यह मेरा सौभाग्य है कि उनके जीवनका कोई पहलू मुझसे छिपा नही। उनकी सादगी, उनकी सरलता, उनकी पवित्रता और उनके प्रेमसे मै भली-भाति परिचित हू। उनके इन गुणोमेंसे आप जितना कुछ ले सकें, जरूर लें। विद्यार्थियोके लिए तो उनके जीवनकी बहुतेरी बातें सीखने लायक है। मगर मुझे डर है कि उन्होने जितना सीखना चाहिए, सीखा नही है। यह आपका और हमारा दुर्भाग्य है। इसमें उनका कोई कसूर नही। धूपमे रहकर भी कोई सूरजका तेज न पा सके तो उसमें सूरज बेचारेका क्या दोष ? वह तो अपनी तरफ से सबको गर्मी पहुचाता रहता है, पर अगर कोई उसे लेना ही न चाहे और ठडमे रहकर ठिठुरता फिरे तो सूरज भी उसके लिए क्या करे ? मालवीयजी महाराजके इतने निकट रहकर भी अगर आप उनके जीवनमे सादगी, त्याग, देशभक्ति, उदारता और विश्वव्यापी प्रेम आदि सद्गुणोका अपने जीवनमें अनुकरण न कर सके तो कहिए, आपसे बढकर अभागा और कौन होगा ? (ह० से०, २१-१-४२)

• • ••

अंग्रेजीमे एक कहावत है—"राजा गया, राजा हमेशा जियो!" ठीक यही भारत-भूषण मालवीयजी महाराजके लिए कहा जा सकता है—

"मालवीयजी गये, मालवीयजी अमर हो!" मालवीयजी हिंदुस्तानके लिए पैदा हुए और हिंदुस्तानके लिए किये गए अपने कामोंमें जीते हैं। उनके काम बहुत हैं। बहुत बडे हैं। उनमें सबसे बडा हिंदू-विश्व-विद्यालय है। गलतीसे उसे हम बनारस हिंदू युनिवर्सिटीके नामसे पहचानते हैं। उस नामके लिए दोष मालवीयजी महाराजका नही, उनके पैरोकारोंका रहा है। मालवीयजी महाराज दासानुदास थे। दास लोग जैसा करते थे, वैसा वे करने देते थे। मुझे पता है कि यह अनुकूलता उनके स्वभावमें भरी थी। यहां तक कि बाज दफा वह दोषका रूप ले लेती थी, लेकिन 'समरथको नहि दोष गुसाईं' वाली बात मालवीय महाराजके बारेमें भी कही जा सकती है। उनका प्रिय नाम तो हिंदू-विश्व-विद्यालय ही था। और यह सुधार तो अब भी करने योग्य है। इस विश्वविद्यालयका हरएक पत्थर शुद्ध हिंदू-धर्मका प्रतिबिंब होना चाहिए। एक भी मकान पश्चिमके जडवादकी निशानी न हो; बल्कि अध्यात्मकी निशानी हो। और जैसे मकान हो, वैसे ही शिक्षक और विद्यार्थी भी हो। आज हैं? प्रत्येक विद्यार्थी शुद्ध धर्मकी जीवित प्रतिमा है? नही है, तो क्यों नही है? इस विश्वविद्यालयकी परीक्षा विद्यार्थियोंकी संख्यासे नही, बल्कि उनके हिंदू धर्मकी प्रतिमा होनेसे ही हो सकती है, फिर भले वे थोडे ही क्यों न हों।

मै जानता हू कि यह काम कठिन है। लेकिन यही इस विद्यालयकी जड है। अगर यह ऐसा नही है, तो कुछ नही है। इसलिए स्वर्गीय मालवीयजीके पुत्रोंका और उनके अनुयायियोंका धर्म स्पष्ट है। जगतमें हिंदू धर्मका क्या स्थान है? उसमें आज क्या दोष है? वे कैसे दूर किए जा सकते हैं? मालवीयजी महाराजके भक्तोंका कर्त्तव्य है कि वे इन प्रश्नोंको हल करें। मालवीयजी अपनी स्मृति छोड गये हैं। उसको स्थायीरूप देना और उसका विकास करना उसका श्रेष्ठ स्मृति-स्तंभ होगा।

विश्व-विद्यालयके लिए स्व० मालवीयजीने काफी द्रव्य इकट्ठा किया था, लेकिन बाकी भी काफी रहा है। इस काममें तो हरएक आदमी हाथ बटा सकता है।

यह तो हुई उनकी बाह्य प्रवृत्ति। उनका आतरिक जीवन विशुद्ध था। वे दयाके भडार थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान बडा था। भागवत उनकी प्रिय पुस्तक थी। वे सजग कथाकार थे। उनकी स्मरण-शक्ति तेजस्विनी थी। जीवन शुद्ध था, सादा था।

उनकी राजनीतिको और दूसरी अनेक प्रवृत्तियोंको छोड देता हू। जिन्होंने अपना सारा जीवन सेवाको अर्पित किया था और जो अनेक विभूतिया रखते थे, उनकी प्रवृत्तिकी मर्यादा हो नही सकती। मैंने तो उनमेंसे चिरस्थायी चीजें ही देनेका सकल्प किया था। जो लोग विश्वविद्यालयको शुद्ध बनानेमें मदद देना चाहते है, वे मालवीयजी महाराजके अतरजीवनका मनन और अनुसरण करनेकी कोशिश करें। (ह० से०, ८ १२.४६)

... • ...

मालवीयजी महाराजने भी हिंदीके लिए बहुत काम किया था। मगर उर्दू जबानको काट डालो, ऐसा कहते मैंने उनको कभी नही सुना। (प्रा० प्र०, १५ १०.४७)

: १५२ :

हसन मिरजा

.. ऐसा आदर्श मि० हसन मिरजाने पेश किया था। मिस्टर हसन मिरजाको फेफड़ेका बहुत बुरा रोग है। वे है भी नाजुकमिजाज आदमी।

तथापि जब-जब जो काम उन्हें मिला, उन्होने खुशीसे उसे किया। इतना ही नही, बल्कि अपनी बीमारी की परवाह भी न की। एक बार एक काफिर दारोगाने उन्हे बडे दारोगाका पाखाना साफ करनेपर रख दिया। उन्होने तुरत ही उस कामको मजूर कर लिया। यह काम उन्होंने कभी न किया था। इससे उन्हें कै हो गई। उन्होने उसकी भी परवाह न की। जिस समय वे दूसरा पाखाना साफ कर रहे थे मै वहा जा पहुचा। देखते ही मै आश्चर्यसे सन्न हो गया। मेरे मनमें उनके विषयमे प्रेम उमड उठा। ('मेरे जेलके अनुभव', पृष्ठ ४२)

: १५३ :

मीराबहन

मीराबहनका जीवन तो सब बहनोके लिए विचार करने योग्य बन गया है। उसके हिंदी पत्र वहा आते होगे। मेरे नाम जो पत्र आते है, उनसे मै देखता हू कि उसने अपनी सरलता और प्रेमपूर्ण स्वभावसे गुरु-कुलकी बालाओके मन हर लिए है। वह लडकियोमें खूब घुलमिल गई है और उन्हें पीजना-कातना अच्छी तरह सिखा रही है। अपना एक पल भी व्यर्थ नही जाने देती। इस निष्ठा, इस त्याग और इस पवित्रता-की आशा मै तुम बहनोसे रखता हू। ('बापूके पत्र' पृष्ठ ५)

• •

मीरा बहनके तमाम पत्र मै चि० मगनलालको भेजा करता हू। मै चाहता हू कि उन्हे तुम सब बहन ध्यानसे सुनो, समझो और विचारो। मेरी नजरमे इस समय हमारे पास वह एक आदर्श कुमारी है। ('बापूके पत्र)

• • • • • •

"बापू, आपकी उत्तम सेवा किस तरह कर सकती हूं, यह विचार मेरे मनसे कभी निकलता ही नहीं है। मैं विचार करती हूं, अपने मनको समझाती हूं और भगवानसे प्रार्थना करती हूं, मगर अंतमें मेरे अतरकी गुफामेंसे एक ही आवाज उठती है। जब आपको हमारे बीचसे उठा लिया जाता है, जैसे कि जेलमें, तब मैं आपके बाहरी कामोंमें पूरे जोशके साथ पड़ सकती हूं। कुछ भी शका या कुछ भी मुश्किल पैदा नहीं होती। मगर जब आप हमारे पास होते हैं, तब एक असाधारण प्रबल वृत्ति चुपचाप आपकी निजी सेवा में ही डूबे रहनेकी प्रेरणा मुझे करती रहती है। और कोई काम करनेका प्रयत्न करना मुझे मिथ्या लगता है, रास्ता भूलने जैसा लगता है। ऐसा लगता है कि आपकी निजी सेवा करनेमें सफलता मिले, तो ही उन बाहरी कामोंको करनेकी शक्ति आए। ऐसा लगता है कि एक चीज दूसरीकी पूरक है। कोई मुझे हमेशा भीतर-ही-भीतर कहा करता है कि मैं जो खिचकर आपके पास चली आई हू, सो आपकी सेवा करनेके लिए ही आई हूं। यह वृत्ति इतनी ज्यादा प्रबल है कि मैं उससे छूट नहीं सकती। यह बात माननेके लिए आपसे कहना भी कठिन है, क्योंकि इस बातकी सचाईका पूरा सबूत तो आपके अवसानके बाद ही मिल सकता है। इसलिए मुझे इतना कहकर ही रुक जाना पडता है कि यह एक वृत्ति है। इतनी बात मैं निश्चित जनती हूं कि इस बारकी लड़ाईमें मेरा बल, मेरी शक्ति मेरी भीतरी शांति और सुख पिछली बारसे कहीं ज्यादा रहे हैं। इसका एक यही कारण है कि इस बार मैं अपनी वृत्तिके अनुसार काम कर सकी हू। सिर्फ आपके पहले छूटनेके बाद एक बार थोड़े समयके लिए मैं दुःखी हो गई थी। इस बार यहां (जेलमें) आनेसे पहले मेरा स्वास्थ्य नष्ट होनेको ही था, मगर इस बातका इस प्रश्नके साथ कोई वास्ता नहीं है। जिसका कारण तो सिर्फ ताकतसे ज्यादा काम करना ही था। मैंने देखा कि मैं थोड़े दिनमें पकडी जानेवाली हू, इसलिए मैंने अपनी शक्ति ऊंच-नीच देखे बिना ही खर्च करना शुरू कर दिया। मैं जानती थी कि

मुझे जबर्दस्ती आराम मिलनेही वाला है। और मेरे पास कामका इतना ढेर पड़ा था कि ज्यादा सोच-विचार करनेकी गुंजायश नहीं थी।

"कौन जाने, यह सब भ्रम ही तो न हो? मगर स्त्री तो अपनी मनोवृत्तिसे ही चलती है न? उसका बल बुद्धिके बजाय वृत्तिके आधारपर चलनेमें ही है। वह अपने स्वभावको प्रकट कर सके तभी उसकी सच्ची शक्ति काबूमें की जा सकती है और सेवामें लगाई जा सकती है। एक आप, आप ही मेरे काम और आप ही मेरे आदर्श हैं, इसके सिवा सारी दुनियामें मेरा और कोई विचार और कोई चिंता या और कोई चाह नहीं है। इस जीवनमें यह काम पूरा करनेके लिए और अगले जीवनमें इस आदर्शतक पहुंचनेके लिए क्या भगवान मेरी प्रार्थना नहीं सुनेंगे? किसलिए वे मेरी वृत्तियोंको गलत रास्तेपर जाने देंगे? क्या वे ही मुझे गहरे अंधेरेसे आपके प्रकाशमय मार्गपर खींच नहीं लाए? यह सब मैं आपके सामने तर्क करनेके लिए नहीं लिख रही हूं। लेकिन जेलमें आनेके बाद असली चीज समझनेके लिए मैं जो निरंतर प्रयत्न कर रही हूं, उससे जो कुछ मुझे सूझा है वह आपके सामने रख देनेके लिए ही लिख रही हूं।"

उसे बापूने जवाब दिया :

तूने अपने लिए जो कुछ लिखा है वह मैं समझ सकता हूं और उसकी कदर करता हूं। एक मामलेमें मैं तुझे निश्चिन्त कर ही दूं। मेरे जेलसे निकलनेके बाद जरूर तू मेरे साथ ही रहेगी और मेरी सेवाका अपना असल काम फिर शुरू कर देगी। मैं साफ देख सकता हूं कि तेरी आत्माके आविर्भावके लिए यही एक मार्ग है। पहले मैंने ऐसा किया है, मगर अब अपनी सेवाके कामसे तुझे वंचित रखनेका अपराध मैं नहीं करूंगा। भूतकालमें जो कुछ हुआ है उसका विचार करता हूं तब मुझे एक बड़ा संतोष यह रहता है कि मैंने तेरे प्रति जो कुछ किया है वह तेरे लिए गहरे प्रेम और तेरे भलेकी भावनासे प्रेरित होकर किया है। मगर मैं देख सकता हूं कि 'स्वराज' का काम 'सुराज्य' नहीं दे सकता। एक गुजराती कहावत

है कि 'वणीले सूझे डाकणीमा ने पडोसीने न सूझे आरमीमा'। ये दोनो कहावतें सब जगह लागू नही की जा सकती। हा, तेरे मामलेमे तो दोनो ही अच्छी तरह लागू होती है। इसलिए आइदा मेरी तरफसे कोई दखल नही दिया जायगा, यह पूरा भरोसा रखना। और मेरी सेवा तुझसे ज्यादा प्रेमके साथ कौन कर सकता है?" (म० डा०, ८४३२)

वह विशुद्ध आत्मा है। उसमे आत्मत्यागकी अपार शक्ति है। (म० डा०, २३ ६ ३२)

• • •

तू लिखती है कि तेरा मन ठिकाने नही, इसीलिए पत्र नही लिखेगी। यह भी विकारकी निशानी है। विकारका अर्थ अच्छी तरह समझनेकी जरूरत है। क्रोध करना भी एक विकार ही है। मनमें अनेक प्रकारकी इच्छाए होते रहना भी विकार है। इसलिए यह पहनू, यह ओढू, यह खाऊं यह न खाऊ, यह विकार है, और विवाहकी इच्छा हो या विवाहकी इच्छा हुए बिना बराबरके लडकोका सग अच्छा लगे, उनके साथ गुप्त बातें अच्छी लगे, उन्हें छूना अच्छा लगे, उनके साथ दिल्लगी करना अच्छा लगे, तो यह भी विकार है। यह आखिरी विकार एक भयकर विकार माना जाता है। लेकिन इनमेंसे कोई भी विकार जबतक होता है तबतक स्त्रीको मासिक धर्म होगा और पुरुषको मासिक धर्म नही तो दूसरा कुछ होता ही है। इस अर्थमें मीराबहन भी विकार-रहित नही कही जा सकती। इसीसे उसे अभी तक मासिक धर्म होता है। इसमें वह कोई पाप नही करती। वह तो बहुत ऊची पहुच गई है। वह अपने तमाम विकारोको दूर करनेके लिए लड रही है। पुरुष-सग-रूपी इच्छाका विकार तो उसमेंसे साफ चला गया है। मगर उसमें क्रोध है, राग है, अनेक इच्छाए है। इन सबको भी रोकनेकी वह कोशिश करती है। (म० डा०, ११.६.'३२)

मीराबहन तो आश्रमवासी रही। घर-बार, माता-पिताका त्याग करके आई। उसको तो जो चीज प्यारेलालको लागू होती है उससे भी ज्यादा लागू होती है। वह यद्यपि अपनेको मेरी लडकी कहती है, मगर उसका भी तो अपना स्वतत्र स्थान बन गया है। अपने आप उसको लगता है कि उसे नही लिखना चाहिए तो अलग बात थी। (का० क०, २४ ६.४२)

. . . . .

सुबह घूमते समय मैंने बापूसे मीराबहनकी बकरीवाली बात कही। कहने लगे :

मीरा बहनमे एक बडा गुण है। उसके निकट मनुष्य, पशु, वृक्षो और फूलोमें कोई फर्क नही है। उसे बकरियोसे बाते करते तो तूने सुना होगा। फूल-पत्तोसे भी वह बाते करती है। और कल रात उसने बिना किसीके कहे वह सब तेरे लिए किया।

मैंने कहा, "उनमें गुण तो भरे ही हैं, नहीं तो अपने राजा-समान पिताके घरको छोडकर वह यहा भागकर क्यो आतीं।" बापू बोले : हा, यह बात तो है। (का० क०, ३० ६ ४२)

. . . . .

मीराबहन आज यह विचार कर रही है कि सारी दुनियामें कैसे क्राति हो सकती है। उनकी मान्यता है कि पहले कुछ नेता रूस जावें, फिर हर गावसे कुछ किसान वहा भेजे जावें, वे आकर बाकी लोगोमें प्रचार करें। मीराबहनका दिमाग आज रूस और मार्क्ससे ही भरा हुआ है। बापू कह रहे थे :

यह एक छोटी-सी मिसाल है कि कैसे उनका मन एक बालककी भाति कल्पनाके घोडेपर सवार होकर कहा-से-कहा पहुच जाता है, नही तो आज इस जेलमें बैठे हुए रूस जानेका प्रश्न ही कैसे उठ सकता है ?

और फिर क्या हम इतने कगाल है कि रूस जानेके सिवा और कुछ कर ही नही सकते ? (का० क०, २६ ११ ४२)

... ...

इसके भोलेपन और इसकी कल्पना-शक्तिका कोई पार नही है। (का० क०, १३ ३ ४४)

...

एक वात यह भी है कि हमारे यहा पूरी खूराक तो पैदा नही होती है। तव लोगोको कहो कि वे जमीनको वो लें, उसमेसे पैदा हो जायगी। वात तो सच्ची है, लेकिन उसके लिए वाहरसे जो वनी-वनाई खाद आती है, जिसको कि रसायन खाद वोलते है, उसमें हम चद करोड रुपए मुफ्तके दे देते है या ऐसा कहो कि जमीनको विगाडनेके लिए वह पैसे देते है। यह मेरा कहना नही है, मै तो वह जानता ही नही, लेकिन जो इसका ज्ञान रखते है वे ऐसा कहते है। मीरावहनने ही यह सव किया है और उसने ही इस चीजके जानकार लोगोको इकट्ठा किया। उसको शौक है और वह सचमुच किसान वन गई है। (प्रा० प्र०, १० १२ ४७)

: १५४ :

रामास्वामी मुदालियर

वहाके (मैसूरके) दीवान श्री रामास्वामी मुदालियर तो वहुत वडे आदमी है। उन्होने सारी दुनियामें भ्रमण किया है। उन्होने समझा कि आखिर कवतक लोगोका दमन करते रहेगे ? ऐसा कवतक चल सकता है ? नतीजा यह हुआ कि जो लोग कैदमें चले गये थे वे छूट गये और मैसूर राज्य और उसके लोगोके वीच एक सुलहनामा हो गया। लोगोकी जो

वाकानून शर्ते थी वे राज्यकी तरफसे स्वीकृत हो गई। मैसूरमें यह जो कुछ हुआ उसके लिए वहाके राजा, दीवान साहब और लोगोको धन्यवाद देना चाहिए। राज्यने वहा लोगोको राजी रखकर ही काम चलाना कबूल कर लिया है। (प्रा० प्र०, १६ १० ४७)

: १५५ :

नरोत्तम मुरारजी

सेठ नरोत्तम मुरारजीकी दु खद मृत्युके कारण हममेसे एक प्रसिद्ध व्यापारी उठ गया है। सेठ नरोत्तम मुरारजीमे देशभक्ति और व्यापारिक महत्वाकाक्षा, दोनो बाते एक साथ पाई जाती थी। पूजीपति होते हुए भी वह मजदूरोके साथ दयाका—मनुष्यताका—व्यवहार करते थे। सिंधिया स्टीम नेविगेशन कपनी खडी करनेमें उन्होने जिस साहसका परिचय दिया था, उससे महत्वाकाक्षाके साथ उनकी देशभक्तिका भी परिचय मिलता है। उनका दान विशाल, विवेकपूर्ण और आधुनिक आवश्यकताओ-के अनुकूल होता था। देशकी वर्तमान अवस्थामे इस सपूतके चल बसनेसे भारत-माताकी बडी क्षति हुई है। अब उनके कार्यका सारा बोझा उनके नौजवान और उदीयमान पुत्रके सिर आ पडा है। लेकिन मै जानता हू कि श्रीशातिकुमार भी अपने सुप्रसिद्ध पिताके समान ही देशभक्त है और सभवत अपने पिताके बहुसख्यक कारखानोमें काम करनेवाले मज-दूरोसे अधिकतर प्रेम करते है। मै उनके, उनकी बूढी दादी माके और दूसरे सब कुटुबियोके प्रति हृदयसे समवेदना प्रकट करता हू, जिनके निकट परिचयमें आनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। (हि० न०, २१.११.२९)

: १५६ :

शांतिकुमार मुरारजी

आज हम सोलापुरमें हैं। यह बड़ा शहर है। यहा पाच मिलें हैं। उनमें सबसे बडी मुरारजी गोकुलदासकी है। उनके पोते शातिकुमार उम्रमें तो अभी नवयुवक हैं, परतु उनकी आत्मा महान है। वे खुद खादी-प्रेमी हैं और खादी ही पहनते हैं। यह कोई उनका सबसे बड़ा गुण है, यह नही कहना चाहता। उनमें दया है, उदारता है, नम्रता है, ईश्वर-परायणता है, सत्य है। जैसा नाम है वैसे ही गुण रखते हैं। शातिकी मूर्ति हैं। करोड़पतिके यहा ऐसा रत्न है, यह देखकर मुझे बहुत आनद होता है। ('बापूके पत्र' पृष्ठ १९)

: १५७ :

बेगम मुहम्मदअली

मौलाना मुहम्मदअलीकी बेगमसाहबाके धीरजको देखकर मैं तो दग रह जाता हू। वाल्टेरमें जब उनके पति, मौलानासाहब, गिरफ्तार हुए तब वे उनसे मिलने गई थी और जब मिलकर लौटी तब मैंने उनसे पूछा कि आपके दिलको घबराहट तो नहीं होती ? उन्होंने कहा—

"नहीं, मुझे जरा भी घबराहट नहीं। पकड़े जानेवाले तो थे ही। यह तो उनका धर्म था।"

मैंने उनकी आवाजमें भी घबराहट नही पाई। उसके बाद से वे हमारे ही साथ घूमकर अपनी हिम्मतका परिचय दे रही है। औरतो-

के जलसोमें और मर्दोंके भी जलसेमें वे बुर्का ओढकर आती है और थोडेमे परतु ऐसा भाषण करती है कि वह ठेठ दिलकी तह तक पैठ जाता है। वे सबको शाति कायम रखने, चरखा कातने, और खादी पहननेके लिए सिफारिश करती है और स्मर्नाके लिए मुसलमानोंसे चदा भी मागती है। कुछ ही महीने पहले तक उनके बनाव-सिगारकी हद नही थी। महीन कपडेके बिना काम नही चलता था। पर आज वे मोटी खादीका हरा रगा हुआ झगा पहनती है। हिंदू स्त्रियोंकी बनिस्वत मुसलमान स्त्रियोको अधिक कपडे पहनने पडते है। उसमें भी बेगमसाहबाका बदन हल्का नही है। तो भी वे अपने धर्मके लिए इस तरह तपस्या कर रही है। इसका फल यह हो रहा है कि उनका दर्शन करनेके लिए अब जगह-जगहपर, मुसलमान बहने भी आया करती है। (हि० न०, ३० ६ २१)

• •

बेगम मुहम्मदअलीने अगोरा फडके लिए जहा-जहासे रुपया प्राप्त किया है वहासे शायद मौलानासाहब भी न ले पाते। यह बात मैं पहले ही कह चुका हू कि उनका भाषण तो मौलानासाहबसे भी बढिया होता है। (हि० न०, २५ १२-२१)

: १५८ :

मेरीमैन

मेरा तो खयाल है कि ससारमे ऐसा एक भी स्थान और जाति नही कि जिससे यथा समय और सस्कृति मिलनेपर बढिया-से-बढिया मनुष्य-पुष्प न पैदा होते हो। दक्षिण अफ्रीका मे सभी स्थानोपर मै इसके उदाहरण

सौभाग्यवश देख चुका हू । पर केपकालोनीमे मुझे इसके उदाहरण अधिक संख्यामें मिले । उनमे सबसे अधिक विद्वान् और विख्यात है श्री मेरीमैन । इन्हे लोग दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहते । केपकालोनीमे आप अध्यक्ष भी रह चुके है । यदि श्री मेरीमैन के जैसे श्रेष्ठ नही तो उनसे दूसरे नवरमे वहाके श्राईनर और मोल्टोनोके परिवार है ।

श्री मेरीमैन और ये दोनो परिवार हमेशा हवशियोका पक्ष लेते और जब-जब उनके हकोपर हमला होता तबतब उसके लिए वे झगड़ते । और यद्यपि वे सब भारतीयो और हवशी लोगोको भिन्न-भिन्न दृष्टिसे देखते तथापि उनकी प्रेम-धारा भारतीयोकी ओर भी अवश्य बहती । उनकी दलील यह थी कि हवशी लोग गोरोके पहलेसे यहा रह रहे है और उनकी यह मातृभूमि है । इसलिए उनका स्वाभाविक अधिकार गोरोसे नही छीना जा सकता । किंतु प्रतिस्पर्धाके भयसे बचनेके लिए यदि भारतीयोके खिलाफ कुछ कानून बनाए जाय तो वह बिलकुल अन्यायपूर्ण नही कहा जा सकता । पर इतनेपर भी उनका हृदय तो हमेशा भारतीयोकी ओर ही झुकता । स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे थे तब उनके सम्मानमें केपटाउन हालमे जो सभा बुलाई गई थी उसके अध्यक्ष श्री श्राईनर ही थे । श्री मेरीमैनने भी उनसे बडे प्रेम और विनयपूर्वक बातचीत की और भारतीयोके प्रति अपना प्रेम-भाव दर्शाया । (द० अ० स०, पृष्ठ ५६)

: १५६ :

फिरोजशाह मेहता

मैं सर फिरोजशाहसे मिला। मैं उनसे चकाचौंध होनेके लिए तैयार ही था। उनके नामके साथ लगे बडे-बडे विशेषण मैंने सुन रखे थे। 'बबईके शेर', 'बबईके बेताजके बादशाह' से मिलना था। परन्तु बादशाहने मुझे भयभीत नही किया। जिस प्रकार पिता अपने जवान पुत्रसे प्रेमके साथ मिलता है, उसी प्रकार वह मुझसे मिले। उनके चेंबरमें उनसे मिलना था। अनुयायियोसे तो वह सदा घिरे हुए रहते ही थे। वाच्छा थे, कामा थे। उनसे मेरा परिचय कराया। वाच्छाका नाम मैंने सुना था, वह फिरोजशाहके दाहिने हाथ माने जाते थे। अक-शास्त्रीके नामसे वीरचद गाधीने मुझे उनका परिचय कराया था। उन्होने कहा—"गाधी, हम फिर भी मिलेगे।"

कुल दो ही मिनटमे यह सब हो गया। सर फिरोजशाहने मेरी बात सुन ली। न्यायमूर्ति रानडे और तैयबजीसे मिलनेकी भी बात मैंने कही। उन्होने कहा—"गाधी, तुम्हारे कामके लिए मुझे एक सभा करनी होगी। तुम्हारे काममे जरूर मदद देना चाहिए।" मुशीकी ओर देखकर सभाका दिन निश्चय करनेके लिए कहा। दिन तय हुआ और मुझे छुट्टी मिली। कहा—"सभाके एक दिन पहले मुझसे मिल लेना।" मैं निश्चित होकर मनमे फूलता हुआ अपने घर गया। (आ० क०, १६२७)

... ...

बहनोईके देहान्तके दूसरे ही दिन मुझे सभाके लिए बबई जाना था। मुझे इतना समय न मिला था कि अपने भाषणकी तैयारी कर रखता। जागरण करते-करते थक रहा था। आवाज भी भारी हो रही थी। यह विचार करता हुआ कि ईश्वर किसी तरह निबाह लेगा,

मैं बंबई गया। भाषण लिखकर ले जानेका तो मुझे स्वप्नमें भी खयाल न हुआ था।

सभाकी तिथिके एक दिन पहले शामको पांच बजे आज्ञानुसार मैं सर फिरोजशाहके दफ्तरमें हाजिर हुआ।

"गांधी, तुम्हारा भाषण तैयार है न?" उन्होंने पूछा।

"नहीं तो, मैंने जबानी ही भाषण देनेका इरादा कर रखा है।" मैंने डरते-डरते उत्तर दिया।

"बंबईमें ऐसा न चलेगा। यहांका रिपोर्टिंग खराब है और यदि तुम चाहते हो कि इस सभासे लाभ हो तो तुम्हारा भाषण लिखित ही होना चाहिए और रातो-रात छपा लेना चाहिए। रात ही को भाषण लिख सकोगे न?"

मैं पसोपेशमें पडा, परन्तु मैंने लिखनेकी कोशिश करना स्वीकार किया।

"तो मुंशी तुमसे भाषण लेने कब आवें?" बंबईके सिंह बोले।

"ग्यारह बजे।" मैंने उत्तर दिया।

सर फिरोजशाहने मुंशीको हुक्म दिया कि उतने बजे जाकर मुझसे भाषण ले आवे और रातो-रात उसे छपा ले। इसके बाद मुझे विदा किया।

दूसरे दिन मैं सभामें गया। मैंने देखा कि उनकी लिखित भाषण पढनेकी सलाह कितनी बुद्धिमत्तापूर्ण थी। फ्रामजी कावसजी इन्स्टीट्यूटके हालमें सभा थी। मैंने सुन रखा था कि सर फिरोजशाहके भाषणमें सभा भवनमें खड़े रहनेको जगह न मिलती थी। इसमें विद्यार्थीलोग खूब दिलचस्पी लेते थे।

ऐसी सभाका मुझे यह पहला अनुभव था। मुझे विश्वास हो गया कि मेरी आवाज लोगों तक नहीं पहुंच सकती। कांपते-कांपते मैंने अपना भाषण शुरू किया। सर फिरोजशाह मुझे उत्साहित करते जाते—"हां,

जरा और ऊची आवाजमें।" ज्यो-ज्यो वह ऐसा कहते त्यो-त्यो मेरी आवाज गिरती जाती थी।

मेरे पुराने मित्र केशवराव देशपाडे मेरी मददके लिए दौडे। मैने उनके हाथमे भाषण सौंपकर छुट्टी पाई। उनकी आवाज थी तो बुलद, पर प्रेक्षक क्यो सुनने लगे? 'वाच्छा', 'वाच्छा', की पुकारसे हाल गूज उठा। अब वाच्छा उठे। उन्होने देशपाडेके हाथसे कागज लिया और मेरा काम बन गया। सभामें तुरत सन्नाटा छा गया और लोगोने अथसे इतितक भाषण सुना। मामूलके मुताबिक प्रसगानुसार 'शर्म'-'शर्म' की अथवा करतल-ध्वनि हुई। सभाके इस फलमे मैं खुश हुआ।

सर फिरोजशाहको भाषण पसद आया। मुझे गगा नहानेके बराबर सतोष हुआ। (आ० क०, १६२७)

: १६० :

डा० मेहता

डॉ० मेहताके पैरका घाव जहरीला हो गया और उनका पांव कटवा देना पड़ा। तार आया है कि इससे उनकी स्थिति गंभीर हो गई है। सुबह आपरेशन अच्छा हो गया। यह तार आया था कि हालत संतोषजनक है। इस पर बापूने वापस तार दिया था—"बड़ी खुशी हुई। रोज तार देते रहिए।" यह बात हो ही रही थी कि डॉक्टरमें बर्दाश्त करनेकी ताकत है कि इतनेमें दूसरा तार आया—डॉक्टरको खूब बुखार है। फिर तार आया—डॉक्टरको निमोनिया है और हालत नाजुक है। इसके बाद भी बापूने कहा—"रतिलाल और मगनकी तकदीरसे अब भी जी जायं तो

कह नहीं सकते ।" इस तरह बापूके मुहसे भी मानवोचित उद्गार निकल जाते थे (३.८.३२)

आज डॉक्टर मेहताके देहावसानका तार आया। कल रातको ९-४५ पर शरीर छोड़ा। बापूको कितनी चोट लगी, इसका अंदाज इस तारसे हो सकता है—

ईश्वरकी इच्छा! तुम्हें और माताजीको आश्वासन। पिताजीकी उदात्त परंपराओंकी यानी व्यापारमें ईमानदारी, महमानदारीमें उदारता और दानशील स्वभाव, इन सबकी रक्षा करना। सरदार और महादेव शोकमें मेरे साथ शरीक हैं। मेरी तो कहूं ही क्या? उम्र-भरके वफादार दोस्तकी जुदाई दिलमें चुभ रही है। मुझे सब हाल बताते रहना। ईश्वर तुम सबका भला करे।

बेचारे ने दो महीने पहले तो सत्याग्रहमें शामिल होनेकी इजाजत मागी थी और उसे नवबरमें बापूसे मिलनेकी आशा थी। मणिलाल रेवाशंकर जगजीवनको पत्रमें लिखा .

सुंदर भवनके अब बर्बाद होनेका खतरा पैदा हो गया है। तुम सबको डॉक्टरका वियोग खटकेगा ही। मगर मेरी हालत अजीब है। डॉक्टरसे ज्यादा मित्र इस ससारमें मेरा कोई नही था। मेरे लिए वे जिंदा ही हैं। मगर यहा बैठा हुआ मैं उनके भवनको अविच्छिन्न रखनेमें लगभग कुछ भी भाग नहीं ले सकता, यह मुझे खटकता है। तुम जो कुछ कर सकते हो कर लेना। डॉक्टरका नाम अमर रखनेके काममें तुम कहा तक भाग ले सकते हो, यह लिखना।

नानालाल मेहताको :

डॉक्टरके चले जानेसे मेरी हालत तुम सबसे ज्यादा खराब हो गई है। मुझे यह खटकता है कि जिसे मैं अपना सबसे पुराना साथी या मित्र कहता हू, वह जाता रहे और मैं पिंजड़ेमें बद होनेसे उसके पीछे कुछ भी न कर सकू। मगर इसमें भी ईश्वरका भेद है, कृपा भी हो। मैं नहीं

जानता कि डॉक्टरका भवन आबाद रखनेकी तुम्हारी कहा तक शक्ति है। जितनी हो उसे काममे लेना। डॉक्टरका नाम निष्कलक रहे और उनके गुण उनके लडके कायम रखे, यह देखनेकी बात है।

बड़े लड़के छगनलालको :

डॉक्टरके स्वर्गवासका सच्चा खयाल अबसे तुम्हारे बरतावमें जाहिर होना चाहिए। डॉक्टरके कई सद्गुण ही उनका असली वसा-यतनामा है। वह तुम्हारा उत्तराधिकार है। तुममे छोटे भाइयोको जरा भी क्लेश न होना चाहिए। मेरा उम्रभरका साथी जा रहा है तब मैं अपग जैसी हालतमे (जेलमे) हू, यह मुझे खटकता है नही तो मैं इस वक्त तुम्हारे पास खडा होता। शायद डॉक्टरकी आखिरी सास मेरी गोदमे निकली होती। मगर ईश्वर हमारा सोचा हुआ सब होने नही देता। इसलिए मैं उतना ही करूगा, जितना डाकके जरिए हो सकता है।

पोलकको :

डॉ॰ मेहता चल बसे। मैने अपना उम्रभरका वफादार मित्र खो दिया। वैसे मेरे लिए वे जीते-जीमे भी मरनेके बाद ज्यादा जीवित है, क्योकि अब मै उनके तमाम अच्छे गुणोको ज्यादा याद करूगा। यह स्मरण एक पवित्र थाती है। मगनलालके नामका पत्र इसके साथ भेजता हू। मै चाहता हू कि तुम उसे पिताके योग्य बननेमे पूरी मदद दो। मैने उसे सलाह तो दी ही है कि चिता न करे और पढाईमें लगा रहे। कितने ही समयसे डॉ॰ मेहता शरीरसे जर्जर हो गये थे, फिर भी उनकी शुरूकी व्यवहारदक्षता ज्यो-की-त्यो बाकी थी। इसलिए उन्होने मगनलालकी पढाईके लिए रुपएका इतजाम किया ही होगा। मगनलाल जानता होगा। मुझे दुख है कि इस समय मै उन लोगोके बीच नही हू। मगर मेरा सोचा हुआ नही, सदा उसीका सोचा हुआ होवे।

रातको सोते समय बापू कहने लगे :

ज्ञान भी इतना ज्यादा पक्का होनेकी जरूरत है कि बुद्धिसे मनको

मनानेका थोड़ा ही असर हो। जानते है कि डॉक्टरको जीना नही था, वह शरीर नाश होने लायक था और उनका नाश हो गया। फिर भी इतनी बेचैनी किस लिए ?

मैंने कहा—"अपने प्रिय जनोकी या जिनके साथ वर्षों निकट सबंधमें बीते हों उनकी मौतका समाचार सुनकर यदि उनका स्मरण बार-बार होने लगे तो इसमें अस्वाभाविक क्या है ?" बापू बोले :

स्मरण तो हो, परंतु दुख किसलिए हो ? मौत और शादीमे किस लिए फर्क होना चाहिए ? विवाहका प्रसग याद करके आनद-ही-आनद होना है, वैसे ही मृत्युसे होनेवाले स्मरणोसे आनद क्यो नही होना चाहिए ? मेरी बेचैनी मगनलालकी मौतसे भी कुछ ज्यादा है। कारण इतना ही है कि मैं बाहर होता तो इस परिवारको अच्छी तरह सभाल लेता। मगर यह भी गलत ही है। यह अपग हालत ठीक क्यो न हो ?

डाक्टरके उदात्त गुणोंको याद करके उनका तर्पण किया। (म० डा०, ४ ८ ३२)

: १६१ :

मेहरबाबा

वह जबरदस्त आदमी है। वह किसीको ढूढने नही जाते, मगर लोग उनके पास चले आते है, रुपया चला आता है, विलायतसे किसी स्टारने बुलाया तो चले गये। अमरीकाने धनवानोने बुलाया तो चले गये। और उनका असर क्यो न पड़े ? सात वर्षसे मौन और फिर भी कोई पागल नही। इतनी-सी बात भी लोगोको आकर्षित करनेके लिए काफी है।

मैंने कहा—"उन्होने अपनी पुस्तक पढनेको दी थी, वह आपको कैसी लगी ?" बापू :

उसमे साधारण तो कोई बात थी नही। और अग्रेजीमे लिखी थी। उनके शिष्यने उनके विचार दर्ज किए थे, इसलिए गडबड घोटाला-सा हो गया था। मैंने उन्हें सुझाया कि आपको लिखना हो तो गुजरातीमे लिखिए या अपनी मादरी जबान फारसीमें लिखिए। हम पराई भाषामे क्यो लिखे ? उन्हे यह सूचना पसद आई।

मैंने कहा—"उनकी मुखमुद्रापर एक तरहकी प्रसन्नता है।" बापू बोले :

हा, जरूर है। और उनका दावा भी है कि उन्हें सदा आनद-ही-आनद है। वे मानते है कि उन्हें साक्षात्कार हुआ है। वे बाल-ब्रह्मचारी है और उनका कहना है कि उन्हें विकार नही होते। और मुझे वे सच्चे आदमी मालूम होते है। उनमें आडबर तो है ही नही। (म० डा०)

: १६२ :

रेम्जे मेकडोनल्ड

वल्लभभाई—"कुछ भी हो, मैकडोनल्ड सब निगल जायगा। और पंच फैसला भी हमारे खिलाफ ही होनेवाला है।"

बापू—"अभी मुझे मैकडोनल्डसे आशा है कि वह विरोध करेगा।"

वल्लभभाई—"नहीं जी, वह क्या विरोध करेगा! ये सब बिलकुल नगे लोग है।"

बापू—"तो भी इस आदमीके अपने उसूल है"

वल्लभभाई—"उसूल हो तो इस तरह अनुदारोंके हाथोंमें बिक जाय ? उसे देश परसे हुकूमत छोडनी ही नहीं है।"

बापू—"छोडनी तो नही है, मगर इसमे उसका स्वार्थ नही है। सिर्फ लास्की, होरेबिन और ब्रॉकवे जैसे थोडेसे आदमियोके सिवा छोडना तो कोई नही चाहता। वेन, लीज और स्मिथ वगैरह सब मैक्डोनल्ड-जैसे ही है। मै तो इतना ही कहता हू कि यह आदमी देशका हित देखकर अनुदारोमे मिला है। अब यह आदमी पच फैसला देनेकी बात रोके हुए है। वह सारी जिंदगीके उसूलोको ताकमें नही रख सकता।"

मैं—"तो क्या मुसलमानोंको अलग मताधिकार नहीं देने देगा ?"

बापू—"वह तो देने देगा, लेकिन अस्पृश्योके लिए अलग मताधिकार वह सहन नही कर सकेगा।"

मैं—"क्या वह सचमुच यह बात समझा भी है।"

बापू—"जरूर, वह सब समझता है। जिसे साइमन कमीशनने समझ लिया, उसे क्या वह नही समझेगा ? वह कहेगा कि मैंने तुम्हें आर्डिनेन्स निकालने दिया, बयान देने दिया, लेकिन अब मै तुम्हारे साथ और नही चल सकता। इसीलिए उसने अभी तक निर्णय रोक रखा है। होर तो कुछ भी करे मुझे आश्चर्य नही होगा। उसे तो किसी भी तरह देशको कुचलना है। इसके लिए मुसलमानोको जो भी देना जरूरी होगा वह देनेको तैयार रहेगा।" (म० डा०, ६ ७ ३२)

: १६३ :

मोतीलाल

वढवाण स्टेशनपर दर्जी मोतीलाल, जो वहाके एक प्रसिद्ध प्रजा-सेवक माने जाते थे, मुझसे मिलने आए। उन्होने मुझसे वीरमगामकी जकातकी जाचका तथा उसके सबधमें होनेवाली तकलीफोका जिक्र किया। मुझे बुखार चढ रहा था। इसलिए बात करनेकी इच्छा कम ही थी। मैंने थोडेमे ही उत्तर दिया.

'आप जेल जानेके लिए तैयार है ?"

इस समय मैंने मोतीलालको वैसा ही एक युवक समझा, जो बिना विचारे उत्साहमें 'हा' कर लेते है, परतु उन्होने बडी दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—

"हां, जरूर जेल जायंगे; पर आपको हमारा अगुआ बनना पड़ेगा। काठियावाड़ीकी हैसियतसे आपपर हमारा पहला हक है। अभी तो हम आपको नहीं रोक सकते, परतु वापस लौटते समय आपको वढवाण जरूर उतरना पड़ेगा। यहाके युवकोका काम और उत्साह देखकर आप खुश होगे। आप जब चाहें तब अपनी सेनामें हमें भर्ती कर सकेंगे।"

उस दिनसे मोतीलालपर मेरी नजर ठहर गई। उनके साथियोने उनकी स्तुति करते हुए कहा

"यह तो दर्जीभाई है। पर अपने हुनरमें बड़े तेज है। रोज एक घंटा काम करके प्रतिमास कोई पद्रह रुपए अपने खर्चके लायक पैदा कर लेते है। शेष सारा समय सार्वजनिक सेवामें लगाते है और हम सब पढ़े-लिखे लोगोको राह दिखाते हैं और शर्मिंदा करते हैं।"

बादको भाई मोतीलालसे मेरा बहुत साबका पडा था और मैंने देखा कि उनकी इस स्तुतिमे अत्युक्ति न थी। सत्याग्रह-आश्रमकी स्थापनाके

बाद वह हर महीने कुछ दिन आकर वहां रह जाते। बच्चोंको सीना सिखाते और आश्रममें सीनेका काम भी कर जाते। वीरमगामकी कुछ-न-कुछ बातें वह रोज सुनाते। मुसाफिरोंको उससे जो कष्ट होते थे वह इन्हें नागवार हो रहे थे। इन मोतीलालको बीमारी भर जवानीमें ही खा गई और वढवाण उनके बिना सूना हो गया। (आ० क० १९२७)

: १६४ :

भील-नेता मोतीलाल

श्रीयुत मणिलाल कुठारी लिखते हैं

"आपको याद होगा कि सन् १९२२ में राजपूतानाके भीलोंकी हालत पर लिखते हुए आपने 'यंग इंडिया'में भीलनेता मोतीलालको माफ करनेकी सिफारिश की थी। सन् १९२४ में राजपूतानाके ए० जी० जी०, सर आर० ई० हालैंडने सारे मामलेपर सहानुभूति-पूर्वक विचार करके और उस समय-के राजपूतानेके शांतिमय वातावरणका खयाल करके संबंधित राज्योंको सलाह दी थी कि वे मोतीलालको क्षमा कर दें, जिससे कुछ समय बाद उनके प्रभावका उपयोग पिछड़ी हुई और अज्ञान भील-जातिके सामाजिक सुधारमें हो सके। मुझे पता चला है कि राजपूतानेकी तमाम देशी रियासतोंने, जिसमें मेवाड़भी शामिल है, इस प्रस्तावको मंजूर किया था और सर आर० ई० हालैंड एवं उनके उत्तराधिकारी लेफ्टीनेन्ट कर्नल पैटरसन-ने भी मुझसे स्पष्ट ही कहा था कि मैं बंबई सरकारको अधिकार-पूर्वक कह सकता हूं कि अगर बंबई प्रांत की ईडर, दाता वगैरह रियासतें मोती-लालको क्षमा कर दें तो राजपूतानेको कोई आपत्ति न होगी। लेकिन

आज मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि मेवाड-जैसी रियासत बिना मुकदमा चलाए मोतीलालजी को गिरफ्तार किए है।

"अधिकारी कहते हैं कि आपने मोतीलालसे बेताल्लुकी जाहिर कर दी थी। मुझे विश्वास है कि यह बात सच नहीं है। मैं मानता हूं कि आप उनके प्रत्यक्ष परिचयमें आए हैं और उनके कामके बारेमें भी कुछ जानते हैं। अतएव मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप कृपाकर इस गलत-फहमीको दूर करेंगे और मेवाड़ दरबारको इस मामलेमें सहानुभूति-पूर्वक विचार करने और मोतीलालको छोड़ देनेकी सलाह देंगे।"

पाठक शायद ही मोतीलालको जानते हो। वह एक भोले-भाले, अपढ समाज-सुधारक और राजपूतानाके भीलोके सेवक है। उनकी बडी इच्छा है कि भील लोग मास और मदिराका त्याग कर दें। एक समय उनका भीलोपर बहुत ज्यादा प्रभाव था। और आज भी, यद्यपि प्रभाव उतना ज्यादा नही है, उस जातिके लोग बडे आदरसे उनका नाम लेते है, क्योकि मोतीलालके कारण ही उनमे काफी समाजिक सुधार हो सका था। यरवडा जेलसे छूटनेके बाद मुझे मोतीलालसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह न पढे-लिखे है और न ज्यादा किसीसे बात ही करते है। वह एकमात्र काम करना जानते है और अपनेमें तथा अपनेलोगोमें विश्वास करना जानते है। जो लोग कहते है कि १६२२ में मैने उनपर अविश्वास-सा प्रकट किया था, मुझे डर है कि वे सत्यको छिपाना चाहते है। १६२२ मे जब मैने सुना कि वह मेरे नामका उपयोग करते है, मैने कहा था कि उन्हें ऐसा करनेका कोई अधिकार नही है। लेकिन उसके बाद और विशेषकर जब मुझे उनके कार्यका कुछ परिचय प्राप्त हुआ तब तो मैने बडे जोरोसे इस बातकी सिफारिश की थी कि उन्हे क्षमा कर दिया जाय। मैंने तो अपने सतोषके लिए यह भी मान लिया था कि सर आर० ई० हालैडकी सिफारशमें 'यग इडिया' की पक्तियोका भी कुछ हाथ होगा। चाहे कुछ ही क्यो न हो, मुझे आशा थी कि मोतीलालको क्षमा मिल गई होगी और

१९२२ की घटनाको सम्बन्धित राज्य अबतक भूल चुके होंगे। इसी कारण मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है कि मेवाड राज्यने उन्हें किसी दूसरे नए अभियोगके लिए नही, बल्कि १९२२ वाले पुराने आरोपोंके कारण ही फिरसे गिरफ्तार करके कैदमे रख छोडा है। मुझे विश्वास है कि मेवाड राज्य यह नही भूलेगा कि अगर उसने भीलोंके प्यारे नेताको ज्यादा समय तक कैदमें रख छोडा तो भोलेभाले भील राज्यपर अविश्वासका आरोप करेंगे; क्योंकि वे तो मानते थे कि उनके नेताको क्षमा कर दिया गया है। जहा तक मैं जानता हू, मोतीलालने ऐसा कोई काम नही किया है, जिसके कारण वह कैदमे रक्खे जाय। अतएव मैं विश्वास करता हू कि यह भोला-भाला और सच्चा सुधारक शीघ्र ही कैदसे छोड दिया जायगा और अपने लोगोंमें समाज-सुधारका काम करनेके लिए उसे प्रोत्साहित किया जायगा। (हिं० न०, ५ ८ २९)

: १६५ :

हसरत मोहानी

मौलाना हसरत मोहानी हम लोगोमे बडे जीवटके आदमी है। वे जितने धीर है उतने ही दृढ भी हैं और स्पष्टवादी भी वे उसी तरह है। ब्रिटिश सरकारके प्रति तथा अंग्रेजोके प्रति उनके हृदयमें घृणाके जो भाव भरे है उसके सामने उन्हें मोपलोके आचरणमे कोई दोष नही दिखाई देता। मौलाना साहबका कहना है कि युद्धके समय जो कुछ किया जाय सब ठीक और उचित है। उनका पक्का विश्वास है कि मोपलोने धर्मके लिए ही यह संग्राम किया है और इसलिए मोपलोंके ऊपर किसी तरहका दोषारोपण नही किया जा सकता। धर्म और सदाचार-

का यह परिच्छिन्न रूप है। पर मौलाना हसरत मोहानीकी दृष्टिमे धर्मके नामपर अधर्माचरण भी धार्मिक है। जहा तक मै जानता हू, इस्लाम धर्म इस तरहकी बातोका प्रतिपादक नही है। इस सबधमे मैंने अनेक मुसलमानोसे भी बातचीत की है। वे भी मौलाना साहबके मतसे सहमत नही है। मै अपने मलाबारके साथियोसे यही कहूगा कि वे मौलानाकी बात न सुनें। यद्यपि धर्मके बारेमे उनका इस तरहका विचित्र मत है तथापि मै जानता हू कि हिंदू-मुस्लिम-एकता और राष्ट्रीयताका उनसे बढकर कट्टर समर्थक दूसरा नही है। उनका हृदय उनकी बुद्धिसे कही उत्तम है। पर इस समय वह गलत मार्गपर जा रहा है। (य० इं०, भाग ३, पृष्ठ ७३३)

: १६६ :

एन० जी० रंगा

प्रोफेसर रगा एक ऐसे साथी और कार्यकर्त्ता है, जिन्हे एक लबे अर्सेसे जाननेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है। वह बहादुर और अच्छे स्वभाववाले हैं। (ह० से०, १३.४.४०)

: १६७ :

रविशंकर

श्री रविशंकर व्यास खेडा जिलेके एक साहसी सुधारक है, जिन्होने वहाके बहादुर पर अनपढ राजपूतोको कई बुराइयोंसे मुक्त किया है। (हि० न०, १०.४ ३०)

. . . .

भाई रविशंकरकी सेवाको लेखक नाममात्रकी समझते है। यह त्यागकी मूर्ति यदि नामकी ही सेवा करती है तो कामकी सेवा कौन करता है, मै नही जानता। (हि० न०, १४ ५ ३१)

: १६८ :

अब्दुर रहीम

. राष्ट्रका काम न तो सर अब्दुर रहीम और न हकीम साहब अजमलखाके विना चल सकता है। सर अब्दुर रहीम, जिन्होने कि गोखलेके साथ-साथ, जब कि वे इसलिंग्टन-कमीशनके सदस्य थे, गुरुतापूर्ण नोट लिखा था, अपने देशके दुश्मन नही है। यदि उनका खयाल है कि हिंदुओके साथ मुसलमानोका बराबरी दर्जेपर स्पर्धा करनेके विना मुल्क तरक्की नही कर सकता तो उनको दोषी कौन ठहरा सकता है। मुमकिन है कि वे गलत तरीके अख्तियार किए हुए हो, लेकिन वे आजादीके इच्छुक जरूर है। (हि० न०, ९ ९ २६)

: १६६ :

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अभी बिल गजटमे प्रकाशित नही हुआ था। मेरा शरीर था तो निर्बल, किंतु मैंने लबे सफरका खतरा मोल लिया। अभी ऊची आवाजसे बोलनेकी शक्ति नही आई थी। खडे होकर बोलनेकी शक्ति जो तबसे गई सो अबतक नही आई है। खडे होकर बोलते ही थोडी देरमे सारा शरीर कापने लगना और छाती और पेटमे घबराहट मालूम होने लगती है, किंतु मुझे ऐसा लगा कि मद्राससे आए हुए निमत्रणको अवश्य स्वीकार करना चाहिए। दक्षिणके प्रात उस समय मुझे घरके समान ही लगते थे। दक्षिण अफ्रीकाके सबधके कारण मै मानता आया हू कि तामिल-तैलगू आदि दक्षिण प्रानके लोगोपर मेरा कुछ हक है और अबतक ऐसा नही लगा है कि मैंने यह विचार करने मे जरा भी भूल की है। आमत्रण स्वर्गीय श्री कस्तूरीरगा ऐयगरकी ओरसे आया था। मद्रास जाने ही मुझे जान पडा कि इस आमत्रणके पीछे श्री राजगोपालाचार्य थे। श्री राजगोपालाचार्यके साथ मेरा यह पहला परिचय माना जा सकता है। पहली ही बार हम दोनो ने एक-दूसरेको यहा देखा।

सार्वजनिक काममें ज्यादा भाग लेनेके इरादेसे और श्रीकस्तूरीरगा ऐयगर आदि मित्रोकी मागसे वह सेलम छोडकर मद्रास वकालत करनेवाले थे। मुझे उन्हीके यहा ठहरानेकी व्यवस्था की गई थी। मुझे दो-एक दिन बाद मालूम हुआ कि मै उन्हीके घर ठहराया गया हू। वह बगला श्री कस्तूरीरगा ऐयगरका होनेके कारण मैंने यही मान लिया था कि मै उन्हीका अतिथि हू। महादेव देसाईने मेरी यह भूल सुधारी। राजगोपालाचार्य दूर-ही-दूर रहते थे। किंतु महादेवने उनसे भली-भाति परिचय कर लिया

था। महादेवने मुझे चेताया, "आपको श्रीराजगोपालाचार्यसे परिचय कर लेना चाहिए।"

मैंने परिचय किया। उनके साथ रोज ही लडाईके संगठनकी सलाह किया करता था। सभाओंके अलावा मुझे और कुछ सूझता ही नहीं था रौलेट बिल अगर कानून बन जाय तो उसका सविनय भंग कैसे हो? सविनय-भंगका अवसर तो तभी मिल सकता था, जब सरकार देती। दूसरे किन कानूनोंका सविनय-भंग हो सकता है? उसकी मर्यादा क्या निश्चित हो? ऐसी ही चर्चाएं होती थीं।

..यों सलाह-मशविरा हो रहा था कि इसी बीच खबर आई कि बिल कानून बनकर गजटमें प्रकाशित हो गया है। जिस दिन यह खबर मिली, उस रातको मैं विचार करता हुआ सो गया। भोरमें बडे सवेरे उठ खड़ा हुआ। अभी अर्द्ध-निद्रा होगी कि मुझे स्वप्नमें एक विचार सूझा। सवेरे ही मैंने श्रीराजगोपालाचार्यको बुलाया और बात की .

"मुझे रातको स्वप्नमें विचार आया कि इस कानूनके जवाबमें हमें सारे देशसे हड़ताल करनेके लिए कहना चाहिए। सत्याग्रह आत्मशुद्धिकी लड़ाई है। यह धार्मिक लडाई है। धर्म-कार्यको शुद्धिसे शुरू करना ठीक लगता है। एक दिन सभी लोग उपवास करें और काम-धंधा बंद रखें। मुसलमान भाई रोजाके अलावा और उपवास नहीं रखते। इसलिए चौबीस घंटेका उपवास रखनेकी सलाह देनी चाहिए। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इसमें सभी प्रांत शामिल होंगे या नहीं। बंबई, मद्रास, बिहार और सिंधकी आशा तो मुझे अवश्य है, पर इतनी जगहोंमें भी अगर ठीक हड़ताल हो जाय तो हमें संतोष मान लेना चाहिए।"

यह तजवीज श्री राजगोपालाचार्यको बहुत पसंद आई। फिर तुरंत ही दूसरे मित्रोंके सामने भी रखी। सबने इसका स्वागत किया। मैंने एक छोटा-सा नोटिस तैयार कर लिया। पहले सन १९१९ के मार्चकी ३० तारीख रखी गई थी, किंतु बादमें ६ अप्रैल कर दी गई। लोगोंको

खबर बहुत थोडे दिन पहले दी गई थी। कार्य तुरन्त करनेकी आवश्यकता समझी गई थी। अत तैयारीके लिए लम्बी मियाद देनेकी गुजायश ही नहीं थी। पर कौन जाने कैसे सारा सगठन हो गया! सारे हिंदुस्तानमें शहरोमें और गावोमें हडताल हुई। यह दृश्य भव्य था! (आ० क० १९२७)

• •

आज सुबह (२१-८-३२) फिर निर्णय (साप्रदायिक निर्णय) पर बातें हुईं। जयकर, सप्रू और चिंतामणिकी रायोपर चर्चा हुई। बापू कहने लगे—यह आशा रख सकते है कि जयकर सप्रूसे यहा अलग हो जायगे।

वल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नहीं है।

बापू—आशा इसलिए रख सकते है कि विलायतमें भी इस मामलेमें इनके विचार अलग ही रहे थे। वैसे तो क्या पता?

वल्लभभाई—चिंतामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढाई।

बापू—क्योंकि चिंतामणि हिंदुस्तानी है, जबकि सप्रूका मानस यूरोपियन है। चिंतामणि समझते है कि इस निर्णयमें ही बहुत कुछ विधान आ जाता है। सप्रू यह मानते है कि विधान मिल गया तो फिर इन बातोकी चिंता ही नही। किसी भी हिंदुस्तानीको समझानेकी जरूरत नही होगी कि कितना ही अच्छा विधान गुडोंके हाथमें दिया जाय तो उसकी दुर्गति ही होगी। और इस निर्णयसे विधान गुडोंके ही हाथमें दिया जा रहा है। अभी तो केन्द्रीय सरकारका बाकी है। ये केन्द्रीय सरकारको एक धधकता हुआ कुड बना डालेंगे और कहेंगे कि अब इसमें पड़ो और जल मरो।

मालवीयजी और राजगोपालाचार्यको आज अगर इस चीजका पता चले तो वे क्या कर सकते है? थोडे ही दिनकी तो बात है न? मेरे खयालसे मालवीयजी और राजाजी को भी इस बातसे थोडा धक्का लगानेकी जरूरत है। राजाजी तो इतनी तेज बुद्धिके है कि उन्हें फौरन मालूम हो जायगा कि इस आदमीने यह कदम कैसे उठाया।

यह बात ऐसे आघातमे ही समझमें आ जायगी। (म० डा०)

राजाजी तो सोना है। उनकी बात दुनियाके किसी भी हिस्सेमें मानी जायगी। (म० डा०, १५ १२ ३२)

प्रस्ताव[1] बनानेवाले राजाजी थे। जितना यकीन मुझको था कि मैं सही रास्ते पर हू उतना ही यकीन उनको था कि उनका रास्ता सही रास्ता है। उनकी दृढता, हिम्मत और नम्रताने कई लोगोको उनकी तरफ खींच लिया। इनमें सरदार पटेल एक बहुत भारी शिकार थे। अगर मैं राजाजीको रोकता तो वह अपना प्रस्ताव कमेटीके सामने लानेका विचार तक न करते। मगर मै अपने साथियोको भी उनकी दृढता, ईमानदारी और आत्मविश्वासके लिए वही साख देता हू, जो मैं अपने लिए चाहता हू। मै बहुत दिनोसे देख रहा था कि हमारे सामने देशकी राजनैतिक समस्याओंके बारेमे हमारा मत एक दूसरेसे दूर हट रहा था। वह मुझे यह कहनेको इजाजत नही देते कि वह अहिंसासे दूर हटे हैं। उनका यह दावा है कि उनकी अहिंसा ही उन्हें इस प्रस्तावतक ले गई है। उनको लगता है कि दिनरात अहिंसाके ही विचारमें डूबे रहनेसे मुझपर एक प्रकारका भूत सवार हो गया है। उनको प्राय ऐसा लगता है कि मेरा दृष्टिकोण धुधला हो गया है। मेरे प्रत्युत्तरमें यह कहनेसे कि उनकी ही दृष्टि धुधली हो गई है, कोई फायदा नही था, अगरचे हँसी-हँसीमें मैंने उनसे ऐसा कह भी दिया। मेरे पास सिवाय मेरी श्रद्धाके दूसरा कोई सबूत नही है कि मै उनकी मुझसे उलटी श्रद्धाका दावेसे विरोध कर सकू। ऐसा करना साफ वाहियात बात होगी। मै वर्धामे ही कार्यसमितिको

---

[1]दिल्ली प्रस्ताव जिसमें सहयोग तथा एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित करनेकी माग की गई थी।

अपने साथ नही रख सका था और इमलिए मै उनसे अलग हो गया।

मुझे यह दीपककी तरह स्पष्ट दीख गया था कि अगर वह लोग मेरी बात स्वीकार नही कर सकते थे तो उनके पास राजाजीकी बात माननेके सिवाय दूसरा चारा ही नही था। सो यद्यपि मै मानता था कि राजाजी सरासर गलती पर है, मैंने उनको उनका प्रयत्न जारी रखनेको उत्तेजन दिया। आदर्श, धैर्य, चतुराई और विरोधियोकी भावनाओके प्रति मान बताकर आखिर उन्होने बहुमत पाया। पाच मदस्य तटस्थ रहे, उन्होने वोट नही दिया। (ह० में०, १३ ७ ४०)

• • • • •

राजाजीके साथ दीर्घकालसे मेरा निकटका परिचय है। मै जानता हू कि वे एक ऐसे वीर पुरुष है कि उनको किसीके सहारेकी जरूरत नही। वे ऐसे अनासक्त है कि बहुत घटे तो छोडो, बहुत मिनट तक भी मानिहानिकी ग्लानि दिलमे नही रख सकते। मै यह भी जानता हू कि उनमे सुदर विनोद-वृत्ति है, इसलिए अगर उनकी कोई हँसी भी करे तो वे बुरा नही मानेंगे। इसलिए मेरा यह इकरार निजी सतोषके लिए ही माना जाय।

मे खुले तौरपर कह चुका हू कि अगर मैने राजाजीको उत्तेजन न दिया होता तो नई दिल्लीमे जो प्रस्ताव उन्होने पेश किया वह न करते। उनकी तीव्र बुद्धि और प्रमाणिकताके लिए मुझे बडा आदर है। इसलिए जब उन्होने एक चौकानेवाले आत्मविश्वासके साथ कहा कि 'इस विषयमे अहिंसाके अर्थ व प्रयोगके बारेमें मेरा अभिप्राय ही सच्चा है, आपका बिलकुल गलत," तो मै अपने अर्थके बारेमे खुद सदिग्ध बन गया और मैने लगाम ढीली छोडकर राजाजीको उनके विचारके अनुसार चलनेको प्रोत्साहित किया। निर्बल आदमी अकस्मातसे ही न्याय करता है। इसके विपरीत मजबूत और अहिसक आदमी अन्याय अकस्मातसे करता है। मैने राजाजीको ऐसी स्थितिमें डाल दिया कि उनकी हँसी हुई और निर्दय टीकाका शिकार उन्हे बनना पडा। मेरे दिलमे शक नही कि नई दिल्लीका

प्रस्ताव रद होनेसे कांग्रेस बड़े खतरेसे बच गई है। लेकिन राजाजी ऐसा नही मानते। वे तो अब भी मानते हैं कि उन्होंने जो किया वही ठीक था। एक नेताके लिए और खास तौरपर जब वह राजाजीकी कोटिके हो, अच्छा नहीं कि उनके किए-कराएपर इस तरह पानी फिर जाय। अगर उनकी चलती तो जो प्रस्ताव आज देशके सामने पेश हुआ है वह भिन्न प्रकारका ही होता और मैं आज कांग्रेसके अदर नही, बाहर ही होता; क्योंकि वर्धा-प्रस्तावके कुदरती परिणामरूप दिल्लीका प्रस्ताव पास होनेसे पहले ही मैं तो कांग्रेससे निकल चुका था।.....

मेरी आशा है कि मैंने जनताको यह साबित करनेके लिए काफी मसाला दे दिया है कि राजाजीने जो कुछ किया उसमें वीरता थी और वह करनेका उन्हें अधिकार था। उसमेंसे जो गलती पैदा हुई उसके लिए जिम्मेदार मैं हूं।

जो अभिप्राय मैंने राजाजीके नई दिल्लीवाले प्रस्तावके बारेमें दिया है, वही मैं उनकी 'स्पोर्टिंग ऑफर' के बारेमें भी रखता हूं। अगर पूनाका प्रस्ताव ठीक मान लिया जाय तो फिर 'स्पोर्टिंग ऑफर' के बारेमें शका नही हो सकती। यह बात याद रखनी चाहिए कि मुस्लिम लीग एक बड़ी सस्था है और हिंदुस्तानकी मुस्लिम प्रजाके ऊपर उसका काफी प्रभाव है। कांग्रेसने इससे पहले उससे काफी व्यवहार किया है, और मुझे जरा भी शक नही है कि वह फिर भी करेगी। हमारे हिसाबसे काइदे आजम चाहे कितनी ही गलतीपर क्यों न हो, हमें चाहिए कि जैसे हम खुद अपनी प्रामाणिकताके बारेमें दावा करते है, वैसे ही उनकी प्रामाणिकताको भी कबूल करें। जब लड़ाईके बादल बिखर जाएगे और हिंदुस्तान अपना आजादीका जन्मसिद्ध अधिकार पा लेगा, तब मुझे शक नही कि कांग्रेसी लोग किसी मुसलमान, सिख, ईसाई या पारसीको अपने प्रधान मंत्रीके तौरपर वैसे ही सहर्ष स्वीकार करेंगे जैसे कि एक हिन्दूको। इतना ही नही, वह कांग्रेसी न भी हो तो भी वैसे ही और किसी प्रकारके धर्म-वर्णके भेद बिना उसे आदर देंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि राजाजीकी तजवीजका यही अर्थ था।

आजकलकी भडकी हुई रागद्वेषादिकी ज्वाला जब ठडी पड जायगी तब राजाजीके टीकाकार मेरे अभिप्रायको स्वीकार करेंगे। एक देशसेवकके बारेमें गलत राय बना लेना उचित नही है और खास तौरपर जब कि वह राजाजीके दर्जेका देशसेवक हो। राजाजीके बारेमें जो उल्टा मत बाधा गया है उससे उन्हें भले ही कुछ भी नुकसान न हुआ हो मगर कौम अपने सच्चे सेवकोंके बारेमें इस तरह उलटा और गलत अभिप्राय बाधकर अपने आपको उनकी सेवासे जरूर वचित करती है और अपने पावपर कुल्हाडी मारती है। (ह० से०, २८ ६ ४०)

• • • •

इसमे कोई शक नही कि राजाजीने आज एक ऐसे कामको हाथमें लिया है, जिसकी वजहसे वे अपने साथियोसे जुदा पड गये है। मगर उनके सख्त-से-सख्त दुश्मन भी उनकी इस प्रवृत्तिमें स्वार्थके उद्देश्यका आरोप उनपर नही लगाएगे। कार्य करनेकी उनकी शक्ति अद्भुत है। वे जिस चीजको हाथमें लेते है, उसीमें अपनेको दुबा देनेकी उनकी तबीयत है। आज जिस तरह वे अपने विचारोका प्रचार करनेमें जुट गये है, वह भी उनके इसी स्वभावका सूचक है। उनकी अनन्यता और उत्साह सराहने योग्य है। इससे उनके प्रति हमारा आदर-भाव और भी बढना चाहिए और वे जो कुछ कहें, उसे अदबके साथ हमें सुनना चाहिए। उनका उद्देश्य ऊचे-से-ऊचा है। हिंदु-मुस्लिम एकताका प्रयत्न एक उच्च वस्तु है और जापानियोंके हमलेसे देशको बचा लेनेका प्रयत्न भी उतनी ही ऊची चीज है। उनकी रायमें ये दोनो चीजें एक-दूसरेके साथ गुथी हुई हैं।

गुडापन राजाजीकी दलीलोका कोई जवाब नही। उनकी सभाओमें हुल्लडबाजी करना घोर असहिष्णुताका एक चिह्न है। अगर हम दूसरे पक्षको सुननेके लिए तैयार न हुए तो लोकतत्रवादका विकास होना असभव है। इसलिए उन तमाम लोगोमे जो राजाजीकी सभाओमें हुल्लड-

बाजी करते हैं, मेरा नम्र निवेदन है कि वे आइंदा ऐसा न करें; बल्कि उनकी बातोंको वे उस ध्यान और धीरजसे सुनें जिसके कि वे योग्य हैं।

पाठक मेरी इस मान्यताको जानते हैं कि राजाजी गलतीपर हैं। वे एक मिथ्या चीजका वातावरण पैदा कर रहे हैं। वे खुद पाकिस्तानको नहीं मानते और न वे राष्ट्रवादी मुसलमान या दूसरे लोग ही मानते हैं, जो अलग होनेके अधिकारको स्वीकार करना चाहते हैं। परन्तु इन सब लोगोंका कहना है कि मुस्लिम लीगसे उसकी अलग होनेकी माग छुडवानेका यही एक रास्ता है। मुझे आश्चर्य होता है कि बहुतसे मुसलमान एक ऐसी स्वीकृतिसे खुश हो रहे हैं, जिसकी कुछ भी कीमत होनेके बारेमें शका है।

अगर वे तमाम लोग, जो मानते हैं कि आज और हमेशाके लिए हिंदुस्तान ही उनका वतन है, उसे उपस्थित सकटसे और आगे सिरपर मंडराते हुए खतरेसे बचानेमें अपना पूरा हिस्सा अदा करें, तो इन दोनो भयोंके पूरी तरह मिट जानेके बाद वह समय आयेगा, जब हम पाकिस्तानकी या दूसरे 'स्तानो' की भी बातें करेगे और या तो सुलह और शातिके साथ या लडकर इसका फैसला कर लेंगे। कोई तीसरा पक्ष हमारी किस्मतका फैसला नहीं कर सकता और न उसे इसका अधिकार ही है। इसका फैसला या तो दलीलसे होगा, या तलवारसे। राजाजीका सराहनीय और देश-भक्तिपूर्ण आग्रह अगर दूसरा कोई ऐसा रास्ता खोल दे जिसका खुद उन्हें या और किसीको भी ज्ञान नहीं, तो बात दूसरी है। नहीं तो उनका तरीका हमें एक ऐसी अधीगलीमें ले जाकर छोडेगा कि जिसमें न आगे जानेका रास्ता है और न पीछे हटनेकी गुजाइश। मगर हमारे बीच इन बातोंमें मतभेदका कुछ भी नतीजा क्यों न हो, मेरी विनती तो आपसी सहिष्णुता और आदरभावके लिए है। (ह० से०, ३१५४२)

* * *

राजाजीकी माटुगा (बबई) वाली सभामें जो हुल्लडबाजी हुई, उसका विवरण पढनेसे दिलको चोट पहुचती है। क्या राजाजी अब

किसी तरहके सम्मानके अधिकारी ही नही रहे, और सो भी इसलिए कि उन्होने एक ऐसे विचारको अपनाया है, जो लोकमतके विरुद्ध जान पडता है ? वे निमत्रण पाकर ही माटुगा गये थे। जनताको उनकी वात शाति-पूर्वक सुननी चाहिए थी। जो उनके विचारोसे सहमत नही थे, वे उस सभामें अनुपस्थित रह सकते थे; लेकिन सभामें शामिल होनेके वाद तो उनका यह कर्तव्य था कि वे उनकी वात चुपचाप सुनें। हा, सभा समाप्त होनेपर वे उनसे प्रश्न पूछ सकते थे और जिरह कर सकते थे। उनपर कोलतार छिडकने और सभा में गड्वडी मचानेवालोने अपने हाथो अपना अपमान किया है और अपने कार्यको हानि पहुचाई है। उनका तरीका न तो स्वराज्य-प्राप्तिका तरीका है, न 'अखड हिंदुस्तान' की स्थापनाका तरीका है। आशा है, माटुगाकी यह वर्वरता, हुल्लडवाजी अपने ढगकी आखिरी चीज होगी। इस अवसरपर जो राजाजीकी कसौटीका अवसर था, उन्होंने जिस दृढता, खामोशी, खुशमिजाजी और हाजिर-जावावीका परिचय दिया, वह उनके अनुरूप ही था। अपने इन गुणोके कारण राजाजीको नये अनुयायी चाहे न मिलें, उनके प्रशसकोकी सख्या तो वढी ही होगी, क्योकि जनता आमतौरपर किसी चर्चास्पद समस्याकी तहमे नही पैठा करती। वह तो स्वभावसे वीरपूजक होती है, और राजाजीमें वीरोचित गुणोकी कमी कभी रही नही। (ह० से०, ५.७४२)

• •

पलनीसे लौटते हुए श्री राजाजी और श्री गोपालस्वामीके खिलाफ एक खत मुझे दिया गया। उसमें यह भी लिखा था कि ये दोनो मेरे पास लोगोको नही आने देते, जिन्हें इनसे शिकायत है। मैं जानता हू कि यह सच नही। तो भी जो मुझसे महत्वकी वात करना या मुझे लिखना चाहे, उसे कोई भी रोक नही सकता। इस खतका मेरे पास पहुचना ही यह प्रमाणित करता है। श्री कामराज नादर मेरे साथ स्पेशल रेलमें थे। पलनीके मदिरमे भी वे मेरे साथ रहे। लेकिन इसमे कोई शक नही कि

यात्रामे राजाजी और गोपालस्वामी मेरे बहुत ही समीप थे। यात्राका प्रबंध उन्होने किया था। राजाजी मेरे सबसे पुराने मित्रोमेंसे है और कहा जाता था कि अपने जीवनमें मेरे आदर्शोका पालन वे ही सबसे बढकर करते थे। मै जानता हू कि १९४२ में उनका मुझसे मतभेद हुआ। मेरे दिलमें उनके लिए इस बातका आदर है कि उन्होने खुली सभामें मेरा विरोध किया। वे बडे समाज-सुधारक है और जो मानते है, उसे निडर होकर करते है। उनकी दयानतदारी और राजनैतिक बुद्धिमानी-से कोई इन्कार नही कर सकता। इसलिए दुःखकी बात है कि उनके विरुद्ध आज एक गुट बन गया है और मद्रासके कांग्रेसी हल्कोमे इस गुटका असर है। लेकिन आम जनताका प्रेम राजाजीके साथ है। मै इतना मूर्ख या इतना घमडी नही हू कि यह न समझ पाऊ कि यात्राके रास्तेमें दर्शनके लिए जो जनता लाखोकी सख्यामें जमा हुई थी उसका कारण बहुत हद तक राजाजीका प्रभाव ही था। दक्षिण देशके कांग्रेसी वही करें, जो उनकी रायमें ठीक हो, लेकिन मै अपना कर्तव्य समझता हू कि उन्हें चेतावनी दू कि वे राजाजीकी सेवाको इस वक्त हाथमे जाने न दें, क्योकि दूसरा कोई उनकी तरह उसे कर नही सकेगा। (ह० से०, १० २.४६)

: १७० :

राजेन्द्रप्रसाद

बृजकिशोरबाबू और राजेन्द्रबाबूकी जोडी अद्वितीय थी। उन्होने प्रेमसे मुझे ऐसा अपग बना दिया था कि उनके बिना मै एक कदम भी आगे न रख सकता था। (आ० क०)

मेरे साथ काम करनेवालोमें राजेन्द्रप्रसाद सबसे अच्छोमें एक है। वे जब कभी चाहें मुझे सेवाके लिए बुला सकते हैं। हरिजन-कार्य उनका उतना ही है जितना मेरा और उसी तरह बिहारका काम मेरा उतना ही है जितना उनका; परन्तु परमात्माने उन्हें बिहारकी सहायता के लिए बुलाया है, जिस तरह मुझे उसने हरिजन कार्यके लिए बुलाया है। ('देशपूज्य श्री राजेन्द्रप्रसाद')

. . . . . .

यह पुस्तक पूरी तो मैं नहीं पढ सका हू। लेकिन इतना जान सका हू कि यह राजेन्द्रबाबूके जीवनका सरल वर्णन है। जाच करनेपर मुझे प्रतीति हुई है कि इस पुस्तकमें जो हकीकत दी गई है वह सब सच है, कोई अतिशयोक्ति नही है। राजेन्द्रबाबूके पवित्र चरित्रको पढ़कर कौन कृतार्थ नही होगा। ('देशपूज्य श्री राजेन्द्रप्रसाद')

. . . .

राजेन्द्रबाबू हमारे उत्कृष्ट सहकारियोंमेसे हैं। ('राष्ट्रवाणी,') (३ १२.४५)

. . . .

राजेन्द्रबाबूका त्याग हमारे देशके लिए गौरवकी वस्तु है। नेतृत्वके लिए इन्हींके समान आचरण चाहिए। राजेन्द्रबाबू जैसा विनम्रतापूर्वक व्यवहार है और प्रभाव है वैसा कही भी किसी भी नेताका नहीं है। ('राष्ट्रवाणी')

: १७१ :

महादेव गोविन्द रानडे

जैसा कि स्व० गोखले कहा करते थे, रानडेकी तीक्ष्ण दृष्टिसे एक भी चीज नही बची थी और जिस चीजसे उनके देशवासियोको यत्किंचित् भी लाभ पहुच सकता था, उसे उन्होने कभी अपने मनमें नगण्य नही समझा। (हि० से०, २७ ६ ३५)

: १७२ :

रमाबाई रानडे

रमाबाई रानडेका नाम जितना दक्षिणमें प्रसिद्ध है उतना हिंदुस्तानमें नही। इस देवीने स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानडेके नामको सुशोभित कर दिया है। उनकी मृत्युसे हिंदू ससारको बड़ी हानि हुई है।

रमाबाईने अपने वैधव्यको जिस प्रकार सुशोभित किया है उस प्रकार बहुत कम बहनोने किया होगा। पूनाके सेवासदनमें एक हजार लड़कियां और स्त्रिया अनेक प्रकारकी शिक्षा प्राप्त करती है। यह सेवा सदन आज जिस गौरवको प्राप्त हुआ है वह रमाबाईकी अनन्य भक्तिके बिना उसे कभी न प्राप्त हो पाता। रमाबाईने एक ही कार्यके लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया था।

वैधव्यका अर्थ ही है अनन्य भक्ति। पातिव्रतके मानी है शुद्ध वफादारी। मामूली वफादारीका सबध देहके साथ है। अतएव देहके साथ ही उसका अन्त हो जाता है। वैधव्यमें जो वफादारी है वह आत्माके प्रति है।

वैधव्यको धर्म स्थान देकर हिंदूधर्मने यह सिद्ध कर दिया है कि विवाह वास्तवमे शरीरका नही, वल्कि आत्माका होता है। रमावाईने रानडेकी आत्माके साथ विवाह किया था। अतएव उन्होने उस आत्म सबधको अखडित रखा। और इसीलिए रमावाईने उन कामोमें जो रानडेको प्रिय थे, अपनेसे होने लायक एक कामको उठा लिया है और उसमें अपना सर्वस्व लगाकर वैधव्यका पूरा अर्थ समाजको समझाया। ऐसा करके रमावाईने स्त्री जातिकी भारी सेवा की है। जब मैं सासून अस्पतालमें था तव कर्नल मैडकने मुझसे कहा था कि अच्छी हिंदुस्तानी दाई केवल इसी अस्पतालमें शिक्षा पाती है। ये तमाम दाइया सेवासदनके द्वारा तैयार होती है और उनकी माग सारे हिंदुस्तानसे आती है। विधवाए यदि कार्यक्षेत्रमें उतरें तो अच्छे काम करनेके अनेक स्थान उनके लिए हैं। केवल चरखेका ही काम इतना है कि वह सैकडो विधवाओका सारा समय ले सकता है। और यह अनुभव किस विधवाको नही हुआ कि चरखा गरीवोका रखवाला है! यह तो मैंने एक ऐसा काम सुझाया जो सर्वव्यापक और परम कल्याणकारी है। ऐसे अनेक काम है, जिनमे धनिक विधवाए गरीव विधवाओ तथा अन्य वहनोको तैयार करनेमें अपना समय लगा सकती हैं। (हिं० न०, ४ ५ २४)

: १७३ :

श्रीमद् राजचन्द्रभाई

मेरे जीवनपर श्रीमद् राजचन्द्रभाईका ऐसा स्थायी प्रभाव पडा है कि मैं उसका वर्णन नही कर सकता। उनके विषयमें मेरे गहरे विचार है। मैं कितने ही वर्षोसे भारतमें धार्मिक पुरुषोकी शोधमें हू, परतु मैंने ऐसा

धार्मिक पुरुष भारतमें अबतक नहीं देखा, जो श्रीमद्राजचंद्रभाईके साथ प्रतिस्पर्धा कर सके। उनमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति थी, ढोंग, पक्षपात या राग-द्वेष न थे। उनमें एक ऐसी महान् शक्ति थी जिसके द्वारा वे प्राप्त हुए प्रसंगका पूर्ण लाभ उठा सकते थे। उनके लेख अंग्रेज तत्व-ज्ञानियोंकी अपेक्षा भी विचक्षण, भावनामय और आत्मदर्शी हैं। यूरोपके तत्व-ज्ञानियोंमें मैं टाल्स्टायको पहली श्रेणीका और रस्किनको दूसरी श्रेणीका विद्वान् समझता हू, परंतु श्रीमद्राजचंद्रभाईका अनुभव इन दोनोंसे भी बढा-चढा था। इन महापुरुषोंके जीवनके लेखोंको अवकाशके समय पढेंगे तो आप पर उनका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा। वे प्राय कहा करते थे कि मैं किसी वाडेका नहीं हू और न किसी वाडेमें रहना ही चाहता हू। यह सब तो उपधर्म—मर्यादित—है और धर्म तो असीम है कि जिसकी व्याख्या हो ही नहीं सकती। ये अपने जवाहरातके धंधेसे विरक्त होते कि तुरत पुस्तक हाथमें लेते। यदि उनकी इच्छा होती तो उनमें ऐसी शक्ति थी कि वे एक अच्छे प्रतिभाशाली बैरिस्टर, जज या वाइसराय हो सकते थे। यह अतिशयोक्ति नहीं, किंतु मेरे मनपर उनकी छाप है। इनकी विचक्षणता दूसरेपर अपनी छाप लगा देती थी। (राजचंद्र-जयंती, अहमदाबादमें सभापति-पदसे दिया गया भाषण)

मेरे जीवनपर मुख्यतासे श्रीमद्राजचंद्रकी छाप पड़ी है। महात्मा टाल्स्टाय और रस्किनकी अपेक्षा भी श्रीमदराजचंद्रने मुझपर गहरा प्रभाव डाला है। (राजचंद्र-जयंती, वढवाणके भाषणसे)

• • • • • • •

जिनका पुण्य-स्मरण करनेके लिए हम लोग आए हुए हैं, उनके हम लोग पुजारी हैं। मैं भी उनका पुजारी हू।

वे दयाधर्मकी मूर्ति थे। उन्होंने दयाधर्म समझा था और उसे अपने जीवनमें उतारा था।

मैने यह बहुत बार कहा और लिखा है कि मैने अपने जीवनमें बहुतोसे बहुत कुछ ग्रहण किया है। पर सबसे अधिक यदि मैंने किसीके जीवनमें-से ग्रहण किया हो तो वह कविश्री (श्रीमद् राजचद्र) के जीवनमेंसे ग्रहण किया है। दया-धर्म भी मैने उन्हीके जीवनमेंसे सीखा है।

बहुत-से प्रसगोमें तो हमें जड होकर वैसी ही प्रवृत्ति करनी चाहिए। शुद्ध जड और चैतन्यमें भेद नहीके बराबर है। सारा जगत जड़रूप ही देख पडता है। आत्मा तो कभी क्वचित् ही प्रकाशित होता है। ऐसा व्यवहार अलौकिक पुरुषोका होता है और यह मैने देखा है कि ऐसा व्यवहार श्रीमद् राजचद्रभाईका था।

वे बहुत बार कहा करते थे कि मेरे शरीरमें चारो ओरसे कोई बरछी भोक दे तो मै उसे सह सकता हू, पर जगतमें जो झूठ, पाखड, अत्याचार चल रहा है, धर्मके नामसे जो अधर्म हो रहा है उसकी बरछी मुझसे सही नही जाती। अत्याचारोसे उन्हें अकुलाते मैंने बहुत बार देखा है। वे सारे जगतको अपने कुटुबके जैसा समझते थे। अपने भाई या बहनकी मौतसे जितना दुख हमें होता है उतना ही दुख उन्हें ससारमें दुख और मृत्यु देखकर होता था।. .

राजचद्रभाईका शरीर जो इतनी छोटी उम्रमें छूट गया इसका कारण भी मुझे यही जान पडता है। यह ठीक है कि उनके शरीरमें दर्द घर किए हुए था, पर जगतके तापका जो दर्द उन्हें था वह उनके लिए असह्य था। उनके देहमें केवल शारीरिक ही दर्द होता तो उसे उन्होने अवश्य जीत लिया होता, पर उन्हें तो जान पडा कि ऐसे विषम कालमें आत्म-दर्शन कैसे हो सकता है, यह दया-धर्मकी निशानी है।

वे कहा करते थे कि जैनधर्म श्रावकोके हाथोमें न गया होता तो इसके तत्वोको देखकर जगत चकित हो जाता। ये बनिये लोग तो जैन-धर्मको गदला कर रहे है। ये लोग कीडीनगरा पूरते है। मुहमें कभी मच्छर चला जाय तो इन्हें दुख होता है। ऐसी छोटी-छोटी धर्म-क्रियाओको

ये लोग पालते है। यह धर्म-क्रियाका पालन इनके लिए अच्छा है। पर जो लोग यह समझते है कि ऐसी क्रियाओका पालन ही धर्मकी परिसीमा है वे धर्मकी नीची-से-नीची श्रेणीमे ही है। यह धर्म पतितोका है, पुण्य-वानोका नही है। इसी परसे बहुतसे श्रावक कहते है कि राजचद्रको धर्म-का मान नही था। वे दभी थे, अहकारी थे। पर मै खुद तो जानता हू कि दभ या अहकारका उनमें नाम भी न था। (राजचद्र-जयती, अहमदा-बादमें दिया गया भाषण १५ ११ २१)

. .

बबई-बदरपर समुद्र क्षुब्ध था। जून-जुलाईमें हिंद-महासागरमें यह कोई नई बात नही होती। अदनसे ही समुद्रका यह हाल था। सब लोग बीमार पड गये थे—अकेला मै मौजमें रहा था। तूफान देखनेके लिए डेकपर रहता और भीग भी जाता।

माताजीके दर्शन करनेके लिए मैं अधीर हो रहा था। जब हम डॉक-पर पहुचे तो मेरे बडे भाई वहा मौजूद थे। उन्होने डाक्टर मेहता तथा उनके बडे भाईसे जान-पहचानकर ली थी। डाक्टर चाहते थे कि मैं उन्हीके घर ठहरू, सो वह मुझे वही लिवा ले गये। इस तरह विलायतमें जो सबध बधा था वह देशमें भी कायम रहा। यही नही, बल्कि अधिक दृढ होकर दोनो परिवारोमें फैला।

डाक्टर मेहताने अपने घरके जिन लोगोसे परिचय कराया, उनमेंसे एकका जिक्र यहा किए बिना नही रह सकता। उनके भाई रेवाशकर जगजीवनके साथ तो जीवनभरके लिए स्नेह-गाठ बध गई, परतु जिसकी बात मै कहना चाहता हू वह तो है कवि रायचद्र अथवा राजचद्र। वह डाक्टर साहबके बडे भाईके दामाद थे और रेवाशकर जगजीवनकी दूकानके भागीदार तथा कार्यकर्ता थे। उनकी अवस्था उस समय २५ वर्षसे अधिक न थी। फिर भी पहली ही मुलाकातमें मैंने यह देख लिया कि वह चरित्रवान् और ज्ञानी थे। वह शतावधानी माने जाते थे। डाक्टर

मेहताने कहा कि इनके शतावधानका नमूना देखना। मैंने अपने भाषा-ज्ञानका भंडार खाली कर दिया और कविजीने मेरे कहे तमाम शब्दोंको उसी नियमसे कह सुनाया, जिस नियमसे मैंने कहा था। इस सामर्थ्यपर मुझे ईर्ष्या तो हुई, किंतु उसपर मैं मुग्ध न हो पाया। जिस चीजपर मैं मुग्ध हुआ उसका परिचय तो मुझे पीछे जाकर हुआ। वह था उनका विशाल शास्त्रज्ञान, उनका निर्मल चरित्र और आत्म-दर्शन करनेकी उनकी भारी उत्कंठा। मैंने आगे चलकर तो यह भी जाना कि केवल आत्मदर्शन करनेके लिए वह अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे।

हसतां रमतां प्रगट हरि देखूं रे
मारुं जीव्यु सफल तव लेखूं रे;
मुक्तानंद नो नाथ विहारी रे
ओधा जीवनदोरी अमारी रे।[1]

मुक्तानंदका यह वचन उनके जबानपर तो रहता ही था, पर उनके हृदयमें भी अंकित हो रहा था।

खुद हजारोंका व्यापार करते, हीरे-मोतीकी परख करते, व्यापारकी गुत्थियां सुलझाते, पर वे बातें उनका विषय न थीं। उनका विषय, उनका पुरुषार्थ तो आत्म-साक्षात्कार—हरिदर्शन—था। दुकानपर और कोई चीज हो या न हो, एक-न-एक धर्म-पुस्तक और डायरी जरूर रहा करती। व्यापारकी बात जहां खतम हुई कि धर्म-पुस्तक खुलती अथवा रोजनामचेपर कलम चलने लगती। उनके लेखोंका संग्रह गुजरातीमें प्रकाशित हुआ है। उसका अधिकांश इस रोजनामचेके ही आधारपर लिखा गया है। जो मनुष्य लाखोंके सौदेकी बात करके तुरंत

---

[1]भावार्थ यह कि मैं अपना जीवन तभी सफल समझूंगा, जब मैं हँसते-खेलते ईश्वरको अपने सामने देखूंगा। निश्चय-पूर्वक वही मुक्तानंदकी जीवन-डोरी है। —अनु०

आत्मज्ञानकी गूढ बातें लिखने बैठ जाता है वह व्यापारीकी श्रेणीका नही, बल्कि शुद्ध ज्ञानीकी कोटिका है। उनके सबंधमें यह अनुभव मुझे एक बार नही, अनेक बार हुआ है। मैंने उन्हें कभी गाफिल नही पाया। मेरे साथ उनका कुछ स्वार्थ न था। मै उनके बहुत निकट समागममें आया हू। मै उस वक्त एक ठलुवा बैरिस्टर था। पर जब मै उनकी दूकानपर पहुच जाता तो वह धर्म-वार्ताके सिवा दूसरी कोई बात न करते। इस समय तक मै अपने जीवनकी दिशा न देख पाया था। यह भी नही कह सकते कि धर्म-वार्ताओमे मेरा मन लगता था। फिर भी मै कह सकता हू कि रायचद्रभाईकी धर्म-वार्ता मै चावसे सुनता था। उनके बाद मै कितने ही धर्माचार्योके सपर्कमें आया हू, प्रत्येक धर्मके आचार्योसे मिलनेका मैने प्रयत्न भी किया है, पर जो छाप मेरे दिल-पर रायचदभाईकी पड़ी, वह किसी की न पड सकी। उनकी कितनी ही बातें मेरे ठेठ अंतस्तलतक पहुच जाती। उनकी बुद्धिको मै आदरकी दृष्टि-से देखता था। उनकी प्रामाणिकतापर भी मेरा उतना ही आदर-भाव था और इसमें मै जानता था कि वह जान-बूझकर उल्टे रास्ते नही ले जायगे एव मुझे वही बात कहेंगे, जिसे वह अपने जीमे ठीक समझते होगे। इस कारण मै अपनी आध्यात्मिक कठिनाइयोमे उनकी सहायता लेता।

रायचदभाईके प्रति इतना आदर-भाव रखते हुए भी मै उन्हे धर्मगुरुका स्थान अपने हृदयमें न दे सका। धर्म-गुरुकी तो खोज मेरी अबतक चल रही है।

हिंदू-धर्ममे गुरुपदको जो महत्व दिया गया है उसे मै मानता हू। 'गुरु बिन होत न ज्ञान' यह वचन बहुताशमे सच है, अक्षर-ज्ञान देनेवाला शिक्षक यदि अधकचरा हो तो एक बार काम चल सकता है। परतु आत्मदर्शन करनेवाले अधूरे शिक्षकसे हरगिज काम नही चलाया जा सकता।

इसीलिए रायचदभाईको मै यद्यपि अपने हृदयका स्वामी न बना सका,

तथापि हम आगे चलकर देखेंगे कि उनका सहारा मुझे समय-समयपर कैसा मिलता रहता है। यहा तो इतना ही कहना बस होगा कि मेरे जीवनपर गहरा असर डालनेवाले तीन आधुनिक मनुष्य है—रायचदभाईने अपने सजीव ससर्गसे, टॉल्स्टायने 'स्वर्ग तुम्हारे हृदयमें है' नामक पुस्तक द्वारा तथा रस्किनने 'अनटु दिस लास्ट'—'सर्वोदय' नामक पुस्तकमे मुझे चकित कर दिया है। (आ० क०, १९२७)

... ...

ईसाको मैं त्यागी, महात्मा, दैवी शिक्षक मान सकता था, परतु एक अद्वितीय पुरुष नही। ईसाकी मृत्युसे ससारको एक भारी उदाहरण मिला; परतु उसकी मृत्युमें कोई गुह्य चमत्कार-प्रभाव था, इस बातको मेरा हृदय न मान सकता था। ईसाईयोके पवित्र जीवनमेंसे मुझे कोई ऐसी बात न मिली जो दूसरे धर्मवालोके जीवनमे न मिलती थी। उनकी तरह दूसरे धर्मवालोके जीवनमें भी परिवर्तन होता हुआ मैंने देखा था। सिद्धातकी दृष्टिसे ईसाई-सिद्धातोमें मुझे अलौकिकता न दिखाई दी। त्यागकी दृष्टिसे हिंदू-धर्मवालोका त्याग मुझे बढकर मालूम हुआ। अत ईसाई-धर्मको मैं सपूर्ण अथवा सर्वोपरि धर्म न मान सका।

अपना यह हृदय-मथन मैंने, समय पाकर ईसाई मित्रोके सामने रखा। उसका जवाब वे सतोषजनक न दे सके।

परतु एक ओर जहा मैं ईसाई-धर्मको ग्रहण न कर सका वहा दूसरी ओर हिंदू-धर्मकी सपूर्णता अथवा सर्वोपरिताका भी निश्चय मैं इस समय तक न कर सका। हिंदू-धर्मकी त्रुटिया मेरी आखोके सामने घूमा करती। अस्पृश्यता यदि हिंदू-धर्मका अग हो तो वह मुझे सडा हुआ अथवा बढा हुआ मालूम हुआ। अनेक सप्रदायो और जात-पातका अस्तित्व मेरी समझमे न आया। वेद ही ईश्वर-प्रणीत है, इसका क्या अर्थ? वेद यदि ईश्वर-प्रणीत है तो फिर कुरान और बाइबिल क्यो नही?

जिस प्रकार ईसाई मित्र मुझपर असर डालनेका उद्योग कर रहे थे,

उसी प्रकार मुसलमान मित्र भी कोशिश कर रहे थे। अब्दुल्ला सेठ मुझे इस्लामका अध्ययन करनेके लिए ललचा रहे थे। उसकी खूबियोकी चर्चा तो वह हमेशा करते रहते।

मैंने अपनी दिक्कतें रायचदभाईको लिखी। हिंदुस्तानमें दूसरे धर्म-शास्त्रियोने भी पत्र-व्यवहार किया। उनके उत्तर भी आये, परतु राय-चदभाईके पत्रने मुझे कुछ शाति दी। उन्होने लिखा कि धीरज रखो और हिंदू-धर्मका गहरा अध्ययन करो। उनके एक वाक्यका भावार्थ यह था—"हिंदू-धर्ममें जो सूक्ष्म और गूढ विचार है, जो आत्माका निरीक्षण है, दया है, वह दूसरे धर्ममें नही है—निष्पक्ष होकर विचार करते हुए मैं इस परिणामपर पहुचा हू।"

....मेरा अध्ययन मुझे ऐसी दिशामें ले गया जिसे ईसाई मित्र न चाहते थे। एडवर्ड मेटलैडके साथ मेरा पत्र-व्यवहार काफी समयतक रहा। कवि (रायचद) के साथ तो अततक रहा। उन्होने कितनी ही पुस्तके भेजी। उन्हें भी पढ गया। उनमें 'पचीकरण, 'मणिरत्नमाला', 'योगवाशिष्ठ' का मुमुक्षु-प्रकरण, हरिभद्र सूरिका 'षड्दर्शनसमुच्चय' इत्यादि थे। (आ० क० १६२७)

• •

मैं जिनके पवित्र सस्मरण लिखना आरभ करता हू, उन स्वर्गीय राजचद्रकी आज जन्मतिथि है। कार्तिक पूर्णिमा सवत् १६७६ को उनका जन्म हुआ था। मैं कुछ यहा श्रीमद्‌राजचद्रका जीवनचरित नही लिख रहा हू। यह कार्य मेरी शक्तिके बाहर है। मेरे पास सामग्री भी नही। उनका यदि मुझे जीवनचरित लिखना हो तो मुझे चाहिए कि मैं उनकी जन्मभूमि ववाणीआ बदरमें कुछ समय बिताऊ, उनके रहनेका मकान देखू, उनके खेलने-कूदनेके स्थान देखू, उनके बालमित्रोसे मिलू, उनकी पाठशालामें जाऊ, उनके मित्रो, अनुयायियो और सगे-सबधियोसे मिलू और उनसे जानने योग्य बातें जानकर ही फिर कही

लिखना आरभ करू। परतु इनमेसे मुझे किसी भी बातका परिचय नही।

इतना ही नही, मुझे सस्मरण लिखनेकी अपनी शक्ति और योग्यताके विषयमें भी शका है। मुझे याद है, मैंने कई बार ये विचार प्रकट किए है कि अवकाश मिलनेपर उनके सस्मरण लिखूगा। एक शिष्यने जिनके लिए मुझे बहुत मान है, ये विचार सुने और मुख्यरूपसे यहा उन्हीके सतोषके लिए यह लिखा है। श्रीमद्राजचद्रको मै 'रायचद्रभाई' अथवा 'कवि' कहकर प्रेम और मानपूर्वक सबोधन करता था। उनके सस्मरण लिखकर उनका रहस्य मुमुक्षुओके समक्ष रखना मुझे अच्छा लगता है। इस समय तो मेरा प्रयास केवल मित्रोके सतोषके लिए है। उनके सस्मरणोके साथ न्याय करनेके लिए मुझे जैन-मार्गका अच्छा परिचय होना चाहिए। मै स्वीकार करता हू कि वह मुझे नही है। इसलिए मै अपना दृष्टि-बिंदु अत्यत सकुचित रखूगा। उनके जिन सस्मरणोकी मेरे जीवन पर छाप पडी है, उनके नोट्स और उनसे जो मुझे शिक्षा मिली है, इस समय उसे ही लिखकर मै सतोष मानूगा। मुझे आशा है कि उनसे जो लाभ मुझे मिला है वह या वैसा ही लाभ उन सस्मरणोके पाठक मुमुक्षुओको भी मिलेगा।

मुमुक्षु शब्दका मैंने यहा जान बूझकर प्रयोग किया है। सब प्रकारके पाठकोके लिए यह प्रयास नही।

मेरे ऊपर तीन पुरुषोंने गहरी छाप डाली है: टॉल्टाय, रस्किन और रायचदभाई। टाल्स्टायने अपनी पुस्तको द्वारा और उनके साथ थोडे पत्र-व्यवहारसे, रस्किनने अपनी एक ही पुस्तक 'अनटु दिस लास्ट' से जिसका गुजराती नाम मैंने 'सर्वोदय' रक्खा है और रायचदभाईने अपने साथ गाढ परिचयसे। जब मुझे हिंदूधर्ममें शका पैदा हुई उस समय उसके निवारण करनेमे मदद करनेवाले रायचदभाई थे। सन १८९३ में दक्षिण अफ्रीकामे मै क्रिश्चियन सज्जनोके विशेष सम्पर्कमे आया।

उनका जीवन स्वच्छ था। वे चुस्त धर्मात्मा थे। अन्य धर्मियोको क्रिश्चियन होनेके लिये समझाना उनका मुख्य व्यवसाय था। यद्यपि मेरा और उनका सबंध व्यावहारिक कार्यको लेकर ही हुआ था तो भी उन्होने मेरी आत्माके कल्याणके लिए चिंता करना शुरू कर दिया। उस समय मै अपना एक ही कर्तव्य समझ सका कि जबतक मै हिंदूधर्मके रहस्यको पूरी तौरसे न जान लू और उससे मेरी आत्माको असतोष न हो जाय तबतक मुझे अपना कुलधर्म कभी न छोडना चाहिए। इसलिए मैने हिंदूधर्म और अन्य धर्मोकी पुस्तकें पढना शुरू कर दी। क्रिश्चियन और मुसलमानी पुस्तकें पढी। विलायतके अग्रेज मित्रोके साथ पत्र-व्यवहार किया। उनके समक्ष अपनी शकाए रक्खी तथा हिंदुस्तान-में जिनके ऊपर मुझे कुछ भी श्रद्धा थी उनसे पत्र-व्यवहार किया। उन मे रायचदभाई मुख्य थे। उनके साथ तो मेरा अच्छा सबध हो चुका था। उनके प्रति मान भी था। इसलिए जो मिल सके उनसे लेनेका मैने विचार किया। उसका फल यह हुआ कि मुझे शांति मिली। हिंदूधर्ममें मुझे जो चाहिए वह मिल सकता है, ऐसा मनको विश्वास हुआ। मेरी इस स्थितिके जवाबदार रायचदभाई हुए। इसंसे मेरा उनके प्रति कितना अधिक मान होना चाहिए, इसका पाठक लोग कुछ अनुमान कर सकते है।

इतना होनेपर भी मैने उन्हे धर्मगुरु नही माना। धर्मगुरुकी तो मै खोज किया ही करता हू। और अबतक मुझे सबके विषयमे यही जवाब मिला है कि ये नही। ऐसा सपूर्ण गुरु प्राप्त करनेके लिए तो अधिकार चाहिए। वह मै कहासे लाऊ ?

× × ×

रायचन्दभाईके साथ मेरी भेंट जुलाई सन् १८९१ में उस दिन हुई जब मै विलायतसे बम्बई वापस आया। इन दिनो समुद्रमें तूफान आया करता है, इस कारण जहाज रातको देरीमे पहुचा। मै डाक्टर—बैरिस्टर—और अब रगूनके प्रख्यात झवेरी प्राणजीवनदास मेहताके घर उतरा था।

रायचदभाई उनके वडे भाईके जमाई होते थे। डाक्टर साहवने ही परिचय कराया। उनके दूसरे वड़े भाई झवेरी रेवाशकर जगजीवनदासकी पहचान भी उसी दिन हुई। डाक्टर साहवने रायचदभाईका 'कवि' कहकर परिचय कराया और कहा, "कवि होते हुए भी आप हमारे साथ व्यापारमें है। आप ज्ञानी और शतावधानी है।" किसीने सूचना की कि मै उन्हें कुछ शब्द सुनाऊ और वे शब्द चाहे किसी भी भाषा के हो, जिस क्रमसे मै वोलूगा उसी क्रमसे वे दुहरा जावेगे। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ। मै तो उस समय जवान और विलायतसे लौटा था। मुझे भाषाज्ञानका भी अभिमान था। मुझे विलायतकी हवा भी कुछ कम न लगी थी। उन दिनो विलायतसे आया मानो आकाशसे उतरा। मैने अपना समस्त ज्ञान उलट दिया। और अलग-अलग भाषाओके शब्द पहले तो मैने लिख लिए; क्योकि मुझे वह क्रम कहा याद रहनेवाला था और वादमें उन शब्दोको मै वाच गया। उसी क्रमसे रायचदभाईने धीरेसे एककेवाद एक सब शब्द कह सुनाए। मै राजी हुआ, चकित हुआ और कविकी स्मरण-शक्तिके विषयमे मेरा उच्च विचार हुआ। विलायतकी हवा कम पडनेके लिए कहा जा सकता है कि यह सुदर अनुभव हुआ।

कविको अग्रेजी ज्ञान विलकुल न था। उस समय उनकी उमर पच्चीससे अधिक न थी। गुजराती पाठशालामे भी उन्होने थोडा ही अभ्यास किया था। फिर भी इतनी शक्ति, इतना ज्ञान और आसपाससे इतना उनका मान! इससे मै मोहित हुआ। स्मरणशक्ति पाठशालामें नही विकती और ज्ञान भी पाठशालाके वाहर, यदि इच्छा हो—जिज्ञासा हो—तो मिलता तथा मान पानेके लिए विलायत अथवा कही भी नही जाना पडता परतु गुणको मान चाहिए तो मिलता है—यह पदार्थपाठ मुझे बवई उतरते ही मिला।

कविके साथ यह परिचय वहुत आगे वढा। स्मरणशक्ति बहुत लोगोकी तीव्र होती है, इसमे आश्चर्यकी कुछ वात नही। शास्त्रज्ञान भी

बहुतोमें पाया जाता है; परतु यदि वे लोग सस्कारी न हो तो उनके पास फूटी कौडी भी नही मिलती। जहा सस्कार अच्छे होते है वही स्मरण-शक्ति और शास्त्रज्ञान सबध शोभित होता है और जगतको शोभित करता है। कवि सस्कारी ज्ञानी थे।

× × ×

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे, क्यारे थईशुं बाह्यातर निर्ग्रंथ जो,
सर्व संबंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने, विचरशुं कव महत्पूरुषने पंथ जो ?
सर्व भाव थी औदासीन्य वृत्ति करी, मात्र देश ते सयमहेतु होय जो,
अन्य कारणे अन्य कशु कल्पे नहि, देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो....
अपूर्व०

रायचदभाईकी १८वर्षकी उमरके निकले हुए अपूर्व उदगारोकी ये पहली दो कडिया है।

जो वैराग्य इन कडियोमे छलक रहा है, वह मैने उनके दो वर्षके गाढ परिचयसे प्रत्येक क्षणमें देखा है। उनके लेखोकी एक असाधारणता यह है कि उन्होने स्वयं जो अनुभव किया वही लिखा है। उसमें कही भी कृत्रिमता नही। दूसरेके ऊपर छाप डालनेके लिए उन्होने एक लाइन भी लिखी हो, यह मैने नही देखा। उनके पास हमेशा कोई-न-कोई धर्मपुस्तक और एक कोरी कापी पडी ही रहती थी। इस कापीमें वे अपने मनमें जो विचार आते उन्हें लिख लेते थे। ये विचार कभी गद्यमें और कभी पद्यमें होते थे। इसी तरह 'अपूर्व अवसर' आदि पद भी लिखा हुआ होना चाहिए।

खाते, बैठते, सोते और प्रत्येक किया करते हुए उनमें वैराग्य तो होता ही था। किसी समय उन्हें इस जगत्के किसी भी वैभवपर मोह हुआ हो, यह मैने नही देखा।

उनका रहन-सहन मैं आदरपूर्वक परतु सूक्ष्मतासे देखता था। भोजनमें जो मिले वे उसीसे सतुष्ट रहते थे। उनकी पोशाक सादी थी। कुर्ता, अगरखा, खेस, सिल्कका दुपट्टा और धोती यही उनकी पोशाक थी

तथा ये भी कुछ बहुत साफ या इस्तरी किए हुए रहते हो, यह मुझे याद नही। जमीनपर बैठना और कुरसीपर बैठना उन्हें दोनो ही समान थे। सामान्य रीतिसे दुकानमें वे गद्दीपर बैठते थे।

उनकी चाल धीमी थी और देखनेवाला समझ सकता था कि चलते हुए भी वे अपने विचारमें मग्न है। आखोमें उनके चमत्कार था। वे अत्यत तेजस्वी थे। विह्वलता जरा भी न थी। आखोमें एकाग्रता चित्रित थी। चेहरा गोलाकार, होठ पतले, नाक न नोकदार न चपटी, शरीर दुर्बल, कद मध्यम, वर्ण श्याम और देखनेमें वे शातिमूर्ति थे। उनके कठमे इतना अधिक माधुर्य था कि उन्हें सुननेवाले थकते न थे। उनका चेहरा हँसमुख और प्रफुल्लित था। उसके ऊपर अतरानदकी छाया थी। भाषा उनकी इतनी परिपूर्ण थी कि उन्हें अपने विचार प्रकट करते समय कभी कोई शब्द ढूढना पडा हो, यह मुझे याद नही। पत्र लिखने बैठते तो शायद ही शब्द बदलते हुए मैने उन्हें देखा होगा। फिर भी पढनेवाले को यह न मालूम होता था कि कही विचार अपूर्ण है अथवा वाक्य-रचना त्रुटि-पूर्ण है, अथवा शब्दोके चुनावमें कमी है।

यह वर्णन सयमीके विषयमें सभव है। बाह्याडबरसे मनुष्य वीतरागी नही हो सकता। वीतरागता आत्माकी प्रसादी है। यह अनेक जन्मोके प्रयत्नसे मिल सकती है, ऐसा हर मनुष्य अनुभव कर सकता है। रागोको निकालनेका प्रयत्न करनेवाला जानता है कि राग-रहित होना कितना कठिन है। यह राग-रहित दशा कविकी स्वाभाविक थी, ऐसी मेरे ऊपर छाप पडी थी।

मोक्षकी प्रथम सीढी वीतरागता है। जबतक जगतकी एक भी वस्तुमें मन रमा है तबतक मोक्षकी बात कैसे अच्छी लग सकती है। अथवा अच्छी लगती भी हो तो केवल कानोको ही ठीक वैसे ही जैसे कि हमें अर्थके समझे विना किसी सगीतका केवल स्वर ही अच्छा लगता है। ऐसी केवल कर्णप्रिय क्रीडामेंसे मोक्षका अनुसरण करनेवाले

आचरणके आनेमें वहुत समय बीत जाता है। आतर वैराग्यके विना मोक्षकी लगन नही होती। ऐसे वैराग्यकी लगन कविमें थी।

× × ×

वणिक तेहनु नाम जेह जूठू नव वोले,
वणिक तेहनु नाम, तोल ओछु नव तोले,
वणिक तेहनुं नाम बापे वोल्यु तेपाले,
वणिक तेहनुं नाम व्याजसहित धन वाले,
विवेक तोल ए वणिकनु, सुलतान तोल ए शाव छे,
वेपार चूके जो वाणीओ, दु ख दावानल थाय छे।

—सामल भट्ट

सामान्य मान्यता ऐसी है कि व्यवहार अथवा व्यापार और परमार्थ अथवा धर्म ये दोनो अलग-अलग विरोधी वस्तुए है। व्यापारमें धर्मको घुसेडना पागलपन है। ऐसा करनेसे दोनो विगड जाते है। यह मान्यता यदि मिथ्या न हो तो अपने भाग्यमें केवल निराशा ही लिखी है, क्योकि ऐसी एक भी वस्तु नही, ऐसा एक भी व्यवहार नही जिससे हम धर्मको अलग रख सकें।

धार्मिक मनुष्यका धर्म उसके प्रत्येक कार्यमें झलकना ही चाहिए, यह रायचदभाईने अपने जीवनमें वताया था। धर्म कुछ एकादशीके दिन ही, पर्यूषणमें ही, ईदके दिन ही, या रविवारके दिन ही पालना चाहिए, अथवा उसका पालन मदिरोमें, देरासरोमें और मस्जिदोमें ही होता है और दूकान या दरवारमें नही होता, ऐसा कोई नियम नही। इतना ही नही, परतु यह कहना धर्मको न समझनेके वरावर है, यह रायचदभाई कहते, मानते और अपने आचारमें वताते थे।

उनका व्यापार हीरे-जवाहरातका था। वे श्री रेवाशकर जगजीवन झवेरीके साझी थे। साथमें वे कपडेकी दूकान भी चलाते थे। अपने व्यवहारमें सपूर्ण प्रकारसे वे प्रामाणिकता वताते थे, ऐसी उन्होने मेरे

ऊपर छाप डाली थी। वे जब सौदा करते तो मैं कभी अनायास ही उपस्थित रहता। उनकी बात स्पष्ट और एक ही होती थी। चालाकी सरीखी कोई वस्तु उनमें न देखता था। दूसरेकी चालाकी वे तुरत ताड जाते थे। वह उन्हें असह्य मालूम होती थी। ऐसे समय उनकी भृकुटि भी चढ जाती और आखोमें लाली आ जाती, यह मैं देखता था।

धर्मकुशल लोग व्यवहारकुशल नही होते, इस वहमको रायचदभाईने मिथ्या सिद्ध करके बताया था। अपने व्यापारमें वे पूरी सावधानी और होशियारी बताते थे। हीरे-जवाहरातकी परीक्षा वे बहुत बारीकीसे कर सकते थे। यद्यपि अग्रेजीका ज्ञान उन्हें न था, फिर भी पेरिस वगैरहके अपने आड़तियोकी चिट्ठियो और तारोके मर्मको वे फौरन समझ जाते थे और उनकी कला समझनेमे उन्हे देर न लगती। उनके जो तर्क होते थे, वे अधिकाश सच्चे ही निकलते थे।

इतनी सावधानी और होशियारी होनेपर भी वे व्यापारकी उद्विग्नता अथवा चिंता न रखते थे। दुकानमें बैठे हुए भी जब अपना काम समाप्त हो जाता तो उनके पास पड़ी हुई धार्मिक पुस्तक अथवा कापी, जिसमें वे अपने उद्‌गार लिखते थे, खुल जाती थी। मेरे जैसे जिज्ञासु तो उनके पास रोज आते ही रहते थे और उनके साथ धर्मचर्चा करनेमें हिचकते न थे। 'व्यापारके समयमें व्यापार और धर्मके समयमें धर्म' अर्थात् एक समयमें एक ही काम होना चाहिए, इस सामान्य लोगोके सुदर नियमका कवि पालन न करते थे। वे शतावधानी होकर इसका पालन न करे तो यह हो सकता है, परतु यदि और लोग उसका उल्लघन करने लगे तो जैसे दो घोडोपर सवारी करनेवाला गिरता है, वैसे ही वे भी अवश्य गिरते। सपूर्ण धार्मिक और वीतरागी पुरुष भी जिस क्रियाको जिस समय करता हो, उसमें ही लीन हो जाय, यह योग्य है। इतना ही नही, बल्कि उसे यही शोभा देता है। यह उसके योगकी निशानी है। इसमे धर्म है। व्यापार अथवा इसी तरहकी जो कोई अन्य क्रिया करना हो तो उसमे भी पूर्ण एका-

ग्ता होनी ही चाहिए। अतरगमे आत्मचिंतन तो मुमुक्षुमे उसके श्वासकी तरह सतत चलना ही चाहिए। उससे वह एक क्षण भी वचित नही रहता। परन्तु उस तरह आत्मचिंतन करते हुए भी जो कुछ वह बाह्यकार्य करता हो वह उसमें ही तन्मय रहता है।

मै यह नही कहना चाहता कि कवि ऐसा न करते थे। ऊपर मैं कह चुका हू कि अपने व्यापारमें वे पूरी सावधानी रखते थे। ऐसा होनेपर भी मेरे ऊपर ऐसी छाप जरूर पडी है कि कविने अपने शरीरसे अवश्यकतासे अधिक काम लिया है। यह योगकी अपूर्णता तो नही हो सकती। यद्यपि कर्तव्य करते हुए शरीरतक भी समर्पण कर देना यह नीति है, परतु शक्ति-से अधिक बोझ उठाकर उसे कर्तव्य समझना यह राग है। ऐसा अत्यत सूक्ष्म राग कविमें था, यह मुझे अनुभव हुआ है।

बहुत बार परमार्थदृष्टिसे मनुष्य शक्तिसे अधिक काम लेता है और बादमें उसे पूरा करनेमे उसे कष्ट सहना पडता है। इसे हम गुण समझते है और इसकी प्रशसा करते है। परन्तु परमार्थ अर्थात् धर्मदृष्टिसे देखनेसे इस तरह किए हुए काममे सूक्ष्म मूर्छाका होना बहुत सभव है।

यदि हम इस जगतमे केवल निमित्तमात्र ही है, यदि यह शरीर हमे भाडे मिला है, और उस मार्गसे हमे तुरत मोक्ष साधन करना चाहिए, यही परम कर्तव्य है, तो इस मार्गमे जो विघ्न आते हो उनका त्याग अवश्य ही करना चाहिए। यही पारमार्थिक दृष्टि है, दूसरी नही।

जो दलीलें मैने ऊपर दी है, उन्हे ही किसी दूसरे प्रकारसे रायचन्द-भाई अपनी चमत्कारिक भाषामे मुझे सुना गये थे। ऐसा होनेपर भी उन्होने ऐसी कैसी उपाधिया उठाई कि जिसके फलस्वरूप उन्हे सख्त बीमारी भोगनी पडी।

रायचदभाईको परोपकारके कारण मोहने क्षणभरके लिए घेर लिया था. यदि मेरी यह मान्यता ठीक हो तो 'प्रकृति याति भूतानि निग्रह किं करिष्यति' यह श्लोकार्ध यहा ठीक बैठता है और इसका अर्थ भी इतना ही

है । कोई इच्छापूर्वक बर्ताव करनेके लिए उपर्युक्त कृष्ण-वचनका उपयोग करते है; परतु वह तो सर्वथा दुरुपयोग है । रायचन्दभाईकी प्रकृति उन्हें बलात्कार गहरे पानीमें ले गई । ऐसे कार्यको दोषरूपसे भी लगभग सपूर्ण आत्माओमें ही माना जा सकता है । हम सामान्य मनुष्य तो परोपकारी कार्यके पीछे अवश्य पागल बन जाते है, तभी उसे कदाचित पूरा कर पाते है ।

यह भी मान्यता देखी जाती है कि धार्मिक मनुष्य इतने भोले होते है कि उन्हें सब कोई ठग सकता है । उन्हे दुनियाकी बातोकी कुछ भी खबर नही पडती । यदि यह बात ठीक है तो कृष्णचद और रामचन्द्र दोनो अवतारोको केवल ससारी मनुष्योमे ही गिनना चाहिए । कवि कहते थे कि जिसे शुद्ध ज्ञान है उसका ठगा जाना असभव होना चाहिए । मनुष्य धार्मिक अर्थात् नीतिमान् होनेपर भी कदाचित् ज्ञानी न हो, परतु मोक्षके लिऐ नीति और अनुभवज्ञानका सुसगम होना चाहिए । जिसे अनुभवज्ञान हो गया है, उसके पास पाखड निभ ही नही सकता । सत्यके पास असत्य नही निभ सकता । अहिंसाके सान्निध्यमे हिंसा बद हो जाती है । जहा सरलता प्रकाशित होती है वहा छलरूपी अधकार नष्ट हो जाता है । ज्ञानवान और धर्मवान यदि कपटीको देखे तो उसे फौरन पहचान लेता है और उसका हृदय दयासे आर्द्र हो जाता है । जिसने आत्माको प्रत्यक्ष देख लिया है वह दूसरेको पहचाने बिना कैसे रह सकता है । कोई-कोई धर्मके नामपर उन्हें ठग भी लेते थे । ऐसे उदाहरण नियमकी अपूर्णता सिद्ध नही करते, परतु ये शुद्ध ज्ञानकी ही दुर्लभता सिद्ध करते है ।

इस तरहके अपवाद होते हुए भी व्यवहार-कुशलता और धर्मपरायणताका सुदर मेल जितना मैने कविमें देखा है उतना किसी दूसरेमें देखनेमें नही आया ।

× × ×

रायचन्दभाईके धर्मका विचार करनेसे पहले यह जानना आवश्यक है कि धर्मका उन्होंने क्या स्वरूप समझाया था।

धर्मका अर्थ मतमतांतर नहीं। धर्मका अर्थ शास्त्रोंके नामसे कही जानेवाली पुस्तकोंको पढ जाना, कंठस्थ कर लेना अथवा उनमें जो कुछ कहा है, उसे मानना भी नहीं है।

धर्म आत्माका गुण है और वह मनुष्य जातिमें दृश्य अथवा अदृश्य रूपमें मौजूद है। धर्मसे हम मनुष्य-जीवनका कर्तव्य समझ सकते है। धर्मद्वारा हम दूसरे जीवोंके साथ अपना सच्चा संबंध पहचान सकते है। यह स्पष्ट है कि जबतक हम अपनेको न पहचान लें तबतक यह सब कभी भी नहीं हो सकता। इसलिए धर्म वह साधन है, जिसके द्वारा हम अपने आपको स्वयं पहचान सकते है।

यह साधन हमें जहां कहीं मिले, वहींसे प्राप्त करना चाहिए। फिर भले ही वह भारतवर्षमें मिले, चाहे यूरोपसे आये या अरबस्तानसे आये। इन साधनोंका सामान्य स्वरूप समस्त धर्मशास्त्रोंमें एक ही-सा है। इस बात को वह कह सकता है जिसने भिन्न-भिन्न शास्त्रोंका अभ्यास किया है। ऐसा कोई भी शास्त्र नहीं कहता कि असत्य बोलना चाहिए, अथवा असत्य आचरण करना चाहिए। हिंसा करना किसी भी शास्त्रमें नहीं बताया। समस्त शास्त्रोंका दोहन करते हुए शंकराचार्य ने कहा है, "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।" इसी बात को कुरानशरीफमें दूसरी तरह कहा है कि ईश्वर एक ही है और वही है, उसके बिना और दूसरा कुछ नहीं। बाइबिलमें कहा है कि मैं और मेरा पिता एक ही है। ये सब एक ही वस्तुके रूपांतर है। परन्तु इस एक ही सत्यके स्पष्ट करनेमें अपूर्ण मनुष्योंने अपने भिन्न-भिन्न दृष्टि-बिंदुओंको काममें लाकर हमारे लिए मोहजाल रच दिया है। उसमेंसे हमें बाहर निकलना है। हम अपूर्ण है और अपनेसे कम अपूर्णकी मदद लेकर आगे बढते हैं और अंतमें न जाने अमुक हदतक जाकर ऐसा मान लेते है कि आगे रास्ता ही नहीं है, परन्तु

वास्तवमे ऐसी वात नही है। अमुक हदके वाद शास्त्र मदद नही करते, परतु अनुभव मदद करता है। इसलिए रायचदभाईने कहा है।

"ए पद श्रीसर्वज्ञे दीठुं ध्यानमां, कहीं शक्या नहीं ते पद श्रीभगवत जो एह परमपद प्राप्तनुं कर्युं ध्यानमें, गजावगर पण हाल मनोरथ रूप जो "

इसलिए अतमें तो आत्माको मोक्ष देनेवाली आत्मा ही है।

इस शुद्ध सत्यका निरूपण रायचदभाईने अनेक प्रकारोसे अपने लेखोमें किया है। रायचदभाईने वहुत-सी धर्म-पुस्तकोका अच्छा अभ्यास किया था। उन्हें सस्कृत और मागधी भाषाको समझनेमें जरा भी मुश्किल न पडती थी। उन्होने वेदातका अभ्यास किया था। इसी प्रकार भागवत और गीताजीका भी उन्होने अभ्यास किया था। जैन पुस्तकें तो जितनी भी उनके हाथमे आती, वे वाच जाते थे। उनके वाचने और ग्रहण करनेकी शक्ति अगाध थी। पुस्तकका एक वारका वाचन उन पुस्तकोके रहस्य जाननेके लिए उन्हें काफी था। कुरान, जदेअवस्ता आदि पुस्तकें भी वे अनुवादके जरिए पढ गये थे।

वे मुझसे कहते थे कि उनका पक्षपात जैनधर्मकी ओर था। उनकी मान्यता थी कि जिनागममे आत्मज्ञानकी पराकाष्ठा है, मुझे उनका यह विचार वता देना आवश्यक है। इस विषयमें अपना मत देनेके लिए मैं अपनेको विलकुल अनधिकारी समझता हू।

परतु रायचंदभाईका दूसरे धर्मोके प्रति अनादर न था, बल्कि वेदात-के प्रति पक्षपात भी था। वेदातीको तो कवि वेदाती ही मालूम पडते थे। मेरे साथ चर्चा करते समय मुझे उन्होने कभी भी यह नही कहा कि मुझे मोक्ष प्राप्तिके लिए किसी खास धर्मका अवलबन लेना चाहिए। मुझे अपना ही आचार-विचार पालनेके लिए उन्होने कहा। मुझे कौनसी पुस्तकें बाचनी चाहिए, यह प्रश्न उठनेपर उन्होने मेरी वृत्ति और मेरे वचपनके सस्कार देखकर मुझे गीताजी बाचनेके लिए उत्तेजित किया और

दूसरी पुस्तकोमे पचीकरण, मणिरत्नमाला, योगवासिष्ठका वैराग्य प्रकरण, काव्य दोहन पहला भाग, और अपनी मोक्षमाला बाचनेके लिए कहा।

रायचदभाई बहुत बार कहा करते थे कि भिन्न-भिन्न धर्म तो एक तरहके बाडे है और उनमें मनुष्य घिर जाता है। जिसने मोक्षप्राप्ति ही पुरुषार्थ मान लिया है, उसे अपने माथेपर किसी भी धर्मका तिलक लगानेकी आवश्यकता नही।

सूतर आवे त्यम तुं रहे, ज्यम त्यम करिने हरीने लहे[1]

जैसे अखाका यह सूत्र था वैसे ही रायचदभाईका भी था। धार्मिक झगडोसे वे हमेशा ऊबे रहते थे। उनमे वे शायद ही कभी पडते थे। वे समस्त धर्मोकी खूबिया पूरी तरहसे देखते और उन्हें उन धर्मावलम्बियोके सामने रखते थे। दक्षिण अफ्रीकाके पत्रव्यवहारमे भी मैने यही वस्तु उनसे प्राप्त की।

मै स्वय तो यह माननेवाला हू कि धर्म उस धर्मके भक्तोकी दृष्टिसे सपूर्ण है, और दूसरोकी दृष्टिसे अपूर्ण है। स्वतत्र रूपसे विचार करनेसे सब धर्म पूर्णापूर्ण है। अमुक हदके बाद सब शास्त्र बधन रूप मालूम पडते है। परतु यह तो गुणातीतकी अवस्था हुई। रायचदभाई की दृष्टिसे विचार करते है तो किसीको अपना धर्म छोडनेकी आवश्यकता नही। सब अपने-अपने धर्ममें रहकर अपनी स्वतत्रता-मोक्ष प्राप्त कर सकते है, क्योकि मोक्ष प्राप्त करनेका अर्थ सर्वांशसे राग-द्वेष-रहित होना ही है। ('श्रीमद्राजचद्र')

---

[1] जैसे सूत निकलता है वैसे ही तू रह। जैसे बने तैसे हरिको प्राप्तकर।

: १७४ :

आचार्य रामदेव

पहाड-जैसे दीखनेवाले महात्मा मुंशीरामके दर्शन करने और उनके गुरुकुलको देखने जब मै गया तब मुझे बहुत शान्ति मिली। हरद्वारके कोलाहल और गुरुकुलकी शांतिका भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्माजीने मुझपर भरपूर प्रेमकी वृष्टि की। ब्रह्मचारी लोग मेरे पाससे हटते ही नही थे। रामदेवजीसे भी उसी समय मुलाकात हुई और उनकी कार्य-शक्तिको मै तुरत पहचान सका था। यद्यपि हमारी मत-भिन्नता हमे उसी समय दिखाई पड गई थी, फिर भी हमारी आपसमे स्नेह-गाठ बध गई। गुरुकुलमें औद्योगिक शिक्षणका प्रवेश करनेकी आवश्यकताके सबधमे रामदेवजी तथा दूसरे शिक्षकोके साथमें मेरा ठीक-ठीक वार्तालाप भी हुआ। इससे जल्दी ही गुरुकुलको छोडते हुए मुझे दुःख हुआ। (आ० क०, १९२७)

... ...

आचार्य रामदेव चल बसे। आप आर्यसमाजके एक प्रसिद्ध नेता और कार्यकर्त्ता थे। स्वामी श्रद्धानन्दजीके बाद वे ही कांगडी-गुरुकुलके निर्माता थे। जहातक मै जानता हूँ, वे स्वामीजीके दाहिने हाथ थे। शिक्षण-शास्त्रीके तौरपर वे बडे लोकप्रिय थे। पिछले कुछ समयसे वे अपने स्वाभाविक जोशके साथ देहरादूनके कन्या-गुरुकुलके सचालक-कार्यमे पड गये थे और कुमारी विद्यावतीके पथ-प्रदर्शन और सहारा बन गये थे। जबतक जिये, वे ही इनके लिए रुपया इकट्ठा करके लाते थे। इनको सस्थाके आर्थिक पहलूकी कुछ भी चिंता नही करनी पडती थी। मै जानता हूँ कि उनकी मृत्युसे इन्हें और इनकी सस्थाको कितनी असह्य हानि पहुँची है। जो लोग स्वर्गीय आचार्यजीको जानते है, जो स्त्री-शिक्षाका

महत्व समझते है और जिन्हें कुमारी विद्यावती और उनकी सस्थाकी कद्र मालूम है उन्हे अब चाहिए कि गुरुकुलको सदाकेलिए आर्थिक कष्टसे मुक्त कर दें। परलोकवासी आचार्यजीके लिए इस तरहका धन-सग्रह अत्यन्त उपयुक्त स्मारक होगा। (हि० से०, ३० १२ ३९)

: १७५ :

रामसुन्दर

बहुत कुछ यत्न करनेपर भी जब एशियाटिक आफिस को ५०० से अधिक नाम नही मिल सके तब अधिकारीगण इस निश्चयपर पहुचे कि अब किसीको पकडना चाहिए। पाठक जर्मिस्टन नामसे परिचित है। वहापर बहुतसे भारतीय रहते थे। उनमें रामसुदर नामक एक मनुष्य भी था। यह बडा वाचाल और बहादुर दीखता था। कुछ-कुछ श्लोक भी जानता था। उत्तरी भारतका रहनेवाला अर्थात थोडे-बहुत दोहे-चौपाई तो अवश्य ही उसे याद होने ही चाहिए। और तिसपर पण्डित कहा जाता था। इसलिए वहाके लोगोमें उसकी बडी प्रतिष्ठा थी। उसने कई जगह भाषण भी दिए थे। भाषण काफी जोशीले होते थे। वहाके कितने ही विघ्नसतोषी भारतीयोने एशियाटिक आफिसमें यह खबर पहुचाई कि अगर रामसुदर पण्डितको गिरफ्तार कर लिया गया तो जर्मिस्टनके बहुतसे भारतीय परवाना ले लेंगे। अधिकारीगण इस लालचको कदापि रोक नही सकते थे। रामसुदर पण्डित गिरफ्तार हुए। अपने ढगका यह पहला ही मामला था। इसलिए सरकार और भारतीयोमें भी बडी हलचल मच गई। जिस रामसुदर पण्डितको केवल जर्मिस्टनके लोग ही जानते थे, उसे अब क्षणभरमें सारे दक्षिण अफ्रीकाके लोग जानने लग गये। एक

महान् पुरुपका मामला चलते समय जिस प्रकार सबकी नजर वही दौडती है ठीक उसी तरह रामसुदर पण्डितकी ओर सबका ध्यान आकृष्ट हुआ। शाति-रक्षाके लिए किसी प्रकारकी तैयारी करनेकी आवश्यकता नही थी। तथापि सरकारने अपनी ओरसे वह इतजाम भी कर लिया था। अदालतमें भी रामसुन्दरका वैसा ही आदर-सत्कार किया गया जैसा कि कौमके प्रतिनिधि और एक असामान्य अपराधीका होना चाहिए था। अदालत उत्सुक भारतीयोसे खचाखच भर गई थी। रामसुदरको एक महीनेकी सादी कैदकी सजा हुई। उसे जोहान्सवर्गकी जेलमें रखा गया। उसको यूरोपियन वार्डमें अलग एक कमरा दिया गया था। उससे मिलने-जुलनेमे जरा भी कठिनाई नही होती थी। उसका खाना वाहरसे भेजा जाता था और भारतीय उसक लिए नित्य नए अच्छे-अच्छे पकवान पकाकर भेजते थे। वह जिस वातकी इच्छा करता, वह फौरन ही पूरी कर दी जाती। कौमने उसका ज़ेल-दिन वडी धूम-धामसे मनाया। कोई हताश नही हुआ। उत्साह और भी वढ गया। सैकडो जेल जानेके लिए तैयार थे। एशियाटिक आफिसकी आशा सफल न हुई। जर्मिस्टनके भारतीय भी परवाना लेनेके लिए नही गये। इस सजाका फायदा कौमको ही हुआ। महीना खतम हुआ। रामसुदर छूटे और उन्हें वडी धूम-धामसे गाजे-वाजेके साथ जुलूस वनाकर सभास्थानपर ले गये। कई उत्साहप्रद भाषण हुए। रामसुदरको फूलोसे ढक दिया। स्वयसेवकोने उनके सत्कारमें उनकी दावत की। सैकडो भारतीय अपने मनमें कहने लगे, "अरे, हम भी गिरफ्तार हो जाते तो कितना आनद आता!" और रामसुदर पण्डितसे मधुर ईर्ष्या करने लगे।

पर रामसुदर कडवी वादाम सावित हुए। उनका जोश झूठी सतीका-सा था। एक महीनेके पहले तो जेलसे निकल ही नही सकते थे, क्योकि वे अनायास पकडे गये थे। जेलमे उन्होने इतना ऐशोआराम किया कि बाहरसे भी अधिक। फिर भी स्वच्छदी और व्यसनी आदमी जेलके

एकातवासको और अनेक प्रकारके खान-पानके होते हुए भी वहाके सयमको कदापि बर्दाश्त नही कर सकता । यही हाल रामसुदर पण्डितका हुआ । कौम और अधिकारियोसे मनमानी सेवा लेनेपर भी उन्हें जेल कड़वी मालूम हुई और उन्होने ट्रान्सवाल और युद्ध दोनोको अतिम नमस्कार करके अपना रास्ता लिया । हरएक कौममें खिलाडी तो रहते ही हैं । वही हाल युद्धोका भी होता है । लोग रामसुदरको अच्छी तरह जानते थे । तथापि ऐसे भी आदमी कभी-कभी काम देते है, यह समझकर उन्होने रामसुदरका छिपा हुआ इतिहास उसकी पोल खुलनेपर भी कई दिनो तक नही सुनाया था । पीछेसे मुझे मालूम हुआ कि रामसुदर तो अपना गिरमिट पूरा किए विना ही भागा हुआ गिरमिटिया था । उसके गिरमिटिया होनेकी बातको मैं घृणासे नही लिख रहा हू । गिरमिटिया होना कोई ऐब नही है । . युद्धकी सच्ची शोभा बढानेवाले तो गिरमिटिए ही थे । युद्धकी जीतमें भी उन्हीका सबसे बडा हिस्सा था । पर गिरमिटसे भाग निकलना अवश्य ही एक दोष है ।

रामसुदरका यह इतिहास मैंने उसका ऐब बतानेके हेतुसे नही, बल्कि उसमें जो रहस्य है वह दिखानेके हेतुसे लिखा है । हरएक पवित्र आदोलन या युद्धके सचालकोको चाहिए कि वे शुद्ध मनुष्योको ही उसमें शामिल करें । तथापि आदमी कितना ही सावधान क्यो न हो, अशुद्ध मनुष्यको बिलकुल रोक देना असभव है । फिर भी यदि सचालक निडर और सच्चे हो तो अज्ञानत अशुद्ध आदमियोके घुस आनेपर भी युद्धको अतमें नुकसान नही पहुच सकता । रामसुदर पण्डितकी पोल खुलते ही उसकी कोई कीमत नही रही । वह तो बेचारा अब रामसुदर पडित नही, कोरा राम-सुदर ही रह गया । कौम उसे भूल गई । पर युद्धको तो उससे शक्ति ही मिली । युद्धके लिए मिली हुई जेल बट्टे-खाते नही गई । उसके जेल जाने-से कौममें जो नवीन शक्ति आई वह तो कायम ही रही; बल्कि उसके उदाहरणका भी यही असर हुआ कि अन्य कितने ही कमजोर आदमी

अपने आप युद्धसे अलग हो गये। और भी कितने ही ऐसे उदाहरण हुए।. .कौमकी मजबूती या कमजोरी पाठकोसे छिपी नही रह सकती। इसलिए यहांपर मैं यह भी कह देना चाहता हू कि रामसुदर जैसे केवल वे ही नही थे। पर मैने तो यह देखा कि सभी रामसुदरोने आदोलनकी सेवा ही की।

पाठक रामसुदरको दोष न दे। इस ससारमें मनुष्यमात्र अपूर्ण है। जब हम किसी मनुष्यमे अधिक अपूर्णता देखते है तब हम उसकी ओर अगुली दिखाते है। पर सच पूछा जाय तो यह भूल है। रामसुदर जान-बूझकर दुर्बल नही बना था। मनुष्य अपने स्वभावकी स्थितिको बदल सकता है, उसको अपने वशमें कुछ हद तक कर सकता है; पर उसे जडसे कौन बदल सकता है? जगत्कर्ताने मनुष्यको यह स्वतन्त्रता नही दे रक्खी है। शेर अगर अपने चमडेकी विचित्रताको बदल सकता हो तो मनुष्य भी अपने स्वभावकी विचित्रताको बदल सकता है। हमे यह कैसे मालूम हो सकता है कि भाग निकलनेके बाद रामसुदरको कितना पश्चाताप हुआ? अथवा क्या उसका भाग निकलना ही पश्चातापका एक दृढ प्रमाण नही माना जा सकता? अगर वह बेशर्म होता तो उसे भागनेकी क्या पडी थी? परवाना लेकर खूनी कानूनके अनुसार वह हमेशा जेल-मुक्त रह सकता था। यही नही, बल्कि वह चाहता तो एशियाटिक आफिस-का दलाल बनकर दूसरोको धोखा दे सकता था और सरकारका प्रिय बन सकता था। यह सब न करते हुए अपनी कमजोरी कौमको बतानेमें वह शरमाया और उसने अपना मुह छिपा लिया। अपने इस कार्यके द्वारा भी उसने कौमकी सेवा ही की, ऐसा उदार अर्थ हम क्यो न लगावें?

(द० अ० स०, १९२४)

: १७६ :

कालीनाथ राय

आज मुस्लिम परिषदपर एक सुंदर लेख 'ट्रिब्यून' में आया। वह पढ़कर सुनाया गया तो बापू कहने लगे·

Long live Kalinath Roy (चिरजीवी हो कालीनाथ रॉय) ! कौमी सवाल और अछूतोंके लिए संयुक्त मताधिकार जैसे सवालोंपर आजकल इस आदमीके लेख बहुत अनुभव और ज्ञानपूर्ण आते हैं। (म० डा०, भाग १, पृष्ठ ४७)

: १७७ :

दिलीपकुमार राय

'मन-मंदिरमें प्रीति बसा ले'—श्रीदिलीपकुमार रायके, जिन्होंने इस भजनको आजकी प्रार्थना-सभामें गाया है, कंठमें जो माधुर्य है और उनके गानेमें जो कला है, वह मुझको मीठे लगे। वैसे तो यह मामूली चीज है, लेकिन उसे जिस ढंगसे सुंदर बनाया गया, उसीका नाम कला है। (प्रा० प्र०, २८-१०-४७)

•

आपने आजका बहुत मीठा भजन सुना। जिन्होंने हमको यह मीठा भजन सुनाया उन्हें आप लोग सब जानते तो होंगे नहीं। उनका नाम दिलीपकुमार राय है। उन्होंने हर जगहका भ्रमण किया है। उनके कंठका माधुर्य जैसा है वैसा हिंदुस्तानमें तो कम लोगोंके पास है। मैं तो कहता हूं

कि शायद सारी दुनियामे भी वहुत कम लोगोके पास है। मेरे पास ये दोपहरको आ गये थे। तब कोई अधिक समय तो मेरे पास था नही, सिर्फ १० मिनट थे। उस वक्त उन्होने 'वन्देमातरम्' सुनाया, जिसको उन्होने अपने मधुर स्वरमें बिठाया। क्योकि वे बगाली है इसलिए तो उन्हे जानना ही चाहिए। चूकि वे मुझको सुनाना चाहते थे, इसलिए सुन लिया। लेकिन मैं कोई सगीत-शास्त्री तो हू नही। उनको मुझसे मुहब्बत है, जो एक-दूसरेके साथ बन जाती है। पीछे उन्होने इकबालका 'सारे जहासे अच्छा' भजन सुनाया। उसको भी उन्होने एक नए स्वरमे बिठाया है। मुझको यह बडा अच्छा लगा। वे ऋषि अरविंदके आश्रममें, जो पाण्डुचेरीमे है, कई वर्षोसे रहते है। वहा कोई तालीम तो उन्होने ली नही। जब वहा गये तब भी वे सगीत-शास्त्री थे। पीछेसे अपनी कलाको बढाते रहते हैं। (प्रा० प्र०, २९.१०.४७)

: १७८ :

प्रफुल्लचन्द्र राय

बगाली लोग दीवाने है। जिस तरह दास दीवाने है उसी तरह प्रफुल्लचद्र राय भी दीवाने है। जब वे मचपर व्याख्यान देते है तब मानो नाचते है। कोई नही मान सकता कि वे ज्ञानी हैं। हाथ पछाडते है। पैर पछाडते है। जैसा जी चाहता है अपनी बगलामें अग्रेजीभी घुसेडते है। जब बोलते है तो अपनेको भूल जाते हैं। अपने विचारके आवेशमे ही मग्न होते है। इस बातकी शायद ही परवा हो कि लोग हँसेंगे, या क्या कहेगे। जबतक उनकी बातें न सुनें, उनकी आखसे अपनी आख न मिलावें तबतक उनकी महत्ताका

कुछ भी पता हमें नही लग सकता। मुझे याद है कि जब मै कलकत्तेमें गोखलेके साथ रहता था और आचार्य राय उनके पडोसी थे तब एक समय हम तीनो स्टेशन पर गये थे। मेरे पास तो अपने तीसरे दर्जेका टिकट था। ये दोनो मुझे पहुचाने आये थे। तीसरे दर्जेके मुसाफिरोको पहुचानेवाले तो भिखारी ही हो सकते है; पर गोखलेका भरा हुआ चेहरा, रेशमी पगडी, रेशमी किनारेकी धोती, उनके लिए टिकटबाबूकी दृष्टिमे काफी थे। परतु यह दुबला ब्रह्मचारी, मैला-सा कुरता पहना हुआ, भिखारी जैसा दिखाई देनेवाला, इसे बिना टिकट कौन अदर जाने देने लगा। मेरी यादके अनुसार वे बिना दुखके बाहर खडे रहे और मेरे खचाखच भरे डब्बेमें किसी तरह घुसनेपर भी हठधर्मीकी टीका करते हुए गोखले अपने साथीसे जा मिले। आचार्य राय क्यो बहुसख्यक विद्यार्थियोके हृदयमे साम्राज्य करते है? वे भी त्यागी है और अब तो हो गये है खादी-दीवाने। शिक्षा-विभागकी एक बगालिन अधिष्ठात्रीसे यह कहते हुए उन्हे जरा सकोच न हुआ--"आप खादी न पहनें तो किस कामकी?" ऐसा न कहें तो उनके खुलनाके भिखारियोकी बनाई खादीको कौन खरीदेगा? (हि० न०)

: १७९ :

रिच

इग्लैडमे काग्रेसकी ब्रिटिश कमेटी तो हमारी अवश्य ही बहुत सहायता कर रही थी, तथापि वहाके रीति-रिवाजके मुआफिक उसमें तो खास-खास मत और पक्षके मनुष्य ही आ सकते थे। इसके अतिरिक्त ऐसे कितने ही लोग थे जो उसमें नही आए थे; पर फिर भी हमे पूरी सहायता करते थे।

हमें यह मालूम हुआ कि यदि इन सबको एकत्र करके इस काममे उन्हें लगा दिया जाय तो बहुत काम हो सकता है। इसलिए इस उपदेशसे हमने एक स्थायी समितिकी स्थापना करनेका निश्चय किया। यह बात तमाम पक्षके लोगोको बहुत पसद आई।

हरएक सस्थाका उत्कर्ष या अपकर्ष प्राय उसके मत्रीके ऊपर ही निर्भर रहता है। मत्री ऐसा होना चाहिए जिसका उस सस्थाके हेतु पर न केवल पूरा-पूरा विश्वास हो, बल्कि उसमें इतनी शक्ति भी होनी चाहिए कि वह उसकी सफलताके लिए अपना बहुत-सा समय दे सके और उसका काम करनेकी उसमें पूरी योग्यता हो। मि० रिच जो दक्षिण अफ्रीकामें थे और जो मेरे आफिसमें गुमाश्तेका काम कर चुके थे तथा जो लदनमे उस समय बैरिस्टरीका अभ्यास कर रहे थे, ऐसे ही योग्य पुरुष थे। उनमे ये सब गुण थे। वह वही इग्लैडमे थे और यह काम भी करना चाहते थे। इसलिए एक कमेटी बनानेकी हम लोग हिम्मत भी कर सके। (द० अ० स०)

: १८० :

आचार्य सुशील रुद्र

आचार्य सुशील रुद्रका देहात ३० जूनको हो गया। वे मेरे एक आदरणीय मित्र और खामोश समाज-सेवी थे। उनकी मृत्युसे मुझे जो दुःख हुआ है उसमें पाठक मेरा साथ दे। भारतकी मुख्य बीमारी है राजनैतिक गुलामी। इसलिए वह उन्हीको मानता है जो उसे दूर करनेके लिए खुले आम सरकारसे लडाई लडते है, जिसने कि अपनी जल और थल सेना तथा धन-बल और कूट-नीतिके द्वारा अपनी मजबूत मोर्चाबदी कर ली

है । इससे स्वभावत उसे उन कार्यकर्ताओका पता नही रहता जो नि स्वार्थ होते है और जो जीवनके दूसरे विभागोमें, जो कि राजनीतिसे कम उपयोगी नही होते है, अपनेको खपा देते है । सेंट स्टीफन्स कालेज, देहलीके प्रिंसिपल सुशीलकुमार रुद्र ऐसे ही विनीत कार्यकर्ता थे । वे पहले दरजेके शिक्षाशास्त्री थे । प्रिंसिपलके नाते वे चारो ओर लोकप्रिय हो गये थे । उनके और उनके विद्यार्थियोके बीच एक प्रकारका आध्यात्मिक सबध था । यद्यपि वे ईसाई थे, तथापि वे अपने हृदयमें हिंदू धर्म और इस्लामके लिए भी जगह रखते थे । इन्हें वे बडे आदर की दृष्टिसे देखते थे । उनका ईसाई धर्म औरोसे फटक कर, अलग रहनेवाला न था । जो अकेले ईसा-मसीहको दुनियाका तारनहार न मानता हो उसके सर्वनाशकी दुहाई देने-वाला न था । अपने धर्मपर दृढ रहते हुए भी वे औरोको सहन करते थे । वे राजनीतिके बडे तेज और चिंताशील स्वाध्यायी थे । अग्रगामी कहे जानेवाले लोगोके प्रति अपनी सहानुभूतिकी कवायद जहा वे न दिखाते थे तहा वे छिपाते न थे । जबसे, १९१५, से मैं अफ्रीकासे लौटा मैं जब कभी देहली जाता उन्हीका अतिथि होता । रौलट कानूनके सिलसिलेमें जबतक मैंने सत्याग्रह नही छेडा तबतक यह कार्य निर्विघ्न जारी रहा । ऊंचे हल्कोमें उनके कितने ही अग्रेज मित्र थे । एक पूरे अग्रेजी मिशनसे उनका सबध था । अपने कालेजके वे पहले ही हिंदुस्तानी प्रिंसिपल थे । इसलिए मेरे दिलने कहा कि मेरा उनके साथ समागम रहने और उनके घरमें ठहरनेसे शायद लोगोको यह गलत ख्याल हो कि मेरा उनका मतैक्य है और उनके साथियोको अनावश्यक सकटका सामना करना पडे । इसलिए मैंने दूसरी जगह ठहरना चाहा । उनका जवाब अपने ढगका था—मेरा धर्म लोगोके अनुमानसे अधिक गहरा है । मेरे कुछ मत तो मेरे जीवनके घनिष्ट अग है । वे गहरे और दीर्घकालके मनन और प्रार्थना-के बाद निश्चित हुए है । मेरे अग्रेज मित्र उन्हें जानते है । यदि अपने सम्माननीय मित्र और अतिथिके रूपमें मै आपको अपने घरमें रखू तो

वे इसका गलत अर्थ नही कर सकते । और यदि कभी मुझे इन दो बातोमें से कि अग्रजोके अदर जो कुछ मेरा प्रभाव है वह चला जाय या आप किसी एकको चुनना पडे तो मैं जानता हू कि मै किस चीजको पसद करूगा। आप मेरे घरको नही छोड सकते। तब मैंने कहा--"लेकिन मुझसे तो हर किस्मके लोग मिलनेके लिए आते है। आप अपने मकानको सराय तो बना नही सकते।" उन्होने उत्तर दिया--"सच पूछो तो मुझे यह सब अच्छा मालूम होता है। आपके मित्रोका आना-जाना मुझे पसद है। यह देखकर मुझे आनन्द होता है कि आपको अपने मकानमें ठहराकर मेरे हाथो कुछ देशसेवा हो रही है।" पाठकोको शायद मालूम न हो कि खिलाफतके दावेको प्रत्यक्ष रूप देनेके लिए जो पत्र मैंने वायसरायको लिखा था उसका विचार और मसविदा प्रिंसिपल रुद्रके मकानमे तैयार हुआ था। वे तथा चार्ली एड्रयूज उसमें सुधार सुझानेवाले थे। उन्हीके घरकी छाहमें बैठकर असहयोगकी कल्पना उत्पन्न और प्रवर्तित हुई। मौलानाओ, दूसरे मुसलमानो तथा अन्य मित्रो और मेरे बीच जो निजी मत्रणा हुई उसकी कार्रवाहीको वे बडी दिलचस्पीके साथ चुपचाप देखते थे। उनके तमाम कार्य धर्म-भावसे प्रेरित होते थे। ऐसी हालतमें दुनियावी सत्ता छिन जानेका कोई डर न था--तथापि वही धर्म-भाव उन्हें सासारिक सत्ताके अस्तित्व और उपयोग तथा मित्रताके मूल्यको समझनेमे सहायक होता था। जिस धार्मिक भावसे मनुष्यको विचार और आचारके सुदर मेलका यथार्थ ज्ञान होता है, उसकी सत्यताको उन्होने अपने जीवनमें चरितार्थ कर दिखाया था। आचार्य रुद्रने अपनी ओर इतने उच्च चरित्र लोगोको आकर्षित किया था जिनके सहवासकी इच्छा किसीको हो सकती है। बहुत लोग नही जानते है कि श्री सी० एफ० एड्रयूज हमे प्रिंसिपल रुद्रके ही कारण प्राप्त हुए है। वे जुडे भाई जैसे थे। उनका स्नेह आदर्श मित्रताके अध्ययनका विषय था। प्रिंसिपल रुद्र अपने पीछे दो लडके और एक लडकीको छोड गये है। सब वयस्क है और अपने काममें लगे हुए है। वे जानते

है कि उनके शोकमें उनके उच्च हृदय पिताके कितने ही मित्र शरीक हैं।
(हि० न०, ९.७.२५)

: १८१ :

पारसी रुस्तमजी

पारसी रुस्तमजीके नामसे पाठक भलीभांति परिचित हैं। पारसी रुस्तमजी मेरे मवक्किल और सार्वजनिक कार्यमें साथी, एक ही साथ बने; बल्कि यह कहना चाहिए कि पहले साथी बने और बादको मवक्किल। उनका विश्वास तो मैंने इस हदतक प्राप्त कर लिया था कि वह अपनी घरू और खानगी बातोंमें भी मेरी सलाह मांगते और उनका पालन करते। उन्हें यदि कोई बीमारी भी हो तो वह मेरी सलाहकी जरूरत समझते और उनके और मेरे रहन-सहनमें बहुत कुछ भेद रहनेपर भी वह खुद मेरा उपचार करते।

मेरे इस साथीपर एक बार बड़ी भारी विपत्ति आ गई थी। हालांकि वह अपनी व्यापार-संबंधी भी बहुत-सी बातें मुझसे किया करते थे, फिर भी एक बात मुझसे छिपा रखी थी। वह चुंगी चुरा लिया करते थे। बंबई-कलकत्तेसे जो माल मंगाते उसकी चुंगीमें चोरी कर लिया करते थे। तमाम अधिकारियोंसे उनका राह-रसूख अच्छा था। इसलिए किसीको उनपर शक नहीं होता था। जो बीजक वह पेश करते उसीपरसे चुंगीकी रकम जोड़ ली जाती। शायद कुछ कर्मचारी ऐसे भी होंगे जो उनकी चोरीकी ओरसे आंखें मूंद लेते हों।

परंतु आखा भगतकी यह वाणी कहीं झूठी हो सकती है ?

"काचो पारो खावो अन्न, तेवुं छे चोरी नुं धन।"

(यानी कच्चा पारा खाना और चोरीका धन खाना बराबर हैं।)

एक बार पारसी रुस्तमजीकी चोरी पकडी गई। तब वह मेरे पास दौडे आए। उनकी आखोंसे आसू निकल रहे थे। मुझसे कहा

"भाई, मैंने तुमको धोखा दिया है। मेरा पाप आज प्रकट हो गया है। मै चुंगीकी चोरी करता रहा हूं। अब तो मुझे जेल भोगनेके सिवाय दूसरी गति नहीं है। बस, अब मै बरबाद हो गया। इस आफतमेंसे तो आप ही मुझे बचा सकते हैं। मैंने वैसे आपसे कोई बात छिपा नहीं रखी है; परंतु यह समझकर कि यह व्यापारकी चोरी है, इसका जिक्र आपसे क्या-करू यह बात मैंने आपसे छिपाई थी। अब इसके लिए पछताता हू।"

मैंने उन्हें धीरज और दिलासा देकर कहा—"मेरा तरीका तो आप जानते ही है। छुडाना-न-छुडाना तो खुदाके हाथ है। मै तो आपको उसी हालतमें छुडा सकता हू जब आप अपना गुनाह कबूल कर लें।"

यह सुनकर उस भले पारसीका चेहरा उतर गया।

"परंतु मैंने आपके सामने कबूल कर लिया, इतना ही क्या काफी नहीं है?" रुस्तमजी सेठने पूछा।

"आपने कसूर तो सरकारका किया है, तो मेरे सामने कबूल करनेसे क्या होगा?" मैंने धीरेसे उत्तर दिया।

"अंतको तो मै वही करूगा, जो आप बतावेंगे; परंतु मेरे पुराने वकील-की भी तो सलाह ले लें, वह मेरे मित्र भी है।" पारसी रुस्तमजीने कहा।

अधिक पूछ-ताछ करनेसे मालूम हुआ कि यह चोरी बहुत दिनोंसे होती आ रही थी। जो चोरी पकडी गई थी वह तो थोडी ही थी। पुराने वकीलके पास हम लोग गये। उन्होंने सारी बात सुनकर कहा,

"यह मामला जूरीके पास जायगा। यहाके जूरी हिंदुस्तानीको क्यों छोड़ने लगे? पर मै निराश होना नहीं चाहता।"

इन वकीलके साथ मेरा गाढा परिचय न था। इसलिए पारसी रुस्तमजीने ही जवाब दिया

"इसके लिए आपको धन्यवाद है। परतु इस मुकदमेमें मुझे मि० गाधीकी सलाहके अनुसार काम करना है। वह मेरी बातोको अधिक जानते है। आप जो कुछ सलाह देना मुनासिव समझें हमें देते रहिएगा।"

इस तरह थोडेमें समेटकर हम रुस्तमजी सेठकी दूकानपर गये। मैंने उन्हे समझाया—"मुझे वह मामला अदालतमें जाने लायक नही दिखाई देता। मुकदमा चलाना-न-चलाना चुगी अफसरके हाथमे है। उसे भी सरकारके प्रधान वकीलकी सलाहसे काम करना होगा। मैं इन दोनोके लिए तैयार हू, परतु मुझे तो उनके सामने यह चोरीकी बात कबूल करनी पडेगी, जो कि वे अभी तक नही जानते है। मैं तो यह सोचता हू कि जो जुरमाना वे तजवीज कर दे उसे मजूर कर लेना चाहिए। बहुत मुमकिन है कि वे मान जायगे। परतु यदि न मानें तो फिर आपको जेल जानेके लिए तैयार रहना होगा। मेरी राय तो यह है कि लज्जा जेल जानेमें नही बल्कि चोरी करनेमे है। अब लज्जाका काम तो हो चुका। यदि जेल जाना पडे तो उसे प्रायश्चित्त ही समझना चाहिए। सच्चा प्रायश्चित्त तो यह है कि अब आगेसे ऐसी चोरी न करनेकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए।" मैं यह नही कह सकता कि रुस्तमजी सेठ इन सब बातोको ठीक-ठीक समझ गये हो। वह बहादुर आदमी थे। पर इस समय हिम्मत हार गये थे। उनकी इज्जत बिगड जानेका मौका आ गया था और उन्हे यह भी डर था कि खुद मेहनत करके जो यह इमारत खडी की थी वह कही सारी की-सारी ढह न जाय।

उन्होने कहा

"मैं तो आपसे कह चुका हू कि मेरी गर्दन आपके हाथमें है। जैसा आप मुनासिब समझें वैसा करें।"

मैंने इस मामलेमे अपनी सारी कला और सौजन्य खर्च कर डाला। चुगीके अफसरसे मिला, चोरीकी सारी बात मैंने निःशक होकर उनसे

कह दी। यह भी कह दिया कि "आप चाहे तो सब कागजपत्र देख लीजिए। पारसी रुस्तमजीको इस घटना पर बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है।"

अफसरने कहा :

"मै इस पुराने पारसीको चाहता हू। उसने की तो यह बेवकूफी है; पर इस मामलेमें मेरा फर्ज क्या है, सो आप जानते है। मुझे तो प्रधान वकीलकी आज्ञाके अनुसार करना होगा। इसलिए आप अपनी समझानेकी सारी कलाका जितना उपयोग कर सकें वहा करें।"

"यदि पारसी रुस्तमजीको अदालतमे घसीट ले जानेपर जोर न दिया जाय तो मेरे लिए बस है।"

इस अफसरसे अभय दान प्राप्त करके मैने सरकारी वकीलके साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया और उनसे मिला भी। मुझे कहना चाहिए कि मेरी सत्यप्रियताको उन्होने देख लिया और उनके सामने मैं यह सिद्ध कर सका कि मै कोई बात उनसे छिपाता नही था। इस अथवा किसी दूसरे मामलेमे उनसे साबका पडा तो उन्होने मुझे यह प्रमाण-पत्र दिया था—"देखता हू कि आप जवाबमे 'ना' तो लेना ही नही जानते।"

रुस्तमजीपर मुकदमा नही चलाया गया। हुक्म हुआ कि जितनी चोरी पारसी रुस्तमजीने कबूल की है उसके दूने रुपये उनसे ले लिए जाए और उनपर मुकदमा न चलाया जाय।

रुस्तमजीने अपनी इस चुगी-चोरीका किस्सा लिखकर काचमे जडाकर अपने दफ्तरमें टाग दिया और अपने वारिसो तथा साथी व्यापारियोको ऐसा न करनेके लिए खबरदार कर दिया। रुस्तमजी सेठके व्यापारी मित्रोने मुझे सावधान किया कि यह सच्चा वैराग्य नही, श्मशानवैराग्य है।

पर मैं नही कह सकता कि इस बातमें कितनी सत्यता होगी। जब मैने यह बात रुस्तमजी सेठसे कही तो उन्होने जवाब दिया कि आपको धोखा देकर मै कहा जाऊगा। (आ० क०, १६२७)

. . .   .

बी-अम्माकी मृत्यु होनेपर मौ० शौकतअलीने कहा था—हिंदुस्तानका एक सच्चा सिपाही कम हो गया। पारसी रुस्तमजीकी मृत्युमे भी एक सच्चा सिपाही कम होगया है। यही नही, मेरा तो एक परम मित्र ही कम हो गया है। पारसी रुस्तमजी जैसे आदमी मैंने बहुत थोडे देखे है। शिक्षा उन्होंने नाममात्रके ही लिए प्राप्त की थी। अंग्रेजी भी थोडी ही जानते थे। गुजरातीका ज्ञान भी मामूली था। पढनेका बहुत शौक न था। जवानीमे ही व्यापारमें पड गये थे। केवल अपने परिश्रमके बल पर एक मामूली गुमाश्तेकी हालतमे एक बडे व्यापारीकी सीढीपर जा पहुचे थे। फिर भी उनकी व्यवहार-बुद्धि तीव्र थी, उनकी उदारता हातिमके जैसी थी, उनकी सहिष्णुता तो इतनी बढी हुई थी कि खुद कट्टर पारसी होते हुए भी हिंदू, मुसलमान, ईसाई, आदिके प्रति एक-सा प्रेम रखते थे। किसी भी चदा चाहनेवाले या हाथ फैलानेवालेको उनके घरसे खाली हाथ जाते हुए मैंने नही देखा। अपने मित्रोके प्रति उनकी वफादारी इतनी सूक्ष्म थी कि कितने ही लोग उन्हींको अपना मुख्तारनामा दे जाते थे। मैंने देखा है कि बडे-बडे मुसलमान व्यापारी अपने नाते-रिश्तेदारोको छोड कर पारसी रुस्तमजीको अपना एलची बनाते थे। कोई भी गरीब पारसी रुस्तमजीकी दुकानसे खाली नही लौटता था। पारसी रुस्तमजी अपने लोगोके प्रति जितने उदार थे खुद अपने प्रति उतने ही कजूस थे। आमोद-प्रमोदका तो नाम भी न जानते थे। अपने या स्वजनोके लिए विचारपूर्वक खर्च करते थे। घरमें अत तक बहुत सादगी कायम रखी थी। गोखले, एड्रयूज सरोजिनी देवी आदि पारसी रुस्तमजीके ही यहा ठहरते थे। छोटी-से-छोटी बात पारसी रुस्तमजीके ध्यानसे दूर न रहती। गोखलेके असंख्य अभिनन्दन-पत्र इत्यादिके बडे-बडे पैतालीस अददको पैक कराना, उन्हें जहाज पर चढाना, आदि सारा भार पारसी रुस्तमजी पर न हो तो किसपर हो।

अपनी प्रिय धर्मपत्नीकी मृत्यु पर उनके नामका जेरबाई ट्रस्ट करके

अपनी सपत्तिका वडा भाग उन्होने धर्म-कार्यके निमित्त रख छोडा था। अपनी सतानको उन्होने कभी भी चटक-मटककी हवा न लगने दी। उन्हें सादी रहन-सहन सिखाई और उनके लिए इतनी ही विरासत रख छोडी है, जिससे वे भूखो न मर सके। अपने वसीयतनामेमें उन्होने अपने तमाम रिश्तेदारोको याद किया है।

पूर्वोक्त प्रकारकी ही सावधानी और दृढताके साथ उन्होने सार्वजनिक हलचलोमे योग दिया था। सत्याग्रहके समयमें अपना सर्वस्व स्वाहा कर देनेके लिए तैयार व्यापारियोमे पारसी रुस्तमजी सवसे आगे थे।

अगीकृत कार्यको हर तरहका सकट उपस्थित होनेपर भी उसे न छोडनेकी टेव उन्हे थी। अपेक्षाकृत अधिक दिनोतक जेलमें रहना पडा, तो भी वे हिम्मत न हारे। लडाई आठ साल तक चली, कितने ही मजवूत लडवैया गिर गये, पर पारसी रुस्तमजी अटल वने रहे। अपने पुत्र सोरावजीको भी उन्होने लडाईमें स्वाहा कर दिया।

इन हिंदुस्तानी सज्जनकी मुलाकात मुझसे १८९३ में हुई। पर ज्यो-ज्यो मै सार्वजनिक कामोमे पडता गया त्यो-त्यो पारसी रुस्तमजीमें रहे जवाहरातकी कदर करना मै सीखता गया। वे मेरे मवक्किल थे। सार्वजनिक कामोमें मेरे साथी थे और अतको मेरे मित्र हो गये। वे अपने दोषोका वर्णन भी मेरे सामने वालककी तरह आकर कर देते। वे मेरे प्रति अपने विश्वासके द्वारा मुझे चकित कर देते थे। १८९७ में जव गोरोने मुझपर हमला किया तव मेरे और मेरे वाल-वच्चोका आश्रय-स्थान रुस्तमजीका मकान था। गोरोने उनके मकान, असवाव आदिमें आग लगा देनेकी धमकी दी। पर उससे पारसी रुस्तमजीका रूवा तक खडा न हुआ। दक्षिण अफ्रीकामें जो नाता उन्होने जोडा सो ठेठ मृत्यु-दिन तक कायम रखा। यहा भी वे सार्वजनिक कामोके लिए रुपया-पैसा भेजते रहते थे। दिसवरमे महासभाके समय उनके यहा आनेकी सभावना थी। पर ईश्वरको कुछ और ही करना था। रुस्तमजी सेठकी मृत्युसे

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोकी वडी हानि हुई है। सोरावजी अडाजणिया गये, फिर अहमद महमद काछलिया गये, अभी-अभी पी० के० नायडू गये और अब पारसी रुस्तमजी भी चले गये। अब दक्षिण अफ्रीकामें इन सेवकोकी कोटिके भारतवासी शायद ही रहे हो। ईश्वर निराधारोका रखवाला है। वह दक्षिण अफ्रीकाके भारतवासियोकी रक्षा करेगा। परतु पारसी रुस्तमजीकी जगह तो हमेशा खाली ही रहेगी। (हिं० न०, ३० ११.२४)

: १८२ :

सोरावजी रुस्तमजी

एक प्रसग उल्लेखनीय है। वेरूलममें कई मजदूर निकल पडे थे। वे किसी प्रकार लौटकर जाना नही चाहते थे। जनरल ल्यूकिन अपने सिपाहियोको लेकर वहा खडा था। लोगोपर गोली चलानेका हुक्म वह देनेको ही था कि स्वर्गीय पारसी रुस्तमजीका छोटा लडका वहादुर सोरावजी, जिसकी उम्र उस समय शायद ही अठारह वर्षकी होगी—डरवनसे यहा आ पहुचा। जनरलके घोडेकी लगाम थामकर उसने कहा, "आप गोलिया चलानेका हुक्म न दे, मै अपने लोगोको शातिपूर्वक अपने-अपने कामपर लौटा देनेकी जम्मेदारी लेता हू।" जनरल ल्यूकिन इस नौजवानकी वहादुरीपर मुग्ध हो गया और उसने सोरावजीको अपना प्रेम-वल आजमा लेनेकी मुहलत दे दी। सोरावजीने लोगोको समझाया। वे समझ गये और अपने-अपने काम पर चले गये। इस तरह एक नौजवान के प्रसगावधान, निर्भयता और प्रेमके कारण खूनकी नदी वहते-वहते रुक गई। (द० अ० स०)

: १८३ :

जोसेफ रॉयपेन बैरिस्टर

जोसेफ रॉयपेन बैरिस्टर, केम्ब्रिजके ग्रेजुएट थे। नेटालके गिर-मिटिया माता-पितासे जन्म ग्रहण करनेपर भी 'साहब लोग' बन गये थे। वह तो घरमें भी बिना बूटके नही चल सकते थे। इमाम साहबको तो वजू करते वक्त पाव धोने पड़ते और खुले पैरसे नमाज पढनी पडती। बेचारे रॉयपेनको तो इतना भी नही करना पड़ता था; पर उन्होने बैरिस्टरीको छोड दिया, बगलमें साग-तरकारीकी टोकरी लटकाए और फेरी करते हुए गिरफ्तार हुए। उन्होने भी जेल भुगती। एक दिन रॉयपेनने मुझसे पूछा ·

"क्या मैं सफर भी तीसरे दर्जेमे ही करूँ?"

मैंने उत्तर दिया, "यदि आप पहले और दूसरे दर्जेमें सफर करेंगे तो तीसरे दर्जेमें मुझे किससे सफर कराना चाहिए? जेलमें आपको बैरिस्टर कौन कहेगा?"

जोसेफ रॉयपेनके लिए यह उत्तर काफी था। वह भी जेलमें सिधारे। (द० अ० स०)

वह बैरिस्टर थे, पर उन्हें इस बातका अहकार नही था। वह अति-शय कठिन परिश्रम नही कर सकते थे। ट्रेनसे अपना असबाब उतार कर उसे बाहर गाडीपर रख देना भी उनके लिए कठिन था। परतु यहा तो वह भी मेहनत पर चढ गये। उन्होने वह सब यथाशक्ति कर लिया। टॉल्स्टॉय फार्मपर कमजोर आदमी सशक्त हो गये और सभी परिश्रमके आदी हो गये (द० अ० स०)

: १८४ :

लाला लाजपतराय

लाला लाजपतरायको गिरफ्तार क्या किया, सरकारने हमारे एक बडे-से-बडे मुखियाको पकड लिया है। उसका नाम भारतके बच्चे-बच्चेकी जबानपर है। अपने स्वार्थ-त्यागके कारण वे अपने देश-भाइयोंके हृदयमें उच्च स्थान प्राप्त कर चुके है। अहिंसाके प्रचारके लिए और उसके साथ ही लोकमतको सगठित और प्रकट करनेके लिए उन्होने जितना परिश्रम किया है उतना बहुत ही थोडे लोगोने किया है। उनकी गिर-फ्तारीसे सरकारकी नीति या वृत्तिका जितना सच्चा पता चलता है उतना दूसरी किसी बातसे नहीं।

पजाबने तुरत ही उनकी जगहपर अपना दूसरा नेता चुन लिया। उन्होंने आगा सफदरको अपना अगुवा बनाया है। पजाबी भाइयोको उनसे अच्छा नेता नही मिल सकता था। वे एक सच्चे मुसलमान और एक वीर हिंदुस्तानी है। उन्होने जितनी सेवाए की है वे सब अज्ञातरूपसे की है। मुझे इस बातमें जरा भी सदेह नही है कि लोग लालाजीकी तरह ही सच्चे हृदयसे उनका साथ देंगे। पजाबी भाई लालाजीको बड़े-से-बडा गौरव जो दे सकते है वह यह है कि वे यही समझकर कि लालाजी हमारे साथ ही है, उनका काम बराबर आगे बढाते रहें। (हि० न०, ११.१२ २१)

•

आखिरकार लाजपतराय, पडित सतानम, मलिक लालखान और डाक्टर गोपीचदके मुकदमेका फैसला हो गया। लालाजी तथा पडित सतानमको अठारह-अठारह महीनेकी कैदकी सजा दी गई। अभियुक्तोके बहुतेरा विरोध करनेपर भी सरकारने जबरदस्ती उनके बचावके लिए

एक वकील नियुक्त किया था। इस तमाशेके होते हुए भी उनको सजा दी जाना तो निश्चित ही था। सजाका हुक्म सुनाए जानेके जरा पहले ही लालाजीने मुझे एक पत्र लिखा। उसमे उनके चित्तकी प्रसन्नता टपकी पडती है। वह इस प्रकार है

"आपने जो स्नेहपूर्ण टिप्पणी लिखी है तथा रामप्रसादजी और पुरुषोत्तमलालके द्वारा जो संदेश भेजा उनके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। मै बहुत मजेमें हू। मैंने अन्न-त्याग नहीं किया था। मै अपने आरामके लिए शोरोगुल मचानेके खिलाफ हूं। हम यहा इसलिए नहीं आए है कि किसी तरहकी सुविधाएं या रिआयतें चाहें। सच्चा हाल अखबारोंमें जाहिर हुआ है और आशा है कि वह अब आप तक पहुच गया होगा। हम सब लोगोका चित्त बहुत प्रसन्न है और मै राष्ट्रीय पाठशालाओ तथा धार्मिक ग्रथोके अध्ययनमें अपने समयका खूब सदुपयोग कर रहा हू। अहमदाबादमें जो कुछ हुआ है उसके तथा सर्वपक्षीय परिषद् (राउड टेबल कान्फ्रेन्स)के हालात मुझे मालूम हो गये हैं। हमारी तकलीफोंकी वजहसे हमारे सिद्धातोके निर्णयमें बाधा न होने दीजिएगा। आप यकीन मानिए, हम अपने मनोरथको पूरा करनेके लिए जबतक चाहिए तबतक और जितनी चाहिए, उतनी तकलीफें बरदाश्त करनेको हर तरहसे तैयार है। और अब जब कि उसीके लिए हम यहां आए हुए है तो हमें उसे अखीरतक निबाहना चाहिए।"

हमें आशा करनी चाहिए कि लालाजी और पडित सतानमको उनका अध्ययन जारी रखने दिया जायगा। मै उन्हें तथा उनके साथियोको यह भी सूचित करनेका साहस करूगा कि वे मौलाना शौकतअली और श्री राजगोपालाचारी तथा उनके साथियोका अनुकरण करें, अर्थात् वे साहित्य-सबधी उद्योगोके साथ-ही-साथ चरखा कातनेपर भी ध्यान देंगे। मै अभिवचन देता हू कि बीच-बीचमें चरखा कातते रहनेसे लालाजीके इतिहास-लेखन तथा पडित सतानमके सस्कृत अध्ययनमें हानि न होगी।

सर्वपक्षीय परिषद्के संबंधमे लालाजीने जो उद्‌गार प्रकट किए है उनकी ओर मैं उन देश-सेवकोका ध्यान दिलाता हू, जो मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट स्वाभाविक प्रेरणासे प्रेरित होकर, अपने देशके साथ प्रेम करने तथा अपनी अंतरात्माकी पुकारके अनुसार आचरण करनेके अपराधके कारण जेलोमे चले जानेवाले कैदियोको छुडानेके उद्देश्यसे कोई निपटारा जल्दी करनेका प्रयत्न कर रहे है। हमारी प्रतिष्ठाके अनुकूल कोई निपटारा होता हो तो उसके रास्तेमे हमे काटे न बखेरना चाहिए, पर यदि हम अपने जेल जानेवाले देश भक्तोके शरीर-सुखके खयालसे कोई असतोषजनक सधि कर बैठेंगे तो ऐसा करना उनके प्रति अन्याय करना होगा। यदि हम अपनी ही इच्छासे निमंत्रित किए गये कष्ट-सहनको कम करनेके लिए जरा भी अनुचित रीतिसे झुक गये तो ऐसा करना देशकी हार्दिक अभिलाषाको ठीक-ठीक न जानना होगा। (हिं० न०, २५ १ २२)

•

दूसरे व्यक्ति जिनपर अविश्वास किया जाता है लालाजी है। मैंने तो लालाजीको एक बच्चेके समान खुले दिल वाला पाया है। उनके त्यागकी जोड़ लगभग हुई नही। मेरी उनसे हिंदू मुसलमानोके बारेमे एक बार नही अनेक बार बातें हुई है। वे मुसलमानोके साथ तनिक भी दुश्मनी नही रखते; लेकिन उन्हें जल्दी एकता हो जानेमें शक है। वे ईश्वरसे प्रकाश पानेके लिए प्रार्थना कर रहे है। खुद शकित रहते हुए भी वे हिंदू-मुसलमानोकी एकताके कायल है, क्योंकि जैसा कि उन्होने मुझसे कहा है वे स्वराज्यके कायल है। वे मानते है कि ऐसी एकताके विना स्वराज्य स्थापित नही हो सकता। तो भी वे यह नही जानते कि यह एकता किस तरह और कब होगी। मेरा उपाय उन्हे पसद है, परतु इस बातमे शक है कि हिंदू लोग उसका मर्म समझ पावेंगे या नही और अगर समझ पावेंगे तो उसकी शराफतकी कदर करेंगे या नही। यहा मै इतना कहे देता हू कि मै अपनी तदबीरको उदात्त शरीफाना नही कहता। मेरे खयालमे तो यह

बिलकुल ठीक और हो सकने लायक तदबीर है। (हिं० न०, १.६ २४)

. . . . .

मैं खयाल करता हू कि बहुतसे व्याख्यान-दाताओंकी तरह मेरा भी यह दुर्भाग्य है कि सवाददाता-गण मेरे व्याख्यानोकी अक्सर गलत रिपोर्ट भेज देते है, यद्यपि वे जानबूझकर ऐसा नही करते। मुझे याद है कि १८९६ ई० मे स्वर्गीय सर फिरोजशाह मेहताने, जबकि मै पहले-पहल भारतवर्षमें व्याख्यान देनेके लिए खड़ा हुआ था, मुझसे कहा था कि यदि आप चाहते हो कि लोग आपके व्याख्यानको सुनें और उसकी सही रिपोर्ट भेजी जाय तो आपको अपना व्याख्यान लिख लेना चाहिए। उनकी इस अच्छी सलाहके लिए मैंने उन्हें हमेशा धन्यवाद दिया है। मैं यह जानता हू कि यदि उस दिनकी सभाके लिए मैंने उनकी सलाहके अनुसार काम न किया होता तो वहा मेरी बडी फजीहत होती; लेकिन जब-जब मेरे व्याख्यानोकी रिपोर्ट गलत भेजी गई है तब-तब बबईके उस बिना ताजके राजाकी, सलाहको याद करनेका मुझे अवसर मिला है। कहा जाता है कि किसीने यह सवाद भेजा है कि अमृतसरकी खिलाफत-परिषदमें मैंने लाला लाजपतरायको भीरु कहा है। लालाजी जो कुछ भी हो, वे भीरु नही हैं। मेरे व्याख्यानका पूर्वापर सबध देखनेसे प्रतीत होगा कि मैं उनका इस आक्षेपसे कि वे मुसलमानोके विरोधी है बचाव कर रहा था। उस समय मैंने जो कुछ कहा था वह यह है . लालाजी सदा शकितचित्त रहते है और उन्हें मुसलमानोके उद्देश्यके बारेमे बडी शका रहती है। लेकिन वे मुसलमानोकी दोस्ती सच्चे दिलसे चाहते है। लालाजीके प्रति मेरा बडा आदरभाव है। मैं उन्हें बहादुर आत्मत्यागी, उदार सत्यनिष्ठ और ईश्वरसे डरनेवाला मानता हू। उनका स्वदेशप्रेम बडा ही शुद्ध है। देशकी जितनी और जैसी सेवा उन्होंने की है उसमें उनकी बराबरी करनेवाले बहुत कम हैं। और यदि ऐसे शख्सोपर सदेह किया जा सके कि उनके उद्देश्य हीन है तो हमें हिंदू-मुस्लिम ऐक्यसे उसी प्रकार निराश

होना पड़ेगा जिस प्रकार हमें अलीभाइयोंपर हीन उद्देश्य रखनेका संदेह करनेपर निराश होना पड़े। हम सब अपूर्ण हैं, हमारा मत एक-दूसरेके खिलाफ दूषित होगया है। हम, हिंदू और मुसलमान, जैसे हैं वैसे ही समझे जाने चाहिए। जो हिंदू-मुस्लिम ऐक्यको अपना धर्म मानते हैं उन्हें तो जो साधन हमारे पास हैं उसीके द्वारा उसे संपादन करनेका प्रयत्न करना चाहिए। अपने औजारोंको बुरा कहने वाला कारीगर आप ही बुरा है। कर्नल मैडकने मुझसे कहा था कि एक मरतबा एक साधारण चाकूसे ही मैंने एक बड़ा गंभीर आपरेशन किया था, क्योंकि उस समय मेरे पास कोई औजार न था और खौलते हुए पानीके सिवा दूसरी कोई जीव-जन्तु-विनाशक औषधि भी न थी। उन्होंने हिम्मतसे काम लिया और उनका रोगी भी बच गया। हम भी एक दूसरेका विश्वास करें और हम सही-सलामत रहेंगे। एक-दूसरेका विश्वास करनेके यह मानी कभी नहीं हो सकते कि जबानी तो हम एक दूसरेके प्रति विश्वास जाहिर करें और हृदयमें विश्वासको ही स्थान दें। यह सचमुच भीरुता ही है, और भीरु भीरुमें या भीरु और बहादुरोंमें मित्रता हो ही नहीं सकती। (हिं० न०, १४.१२.२४)

• • • • • • •

हिंदू महासभाके एक उत्साही सदस्य ने मुझे 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'में उत्तर देनेके लिए कोई १५ प्रश्न भेजे हैं। एक दूसरे महाशयने इन्हीं प्रश्नोंके तरीकेपर मेरे साथ इसी बारेमें बहस की है। मैं उन सब प्रश्नोंका उत्तर देना नहीं चाहता हूं लेकिन उनमें कुछको तो मैं छोड़ देनेकी भी हिम्मत नहीं कर सकता हूं; क्योंकि उन प्रश्नोंसे तो पंडित मदनमोहन मालवीयजी और लालाजीपर वर्तमान पत्रोंमें जो आक्रमण हो रहा है उस ओर मेरा ध्यान खींचा गया है। मुझसे यह प्रश्न पूछे गये हैं:

"क्या आपको उनके भले उद्देश्यके बारेमें शंका है? क्या आप उन्हें सीधी तौरपर या और किसी दूसरे तरीकेपर हिंदू-मुस्लिम एक्यके विरोधी मानते है? आप मानते है कि क्या वे देशको जानबूझकर किसी भी प्रकार की हानि पहुंचा सकते है?"

मै अक्सर यह देखता हू इन स्वदेश-भक्त वीरोपर इस प्रकार आक्रमण होता है। मै यह भी जानता हू कि मेरे बहुतसे मुसलमान मित्रोको इन दोनो प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्ताओके प्रति सपूर्ण अविश्वास है। लेकिन मै, बहुतेरी बातोमें उनसे कितना भी मतभेद क्यो न रक्खू, उनमेसे किसी एक पर भी कभी भी अविश्वास नही ला सकता हू। जिस प्रकार मैने मुसलमानोको मालवीयजी और लालाजीपर इस प्रकार आक्षेप करते हुए देखा है, उसी प्रकार हिन्दुओको भी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मुसलमानोपर ऐसे आक्षेप करते हुए देखा है; लेकिन मै उनमेसे किसी भी पक्षके आक्षेपोपर विश्वास नही ला सका हू और मै अपना मतव्य भी किसी भी पक्षको नही समझा सका हू। मालवीयजी और लालाजी दोनो ही देशके कसे हुए सेवक है। दोनो बहुत दिनोसे, देशकी बराबर प्रशसनीय सेवा कर रहे है। उनके साथ दिल खोलकर बातचीत करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, लेकिन मुझे एकभी ऐसा अवसर याद नही जब मैने उन्हें मुसलमानोका विरोधी पाया हो। लेकिन इसका मतलब यह नही कि उन्हें मुसलमान नेताओके प्रति अविश्वास नही है और इस बडे कठिन और नाजुक प्रश्नके उपायके सबधमें हम लोग एक राय है। उन्हें ऐक्यकी आवश्यकताके बारेमें कुछ भी सदेह नही है और उन्होने अपने विचारोके अनुसार उसके लिए प्रयत्न भी किया है। मेरी रायमे तो इन नेताओके उद्देश्यके सबधमें शका करना ही ऐक्यके होनेके सबधमे शका प्रकट करना है। जब हम लोग सधि करेंगे—किसी-न-किसी दिन हमें यह करना ही होगा—उस समय उनकी बातोका हिंदू-समाज पर ठीक वैसा ही असर पडेगा जैसा कि मुसलमानोमें मौलाना अबुल कलाम

आजाद और हकीम साहबकी बातोका असर पडता है। (हिं० न०, १७.१२ २५)

"आपके तारके लिए आभार मानता हू। लोगोकी ओरसे पुलिसको हमला करनेके लिए कोई कारण नहीं मिला है। यह मामला इरादापूर्वक किया गया था। दो सख्त चोटें लगी है, मगर गभीर नहीं है। एक बाई छातीपर और एक कंधेपर लगी है। दूसरी चोटें सत्यपाल, गोपीचद, हंसराज, मुहम्मद आलम आदि मित्रोने सभाल लीं। दूसरोपर भी मार पड़ी है और चोटें लगी है; किंतु चिंताका कोई कारण नहीं है।"[1]

—लाजपतराय

मैंने लाला लाजपतरायको तारसे धन्यवाद दिया था और हालत पूछी थी। उसके जवाबमें तुरत ही लालाजीने ऊपरका तार भेजा। आजके लोगोमें से, जबकि अधिकाश की अभी रेखें भी नही भीगी थी, लालाजीने 'पजाब केशरी' का नाम पाया था। अबतक उनका यह इल्काब जैसा-का-तैसा कायम है, क्योंकि चाहे उनके पक्ष और विपक्षमें कुछ भी क्यों न कहा जाय, वे अब भी पजाबके सबसे बडे निर्विवाद नेता है और सारे भारतवर्षमें सबसे अधिक लोकप्रिय और प्रतिष्ठित नेताओंमें से है। वे महासभाके सभापति हो चुके है यूरोपमे उनका नाम है और वे उन गिने-चुने नेताओमे से है, जो दिलकी बात तुरत ही कह देते है, गो कोई भले ही गलतफहमी करे या उससे भी अधिक उन्हें अवसर पहचाननेवाला मूर्ख समझे। मगर लालाजी अपनी आदतसे लाचार है, क्योंकि वे अपने दिलमें कोई बात छिपाकर रख ही नही सकते। जो बात सोची, वह वे कहेंगे ही।

---

[1] साइमन कमीशनके लाहौर आनेपर जो जलूस उसके प्रति विरोध प्रकट करनेके लिए निकाला गया था, लालाजीने उसका नेतृत्व किया था। पुलिसने उस जलूसपर लाठियां चलाई थीं।

इसलिए जब मैंने यह शीर्षक पढा "लालाजीपर मार" और मारके ब्यौरे पढे तभी मेरे मुहसे निकल गया--"शाबाश !" अब हमें स्वराज्य पानेमें बहुत देर नही लगेगी, क्योकि चाहे हमारी क्रांति हिंसक हो या अहिंसक, स्वतत्र होनेके पहले हमें देशके नामपर मरनेकी कला सीखनी होगी। इसके अलावा जबतक महान प्रयत्न न किया जावे, अहिंसक दबावसे भी शासक झुकेंगे नही। आदर्श और सपूर्ण अहिंसाके सामने, मैं यह कल्पना कर सकता हू कि शासकोकी वृत्ति बिलकुल ही बदल जानी सभव है। मगर गोकि आदर्श और सपूर्ण कार्यक्रम बनाना सभव है, तथापि उसका सपूर्ण और आदर्श अमल कभी सभव नही है। इसलिए सबसे सस्ती बात यही है कि नेताओपर मार पडे या गोली चले। अबतक अनजान आदमियोपर मार पडी है या वे मारे गये हैं। थोडेसे आदमियोको गोली मारनेसे भी देशका ध्यान जितना आकर्षित नही होता उससे कही अधिक लालाजीपर हमला करनेसे हुआ है। लालाजी तथा दूसरे नेताओपर हमलेसे हिंदुस्तानके राजनीतिज्ञ विचारमे पड़ गये हैं और सरकारकी शाति तो जरूर ही भग हो गई होगी। (हि० न०, ८ ११.२८)

• • •

लाला लाजपतरायका देहात हो गया। लालाजी चिरजीवी होवें। जबतक हिंदुस्तानके आकाशमें सूर्य चमकता है तबतक लालाजी मर नहीं सकते। लालाजी तो एक सस्था थे। अपनी जवानीके ही समयसे उन्होने देशभक्तिको अपना धर्म बना लिया था और उनके देशप्रेममें सकीर्णता न थी। वे अपने देशसे इसलिए प्रेम करते थे कि वे ससारसे प्रेम करते थे। उनकी राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयतासे भरपूर थी। इसलिए यूरोपियन लोगोपर भी उनका इतना अधिक प्रभाव था। यूरोप और अमेरिकामें उनके अनेक मित्र थे। वे मित्र लालाजीको जानते थे और इसलिए उनसे प्रेम करते थे।

उनकी सेवाए विविध थी। वे बडे ही उत्साही समाज और धर्म सुधारक थे। हममेंसे बहुतसे लोगोंके समान वे भी इसीलिए राजनीतिज्ञ

बने थे कि समाज और धर्म सुधारकी उनकी लगन राजनीतिमें शामिल हुए विना पूरी होनी ही नही थी। सार्वजनिक जीवन शुरू करनेके कुछ ही समय बाद उन्होने देख लिया था कि विदेशी गुलामीने देशके स्वतंत्र हुए विना हमारे इच्छित सुधारोंमेंसे बहुतसे नही हो सकेंगे। जैसा कि हममेंसे बहुतोंको जान पडता है, उन्हें भी जान पडा था कि विदेशी परतन्त्रताका जहर देशकी नस-नसमें घुस गया है।

ऐसे एक भी सार्वजनिक आदोलनका नाम लेना असभव है, जिसमें लालाजी शामिल न थे। सेवा करनेकी उनकी भूख सदा अतृप्त ही रहती थी। उन्होने शिक्षण सस्थाए खोली, वे दलितोंके मित्र बने, जहा कही दुख-दारिद्र्य हो, वही वे दौडते थे। नवयुवकोंको वे असाधारण प्रेमसे अपने पास जमा करते थे। सहायताके लिए किसी नवजवानकी प्रार्थना उनके पास बेकार न गई। राजनैतिक क्षेत्रमें वे ऐसे थे कि उनके विना चल ही नही सकता था। अपने विचार प्रकट करनेमें वे कभी भयभीत न हुए। उस समय भी जब कि कष्ट सहना रोजमर्राकी बात नही हो गई थी, अपने विचार निर्भीकतासे प्रकाशित करनेके लिए उन्होने कष्ट सहा था। उनके जीवनमें कोई छिपा हुआ रहस्य नही था। उनकी अत्यत अधिक स्पष्टवादितासे मित्रोंको, अगर प्राय घबराहटमें पडना होता तो, उनके आलोचक भी चक्करमे पड जाते थे। मगर उनकी यह आदत छूटनेवाली नही थी।

मुसलमान मित्रोंका लिहाज रखता हुआ भी मैं दावेके साथ यह कहता हूं कि लालाजी इस्लामके दुश्मन नही थे। हिंदू धर्मको सबल बनाने तथा शुद्ध करनेकी उनकी प्रबल इच्छाको भूलसे मुसलमानो या इस्लामके प्रति घृणा नहीं समझनी चाहिए। हिंदू-मुसलमानोंमें एकता स्थापित करनेकी उनकी हार्दिक इच्छा थी। वे हिंदू राजकी चाहना नही करते थे, किंतु वे हिंदुस्तानी राजकी इच्छा करते थे। अपने आपको हिंदुस्तानी कहनेवाले सभी लोगोंमे वे सपूर्ण समानता स्थापित करना चाहते थे।

लालाजीकी मृत्युमे भी हम परस्पर एक दूसरेपर विश्वास करना सीखें और अगर हम निर्भय बन जाय तो यह तुरत ही सभव है ।

उनके लिए एक राष्ट्रीय स्मारककी माग अवश्य ही होनी चाहिए और वह होगी भी । मेरी विनम्र सम्मतिमें कोई स्मारक तबतक सपूर्ण नही हो सकता जबतक कि स्वतत्रता जरूर प्राप्त करनी है, यह दृढ विश्वास न हो, और स्वतत्रता प्राप्त करनेके लिए वे जीते थे, इसीके लिए उनकी ऐसी गौरवमयी मृत्यु भी हुई । जरा हम याद करें कि उनकी अतिम इच्छा क्या थी । उन्होने नई पीढीको हिंदुस्तानकी स्वतत्रता प्राप्त करने तथा उसके गौरवकी रक्षा करनेका भार सौपा है । नई पीढीमें उन्होने जो विश्वास दिखलाया वह क्या उसके योग्य आपको साबित करेगी ? और हम बूढोमे से, जो भारतवर्षको स्वतत्र देखनेके लालाजी तथा दूसरे अनेक स्वर्गीय देशभक्तोके स्वप्नको सही बनानेके लिए अभी तक बचे हुए है, एक बार सभी मिलकर महान् प्रयत्न कर अपनेको लालाजीके जैसे देशबधु पानेका अधिकारी सिद्ध करेगे ।

इसके अलावा हम जन-सेवक-सघको भी नही भूल सकते । इस सघको उन्होने अपने विविध कामोकी उन्नतिके लिए स्थापित किया था और वे सब काम देशोन्नतिके लिए थे । सघके सबधमे उनकी उच्चाभिलाषाए बहुत बडी थी । उनकी इच्छा यह थी कि सारे भारतवर्षमें से कुछ नवयुवक मिलकर, एक कार्यमे लगकर, एक दिलसे काम करें । यह सघ अभी बच्चा ही है । इसे स्थापित हुए बहुत साल नही हुए है । अपने इस महान कामको मजबूत पाएपर रखनेका समय उन्हें नही मिला था । यह भार राष्ट्रके ऊपर है और राष्ट्रको इसकी फिक्र करनी चाहिए। (हिं० न०, २२ ११ २८)

• •

लालाजीका अतसमयतक मुझपर विश्वास रहा । यह मेरा सौभाग्य था । उनके अनेक गुणोमे से जो हमारे लिए आज अधिक-से-अधिक

मूल्यवान हो सकता है वह था उनका हरिजन-प्रेम, अस्पृश्यताके विरुद्ध उनका अखड युद्ध। जिस समय हिंदू भारतके हृदयमें हरिजनोंके प्रति अपने कर्तव्य-पालन करनेकी भावना उदय नही हुई थी, उस समय उन्होने यह युद्ध किया था। वे अपनी जोरदार भाषामे बराबर कहते थे कि अछूतपन हिंदूधर्मका कलक है। यदि लालाजीने इस युद्धके सिवाय और कुछ काम न भी किया होता तो भी हिंदुओके दिलोमें लालाजीकी पवित्र स्मृति सदा बनी रहती। परतु लालाजीके देशव्यापी गुणोको, उनकी अखिल भारतीय सेवाओंको कौन नही जानता ? उन्हें 'पजाब-केसरी' की उपाधि यू ही तो नहीं मिली थी। (२७ १२ ३२ को दलौरमे लालाजीके चित्रका उद्घाटन करते समय का भाषण)

•

जब राजनीतिको लोग भूल जायगे, जब जनताका ध्यान खीच लेने-वाली अनेक क्षणभगुर वस्तुए भी विस्मृत हो जायगी, तब भी लालाजीके गभीर और विशाल हरिजन-प्रेमको और उनकी तज्जनिक महान् सेवाओको करोडो हिंदू ही नही, बल्कि कोटिश सवर्ण हिंदू भी— और हिंदू ही क्यो, समस्त भारतवर्ष बडी श्रद्धाभक्तिसे याद किया करेगा। लालाजी एक महान् मानव-प्रेमी थे और उनका वह मानव-प्रेम विश्वव्यापी था। उनकी प्रत्येक वर्षीके अवसरपर हमे अपने जीवनमे लालाजीको उनकी प्रत्येक विगत वर्षीकी अपेक्षा, अधिकाधिक सजीव करते जाना चाहिए। लालाजी-जैसे समाज-सुधारकोका जब निधन होता है तब केवल उनकी देहका ही नाश होता है। उनका कार्य और उनके विचारोका देहके साथ अत नही होता। उनकी शक्ति तो उत्तरोत्तर बढती जाती है। हमे इसका अनुभव तब और अधिक होता है जब हम देखते है कि ज्यो-ज्यो समय बीतता है त्यो-त्यो इस जीर्ण चोलेके बाहर इसका प्रभाव स्वत प्रकट होता जाता है। मनुष्यके अदर जो क्षणजीवी अश है वह देहके साथ नाशको प्राप्त हो जाता है, किंतु मनुष्यका जो शाश्वत अविनाशी अश है, वह तो देहके भस्मीभूत

होनेपर भी जीवित रहता है और देहका बधन दूर हो जानेसे वह और भी अधिक प्रकाशमान हो जाता है। इस विचारको सामने रखकर हमें लालाजीकी स्मृतिको चिरजीवी रखना चाहिए। हरिजन हिंदू तथा सवर्ण हिंदू दोनो ही स्व० लालाजीका पुण्यस्मरण करके हिंदू-समाजमें से यह अस्पृश्यताका पाप-कलङ्क धो डालनेका नये सिरेसे सकल्प करें। हरिजन तो उन त्रुटियोको दूर करें जो अत्याचार बर्दाश्त करते-करते लोगों-में पैदा हो जाती है और सवर्ण अपने उस पापको पखारकर शुद्ध हो जाय, जो उन्होने हरिजनोको जन्मना अस्पृश्य और अपनेको जन्मना उच्च मानकर किया है। (ह० से०, २३ ११ ३४)

• • •   • • •   • • •

लाला लाजपतरायजी तो पजाबके शेर माने जाते थे। वह तो चले गए। मै तो उनका मित्र था और उनके साथ मजाक भी करता था कि हिंदीमें बोलना कब सीखोगे। वह कहते थे, यह नही होनेका। याद रखो, वह समाजी थे और यह भी याद रखो कि वे हवन इत्यादि भी करवाते थे। चूकि मै उन्हीके घरमे ठहरता था, इसलिए मै यह सब देखता था। हवनमें तो सस्कृत ही काममे आती है और अजीब बात थी कि यह सब होते हुए भी वे थोडा-थोडा पढ तो लेते थे देवनागरीमें, लेकिन उनकी मादरी जबान उर्दू ही थी। वे कहते थे कि उर्दूमें तो मुझसे कहो तो घटो बोल लेता हू और बोलते थे, और उर्दूके तो मै आपको क्या बताऊ, वे बडे भारी विद्वान् थे और बहुत शीघ्रतासे लिख सकते थे। अग्रेजीमें भी वे घटो बोल सकते थे, लेकिन सस्कृतमय हिंदी तो उनकी समझमें भी नही आती थी। जब मै चुन-चुनकर अरबी-फारसीके शब्द लाता तब वे मेरी बात समझ सकते थे। (प्रा० प्र०, १८ ११.४७)

: १८५ :

लाटन

मि० लाटन डर्बनके बहुत पुराने और बडे ख्यातनामा वकील थे। मैं भारत गया, उनके पहले ही उनके साथ मेरा बहुत घनिष्ट सबंध हो चुका था। अपने महत्वपूर्ण मुकदमोंमें मैं उन्हींकी सहायता लेता था और कई बार उनको अपने मामलोंमें बडा वकील भी बनाता था। वे बडे बहादुर आदमी थे। शरीरके ऊंचे-पूरे थे। (द० अ० स०)

: १८६ :

लुटावन

उत्तर हिंदुस्तानसे गिरमिटमें आया हुआ लुटावन नामक एक बूढा मवक्किल था। अवस्था ७० वर्षसे भी अधिक होगी। उसे बडी पुरानी दमे और खांसीकी व्याधि थी। अनेकों वैद्योंके क्वाथ-गुडियों और कई डॉक्टरोंकी बोतलोंको वह आजमा चुका था। उस समय मुझे अपने इन (प्राकृतिक) उपचारोंमें असीम विश्वास था। मैंने उससे कहा कि यदि तुम मेरी तमाम शर्तोंका पालन करो और फार्म ही पर रहो तो मैं अपने उपचारोंका प्रयोग तुमपर कर सकूंगा। उसका इलाज करनेकी बात तो मैं कैसे कह सकता था? उसने मेरी शर्तोंको कबूल किया। लुटावनको तमाखूका बहुत भारी व्यसन था। मेरी शर्तोंमें एक यह भी थी कि वह तमाखू छोड दे। लुटावनको एक दिनका उपवास कराया। प्रतिदिन बारह बजे धूपमें 'कूने बाथ' देना शुरू किया। उस समय की ऋतु भी

धूपमे बैठने लायक थी। उसे थोडा भात, कुछ जेतूनका तेल, शहद और कभी-कभी शहदके साथ-साथ खीर, मीठी नारगी, अगूर और भुने हुए गेहूकी कॉफी आदि भोजनके लिए दिया जाता था। नमक और तमाम मसाले बद कर दिए गये थे। जिस मकानमे मै सोता था उसी मकानमे जरा अदरकी तरफ, लुटावनका भी बिस्तर लगा दिया जाता था। सबके बिस्तरमे दो कबल रहते थे, एक बिछानेका और एक ओढनेका। लकडीका तकिया भी रहता था।

एक सप्ताह बीता, लुटावनके शरीरमें तेज प्रवेश करने लगा, दमा कम हुआ, खासी भी घट गई। पर रातको दमा और खासी दोनो सताते। मुझे तमाखूका शक हुआ। मैंने उससे पूछा। लुटावनने कहा, "मै नही पीता।" फिर एक-दो दिन गये। पर खासीमें कोई फर्क नही हुआ। अब छिपकर लुटावनपर नजर रखनेका निश्चय किया। सब जमीनपर ही सोते थे। सर्पादिका भय तो था ही। इसलिए मि० कैलनबेकने मुझे बिजलीकी एक जेबी बत्ती दे रक्खी थी। वह भी एक रखते थे। इस बत्तीको लेकर मै सोता था। मैने निश्चय किया कि एक रात बिस्तर हीमे पडे-पडे जागू। दरवाजेमे बाहर बरामदेमे मेरा बिस्तर लगा हुआ था और दरवाजेके अदर नजदीक ही लुटावन लेट रहा था। करीब आधी रातके लुटावनको खासी आई। दियासलाई सुलगाकर उसने बीडी पीना शुरू किया। मै भी धीरेसे चुपचाप उसके बिस्तरके पास जा खडा हुआ और बत्तीकी कलको दबाया। लुटावन घबडाया। वह समझ गया। बीड़ी बुझाकर उठ खडा हुआ। और मेरे पैर पकडकर बोला, "मैने बड़ा गुनाह किया, अब मै कभी तमाखू नही पीऊगा। आपको मैंने धोखा दिया। मुझे आप माफ करें।" यह कहकर वह गिडगिडाने लगा। मैंने उसे आश्वासन-पूर्वक कहा कि बीड़ी छोडनेमे उसीका हित था। मेरे अनुमानके अनुसार खासी जरूर मिट जानी चाहिए थी। वह मिटी नही, इसलिए मुझे शक हुआ। लुटावनकी बीडी छूटी और उसके साथ-

ही-साथ दो-तीन दिनमें दमा और खांसीकी शिकायत भी कम हो गई। इसके बाद एक मासमें लुटावन बिलकुल नीरोग हो गया। उसके चेहरेपर खूब रौनक आगई और वह विदा होनेके लिये तैयार हुआ। (द० अ० स०)

: १८७ :

लाजरस

पहले मैं यह बतला चुका हूं कि ट्रान्सवालसे जो बहनें आई थीं, वे द्राविड़ प्रांत की थीं। वे एक द्राविड कुटुंबके यहां ठहरी थीं, जो ईसाई था। यह कुटुंब मझोले दर्जेका था। उसके एक छोटा-सा जमीनका टुकड़ा और दो-तीन कमरेवाला एक छोटा-सा मकान था। इन्हींके यहां ठहरनेका मैंने भी निश्चय किया। मालिक-मकानका नाम लाजरस था। गरीबको किसका डर हो सकता है? ये सब मूलतः गिरमिटिया माता-पिताकी प्रजा थे। इसलिए उनको और उनके सबधियोंको भी तीन पौंडवाला कर देना पड़ता था। गिरमिटियाओंके दुःखोंसे तो वे पूरी तरह परिचित थे। इसलिए उनके साथ उनकी सहानुभूति होना भी स्वाभाविक ही था। इस कुटुंबने मेरा सहर्ष स्वागत किया। मेरा स्वागत करना मित्रोंके लिए आसान काम तो कभी रहा ही नहीं है, परंतु इस बार तो वह और भी मुश्किल था। मेरा स्वागत करना मानो प्रत्यक्ष निर्धनताका स्वागत करना और शायद जेलको भी निमंत्रण देना था। इस स्थितिमें शायद ही कोई धनिक व्यापारी अपनेको इस खतरेमें डालनेके लिए तैयार होता। अपनी तथा उनकी परिस्थितिको इस तरह समझ लेनेपर भी उन्हें ऐसी विकट परिस्थितिमें डालना मेरे लिए सर्वथा अनुचित था। बेचारे लाजरसको थोड़ा-सा वेतन ही खोनेका डर था और

वह उसे बरदाश्त भी कर सकता था। उसे कोई कैद करना चाहे तो भले ही करे, पर अपने से भी गरीब गिरमिटियाओके दु:खोको कैसे चुपचाप सह सकता था? उसने अपने यहा इन गिरमिटियाओकी सहायताके लिए आई हुई बहनोको अपनी आखो जेलमें जाते देखा था। उसे मालूम हुआ कि उनके प्रति उसका भी कुछ कर्तव्य है, इसीलिए उसने मुझे भी स्वीकार किया। स्वीकार किया, पर अपना सर्वस्व भी अर्पित कर दिया; क्योकि उसके यहा मेरे जानेके बाद उसका घर एक धर्मशाला बन गया। सैकडो आदमी और हर तरहके आदमी आते-जाते थे। उसके मकान के आस-पास की जमीन आदमियोसे खचाखच भर गई। चौबीसो घटे उसके मकानपर रसोई होती रहती थी, जिसमें उसकी धर्मपत्नीने जीतोड महनत की। इतनेपर भी जब कभी देखिए, तब वे दोनो हँसमुख ही नजर आते थे। उनकी मुखाकृतिमें मैंने अप्रसन्नता नही देखी। (द० अ० स०)

: १८८ :

टी० एम० वर्घीस और जी० रामचन्द्रन्

अगर श्री टी० एम० वर्घीस और श्री जी० रामचन्द्रन विश्वासके लायक नही है तो भी मुझे इस बातका यकीन दिलानेके लिए हमारा[1] मिलना जरूरी है। मुझे स्वीकार करना होगा कि मेरे मनमें उनकी हिम्मत, आत्म-बलिदान, कार्यदक्षता और प्रामाणिताके लिए बहुत मान है। श्री जी० रामचन्द्रन साबरमतीके एक पुराने आश्रमवासी हैं। उन्होने मुझे कभी अविश्वासका कारण नही दिया। (ह० से०, २७.७.४०)

---

[1]गांधीजी तथा त्रावणकोरके दीवान।

: १८६ :

ए० एस० वाडिया

पूनाके श्री ए० एस० वाडियाका निम्नलिखित पत्र मुझे मिला है। जैसा कि उससे मालूम पड़ेगा, वह उन गरीबोंके सच्चे हमदर्द है, जो गर्मियोंमे महाबलेश्वर जानेवालोके लिए नीचेके मैदानोसे लकडियोकी मोलिया लेजाकर जैसे-तैसे अपना निर्वाह करते है। श्री वाडिया लिखते है

"मै महाबलेश्वर इसलिए गया था कि दक्षिणी रोडेशियापर अपनी नई किताब लिखनेके लिए जो एकात और शाति मै चाहता था वह मिल जाए। लेकिन वहा मेरा ध्यान और शक्तिया अचानक उन देहातियोकी तकलीफोपर चली गई, जो नीचेकी घाटियोसे घास और लकडियोके भारी-भारी बोझ लेकर महाबलेश्वर आते और नाममात्रके दामोपर हमारे बाजारमें बेचते थे। जिन पहाडी पगडडियोसे वे आम तौरपर आते उन्हींके बीच वे जगली स्थान थे, जहा बैठकर मै अपनी 'रोडेशियाके चमत्कार' पुस्तक लिखता था। जब कभी मै उनसे बात करता, वे जरूर उन रास्तोकी भयंकर हालतकी शिकायत करते जिनसे होकर वे आते थे, क्योकि नुकीले पत्थरोसे उनके पैरो म चोट लगती और फफोले पड़ जाते थे। उन्होने मुझसे अनुरोध किया कि मै खुद जाकर नीचेके रास्तोकी हालत देखू और उन्हें सुधारनेके लिए कुछ करू। उनकी इच्छा पूरी करनेके लिए मै खुद नीचे घाटियोमें गया और उन रास्तोको देखा। वे पथरीले, ढालू और बीच-बीचमें खतरनाक तौरसे तग थे। पूछताछ करनेपर मुझे पता लगा कि सौ साल पहले जब जनरल लाडनिकने महाबलेश्वरका पता लगाया था तबसे अबतक कभी किसी आदमीका हाथ इन रास्तोपर नहीं लगा, बल्कि लोगोंके बराबर आते-जाते रहनेसे ही ये बन गये है।

मुझे लगा कि गाववालोकी शिकायतें ठीक है और इसपर तत्काल

ध्यान देनेकी जरूरत है। अतः मैंने 'रोडेशियापर' किताब लिखना बद करके मजूरोको कामपर लगाया और रास्तोको साफ व चौडा करने, अवरोधक पत्थरोको हटाने तथा लकडीकी मोलियां लानेमें दरख्तोकी जो डालियां रुकावट डालती थीं उन्हें कटवानेका काम व्यवस्थित रूपसे शुरू कर दिया। ८ सप्ताह तक यह काम जारी रहा, जिस बीच मैंने कुल मिलाकर कोई एक हजार मजूरोको कामपर लगाया होगा। छोटे-बडे मिलाकर एक दर्जन रास्ते उन्होने बनाए और ठीक व दुरुस्त किए होगे। इनमेंसे चार रास्ते कोकणके दूरवर्ती गावोसे शुरू होकर कोकणके पहाडी नाको व दक्षिणकी पहाड़ियोपर होते हुए महाबलेश्वर तक आते हैं। डबील टोक और बाबली टोक नामक कोकणके पहाड़की दो चाकूकी धार जैसी नुकीली चोटियोको तो मैंने इतना सकड़ा और खतरनाक पाया कि पहाडकी चोटियोपर चलनेवाली तेज हवासे सिरपर बोझा उठाते हुए स्त्रियो, बच्चोको नीचे लुढ़कनेका खतरा होनेपर सचमुच मुहके बल लेटकर अपने हाथ-पैरोके सहारे रेंगना ही पडता है। इन दोनो पहाडी चोटियोको, जो हरएक आधमीलके करीब थी, मैंने बिलकुल तुडवा दिया है, हालाकि उनके कुछ हिस्से बडे मजबूत पत्थरके थे और पत्थरके छोटे-छोटे टुकडोके तीनसे चार फुटतक चौडे रास्ते सुरक्षित स्थानोपर बनवा दिए है।

"अब मै उस मुख्य बातपर आता हू जिसके लिए कि मै आपको यह सब लिख रहा हू। मै आपसे पूछता हूं कि क्या सरकार इस बातके लिए बाध्य नहीं है कि जैसे वह सवारी गाड़ियोके आने-जानेके लिए सड़कोको ठीक हालतमें रखती है उसी तरह गाववालोके उपयोगके लिए मैंने जो रास्ते बनाए है उन्हें वह अच्छी हालत में रक्खे? जाच करनेपर मुझे पता लगा है कि मौसमके दर्मियान महाबलेश्वर जानेके लिए कोकणके कोई ५०-६० गाव इन नए बन हुए रास्तोका उपयोग करेंगे। मैंने यह भी पता लगाया है कि ये गाव भूमि-करके रूपमें हर साल ५० से २०० रु० तक देते है, बल्कि एक तो ३०० रु० देता है। इन गावोकी गाढी कमाईसे जो कुछ

हजार रुपया सरकार हर साल भूमि-करके रूपमें वसूल करती है उनके बदले-में इनके लिए वह क्या करती है, यह मैं नहीं जानता। आपको यह याद रखना चाहिए कि कोकण और दक्षिणके इन ६० गावोके लिए महाबले-श्वर ही एक और अकेला ऐसा जरिया है कि जिसके द्वारा वे अपना सरकारी पावना अदा करनेके लिए हर साल कुछ रुपए कमा सकते हैं। इसमेंसे अधिकाशके पास अपने जमीनके थोड़े-से हिस्सेसे जो कुछ मिल जाए, बशर्ते कि बरसात ठीक हो जाए, उसके सिवा और कोई जरिया नहीं है और हरएकके पास जमीनका जो थोडा-सा टुकडा है उसमें पैदा होनेवाला अनाज खुद उसके तथा उसके कुटुंबके लिए मुश्किलसे ही पूरा होता है। नतीजा यह होता है कि जो-कुछ रुपया उन्हें चाहिए उसके लिए घास और लकडीके भारे लेकर उन्हें महाबलेश्वर जाना पड़ता है। और कुटुंबकी परवरिशके लिए खाली पुरुषोके जानेसे ही काम नहीं चलता, बल्कि उनकी स्त्रियों और माताओ तथा १०–१२ सालके बच्चोतकको उनके साथ भारे लेकर जाना पडता है। आप मुझपर विश्वास नहीं करेंगे, लेकिन मैंने ऐसे दर्जनो पुरुषो, स्त्रियो व बच्चोंसे खुद बातचीत की है, जो मंगल-वारके सवेरे लगनेवाले साप्ताहिक बाजारके लिए महाबलेश्वर पहुंचनेको रविवारके तीसरे पहर कोकणके अपने गांवोसे रवाना होते हैं और दो दिनकी सारी मेहनत व तकलीफके बाद हरेक कमाता है कुल ४ आने या अधिक-से-अधिक ५ आने।

"इन गाववालोंसे बातें कर करके मैंने कुछ और हालात भी मालूम किए है, जो शायद आपके लिए उपयोगी होगे :

१—इन सबने इस बातकी शिकायत की कि उनके खेतोकी जमीन साल-ब-साल अनुत्पादक होती जा रही है, जिससे दस साल पहले जितनी उपज हुआ करती थी अब उससे आधीके करीब होने लगी है।

२—इनका कहना है कि काग्रेस-सरकारने हरेक मवेशी पीछे ४ आने कर फिर लगा दिया है, जिससे पिछले दो सालोसे वह मुक्त थे।

३—गांवोके आसपास जो जमीनें पड़ती पडी हुई है उन्हें काश्तके लिए दे दिया जाए और जो छोटे-छोटे जंगली इलाके सुरक्षित रक्खे गये हैं उन्हें उनके मवेशियोके लिए खोल दिया जाए।

"महात्माजी, मैं चाहता हूं कि इन आदिजनोकी, जैसा कि महाबलेश्वरके आसपास की घाटियोके इन गरीब ग्रामीणोको मैं कहता हूं और जिनकी भलाई व बहबूदीके लिए मेरी दिलचस्पी है, मददके लिए आप जरूर कुछ करें।"

मैंने यह पत्र बबईके मत्रियोके पास भेज दिया था और पाठकोको यह बतलाते हुए मुझे खुशी होती है कि उन्होने इस बारेमें कार्रवाही करनेका निश्चय कर लिया है। जिन पगडडियोको श्री वाडियाने पहलेसे कही ज्यादा साफ-सुथरा और सुरक्षित बना दिया है, बबई-सरकार उन्हे मरम्मत कराकर अच्छी हालतमें रक्खा करेगी। साथ ही, दूसरी जिन बातोका श्री वाडियाने जिक्र किया है उनकी भी वह व्यवस्था करेगी। श्री वाडियाने जो कुछ किया उसका विस्तृत विवरण भेजनेके लिए मैंने उन्हें लिखा था। ऐसा मालूम पडता है कि पगडडिया बनानेमें मजदूरोके साथ खुद उन्होने भी काम किया और उनके रोड-इजीनियर खुद वही बने। अपनी जेबसे उन्होने २००रु०से ज्यादा रुपया खर्च किए और १२५ रु० उनके दो मित्रोंने दिए। मुझे इस बातका पक्का भरोसा है कि अपनी किताब लिखना स्थगित करके श्री वाडियाने कुछ खोया नही है, क्योकि बहुत सभवत अब उसमें उनकी बिलकुल असली उदारताका फल भी मिल जायगा। अपने पास बची हुई रकममेंसे दानस्वरूप कुछ देनेका तो फैशन बन गया है, लेकिन रुपएकी तरह अपना परिश्रम लोग नही देते। जो ऐसा करते हैं वे अपने दानका यथासभव सर्वोत्तम उपयोग करते है। आशा है कि पहाडोपर जानेवाले दूसरे लोग भी श्री वाडियाके सुदर उदाहरणका अनुकरण कर उन गरीबोकी हालतका अध्ययन करके सुधारनेकी कोशिश करेंगे, जो बिना कोई शिकायत किए अक्सर

किसी तरह पेट भरने लायक मजूरी पर ही काम करते हैं। (ह० से०, २६ ७ ३६)

: १६० :

वालीअम्मा आर० मनुस्वामी मुदिलायर

एक दूसरी वहन भयकर बुखार लेकर (जेलसे) वाहर निकली, जिसने थोडे ही दिन वाद उसे परमात्माके घर पहुचा दिया। उसे मै कैसे भूल सकता हू ? वालीअम्मा आर० मनुस्वामी मुदिलायर अठारह वर्षकी वालिका थी। मैं उसके पास गया तव वह विस्तरसे उठ भी नही सकती थी। कद ऊचा था। उसका लकडीके-जैसा शरीर डरावना मालूम होता था।

मैने पूछा—"वालीअम्मा, जेल जानेपर पश्चाताप तो नही है ?"

"पश्चाताप क्यों हो ! अगर मुझे फिर गिरफ्तार करें तो मै पुनः इसी क्षण जेल जानेको तैयार हूं।"

"पर इसमें यदि मौत आ जाय तो ?"

"भले ही आवे न ! देशके लिए मरना किसे न अच्छा लगेगा ?"

इस वातचीतके कुछ दिन वाद वालीअम्मा की मृत्यु हो गई। देह चला गया, पर वह वाला तो अपना नाम अमर कर गई। इसकी मृत्युपर शोक प्रकट करनेके लिए स्थान-स्थानपर शोक-सभाए हुई और कौमने इस पवित्र देवीका स्मारक वनानेके लिए एक 'वालीअम्मा हॉल' नामक भवन वनवानेका निश्चय किया। पर कौमने इस हॉलको वनवा कर अपने धर्मका पालन अभी तक नही किया! उसमें कई विघ्न उपस्थित हो गये। कौममें फूट हो गई। मुख्य कार्यकर्त्ता एकके वाद एक वहासे चले गये।

पर वह ईंट-पत्थरका स्मारक बने, या न भी बने, वालीअम्माकी सेवाका नाश नही हो सकता। इस सेवाका हॉल तो उसने स्वय अपने हाथोसे बना रक्खा है। आज भी उसकी वह मूर्ति कितने ही हृदयोमें विराज रही है। जहातक भारतवर्षका नाम रहेगा वहातक दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासमे वालीअम्माका नाम भी अमर रहेगा। (द० अ० स०)

• • • • • •

इन बहनोका बलिदान विशुद्ध था। उनका जेल जाना उनका आर्त-नाद था, शुद्ध यज्ञ था। ऐसी शुद्ध हार्दिक प्रार्थनाको ही प्रभु सुनते हैं। यज्ञकी शुद्धि ही में उसकी सफलता है। भगवान तो भावनाके भूखे हैं। भक्ति-पूर्वक अर्थात् निःस्वार्थ भावसे अर्पित किया हुआ पत्र, पुष्प और जल भी परमात्माको प्रिय है। उसे वे सप्रेम अगीकार करके करोडो गुना फल देते है। सुदामाके मुट्ठीभर चावलके बदलेमें उसकी वर्षोकी भूख भाग गई। अनेकके जेल जानेसे चाहे कोई फल न निकले, मगर एक शुद्धात्माका भक्तिपूर्ण समर्पण किसी समय निष्फल नही हो सकता। कौन कहता है कि दक्षिण अफ्रीकामें किस-किसका यज्ञ सफल हुआ, पर इतना हम जरूर जानते है कि वालीअम्माका बलिदान अवश्य ही सफल हुआ। (आ० क० १९२७)

: १९१ :

वासन्ती देवी

बेगम मुहम्मदअलीने अगोरा फडके लिए जहा-जहासे रुपया प्राप्त किया है वहासे शायद मौलाना साहब भी न ले पाते। यह बात मैं पहले ही कह चुका हू कि उनका भाषण तो मौलाना साहबसे भी बढिया होता

है। अब मैं पाठकोको एक रहस्य और सुनाता हू। बगालमे आज यह आग किसने सुलगाई ? श्रीमती वासती देवी और उर्मिलादेवीने। वे खुद गली-गली खादी बेचती फिरी। यह उनकी गिरफ्तारीका प्रभाव है जो बगालका ध्यान इस तरफ गया। देशबधुदासके प्रचड आत्मत्यागने भी ऐसा चमत्कार नही दिखाया। मेरे पास एक पत्र वहासे आया है। उससे यही मालूम होता है। यह बात गलत नही हो सकती; क्योकि स्त्री क्या है ? वह साक्षात त्यागमूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काममें जी-जानसे लग जाती है तो वह पहाडको भी हिला देती है। (हिं० न०, २५ १२ २१)

• • •

कुछ वर्ष पूर्व मैंने स्वर्गीया रमाबाई रानडेके दर्शनका वर्णन किया था। मैंने आदर्श विधवाके रूपमें उनका परिचय दिया था।

इस समय मेरे भाग्यमें एक महान् वीरकी विधवाके वैधव्यके आरभका चित्र उपस्थित करना बदा है।

वासती देवीके साथ मेरा परिचय १९१९ में हुआ है। गाढ परिचय १९२१ मे हुआ। उनकी सरलता, चातुरी और उनके अतिथि-सत्कारकी बहुतेरी बातें मैंने सुनी थी। उनका अनुभव भी ठीक-ठीक हुआ था। जिस प्रकार दार्जिलिगमें देशबधुके साथ मेरा सबध घनिष्ट हुआ उसी तरह वासती देवीके साथ भी हुआ। उनके वैधव्यमें तो परिचय बहुत ही बढ गया है। जबसे वे दार्जिलिगसे शवको लेकर कलकत्ते आई है तबसे मैं कह सकता हू कि उनके साथ ही रहा हू। वैधव्यके बाद पहली मुलाकात उनके दामादके घर हुई। उनके आस-पास बहुतेरी बहने बैठी थी। पूर्वाश्रममें तो जब मैं उनके कमरेमें जाता तो खुद वही सामने आती और मुझे बुलाती। वैधव्यमें मुझे क्या बुलाती ? पुतलीकी तरह स्तम्भित बैठी अनेक बहनोमेंसे मुझे उन्हें पहचानना था। एक मिनट तक तो मैं खोजता ही रहा। मागमें सिंदूर, ललाटपर कुकुम, मुहमें पान, हाथमे चूडिया और साडीपर लैस, हँस-मुख चेहरा—इनमेंसे एक भी चिन्ह मैं

न देखू तो वासती देवीको किस तरह पहचानू ? जहा मैंने अनुमान किया था कि वे होगी वहा जाकर बैठ गया और गौरसे मुख-मुद्रा देखी। देखना असह्य हो गया। चेहरा तो पहचानमें आया। रुदन रोकना असभव हो गया। छातीको पत्थर बनाकर आश्वासन देना तो दूर ही रहा।

उनके मुखपर सदा-शोभित हास्य आज कहा था ? मैंने उन्हें सात्वना देने, रिझाने और बातचीत करानेकी अनेक कोशिशे की। बहुत समयके बाद मुझे कुछ सफलता मिली।

देवी जरा हँसी।

मुझे हिम्मत हुई और मै बोला।

"आप रो नही सकती। आप रोओगी तो सब लोग रोवेंगे। मोना (बडी लडकी) को बडी मुश्किलसे चुपकी रक्खा है। बेबी (छोटी लडकी) की हालत तो आप जानती ही है। सुजाता (पुत्रवधू) फूट-फूटकर रोती थी, सो बड़े प्रयाससे शात हुई है। आप दया रखिएगा। आपसे अब बहुत काम लेना है।"

वीरागनाने दृढता-पूर्वक जवाब दिया

"मैं नहीं रोऊंगी। मुझे रोना आता ही नहीं।"

मैं इसका मर्म समझा, मुझे सतोष हुआ।

रोनेसे दु खका भार हल्का हो जाता है। इस विधवा बहनको तो भार हलका नही करना था, उठाना था। फिर रोती कैसे ?

अब मै कैसे कह सकता हू—"लो, चलो हम भाई-बहन पेट भर रो ले और दु ख कम कर लें ?"

हिंदू विधवा दु खकी प्रतिमा है। उसने ससारके दुखका भार अपने सिर ले लिया है। उसने दु खको सुख बना डाला है। दु खको धर्म बना डाला है।

वासती देवी सब तरहके भोजन करती थीं। १९२० तकके समयमें

उनके यहा छप्पन भोग होते थे और सैकडो लोग भोजन करते थे। पान-के बिना वे एक मिनिट नही रह सकती थी। पानकी डिबिया पास ही पड़ी रहती थी।

अब शृगार-भावका त्याग, पानका त्याग, मिष्ठानोका त्याग, मास-मत्स्यका त्याग, केवल पतिका ध्यान, परमात्माका ध्यान।....

इस दुखको सहन करना धर्म है या अधर्म ? और धर्मोमें तो ऐसा नही देखा जाता। हिंदू-धर्मशास्त्रियोने भूल तो न की हो ? वासती देवीको देखकर मुझे इसमें भूल नही दिखाई देती, बल्कि धर्मकी शुद्ध भावना दिखाई देती है। वैधव्य हिंदू-धर्मका शृगार है। धर्मका भूषण वैराग्य है, वैभव नही। दुनिया भले ही और कुछ कहे तो कहती रहे।

परतु हिंदू-शास्त्र किस वैधव्यकी स्तुति और स्वागत करता है ? १५ वर्षकी मुग्धाके वैधव्यका नही जो कि विवाहका अर्थ भी नही जानती। बाल-विधवाओके लिए वैधव्य धर्म नही, अधर्म है। वासती देवीको मदन खुद आकर ललचावे तो वह भस्म हो जाय। वासती देवीके शिवकी तरह तीसरी आख है। परतु पद्रह वर्षकी बालिका वैधव्यकी शोभाको क्या समझ सकती है ? उसके लिए तो वह अत्याचार ही है। बाल-विधवाओकी वृद्धिमें मुझे हिंदू-धर्मकी अवनति दिखाई देती है। वासती देवी-जैसीके वैधव्यमें मैं शुद्धधर्मका पोषण देखता हू। वैधव्य सब तरह, सब जगह, सब समय, अनिवार्य सिद्धात नही है। वह उस स्त्रीके लिए धर्म है जो उसकी रक्षा करती है।

रिवाजके कुएमें तैरना अच्छा है। उसमें डूबना आत्महत्या है।

जो बात स्त्रीके सबधमें वही बात पुरुषके सबधमें होनी चाहिए। रामने यह कर दिखाया। सती सीताका त्याग भी वे सह सके। अपने ही किए त्यागसे खुद ही जले। जबसे सीता गई तबसे रामचद्रका तेज घट गया। सीताके देहका तो त्याग उन्होने किया पर उसे अपने हृदयकी स्वामिनी बना लिया। उस दिनसे उन्हें न तो शृगार भाया, न दूसरा

वैभव। कर्तव्य समझकर तटस्थताके साथ राज्यकार्य करते हुए शात रहे।

जिस बातको आज वासती देवी सह रही है, जिसमेंसे वे अपने विलासको हटा सकती है, वे बाते जबतक पुरुष न करेंगे तबतक हिंदू धर्म अधूरा है। 'एकको गुड और दूसरेको थूहर' यह उल्टा न्याय ईश्वरके दरबारमे नही हो सकता। परतु आज हिंदू पुरुषोने इस ईश्वरीय कानूनको उलट दिया है। स्त्रीके लिए वैधव्य कायम रक्खा है और अपने लिए श्मशान-भूमिमें ही दूसरे विवाहकी योजना करनेका अधिकार!

वासती देवीने अबतक किसीके देखते, आसूकी एक बूदतक नही गिराई है। फिर भी उनके चेहरेपर तेज तो आ ही नही रहा है। उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है कि मानो भारी बीमारीसे उठी हो। यह हालत देखकर मैने उनसे निवेदन किया कि थोडा समय बाहर निकलकर हवा खाने चलिए। मेरे साथ मोटरमें तो बैठी; पर बोलने क्यो लगी? मैने कितनी ही बातें चलाई—वे सुनती रही। पर खुद उसमें बराय नाम शरीक हुई। हवाखोरी की तो, पर पछताई। सारी रात नीद न आई। "जो बात मेरे पतिको अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनीने की। यह क्या शोक है?" ऐसे विचारोमें रात गई। भोबल (उनका लडका) मुझे यह खबर दे गया! आज मेरा मौनवार है। मैने कागजपर लिखा है—"यह पागलपन हमें माताजीके सिरसे निकालना होगा। हमारे प्रियतमको प्रिय लगनेवाली बहुतेरी बाते हमें उसके वियोगके बाद करनी पडती है। माताजी विलासके लिए मोटरमें नही बैठी थी, केवल आरोग्यके लिए बैठी थी। उन्हें स्वच्छ हवाकी बहुत जरूरत थी। हमे उनका बल बढाकर उनके शरीरकी रक्षा करनी होगी। पिताजीके कामको चमकाने और बढानेके लिए हमे उनके शरीरकी आवश्यकता है। यह माताजीसे कहना।"

"माताजीने तो मुझसे कहा था कि यह बात ही आपसे न कही जाय।

पर मुझसे न रहा गया। अभी तो यही उचित मालूम होता है कि आप उन्हें मोटरमें बैठनेके लिए न कहें।"—भोवलने कहा।

बेचारा भोवल ! किसीका लौटाया न लौटनेवाला लडका आज बकरी जैसा बनकर बैठा है। उसका कल्याण हो !

पर इस साध्वी विधवाका क्या ? वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खौलते हुए तेलके कडाहमे भटकता था और मुझ-जैसे दूर रहकर देखनेवाले उसके दु खकी कल्पना करके कापते थे। सती स्त्रियो, अपने दु खको तुम सभालकर रखना ! वह दु ख नही, सुख है। तुम्हारा नाम लेकर बहुतेरे पार उतर गये है और उतरेंगे।

वासती देवीकी जय हो ! (हिं० न०, २ ७ २५)

: १६२ :

गणेशशंकर विद्यार्थी

गणेशशकर विद्यार्थीकी मृत्यु हम सबकी स्पर्धाके योग्य थी। उनका रक्त वह सीमेण्ट है, जो अततोगत्वा दोनो जातियोको जोडेगा। कोई पैक्ट या समझौता हमारे दिलोको नही जोडेगा, पर जैसी वीरता गणेशशकर विद्यार्थीने बताई है, आखिरकार वह अवश्य ही पाषाण-से-पाषाण हृदयोको पिघलावेगी, और पिघलाकर एक करेगी। पर यह जहर, किसी तरह क्यो न हो, इतना गहरा फैला गया है, कि गणेशशकर विद्यार्थीके समान महान, आत्मत्यागी और नितात वीर पुरुषका रक्त भी, आज तो इसे धो बहानेके लिए शायद काफी न हो। अगर भविष्यमें ऐसा मौका फिर आवे तो इस भव्य बलिदानसे हम वैसा ही प्रयत्न करनेकी प्रेरणा प्राप्त करें। मैं उनकी दु खिनी विधवा और उनके बच्चोके साथ अपनी

आतरिक समवेदना प्रकट नही करता, पर गणेशशकर विद्यार्थीकी योग्य पत्नी और सतानके नाते उन्हें बधाई देता हू । वह मरे नही है । आज वह तबसे कही अधिक सच्चे रूपमें जी रहे है, जब हम उन्हें भौतिक शरीरमें जीवित देखते थे और पहचानते न थे । (हिं० न०, ६.४.३१)

... ...

तीन कार्यकर्त्ता—दो हिंदू और एक मुसलमान—दगा मिटानेके खयालसे गये और उसी कोशिशमें काम आये । मुझे उनकी मौतका दुख नही होता । रुलाई नही आती । इसी तरह श्री गणेशशकर विद्यार्थीने कानपुरके दगेमें अपनी जान कुरबान की थी । दोस्तोने उनको रोका और कहा था, "दगेकी जगह न जाइए । वहा लोग पागल हो गये है । वे आपको मार डालेंगे ।" लेकिन गणेशशकर विद्यार्थी इस तरह डरनेवाले नही थे । उन्हें यकीन था कि उनके जानेसे दगा जरूर मिटेगा। वे वहा पहुँचे और दगेके जोशमे पागल बने लोगोके हाथो मारे गये । उनकी मौतके समाचार सुनकर मुझे खुशी ही हुई थी । यह सब मै आपको भड़कानेके लिए नही कहता । मै तो आपको यह समझाना चाहता हू कि आप मरनेका पाठ सीख लें तो सब खैर-ही-खैर है । अगर गणेश-शकर विद्यार्थी, वसतराव और रज्जबअली-जैसे कई नौजवान निकल पडें तो दगे हमेशाके लिए मिट जाय । (ह० से०, १४.७.३६)

: १६३ :

विनोबा भावे

श्री विनोबा भावे कौन है ? मैंने उन्हें ही इस सत्याग्रहके लिए क्यो चुना ? और किसीको क्यो नही ? मेरे हिंदुस्तान लौटनेपर सन् १६१६

में उन्होंने कालिज छोड़ा था। वे संस्कृतके पंडित हैं। उन्होंने आश्रममें शुरूसे ही प्रवेश किया था। आश्रमके सबसे पहले सदस्योंमेंसे वे एक हैं। अपने संस्कृतके अध्ययनको आगे बढ़ानेके लिए वे एक वर्षकी छुट्टी लेकर चले गये। एक वर्षके बाद ठीक उसी घड़ी, जबकि उन्होंने एक वर्ष पहले आश्रम छोड़ा था, चुपचाप आश्रममें फिर आ पहुंचे। मैं तो भूल ही गया था कि उन्हें उस दिन आश्रममें वापस पहुंचना था। वे आश्रममें सब प्रकारकी सेवा-प्रवृत्तियों—रसोईसे लगाकर पाखाना सफाईतक—में हिस्सा ले चुके हैं। उनकी स्मरण-शक्ति आश्चर्यजनक है। वे स्वभावसे ही अध्ययनशील हैं। पर अपने समयका ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा वे कातनेमें ही लगाते हैं और उसमें ऐसे निष्णात हो गये हैं कि बहुत ही कम लोग उनकी तुलनामें रखे जा सकते हैं। उनका विश्वास है कि व्यापक कताईको सारे कार्यक्रमका केंद्र बनानेसे ही गांवोंकी गरीबी दूर हो सकती है। स्वभावसे ही शिक्षक होनेके कारण उन्होंने श्रीमती आशादेवीको दस्तकारीके द्वारा बुनियादी तालीमकी योजनाका विकास करनेमें बहुत योग दिया है। श्री विनोबाने कताईको बुनियादी दस्तकारी मानकर एक पुस्तक भी लिखी है। वह बिलकुल मौलिक चीज है। उन्होंने हँसी उड़ानेवालोंको भी यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि कताई एक ऐसी अच्छी दस्तकारी है जिसका उपयोग बुनियादी तालीममें बखूबी किया जा सकता है। तकली कातनेमें तो उन्होंने क्रांति ही ला दी है और उसके अंदर छिपी हुई तमाम शक्तियोंको खोज निकाला है। हिंदुस्तानमें हाथकताईमें इतनी संपूर्णता किसीने प्राप्त नहीं की जितनी कि उन्होंने की है।

उनके हृदयमें छुआछूतकी गंधतक नहीं है। सांप्रदायिक एकतामें उनका उतना ही विश्वास है जितना कि मेरा। इस्लामधर्मकी खूबियोंको समझनेके लिए उन्होंने एक वर्षतक कुरानशरीफका मूल अरबीमें अध्ययन किया। इसके लिए उन्होंने अरबी भी सीखी। अपने पड़ोसी मुसलमान

भाइयोसे अपना सजीव सपर्क वनाए रखनेके लिए उन्होने इसे आवश्यक समझा।

उनके पास उनके शिष्यो और कार्यकर्ताओका एक ऐसा दल है जो उनके इशारेपर हर तरहका वलिदान करनेको तैयार है। एक युवकने अपना जीवन कोढियोंकी सेवामे लगा दिया है। उसे इस कामके लिए तैयार करनेका श्रेय श्री विनोबाको ही है। औषधियोका कुछ भी ज्ञान न होनेपर भी अपने कार्यमे अटल श्रद्धा होनेके कारण उसने कुष्ठरोगकी चिकित्साको पूरी तरह समझ लिया है। उसने उनकी सेवाके लिए कई चिकित्साघर खुलवा दिए है। उसके परिश्रमसे सैकडो कोढी अच्छे हो गये है। हाल हीमें उसने कुष्ठ-रोगियोके इलाजके सवधमें एक पुस्तिका मराठीमे लिखी है।

विनोवा कई वर्षोतक वर्धाके महिला-आश्रमके सचालक भी रहे है। दरिद्रनारायणकी सेवाका प्रेम उन्हे वर्धाके पासके एक गावमें खीच ले गया। अब तो वे वर्धासे पाच मील दूर पौनार नामक गावमें जा वसे है और वहासे उन्होंने अपने तैयार किए हुए शिष्योके द्वारा गाववालोके साथ सपर्क स्थापित कर लिया है। वे मानते है कि हिंदुस्तानके लिए राजनैतिक स्वतन्त्रता आवश्यक है। वे इतिहासके निष्पक्ष विद्वान है। उनका विश्वास है कि गाववालोको रचनात्मक कार्यक्रमके बगैर सच्ची आजादी नही मिल सकती और रचनात्मक कार्यक्रमका केंद्र है खादी। उनका विश्वास है कि चरखा अहिंसाका वहुत ही उपयुक्त वाह्य चिह्न है। उनके जीवनका तो वह एक अग ही वन गया है। उन्होने पिछली सत्याग्रहकी लडाइयोमें सक्रिय भाग लिया था। वे राजनीतिके मचपर कभी लोगोके सामने आये ही नही। कई साथियोकी तरह उनका यह विश्वास है कि सविनय आज्ञा-भगके अनुसधानमें शात रचनात्मक काम कही ज्यादा प्रभावकारी होता है, इसकी अपेक्षा कि जहा आगे ही राजनैतिक भाषणोका अखड प्रवाह चल रहा है वहा जाकर और भाषण दिए जाये। उनका पूर्ण विश्वास है कि

चरखेमें हार्दिक श्रद्धा रखे बिना और रचनात्मक कार्यमें सक्रिय भाग लिए बगैर अहिंसक प्रतिकार संभव नहीं।

श्री विनोबा युद्धमात्रके विरोधी हैं। परंतु वे अपनी अंतरात्माकी तरह उन दूसरोंकी अंतरात्माका भी उतना ही आदर करते हैं जो युद्धमात्रके विरोधी तो नहीं हैं, परंतु जिनकी अंतरात्मा इस वर्त्तमान युद्धमें शरीक होनेकी अनुमति नहीं देती। अगरचे श्री विनोबा दोनों दलोंके प्रतिनिधिके तौरपर हैं, यह हो सकता है कि सिर्फ हालके इस युद्धमें विरोध करनेवाले दलका खास एक और प्रतिनिधि चुननेकी मुझे आवश्यकता अनुभव हो। (ह० से०)

* * *

विनोबा लिख सकते हैं मगर वह कभी न लिखेंगे। शास्त्र-रचनाके लिए समय निकालना उनकी दृष्टिमें अधर्म होगा। मैं भी उसे अधर्म समझूंगा। संसारको शास्त्रकी भूख नहीं। सच्चे कर्मकी है और हमेशा रहेगी। जो इस भूखको मिटा सकता है, वह शास्त्र-रचनामें न पड़े। (ह० से०, ३-३-४६)

: १६४ :

रशब्रुक विलियम्स

एक पत्र-लेखकने 'बाबे क्रानिकल' पत्रसे काट कर यह कतरन भेजी है

"मि० रशब्रुक विलियम्सने 'मांचेस्टर गार्डिअन' में एक पत्र लिखकर यह जाहिर किया है कि गये वर्षके आखिरी महीनोंके दरमियान कांग्रेसके दक्षिण पक्षीय नेता एक ऐसा निश्चित रुख अख्तियार करते जा रहे थे कि जिससे प्रांतीय सरकारोंसे मिलते-जुलते किसी-न-किसी समझौतेपर केन्द्रीय

सरकारके सबंधमें भी पहुंचनेकी बात सरकारको सुझा सकते थे। इसलिए कांग्रेसको अपनी ताकतका हिसाब लगाना पड़ा। लीगके प्रतापसे, मुसलमानोका समर्थन तो उन्हें प्राप्त ही नहीं और बगैर ऐसे समर्थनके, जबतक कुछ नए मित्र न मिल जाय, तबतक केन्द्रीय सरकार बनाना नामुमकिन है। इसी वजहसे देशी राज्योंपर सारा ध्यान केंद्रित करना काग्रेसके लिए जरूरी हो गया, जिससे देशी राज्योसे ऐसे अनुकूल प्रतिनिधि प्राप्त किए जा सकें, जोकि काग्रेसके कार्यक्रमसे सहानुभूति रखते हो।"

मि० रशब्रुक विलियम्स भारतके पुराने 'शत्रु' हैं। असहयोगके दिनोमें हिंदुस्तानकी सरकारी वार्षिक पुस्तक इडियन ईयर बुकका उन्होने सपादन किया था, जिसमे अपनी दिमागी उपजकी उन्होने कितनी ही बातें लिखी थी और जिन हकीकतोका उल्लेख वे छोड नही सके, उनको उन्होने अपने रगमें रग दिया था। अखबारोमें प्रकाशित रिपोर्ट अगर सही है तो कहना चाहिए कि उन्होने फिर अपना वही पुराना भेस 'माचेस्टर गार्डीअन' मे दिखाया है। (ह० से०, ११ ३ ३९)

: १९५ :

स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण और विवेकानदके बारेमे रोलाकी पुस्तके ध्यान और दिलचस्पीके साथ पढ ली हैं। रामकृष्णके बारेमे हमेशा पूज्यभाव तो रहा ही था। उनके बारेमे पढा तो थोडा ही था, मगर कई चीजें भक्तोसे सुनी थी। उनपरसे भाव पैदा हुआ था। यह नही कह सकता कि रोलाकी पुस्तके पढनेसे उसमे वृद्धि हुई है। असलमे रोलाकी दोनो पुस्तकें पश्चिमके लिए लिखी गई है। यह तो नही कहूगा कि हमें उनसे कुछ नही मिल सकता।

मगर मुझे बहुत कम मिला है। जिन बातोंका मुझपर प्रभाव पडा था, वे भी रोलाकी पुस्तकोंमें है। उसके सिवा जो नई बातें है उनसे प्रभावमें कोई वृद्धि नही हुई। मुझे यह नही लगा कि जितने भक्त रामकृष्ण थे, उतने विवेकानद भी थे। विवेकानदका प्रेम विस्तृत था, वे भावनासे भरपूर थे और भावनामें बह भी जाते थे। यह भावना उनके ज्ञानके लिए हिरण्यमय पात्र थी। धर्म और राजनीतिमें उन्होने जो भेद किया था, वह ठीक नही था। मगर इतने महान व्यक्तिकी आलोचना कैसी? और आलोचना करने बैठ जाए तो कैसी भी आलोचना की जा सकती है। हमारा धर्म तो यह है कि ऐसे व्यक्तियोसे जो कुछ लिया जा सके वह ले ले। तुलसीदासका जड-चेतनवाला दोहा मेरे जीवनमें अच्छी तरह रम गया है, इसलिए आलोचना करना मुझे पसद ही नही आता। मगर मै जानता हू कि मेरे मनमें भी कोई आलोचना रह गई हो तो उसे जाननेकी तुम्हें इच्छा हो सकती है। इसीलिए मैने इतना लिख दिया है। मेरे मनमें शका नही है कि विवेकानद महान सेवक थे। यह हमने प्रत्यक्ष देख लिया कि जिसे उन्होने सत्य मान लिया, उसके लिए अपना शरीर गला डाला। सन् १६०१ में जब मै बेलूर मठ देखने गया था, तब विवेकानदके भी दर्शन करनेकी बडी इच्छा थी। मगर मठमें रहनेवाले स्वामीने बताया कि वे तो बीमार है। शहरमे है और उनसे कोई मिल नही सकता। इसलिए निराशा हुई थी। मुझमें जो पूज्यभाव रहा है, उसके कारण मै बहुत-सी आपत्तियोसे बच गया हू। उस समय कोई ऐसा प्रसिद्ध व्यक्ति नही था, जिससे मै भावनाके साथ मिलने दौड न जाता था। और ज्यादातर जगहोपर मै भी, कलकत्तेके लबे रास्तोमें, पैदल ही जाता था। इसमे भक्तिभाव था, रुपया बचानेकी वृत्ति न थी। वैसे मेरे स्वभावमें यह चीज भी हमेशा रही तो है ही। (म० डा०, १७३२)

: १९६ :

वेरस्टेन्ट

'प्रिटोरिया न्यूज' के संपादक वेरस्टेन्ट भी खुले दिलसे भारतीयोंकी सहायता करते थे। एक बार प्रिटोरियाके टाउन हालमें वहांके मेयरकी अध्यक्षतामें गोरोंकी एक विराट सभा हुई थी। उसका हेतु था एशियानिवासियोंकी बुराई और खूनी कानूनकी हिमायत करना। अकेले वेरस्टेन्टने इसका विरोध किया। अध्यक्षने उन्हें बैठ जानेकी आज्ञा दी, पर उन्होंने बैठनेसे साफ इन्कार कर दिया। इस पर गोरोंने उनके बदनपर हाथ डालनेकी धमकी भी दी, तथापि वे टाउन-हालमें उसी प्रकार नरसिंहकी तरह गरजते रहे। आखिर सभाको अपना प्रस्ताव बिना पास किए ही उठना पड़ा। (द० अ० स०, १९२५)

: १९७ :

अल्बर्ट वेस्ट

सबसे पहले अल्बर्ट वेस्टका नाम उल्लेखनीय है। कौमके साथ तो उनका संबंध युद्धके पहले हीसे हो गया, पर मुझसे इससे भी पहले उनका परिचय हुआ था। जब मैंने जोहांसबर्गमें अपना दफ्तर खोला उस समय मेरे साथमें बालबच्चे नहीं थे। पाठकोंको याद होगा कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका तार मिलते ही मैं एकदम रवाना हो गया था और सो भी एक सालमें लौट आनेके विचारसे। जोहांसबर्गमें एक निरामिष भोजन-गृह था। उसमें मैं नियमसे सुबह-शाम भोजनके लिए जाता था।

वेस्ट भी वही आते थे। वही मेरा उनका परिचय हुआ। वह एक दूसरे गोरेके भागीदार बनकर एक छापाखाना चला रहे थे। सन् १९०४में जोहासवर्गके भारतीयोमें भीषण प्लेगका प्रकोप हुआ था। मै रोगियोकी सेवा-शुश्रूषामे लगा और उसके कारण उस भोजन-गृहका मेरा जाना अनियमित हो गया। जब कभी जाता तो इस खयालसे कि मेरे ससर्गका भय दूसरे गोरेको न हो, मै सबके पहले ही भोजन कर लेता था। जब लगातार दो दिन तक उन्होंने मुझे नही देखा तो वह घबडा गये। तीसरे दिन सुबह जब मै हाथ-मुह धो रहा था वेस्टने मेरे कमरेका दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खोलते ही मैने वेस्टका प्रसन्न चेहरा देखा।

उन्होने हँसकर कहा—"आपको देखते ही मेरे दिलको तसल्ली हुई। आपको भोजन-गृहमें न देखकर मै घबरा गया था। अगर मुझसे आपकी कोई सहायता हो सकती हो तो जरूर कहें।"

मैने हँसते हुए उत्तर दिया—"रोगियो की शुश्रूषा करोगे ?"

"क्यो नहीं ? जरूर, मै तैयार हू।"

इस विनोदके बीच मैने कुछ सोच लिया। मैने कहा—"आपसे मै दूसरे प्रकारके उत्तरकी अपेक्षा ही नही करता था। पर इस कामके लिए तो मेरे पास बहुतसे सहायक है। आपसे तो मै इससे भी कठिन काम लेना चाहता हू। मदनजीत यहीपर रुका हुआ है। 'इडियन ओपीनियन' और प्रेस निराधार है। मदनजीतको मैने प्लेगके कामके लिए रख छोडा है। आप अगर डर्बन जाकर उस कामको सभाल लें तो सचमुच यह बडी भारी सहायता होगी। पर मै आपको अधिक नही दे सकूगा। सिर्फ १० पौंड मासिक वेतन। हा, अगर प्रेसमे कुछ लाभ हो तो उसमे आपका आधा हिस्सा रहेगा।"

"काम अवश्य जरा कठिन है। मुझे अपने भागीदारकी आज्ञा लेनी होगी। कुछ उगाही भी बाकी है। पर कोई चिताकी बात नहीं। आज शामतककी मोहलत आप मुझे दे सकते है ?"

"अवश्य, हम लोग छ बजे शामको पार्कमें मिलेंगे।"

"जरूर, मैं भी आ पहुचूंगा।"

छ बजे शामको हम मिले। भागीदारकी आज्ञा भी मिल गई। उगाही कामको मेरे जिम्मे करके दूसरे दिन शामकी ट्रेनसे मि० वेस्ट रवाना हो गये। एक महीनेके अदर उनकी यह रिपोर्ट आई—

"इस छापेखानेमें नफा तो नामको भी नहीं है। नुकसान-ही-नुकसान है। उगाही बहुत बाकी है; लेकिन हिसाबका कोई ठिकाना नहीं है। ग्राहकोंके नाम भी पूरे नहीं लिखे गये है। मै यह शिकायत करनेके खयालसे नहीं लिखता। आप विश्वास रखिए, मैं लाभके लालचसे यहा नहीं आया हू। अतः इस कामको भी नहीं छोड़ूगा। पर मैं आपको यह तो सूचित किये ही देता हूं कि बहुत दिनतक आपको क्षति-पूर्ति करनी होगी।"

ग्राहकोंको वढाने तथा मेरे साथ कुछ बातचीत करनेके लिए मदनजीत जोहासबर्ग आये थे। मैं हर महीने थोडे-बहुत पैसे देकर घाटेकी पूर्ति किया ही करता था। इसलिए मैं निश्चय रूपसे यह जानना चाहता हू कि और कितना गहरा इस काममें मुझे उतरना होगा? पाठकोंसे मैं यह तो पहले ही कह चुका हू कि मदनजीतको छापेखानेका कोई अनुभव नही था। इसलिए मैं इस बातके विचार ही मे था कि किसी अनुभवी आदमीको उनके साथमे रख दिया जाय तो वडा अच्छा हो। यह विचार मैं कर रहा था कि इधर प्लेगका प्रकोप शुरू हो गया। इस काममे तो मदनजीत वडे कुशल और निर्भय आदमी थे, इसलिए मैंने उनको यही रख लिया। इसलिए वेस्टके स्वाभाविक प्रश्नका उपयोग मैंने कर लिया और उन्हें समझा दिया कि प्लेगके कारण ही नही, बल्कि स्थायी रूपसे उन्हें यहा रखना होगा। इसलिए उन्होने उपर्युक्त रिपोर्ट भेजी। पाठक जानते ही है कि इसलिए छापेखानेको तथा पत्रको भी फिनिक्स ले जाना पडा। वेस्टके १० पौड मासिक वेतनके वदले फिनिक्समे तीन पौड हो गये। पर इन परिवर्तनोंमें वेस्टकी पूरी सम्मति थी। मुझे तो एक दिन भी ऐसा अनुभव

नहीं हुआ कि उन्हें कभी यह विचार ही पैदा हुआ हो कि मेरी आजीविका कैसे चलेगी। धर्मका अभ्यास न होनेपर भी वह एक अत्यंत धार्मिक मनुष्य है। वह बड़े ही स्वतंत्र स्वभावके मनुष्य हैं। जो वस्तु उन्हें जैसी दीखे उसे वैसी ही कहनेवाले हैं। कालेको कृष्णवर्णी नही, काला ही कहेंगे। उनकी रहन-सहन बड़ी सीधी-सादी थी। हमारे परिचयके समय वह ब्रह्मचारी थे। मैं जानता हूं कि वह ब्रह्मचर्यका पालन भी करते थे। कितने ही साल बाद वह इंग्लैंड गये और अपने माता-पिताका क्रिया-कर्म करके अपनी शादी भी कर लाए। मेरी सलाहसे अपने साथमें स्त्री, सास और कुंवारी बहनको भी ले आये। वे सब फिनिक्समें ही बड़ी सादगीके साथ रहते थे और हर प्रकारसे भारतीयोमें मिल जाते थे। मिस वेस्ट अब ३५ वर्षकी हुई होंगी। पर अब भी कुमारी है। वह अपना जीवन बड़ी पवित्रताके साथ व्यतीत कर रही हैं। उन्होंने कोई कम सेवा नही की। फिनिक्समें रहनेवाले शिष्योंको रखना उन्हें अंग्रेजी पढ़ाना, सार्वजनिक पाकशालामें रसोई करना, मकानोंको साफ रखना, किताबें संभालना, छापाखानेमें टाइप जमाना (कम्पोज करना) तथा छापेखानेका अन्य काम करना आदि सब काम वे करती थी। इन कामोंमेंसे कभी एक कामके लिए भी इन महिलाने आनाकानी नही की। आजकल वह फिनिक्समें नही है, पर इसका कारण यह है कि मेरे भारतवर्ष लौट आनेपर उनका हल्का-सा भार भी छापाखाना नही उठा सकता था। वेस्टकी सासकी अवस्था इस समय ८० वर्षसे भी अधिककी होगी। वह सिलाईका काम बहुत अच्छा जानती है। और ऐसे काममें इतनी वयोवृद्धा महिला भी पूरी सहायता करती थी। फिनिक्समें उन्हें सब दादी (ग्रैनी) कहते थे और उनका बड़ा सम्मान करते थे। मिसेज वेस्टके विषयमें तो कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं है। जब फिनिक्समेंसे बहुतसे आदमी जेल चले गये तब वेस्ट कुटुंबने मगनलाल गांधीके साथ मिलकर फिनिक्सका सब कामकाज संभाल लिया था। पत्र और छापेखानेका बहुत-सा काम वेस्ट करते थे। मेरी तथा

अन्य लोगोकी अनुपस्थितिमें गोखलेको तार वगैरह भेजना होता तो वेस्ट ही भेजते। अतमें वेस्ट भी पकडे गये (पर वे फौरन ही छोड दिये गये थे) तब गोखले घबराये और एन्ड्रयूज तथा पियर्सनको उन्होने भेजा। (द० अ० स०, १९२५)

... .

वेस्टका जन्म विलायतके लाउथ नामक गावमें एक किसान कुटुबमें हुआ था। पाठशालामे उन्होने बहुत मामूली शिक्षा प्राप्त की थी। वह अपने ही परिश्रमसे अनुभवकी पाठशालामें पढकर और तालीम पाकर होशियार हुए थे। मेरी दृष्टिमे वह एक शुद्ध, सयमी, ईश्वर-भीरु साहसी और परोपकारी अग्रेज थे। (आ० क०, १९२७)

... .

अब, वेस्टका विवाह भी यही क्यो न मना लू ? उस समय ब्रह्मचर्य विषयक मेरे विचार परिपक्व नही हुए थे। इसलिए कुवारे मित्रोका विवाह करा देना उन दिनो मेरा एक पेशा हो बैठा था। वेस्ट जब अपनी जन्मभूमिमें माता-पितासे मिलनेके लिए गये तो मैने उन्हें सलाह दी थी कि जहा तक हो सके विवाह करके ही लौटना, क्योकि फिनिक्स हम सबका घर हो गया था और हम सब किसान बन बैठे थे, इसलिए विवाह या वश-वृद्धि हमारे लिए भयका विषय नही था।

वेस्ट लेस्टरकी एक सुदरी विवाह लाए। इस कुमारिकाके परिवारके लोग लेस्टरके जूतेके एक बडे कारखानेमें काम करते थे। श्रीमती वेस्ट भी कुछ समयतक उस जूतेके कारखानेमें काम कर चुकी थी। उसे मैनें सुदरी कहा है, क्योकि मैं उसके गुणोका पुजारी हू और सच्चा सौदर्य तो मनुष्यका गुण ही होता है। वेस्ट अपनी सासको भी साथ लाये थे। यह भली बुढिया अभी जिदा है। अपनी उद्यमशीलता और हँसमुख स्वभावसे वह हम सबको शर्माया करती थी। (आ० क०, १९२७)

: १९८ :

स्वामी श्रद्धानन्द

पहाड़-जैसे दीखनेवाले महात्मा मुंशीरामके दर्शन करने और उनके गुरुकुलको देखने जब मैं गया तब मुझे बहुत शांति मिली। हरद्वारके कोलाहल और गुरुकुलकी शांतिका भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्माजीने मुझपर भरपूर प्रेमकी वृष्टि की। (आ० क०)

• • •

स्वामी श्रद्धानंदजी पर भी लोग विश्वास नहीं करते हैं। मैं जानता हूं कि उनकी तकरीरें ऐसी होती हैं, जिनपर कई बार बहुतोंको गुस्सा आ जाता है। परंतु वे भी हिंदू-मुस्लिम एकताको जरूर चाहते हैं, पर दुर्भाग्यसे वे यह मानते हैं कि हरएक मुसलमान आर्यसमाजी बनाया जा सकता है, जैसे कि शायद बहुतेरे मुसलमान मानते हैं कि हरएक गैर मुस्लिम किसी-न-किसी दिन इस्लामको कबूल कर लेगा। श्रद्धानंदजी निडर और बहादुर आदमी हैं। अकेले हाथों उन्होंने गंगाजीके किनारेपर तराईके जंगलको एक जगमगाते गुरुकुलके रूपमें बदल दिया। उन्हें अपने तथा अपने कामपर श्रद्धा है, पर वे जल्दबाज हैं और थोड़ी-सी बातपर जोशमें आ जाते हैं। पर इन तमाम दोषोंके होते हुए मैं उन्हें ऐसा नहीं मानता जो समझाए न समझे। स्वामीजीको तो मैं उन्हीं दिनोंसे चाहने लगा हूं जब मैं दक्षिण अफ्रीकामें था। हां, अब मैं उन्हें ज्यादा अच्छी तरह पहचानने लगा हूं, पर इससे मेरा प्रेम उनके प्रति कम नहीं हो पाया। मेरा प्रेम ही मुझसे यह कहला रहा है। (हिं० न०, १९२४)

• • •

जिसकी उम्मीद थी वह हो गुजरा। कोई छः महीने हुए स्वामी श्रद्धानंदजी सत्याग्रहाश्रममें आ कर दो-एक दिन ठहरे थे। बातचीतमें उन्होंने

मुझसे कहा था कि उनके पास जब-तब ऐसे पत्र आया करते थे जिनमें उन्हें मार डालनेकी धमकी दी जाती थी। किस सुधारकके सिरपर बोली नही बोली गई है ? इसलिए उनके ऐसे पत्र पानेमे अचभेकी कोई बात नही थी। उनका मारा जाना कुछ अनोखी बात नही है।

स्वामीजी सुधारक थे। वे कर्मवीर थे, वचनवीर नहीं। जिसमें उनका विश्वास था, उसका वे पालन करते थे। उन विश्वासोके लिए उन्हे कष्ट झेलने पडे। वे वीरताके अवतार थे। भयके सामने उन्होने कभी सिर नही झुकाया। वे योद्धा थे और योद्धा रोग-शैय्या पर मरना नही चाहता। वह तो युद्धभूमिका मरण चाहता है।

कोई एक महीना हुआ कि स्वामी श्रद्धानदजी बहुत बीमार पडे। डाक्टर असारी उनकी चिकित्सा करते थे। जितने अनुरागसे उनसे सभव था, डाक्टर असारी उनकी सेवा करते थे। इस महीनेके शुरूमें मेरे पूछनेपर उनके पुत्र प्रो० इद्रने तार दिया था कि स्वामीजी अब अच्छे है और मेरा प्रेम और दुआ मागते है। मै उनके विना मागे ही उनपर प्रेम और उनके लिए भगवानसे प्रार्थना करता ही रहता था।

भगवानको उन्हें शहीदकी मौत देनी थी। इसलिए जब वे बीमार ही थे तभी उस हत्यारेके हाथ मारे गये, जो इस्लामपर धार्मिक चर्चाके नामपर उनसे मिलना चाहता था, जो स्वामीजीकी प्रेरणासे आने दिया गया, जिसने प्यास मिटानेको पानी मागनेके बहाने स्वामीजीके ईमानदार नौकर धर्मसिहको पानी लेनेको बाहर हटा दिया और जिसने नौकरकी गैरहाजिरीमे बिस्तर पर पडे हुए रोगीकी छातीमें दो प्राणघातक चोटे की। स्वामीजीके अतिम शब्दोकी हमे खबर नही। लेकिन अगर मै उन्हें कुछ भी पहचानता था तो मुझे बिलकुल सदेह नही है कि उन्होने अपने परमात्मासे उसके लिए क्षमायाचना की होगी जो यह नही जानता था कि वह पाप कर रहा है। इसलिए गीताकी भाषामें वह योद्धा धन्य है जिसे ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है।

मृत्यु तो हमेशा ही धन्य होती है मगर उस योद्धाके लिए तो और भी अधिक जो अपने धर्मके लिए यानी सत्यके लिए मरता है। मृत्यु कोई शैतान नही है। वह तो सबसे बडी मित्र है। वह हमें कष्टोसे मुक्ति देती है। हमारी इच्छाके विरुद्ध भी हमे छुटकारा देती है। हमे बराबर ही नई आशाए, नए रूप देती है। वह नीदके समान मीठी है, किंतु तो भी किसी मित्रके मरनेपर शोक करनेकी चाल है। अगर कोई शहीद मरता है तो यह रिवाज नहीं रहता। अतएव इस मृत्युपर मै शोक नही कर सकता। स्वामीजी और उनके सबवी ईर्ष्याके पात्र है, क्योकि श्रद्धानदजी मर जानेपर भी अभी जीते है। उससे भी अधिक सच्चे रूपमे वे जीते है, जब वे हमारे बीच अपने विशाल शरीरको लेकर घूमा करते थे। ऐसी महिमामय मृत्युपर जिस कुलमे उनका जन्म हुआ था, जिस जातिके वे थे, वे सभी धन्यताके पात्र है। वे वीर पुरुष थे। उन्होने वीरगति पाई। (हिं० न०, २३ १२ २६)

मेरे पास अखबारवाला आया था और कुछ जाहिर करनेका आग्रह उसने दो बार किया। मैंने उसे कह दिया कि मुझसे कुछ कहना पार लगे मेरी ऐसी हालत नही है। श्रीमती नायडूने भी मुझे यही कहा कि कुछ सदेशा दो। उनसे भी मैंने इन्कार कर दिया। अब फिर मुझे यही आज्ञा होती है। इसलिए अपने उद्‌गार प्रकट करनेकी कोशिश करता हू, किंतु मेरी ऐसी दशा नही है कि मै कुछ कह सकू। हा, तत्काल मेरे मनपर कैसा असर हुआ यह मै कह सकता हू सही। लालाजीका तार मेरे पास पहुचते ही तुरत मैंने मालवीयजी आदिको खबर भेजी और लालाजी और स्वामीजीके सुपुत्र इद्रको तार भेजा। इस तारमें दुख या शोक प्रकट न करके मैंने तो जनाया कि यह सामान्य मृत्यु नही है। इस मृत्युपर मै रो नही सकता। अगर्चे कि यह मृत्यु असह्य है तो भी मेरा दिल शोक करनेको नही कहता। वह तो कहता है कि यह मृत्यु हम सबको मिले तो क्या ही अच्छा हो?

स्वामी श्रद्धानदकी दृष्टिसे इस प्रसगको धर्म प्रसग कहेंगे। वे बीमार थे। मुझे तो कुछ खबर न थी, किंतु एक मित्रने खबर दी कि स्वामीजी भाग्यसे ही बच जाय तो बच जाय। पीछेसे मेरे तारके उत्तरमें उनके लडकेका तार मिला कि उन्हें धीरे-धीरे आराम हो रहा है। यह भी मालूम हुआ कि डाक्टर असारी बहुत अच्छी तरह सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं। इस प्रकारकी गभीर बीमारीमें वे बिछौनेपर पडे थे और उस बिछौनेपर ही उनके प्राण लिए गये। मरना तो सबको है, किंतु यो मरना किस कामका! सारे हिंदुस्तानमे और पृथ्वी पर जहा-जहा हिंदुस्तानी लोग होगे, वहा-वहा स्वामीजीके, स्वाभाविक बीमारी से, मरनेसे जो असर होता उसकी अपेक्षा इस अपूर्व मरणसे अजीब ही असर होगा। मैंने भाई इद्रको समवेदनाका एक भी तार या पत्र नही लिखा है। उन्हे और कुछ दूसरा कह ही नही सकता। इतना ही कह सकता हू कि तुम्हारे पिताको जो मृत्यु मिली है वह धन्य मृत्यु है।

किंतु यह सब बात तो मैंने स्वामीजीकी दृष्टिसे, मेरी अपनी दृष्टिसे की है। मै अनेक बार कह चुका हू कि मेरे लेखे हिंदू और मुसलमान दोनो ही एक है। मै जन्मसे हिंदू हू और हिंदू धर्ममें मुझे शाति मिलती है। जब-जब मुझे अशाति हुई, हिंदू धर्ममेंसे ही मुझे शाति मिली है। मैंने दूसरे धर्मोका भी निरीक्षण किया है और इसमें चाहे जितनी कमिया और त्रुटिया होवें तो भी मेरे लिए यही धर्म उत्तम है। मुझे ऐसा लगता है और इसीसे मै अपनेको सनातनी हिंदू मानता हू। कितने सनातनियोको मेरे इस दावेसे दुःख होता है कि विलायतसे आकर यह सुधरा हुआ आदमी हिंदू कैसा! किंतु मेरा हिंदू होनेका दावा इससे कुछ कम नही होता और यह धर्म मुझे कहता है कि मै सबके साथ मित्रतासे रहू। इसीसे मुझे मुसलमानोकी दृष्टि भी देखनी है।

मुसलमानकी दृष्टिसे जब इस बातका विचार करता हू तो मुझे दूसरी ही बात मालूम पडती है। यह काड मुसलमानके हाथ बन पडा धर्म-

चर्चाके वहाने घरमें प्रवेश करके उसने यह कृत्य किया। नौकरने तो कहा, "स्वामीजी बीमार हैं। आज नही मिल सकते।" दरवाजेपर हुज्जत हुई। स्वामीजीने सुनकर कहा, "अच्छा है, आ जाने दो।" और स्वामीजीमें उससे वात करनेकी शक्ति न रहनेपर भी उन्होने वातें की। वात करनेकी तो उनमे ताकत ही नही थी। स्वामीजीको तो उसे समझाकर विदा कर देनेको था, इसलिए वुलाकर कहा, "भाई, अच्छे हो जानेपर तुम्हें जितनी वहस करनी हो कर लेना, किंतु आज तो विछौनेपर पडा हू।" इस पर उसने पानी मागा। धर्मसिहको स्वामीजीने आज्ञा दी, "इनको पानी पिला दो।" आज्ञाकारी नौकर पानी लेने जाता है तवतक तो यहा उसने रिवाल्वर निकाल ली। एकसे सतोप न हुआ तो दो गोली मारी। स्वामीजी-ने उसी समय प्राण खोए। धर्मसिह आवाज सुनकर अपने मालिकको वचाने दौडा; किंतु वचावे कौन? ईश्वरको स्वामीजीके शरीरकी रक्षा नही करनी थी। धर्मसिहके ऊपर भी वार हुआ। उसे चोट लगी। वह अस्पतालमें है। मारनेवाला अव्दुल रशीद हिरासतमें है। ऐसे सयोगोके वीच किए गये इस खूनसे मुसलमानोके लिए हिंदुओमें कैसा भाव पैदा होगा, इसका मुझे वहुत दु ख है और इसमे भी शका नही है कि हिंदू जनताका मुसलमानोके प्रति उलटा ख्याल होगा, क्योकि आज दोनो जातियोमें प्रेम नही है, विश्वास नहीं है। . . .

हमारे लिए यह एक अच्छा शिक्षा-पाठ वनना चाहिए कि स्वामीजीका खून अव्दुल रशीदके हाथो हो। इससे हम एक-दूसरेको समझ लें। . .

श्रद्धानदजी और मेरे वीच कैसा सवध था, वह तो आज मैं यहा नही कहूगा। मेरे सामने वे अपने दिलकी वातें कहा करते थे। कोई छ महीने हुए जव वे आश्रममें आये थे तव कहते थे, "मेरे पास धमकीके कितने पत्र आते है। लोग धमकी देते है कि तुम्हारी जान ले ली जायगी, पर मुझे उनकी कुछ परवा नही।" वह तो वहादुर आदमी थे। उनसे वढकर वहादुर आदमी मैंने ससारमें नही देखा। मरनेका उन्हें डर नही था, क्योकि

वे सच्चे आस्तिक, ईश्वरवादी आदमी थे। इसीसे उन्होंने कहा मेरी जान अगर ले ही ली जाय तो उसमें होना ही क्या है। (हिं० न०, ६ १ २७)

•

यह उचित ही है कि हिंदू महासभाकी ओरसे स्वामी श्रद्धानदके स्मरणके लिए धनकी सहायता मागी जाय। स्वामीजी सन्यास-धारणके बाद जिन कामोके लिए जीते थे, उनके लिए चदा इकट्ठा करनेका हिंदू महासभाने निश्चय किया है। इस निश्चयके लिए मै उसे साधुवाद देता हू। वे काम है, अस्पृश्यता-निवारण, शुद्धि और सगठन। ५ लाखकी अपील की गई है। 'अस्पृश्यता' के लिए और शुद्धि और सगठनके लिए भी उतनेकी ही।. .जिनका शुद्धिमे विश्वास है उन्हें इस अपीलपर सहायता देनेका पूरा अधिकार है।

· · मेरे लिए अछूतोद्धारके ही कोषकी कीमत है। इसकी अपनी निराली ही शक्ति है। हिंदू-धर्मके सुधार और इसकी सच्ची रक्षाके लिए अछूतोद्धार सबसे बडी वस्तु है। इसमें सब कुछ शामिल है और इसलिए हिंदूधर्मका यह सबसे काला दाग है। अगर यह मिट जाय तो शुद्धि और सगठनसे जो कुछ मिल सकेगा, वह सब हमे इससे अपने आपही मिल जायगा। और मै यह इसलिए नही कहता कि अछूतोकी, जिन्हें हरएक हिंदूको गले लगाना चाहिए, बहुत बडी सख्या है, किंतु इसलिए कि एक पुराने और असभ्य रिवाजको तोड डालनेके ज्ञान और उससे होनेवाली शुद्धिसे इतनी ताकत मिलेगी जो रोकी न जा सकेगी। इसलिए अस्पृश्यता-निवारण एक आध्यात्मिक क्रिया है। स्वामीजी उस सुधारके जीवित मूर्त्ति थे, क्योकि वे इसमें आधासाभा सुधार नही चाहते थे। वे समझौता नही कर सकते, दब नही सकते थे। अगर उनकी चलती तो वे बात-की-बातमें हिंदू धर्मसे 'अस्पृश्यता' को निकाल बाहर करते। वे हरएक मदिरको, हरएक कुएको, सबकी बराबरीके हकके साथ अछूतोके लिए खोल देते और इसका फल भुगत लेते। स्वामी श्रद्धानदजी-

के लिए मै इससे अच्छा कोई स्मारक नही सोच सकता कि हरएक हिंदू आजसे अपने दिलोमे 'अस्पृश्यता' की अपवित्रता निकाल दे और उनके साथ सगोके समान वर्ताव करे। उस आदमीकी पैसाकी सहायता तो, मेरी समझमे, अस्पृश्यताको हिंदूधर्मसे सदाके लिए निकाल डालनेकी उसके दृढ निश्चयका चिह्न भर होगी।

स्वामीजीको सामुदायिक और धार्मिक रूपसे सम्मान प्रदर्शन करनेके लिए जनवरी, सोमवारका दिन, निश्चय किया गया है। मुझे आशा है कि हर शहर-गावमें यह होगा। मगर इस प्रदर्शनका असल मतलब ही गायब हो जायगा अगर उसमें भाग लेनेवाले अपनेमेंसे उसीके साथ 'अस्पृश्यता' की अपवित्रताको दूर न करें। हरएक अछूतको उसमें शामिल होना चाहिए और क्या ही अच्छी बात होती अगर उसी दिन अछूतोके लिए सभी मदिर खोल दिए जाते। अगर सगठित रूपसे उद्योग किया जाय तो उस दिन सूर्यास्तके पहले ही कोष भरा जा सकता है।

स्वामीजीसे मेरा पहला परिचय तब हुआ जब वे महात्मा मुशीरामके नामसे प्रसिद्ध थे। वह परिचय भी पत्रोसे हुआ। उस समय वे कागडी गुरुकुलके प्रधान थे जो कि उनका सबसे पहला और बडा शिक्षा-क्षेत्रका काम है। वे सिर्फ पश्चिमी शिक्षापद्धतिसे ही सतुष्ट न थे। लडकोमें वे वेद-शिक्षाका प्रचार करना चाहते थे और वे पढाते थे हिंदीके जरिए, अग्रेजीके नही। शिक्षा-कालमें वे उन्हें ब्रह्मचारी रखना चाहते थे। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहियोके लिए उस समय जो धन इकट्ठा किया जा रहा था, उसमें चदा देनेके लिए लडकोको उन्होने उत्साहित किया था। वे चाहते थे कि लडके खुद कुली बन कर, मजदूरी कर के चदा दें, क्योकि वह युद्ध क्या कुलियोका नही था? लडकोने यह सब पूरा कर दिखाया और पूरी मजदूरी कमाकर मेरे पास भेजी। इस विषयमें स्वामीजीने मुझे जो पत्र भेजा था, वह हिंदीमे था। उन्होने मुझे 'मेरे प्रिय भाई' कहकर लिखा था।

इसने मुझे महात्मा मुशीरामका प्रिय वना दिया। इससे पहले हम दोनो कभी मिले नही थे।

हम लोगोके वीचके सूत्र ऐन्ड्रयूज थे। उनकी इच्छा थी कि जव कभी मै देश लौटू, उनके तीनो मित्रो, कवि ठाकुर, प्रिन्सीपल रुद्र और महात्मा मुशीराम से परिचय प्राप्त करू।

वह पत्र पानेके वाद से हम दोनो एक ही सेनाके सैनिक वन गये। उनके प्रिय गुरुकुलमे हम १९१५में मिले और उसके वाद से हरएक मुलाकातमें हम दोनो परस्पर निकट आते गये और एक दूसरेको ज्यादा अच्छी तरह समझने लगे। प्राचीन भारत, सस्कृत और हिंदीके प्रति उनका प्रेम असीम था। वेशक, असहयोगके पैदा होनेके वहुत पहले से ही वे असहयोगी थे। स्वराजके लिए वे अधीर थे। अस्पृश्यतासे वे नफरत करते थे और अस्पृश्योकी स्थिति ऊची करना चाहते थे। उनकी स्वाधीनता पर कोई वधन लगाना वे नही सह सकते थे।

जव 'रौलट ऐक्ट' का आन्दोलन शुरू हुआ तो उसे सवसे पहले शुरू करनेवालोमें से वे थे। उन्होने मुझे वहुत ही प्रेमसे भरा हुआ एक पत्र भेजा। किन्तु वीरमगाम और अमृतसर काडके वाद सत्याग्रहको स्थगित किया जाना वे नही समझ सके। उस समयसे हमारे वीच मतभेद शुरू हुए, किंतु उससे हम लोगोके भाई-भाईके सवधमें कभी कोई अतर नही पडा। उस मतभेदसे मुझपर उनका वाल-सुलभ स्वभाव प्रकट हुआ। परिणामका विचार किए विना ही, उन्हे जैसा मालूम था मुझसे सच्ची वात कह दी। वे अतिसाहसिक थे। समय वीतनेके साथ-साथ हम दोनोमे जो स्वभावका अतर था, उसे मै देखता गया, किंतु उससे तो उनकी आत्माकी शुद्धता ही सिद्ध हुई। सवको सुनाकर विचार करना कुछ पाप नही है। यह तो एक गुण है। यह सत्यप्रियताका सर्वप्रधान लक्षण है। स्वामीजीने अपने विचार गुप्त रक्खे ही नही।

वारडोलीके निश्चयसे उनका दिल टूट गया। मुझसे वे निराश हो

गए। उनका प्रकट विरोध बहुत जबर्दस्त था। मेरे नाम उनके निजी पत्रोमें और भी विरोध होता था, किंतु हमारे मतभेद पर जितना वे जोर देते थे, प्रेमपर भी उतना ही। प्रेमका विश्वास केवल पत्रोमें ही दिला देनेसे वे सतुष्ट न थे। मौका मिलनेपर उन्होने मुझे ढूढ निकाला और मुझे अपनी स्थिति समझाई और मेरी समझनेकी कोशिश की। मगर मुझे मालूम होता है कि मुझे ढूढनेका असल कारण यह था कि अगर जरूरत हो तो मुझे वे विश्वास दिला सके कि एक छोटे भाईके समान मुझपर उनकी प्रीति जैसी-की-तैसी बनी हुई है।

आर्य समाज और उनके सस्थापक पर मेरे मतोमे और उनके नामका उल्लेख करनेसे उन्हे बहुत कष्ट हुआ, परन्तु इस धक्केको सह लेनेकी शक्ति हमारी मित्रतामे थी। वे यह नही समझ सकते थे कि महर्षिके विषयमे मेरे मतो और अपने व्यक्तिगत शत्रुओंके प्रति ऋषिकी असीम क्षमाका एक साथ कैसे मेल बैठ सकता है। महर्षिमे उनकी इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उन पर या उनकी शिक्षाओ पर कोई भी टीका वे सह नही सकते थे।

शुद्धि आन्दोलनके लिए मुसलमान पत्रोमे उनकी बडी कडी आलोचनाए और निन्दा की गई है। मै स्वय उनके दृष्टिविन्दुको स्वीकार नही कर सका था। अब भी मै उसे नही मानता। किन्तु मेरी नजरमे, अपने दृष्टिविन्दुसे वे, अपनी स्थितिका पूरा बचाव करते थे, जबतक शुद्धि और तबलीग मर्यादाके भीतर रहे, तबतक दोनो ही बराबर छूटके अधिकारी है।

.अगर हम हिन्दू और मुसलमान दोनो शुद्धिका आन्तरिक अर्थ समझ सकते तो स्वामीजीकी मृत्युसे भी लाभ उठाया जा सकता था।

एक महान सुधारकके जीवनके स्मरणोको मै सत्याग्रहाश्रममें, उनके कुछ महीनो पहलेके आखिरी आगमनकी बातके बिना खतम नही कर सकता। मुसलमान मित्रोको मै विश्वास दिलाता हू कि वे मुसलमानोंके दुश्मन

नही थे। कुछ मुसलमानोका विश्वास वे बेशक नही करते थे; किन्तु उन लोगोसे उनका कुछ द्वेष नही था। उनका ख्याल था कि हिन्दू दवा दिये गए है और उन्हें वहादुर बनकर अपनी और अपनी इज्जतकी रक्षा करने योग्य बनना चाहिए। इस वारेमें उन्होने मुझसे कहा था कि "मेरे विषयमे बड़ी गलतफहमी फैली हुई है। मेरे विरुद्ध कही जानेवाली कई बातोमें मै बिलकुल निर्दोष हू। मेरे पास धमकीके कितने—एक पत्र आया करते है।" मित्रगण उन्हें अकेले चलनेसे मना करते थे। मगर यह परम आस्तिक पुरुष उनका जवाब दिया करता था, "ईश्वरकी रक्षाके सिवाय और किस रक्षाका मै भरोसा करू? उसकी आज्ञाके विना एक तिनका भी नही हिलता। मैं जानता हू कि जबतक वह मुझसे इस देहके द्वारा सेवा लेना चाहता है, मेरा बाल बाका नही हो सकता।"

आश्रममे रहते समय उन्होने आश्रम पाठशालाके लड़के-लडकियोसे बाते की। उनका कहना था कि हिन्दू-धर्मकी सबसे बडी रक्षा आत्मशुद्धिसे ही होगी, भीतरसे ही होगी। चारित्र्य और शरीरके गठनके लिए, ब्रह्मचर्यपर वे बहुत जोर देते थे। (हि० न०, ६.१.२७)

* * *

स्वामी श्रद्धानन्दके स्वर्गवासके विषयमें महासभाके सामने निम्नलिखित आशयका प्रस्ताव पेश किया गया था :

"स्वामी श्रद्धानदजीका नामर्दी और दगावाजीसे खून किया गया है, इसके लिए महासभा अपना तीव्र तिरस्कार प्रकट करती है और स्वदेश तथा स्वधर्मकी सेवामें अपना जीवन और शक्ति अर्पण करनेवाले, अत्यजों और वैसे ही पतितो और निर्बलोकी सहायताको निडर होकर दौडनेवाले इस वीर और महानुभावकी करुणाजनक मृत्युसे उसकी सम्मतिमें देशकी न पूरी होनेवाली हानि हुई है।"

यह प्रस्ताव पेश करनेका भार पहले मौलाना मुहम्मदअलीपर दिया गया था, किंतु अतमें सभापति महोदयने गाधीजीसे वह प्रस्ताव पेश करनेको

कहा। गांधीजीको लंबा भाषण न करना था, किंतु अनायास ही, अनिच्छासे, अथवा ईश्वरेच्छासे कहिए उन्हें लंबा भाषण करना पड़ा। . . उस भाषणसे सारी सभाके हृदयका तार मानो झनझना रहा था। भाषणमेंके बहुतसे उद्‌गार तो महासमितिके भाषणवाले ही थे। किंतु एक-दो बातें ऐसी थीं जो उस भाषणमें अप्रकट थीं, इस भाषण में उनपर विस्तारसे विवेचन किया गया। महासमितिमें उन्होंने कहा था—"इस खूनके लिए शोक करना भला नहीं मालूम होता। ऐसा खून तो हरएक वीर पुरुष चाहता है।" इस वाक्यको जरा सुधार करके उन्होंने कहा :

वीर पुरुषको जब ऐसी मृत्यु मिलती है तो वह उसे मित्रके समान गले लगाता है। किन्तु इससे कोई यह नही चाहता कि उसका कोई खून करे। कोई भी अपने साथ अन्याय करे, गुनहगार बने, कोई भी मनुष्य दुष्कृत्य करे, ऐसी इच्छा ही करना अनुचित है।

स्वामीजी वीरोंके अग्रणी थे। अपनी वीरतासे उन्होंने भारतको आश्चर्य-चकित कर दिया था। इसका साक्षी मैं हू कि देशके लिए अपना शरीर कुर्बान करनेकी उन्होंने प्रतिज्ञा ली थी। वे अनाथ-बंधु थे। अछूतोंके लिए उन्होंने जितना किया उससे अधिक हिन्दुस्तानमे दूसरे किसीने नहीं किया है। उनकी दूसरी सेवाओंका वर्णन मैं यहा करना नही चाहता। स्वामीजीके जैसे वीर, देशभक्त, ईश्वरके अनन्यभक्त और सेवकका खून देशके लिए जैसा लाभदायक है, वैसा ही, उसे दुःख होना भी स्वाभाविक है, क्योंकि हम लोग अपूर्ण मनुष्य है।

. . . . हमारे यहा दो जातिया है। बदनसीबीसे वे एक-दूसरेको जहरीली नजरोंसे देखती है। एक-दूसरेको दुश्मन मानती है। इसी कारण यह हत्या हो सकी है। मुसलमान मानते है कि स्वामीजी, लालाजी और मालवीयजी मुसलमानोंके दुश्मन है। उधर हिन्दू समझते है कि सर अब्दुर्रहीम तथा दूसरे मुसलमान हिन्दुओंके शत्रु है। दोनोके ख्याल निहायत खोटे

हैं। स्वामीजी इस्लामके दुश्मन न थे, मालवीयजी और लालाजी नही हैं। लालाजी और मालवीयजीको अपने विचार प्रकट करनेका पूरा अधिकार है और उनके विचार जिन्हे गलत मालूम हो, उन लोगोको उन्हें गाली देनेका अधिकार नही है। हिन्दुस्तानके नम्र सेवककी हैसियतसे मेरी यह सम्मति है। जब कभी हम अखबार देखें, भाग्यसे ही ऐसा कोई मुसलमान अखबार मिलता हो जिसमें इन देश-सेवकोको गाली न दी गई हो। उन्होने क्या गुनाह किया है? वे जिस रीतिसे काम करना चाहते है, उसमे हम भले ही शामिल न हो, किन्तु मेरा मत है कि मालवीयजी अपनी सेवाओंसे भारत-भूषण बने हुए हैं। (तालिया) तालियोसे आप देश-सेवा नही कर सकते। मै आज जो कुछ बोल रहा हू वह ईश्वरको सामने रखकर। मेरे हृदयके भीतर आग जल रही है। उसकी दो-चार चिनगारिया ही मै तुम्हे दे रहा हू, जिसमे हम उनकी आत्मबलिसे पूरा लाभ उठावे और उनके पवित्र रुधिरसे अपना दिल शुद्ध करें। सच्ची दृष्टिसे मै आज वही शुद्धि चाहता हू जो श्रद्धानन्दजी चाहते थे। मालवीयजीको मैने भारत-भूषण कहा है, किन्तु लालाजी भी जो मानते है उसे ही कहनेवाले है। उनकी भी देश-सेवा कुछ कम नही है। सर अबदुर्रहीम मानते है कि मुसलमानोको बगालमे अधिक नौकरिया मिलनी चाहिए। उनकी राय हमे भले ही न रुचे मगर इसके लिए हम क्या उन्हें गाली देगे? मुहम्मदअली कहते हैं कि गाधीके लिए मुझे मान है, आदर है मगर जो मुसलमान कुरानशरीफपर ईमान लाता है, उसका ईमान गाधीके ईमानसे कही अच्छा है। इसपर हम बुरा क्यो माने? .. स्वामीजी आत्म-बलिदानसे दूसरा ही धर्म बतला गये है। उन्होने एक बार मुझसे पूछा था कि आर्यसमाज उदार कैसे नही? आप क्या जानते है कि महर्षि दयानन्दने अपनेको जहर देनेवालेके साथ क्या किया था। मैने जवाब दिया कि मै महर्षिकी क्षमाशीलताको जानता हू। मगर स्वामीजी तो महर्षिके भक्त थे। उन्होने सारी कथा कह सुनाई। महर्षि क्षमाशील थे, क्योकि

उनके आगे युधिष्ठिरका उज्ज्वल उदाहरण था। वे उपनिषदोंके भक्त थे। श्रद्धानन्दजी भी वैसे ही क्षमाशील थे। शुद्धिपर बातें करते समय उन्होंने एक बार कहा था कि "मैं मुसलमानोंको हिन्दुओंका दुश्मन नहीं मानता।" 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्तका उपदेश करनेवाले और गीताके भक्त श्रद्धानन्दजी किसीको दुश्मन क्योंकर मान सकते थे? उन्होंने कहा, "मैं मुसलमानको भाई मानता हूं, मित्र मानता हूं; किन्तु हिन्दूको भी भाई मानता हूं और उसकी सेवा करना चाहता हूं।"

मेरा धर्म मुझे बतलाता है कि कोई मुसलमान मेरे मुंहपर थूके तो भी मैं उसे भाई और मित्र समझूं। मैं बतलाता हूं कि इन तीनोंमेंसे कोई मुसलमानोंका दुश्मन नहीं है। वैसे ही सर अबदुर्रहीम या मियां फजली-हुसैन हिन्दुओंके शत्रु नहीं। मियां फजलीहुसैनने मुझसे कहा था कि मैं कांग्रेसवाला हूं और मुझे हिन्दुओंसे मुहब्बत है, मगर इससे मुसलमानों-की सेवा क्यों न करूं? वे कहते हैं कि आधी नौकरियां मुसलमानोंको मिलनी चाहिए। इसपर तुम कहो कि एक भी नहीं देनी चाहिए। मगर इसपरसे हिन्दुओंका दुश्मन उन्हें क्योंकर माना जायगा? हम अपनी कल्पनाशक्तिका दुरुपयोग करके काल्पनिक दुश्मन बना लेते हैं। मैं फिर कहता हूं कि सर अबदुर्रहीम, जिन्ना, अलीभाई हिन्दुओंके शत्रु नहीं और मालवीयजी तथा लालाजी मुसलमानोंके दुश्मन नहीं हैं।....मुसलमान भी आज इकरार करते हैं कि श्रद्धानन्दजीमें बुराई न थी, वे मैले दिलके आदमी न थे, उनके वे दुश्मन न थे।

रशीदको मैंने भाई क्यों कहा है, यह तुम अब समझ सके होगे। मैं तो उसे गुनहगार भी नहीं मानता। गुनहगार तो मैं हूं, लालाजी हैं, मालवीयजी हैं, अलीभाई हैं। गीतामें कहा है 'समत्वं योग उच्यते'। इन्सान इन्सानके बीचमें फर्क न करो। ब्राह्मण और चांडाल, हाथी और गायके बीच अन्तर न रक्खो। इससे मैंने कहा कि रशीद मेरा भाई है और वह गुनहगार भी नहीं है।

आज श्रद्धानन्दजीके लिए आसू बहानेका समय नही है। आज तो क्षत्रियता बतानेका अवसर है। क्षत्रियता क्षत्रियका खास गुण भले ही न हो मगर ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र सभी उसे दिखा सकते है। खासकर आजका 'स्वराज युग' हम सबके लिए क्षत्रियताका युग है। इसलिए रोनेकी बात छोड दे और श्रद्धानन्दजीके बलिदानसे, रशीदके किये खूनसे जो पाठ मिले उसे हृदयमें धरें। (हि० न०, १३ १.२७)

... ...

स्वामीजीका देहात हुआ ही नही है। देहात तो तब होगा जब हम उनकी सच्ची देहको मिटानेकी कोशिश करेंगे, अगर्चे कि सच्ची बात तो यह है कि हमारी कोशिशसे भी उनकी देहका नाश होनेको नही है। जबतक यह गुरुकुल कायम है, जबतक एक भी स्नातक गुरुकुलकी सेवा करता है, तबतक स्वामीजी जीते ही हैं। स्वामीजीका शरीर तो किसी दिन गिरनेको था ही। पर स्वामीजीका सबसे बड़ा काम गुरुकुल है, उन्होने अपनी सारी शक्ति इसमें लगा दी थी, इसे पैदा करनेमे उन्होने अधिक-से-अधिक तपश्चर्या की थी। तुमने सत्यकी प्रतिज्ञा ली है। अगर तुम अपने वचन का पालन करोगे तो किसीकी शक्ति नही कि वह गुरुकुलको मिटा दे।

पर गुरुकुलको चिरस्थायी रखनेके लिए उस वीरता, ब्रह्मचर्य और क्षमा की जरूरत है, जो हमने उनके जीवनमें देखी। वीरताका लक्षण क्षमा, और ब्रह्मचर्य और वीर्यका सयम है। वीरता और वीर्यकी रक्षासे तुम देश और धर्मकी पूरी-पूरी रक्षा कर सकोगे। मै जानता हू कि यह काम मुश्किल है। तुम्हारे यहाके बहुतसे विद्यार्थियोके पत्र मेरे पास पडे हुए है। कोई मेरी स्तुति करता है तो कोई गाली देते है। स्तुति तो नाकाम चीज है उसका असर मेरे ऊपर नही होता। परतु जब विद्यार्थी चिढकर गाली देते है तो मुझे चिता होती है क्योकि क्रोधसे वीर्यका नाश होता है। स्वामीजीके सामने मैंने ब्रह्मचर्यकी अपनी व्याख्या रक्खी थी और वे मेरे साथ सम्मत थे। किसी स्त्रीका मलिन स्पर्श न करनेमें ही ब्रह्मचर्य नही होता। हा, ब्रह्मचर्य

वहांसे शुरू जरूर होना है। पर क्षमाकी पराकाष्ठा ब्रह्मचर्यका लक्षण है। पिछले साल स्वामीजी जब टकारियासे पीछे लौटते समय मुझसे मिलने गये थे तो उन्होने मुझसे कहा कि 'हिंदूधर्मकी रक्षा नीतिसे ही सभव है।' अगर तुम वैदिक आचार और विचारकी रक्षा करना चाहते हो तो तुम यह वस्तु याद रक्खो कि तुम्हें पग-पगपर रुपये मिल जायगे, मगर ब्रह्मचर्यका, नीतिका पाया यहापर न होगा तो तुम्हारा गुरुकुल मिट्टीमें मिल जायगा। इस भूमिके तो आत्मा नही है। इसकी आत्मा तुम्ही हो। अगर तुम आत्म-बल खो दोगे और 'उदरनिमित्त बहुकृतवेष' जैसे बन जाओगे तो तुम्हारी सारी शिक्षा बेकार जायगी।

मैं आज तुम्हारे आगे चर्खा और खादीकी बात करने नही आया हू। तुम्हारा पहला काम ब्रह्मचर्य और वीरताका—क्षमाका है। उसे भूल जाओगे तो स्वामीजीका काम कायम नही रहेगा। रशीदकी गोलीसे स्वामीजीका क्या हुआ? वे तो उस गोलीसे ही अमर हुए।

स्वामीजीका दूसरा काम अछूतोद्धार था। जिन शब्दोमें मालवीयजीने खादीकी वकालत की, मैं नही कर सकता। पर इतना जरूर कहूगा कि अगर हम हमेशा गरीबो और अछूतोकी फिक्र रक्खेंगे तो खादी से अलग नही रह सकते।

ईश्वर तुम सबके ब्रह्मचर्य, सत्य और तुम्हारी प्रतिज्ञाओकी रक्षा करे, गुरुकुलका कल्याण करे और स्वामीजीका हरएक काम परमात्मा चालू रखे! (हि० न०, ३१ ३ २७)

• • •

अगर कोई मुझे 'महात्मा' के नामसे पुकारते भी थे तो मैं यही सोच लेता था कि महात्मा मुशीरामजीके बदले भूलसे मुझे किसीने पुकार लिया होगा। उनकी कीर्ति तो मैंने दक्षिण अफ्रीकामें ही सुन ली थी। हिंदुस्तानसे धन्यवाद और सहानुभूतिका सदेश भेजनेवालोमें एक वे भी थे और मैं

जानता था कि हिंदुस्तानकी जनताने उन्हे उनकी देश-सेवाओके लिए महात्माकी उपाधि दी थी। (२१ १ ४२)

: १६६ :

कुमारी श्लेजीन

अब एक पवित्र बालाका परिचय देता हू। गोखलेने उसे जो प्रमाणपत्र दिया उसको पाठकोके सामने रक्खे बिना मैं नही रह सकता। इस बालाका नाम मिस श्लेजीन है। मनुष्योको पहचाननेकी गोखलेकी शक्ति अद्भुत थी। डेलागोआबेसे जजीबार तक बातचीत करनेके लिए हमें अच्छा शात समय मिल गया था। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय तथा अग्रेज नेताओ-से उनका अच्छा परिचय हो गया था। इनमेंसे मुख्य पात्रोका आपने सूक्ष्म चरित्र-चित्रण कर बताया और मुझे बराबर याद है कि उन्होने मिस श्लेजीनको भारतीय तथा गोरोमे भी सबसे पहला स्थान दिया।

"इसका जैसा निर्मल अंतःकरण, कामके वक्त एकाग्रता, दृढता मैंने बहुत थोड़े लोगोमें देखी है। और बिना किसी आशा-प्रलोभनके इसे भारतीय आदोलनमें इस तरह सर्वार्पण करते हुए देखकर तो मै आश्चर्य-चकित हो गया हूं। इन सभी गुणोके साथ-साथ उसकी होशियारी और फुर्तीलापन उसे इस युद्धमें एक अमूल्य सेविका बना रहा है। मेरे कहनेकी आवश्यकता तो नहीं, पर फिर भी कहे देता हूं कि तुम इसे मत छोडना।"

मेरे पास एक स्काचकुमारी शार्टहैड और टाइपिस्टका काम करती थी। उसकी भी प्रामाणिकता और नीतिशीलता बेहद थी। मुझे अपने जीवनमे यो तो कई कटु अनुभव हुए है, पर इतने सुदर चारित्र्यवान् अग्रेज तथा भारतीयोसे मेरा सबध हुआ है कि मै तो उसे सदा अपना अहोभाग्य

ही मानता आया हूं। इस स्काच कुमारी मिस डिकके विवाहका अवसर आया और उनका वियोग हुआ। मि० कैलनबेक मिस श्लेजीनको लाए और मुझे कहने लगे,

"इस बालाको इसकी माने मुझे सौंपा है। यह चतुर है, प्रामाणिक है, पर इसमें मजाककी आदत और स्वाधीनता हदसे ज्यादा है। शायद इसे उद्धत भी कह सकते हैं। आप सभाल सकें तो इसे आप अपने पास रक्खें। मैं इसे आपके पास तनख्वाहके लिए नहीं रखता।"

मैं तो अच्छे शार्टहैंड टाइपिस्टको २० पौंड मासिक वेतन तक देनेके लिए तैयार था। मिस श्लेजीनकी योग्यता और शक्तिका मुझे कुछ पता नही था। मि० कैलनबेकने कहा

"अभी तो इसे महीनेके छः पौंड दीजिएगा।"

मैंने फौरन मजूर कर लिया। शीघ्र ही मुझे उसके विनोदी स्वभाव-का अनुभव हुआ। पर एक महीनेके अदर तो मुझे उसने अपने वशमें कर लिया। रात और दिन जिस समय चाहो काम देती। उसके लिए कोई बात असभव या मुश्किल तो थी ही नही। इस समय उसकी उम्र १६ वर्षकी थी। मवक्किल तथा सत्याग्रहियोको भी उसने अपनी निस्पृहता तथा सेवाभावसे वशमे कर लिया था। यह कुमारी आफिस और युद्धकी एक चौकीदार बन गई। किसी भी कार्यकी नीतिके विषयमें उसके हृदयमे शका उत्पन्न होते ही वह स्वतत्रता-पूर्वक मुझसे वाद-विवाद करती और जबतक मैं उसकी नीतिके विषयमें उसे कायल न कर देता तबतक उसे कभी सन्तोष नही होता था। जब हम सब लोग गिरफ्तार हो गए और अगुआओ में से लगभग अकेले काछलिया बाहर रह गए तब इस कुमारिकाने लाखोका हिसाब सभाला था। भिन्न-भिन्न प्रकृतिके मनुष्योंसे काम लिया था। काछलिया भी उसीका आश्रय लेते, उसीकी सलाह लेते थे। हम लोगोके जेलमें चले जानेपर डोकने 'इडियन ओपीनियन' की जिम्मे-दारी अपने हाथोमें ली, पर वह वृद्ध पुरुष भी 'इडियन ओपीनियन'के

लिए लिखे हुए लेख मिस श्लेजीनसे पहले पास करा लेते । और मुझसे उन्होंने कहा,

"अगर मिस श्लेजीन नहीं होती तो मैं कह नहीं सकता कि अपने कामसे मुझे खुद भी संतोष होता या नहीं। उसकी सहायता और सूचनाओंकी सच्ची कीमत आंकना बहुत मुश्किल है।"

और कई बार उसकी सूचनाएं उचित ही होंगी, यह समझकर मैं उन्हें मंजूर भी कर लिया करता। पठान, पटेल, गिरमिटिया, आदि सब जातिके और सभी उम्रके भारतीयोंसे वह सदा घिरी हुई रहती थी। वे उसकी सलाह लेते और वह जैसा कहती वैसा ही करते। दक्षिण अफ्रीकामें अक्सर गोरे लोग भारतीयोंके साथ एक ही डिब्बेमें नहीं बैठते। ट्रान्सवालमें तो उनको एक जगह बैठनेकी मनाही भी करते हैं। वहां तो यह भी कानून था कि सत्याग्रही तीसरे ही दर्जेमें सफर करें। इतना होते हुए भी मिस श्लेजीन जानबूझकर भारतीयोंके डब्बेमें बैठती और गार्डके साथ झगड़ा भी करती। मुझे भय था और श्लेजीनको भी इस बातकी शंका थी कि वह कहीं गिरफ्तार न हो जाय। पर यद्यपि सरकारको उसकी शक्ति, उसका युद्ध-विषयक ज्ञान और सत्याग्रहियोंके हृदयपर उसने जो अधिकार प्राप्त कर लिया था उसका पता था, तथापि उसने मिस श्लेजीनको गिरफ्तार नहीं किया। और इसमें उसने सचमुच बुद्धि और विवेकसे ही काम लिया। मिस श्लेजीनने कभी अपने छ के सवा छ पौंड होनेकी न तो इच्छा ही की और न कुछ कहा ही। उनकी कितनी ही आवश्यकताओंका जब मुझे पता लगा तब मैंने उनके दस पौंड कर दिए। उन्होंने बड़ी हिचकिचाहटके साथ उसको स्वीकार किया; पर उससे आगे बढ़ानेसे तो उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा :

"इससे अधिककी मुझे आवश्यकता ही नहीं और यदि इतनेपर भी ले लूं तो जिस उद्देश्यसे मैं आपके पास आई हूं वही व्यर्थ हो जाय।"

इस उत्तरके आगे मैं चुप हो गया। पाठक शायद यह जाननेके लिए उत्सुक हो रहे होंगे कि मिस श्लेजीनने कहा तक शिक्षा पाई थी ? वे केप यूनीवर्सिटीकी इन्टरमीजिएट परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुकी थी। शार्टहैंड वगैरामें पहले दर्जेके प्रमाणपत्र प्राप्त किए थे। युद्धसे मुक्त होनेपर वे उसी यूनीवर्सिटीकी ग्रेजुएट हुईं और इस समय ट्रान्सवालकी किसी कन्या पाठशालामें प्रधानाध्यापिका है। (द० अ० स० १९२५)

• •

. .यह बहन आज ट्रासवालमें किसी हाईस्कूलमे शिक्षिका-का काम करती है। जब मेरे पास यह आई थी तब उसकी उम्र १७ वर्षकी होगी। उसकी कितनी ही विचित्रताओके आगे मैं और मि० कैलेनबेक हार खा जाते। वह नौकरी करने नही आई थी। उसे तो अनुभव प्राप्त करना था। उसके रगो-रेशेमें कही रग-द्वेषका नाम न था। न उसे किसीकी परवाह ही थी। वह किसीका अपमान करनेसे भी नही हिचकती थी। अपने मनमें जिसके सबधमें जो विचार आते हो वह कह डालनेमें जरा सकोच न करती थी। अपने इस स्वभावके कारण वह कई बार मुझे कठिनाइयोमें डाल देती थी, परतु उसका हृदय शुद्ध था, इससे कठिनाइया दूर भी हो जाती थी। उसका अग्रेजी ज्ञान मैंने अपनेसे हमेशा अच्छा माना था, फिर उसकी वफादारीपर भी मेरा पूर्ण विश्वास था। इससे उसके टाइप किए हुए कितने ही पत्रोपर बिना दोहराए दस्तखत कर दिया करता था।

उसके त्याग-भावकी सीमा न थी। बहुत समय तक तो उसने मुझसे सिर्फ ६ पौंड महीना ही लिया और अतमें जाकर १० पौडसे अधिक लेनेसे साफ इन्कार कर दिया। यदि मैं कहता कि ज्यादा ले लो तो मुझे डाट देती और कहती .

"मैं यहा वेतन लेने नहीं आई हूं। मुझे तो आपके आदर्श प्रिय है। इस कारण मैं आपके साथ रह रही हू।"

एक वार आवश्यकता पडनेपर मुझसे उसने ४० पौड उधार लिए थे और पिछले साल सारी रकम उसने मुझे लौटा दी।

त्याग-भाव उसका जैसा तीव्र था वैसी ही उसकी हिम्मत भी जबरदस्त थी। मुझे स्फटिककी तरह पवित्र और वीरतामें क्षत्रियको भी लज्जित करनेवाली जिन महिलाओसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनमें मै इस बालिकाकी गिनती करता हू। आज तो वह प्रौढ कुमारिका है। उसकी वर्तमान मानसिक स्थितिसे मै परिचित नही हू, परतु इस बालिकाका अनुभव मेरे लिए सदा एक पुण्य-स्मरण रहेगा और यदि मै उसके सबधमें अपना अनुभव न प्रकाशित करू तो मैं सत्यका द्रोही बनूगा।

काम करनेमे वह न दिन देखती थी, न रात। रातमे जब भी कभी हो, अकेली चली जाती और यदि मैं किसीको साथ भेजना चाहता तो लाल-पीली आखें दिखाती। हजारो जवामर्द भारतीय उसे आदरकी दृष्टिसे देखते थे और उसकी बात मानते थे। जब हम सब जेलमें थे, जबकि जिम्मेदार आदमी शायद ही कोई बाहर रहा था, तब उस अकेलीने सारी लडाईका काम सम्हाल लिया था। लाखोका हिसाब उसके हाथमे, सारा पत्र-व्यवहार उसके हाथमें और 'इडियन ओपीनियन' भी उसी हाथमें—ऐसी स्थिति आ पहुची थी, पर वह थकना नही जानती थी।

मिस श्लेजीनके बारेमे लिखते हुए मै थक नही सकता, पर यहा तो सिर्फ गोखलेका प्रमाण-पत्र देकर समाप्त करता हू। गोखलेने मेरे तमाम साथियोसे परिचय कर लिया और इस परिचयसे उन्हें बहुतोसे बहुत सतोष हुआ था। उन्हे सबके चरित्रके बारेमें अदाज लगानेका शौक था। मेरे तमाम भारतीय और यूरोपीय साथियोमें उन्होने मिस श्लेजीनको पहला नबर दिया था

"इतना त्याग, इतनी पवित्रता, इतनी निर्भयता और इतनी कुशलता मैंने बहुत कम लोगोमें देखी है। मेरी नजरमें तो मिस श्लेजीनका नंबर तुम्हारे सब साथियोमें पहला है।" (आ० क०, १९२७)

: २०० :

आईनर

मेरा तो खयाल है कि संसारमे ऐसा एक भी स्थान और जाति नही, जिसमे यथा समय और संस्कृति मिलनेपर बढ़िया-से-बढ़िया मनुष्य-पुष्प न पैदा होते हो। दक्षिण अफ्रीकामे सभी स्थानोपर मैं इसके उदाहरण सौभाग्यवश देख चुका हूं। पर केपकालोनी मे मुझे इसके उदाहरण अधिक संख्यामे मिले। उनमें सबसे अधिक विद्वान् और विख्यात् हैं श्री मेरीमैन। इन्हे लोग दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहते। केपकालोनी में आप अध्यक्ष भी रह चुके हैं। यदि श्री०मेरीमैनके जैसे श्रेष्ठ नहीं तो उनसे दूसरे नबरपर वहाके आईनर और मोल्टोनोके परिवार हैं। कानून के विख्यात हिमायती श्री, डब्ल्यू० पी, आईनर इसी आईनर-परिवार-मे हो गये है। केपकालोनीके प्रधान मण्डलमें भी वे रह चुके है। श्री मेरीमैन और ये दोनो परिवार हमेशा हबशियोका पक्ष लेते और जब-जब उनके हकोपर हमला होता तब-तब उसके लिए वे झगडते। और यद्यपि वे सब भारतीयो और हब्शी लोगोको भिन्न-भिन्न दृष्टिसे देखते तथापि उनकी प्रेमधारा भारतीयोकी ओर भी अवश्य बहती। उनकी दलील यह थी कि हबशी लोग गोरोके पहलेसे यहा रह रहे है और उनकी यह मातृभूमि है। इसलिए उनका स्वाभाविक अधिकार गोरोसे नहीं छीना जा सकता। किंतु प्रतिस्पर्धाके भयसे बचनेके लिए यदि भारतीयोके खिलाफ कुछ कानून बनाए जाए तो वह बिलकुल अन्यायपूर्ण नही कहा जा सकता। पर इतनेपर भी उनका हृदय तो हमेशा भारतीयोकी ओर ही झुकता। स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे थे तब उनके सम्मानमे केपटाउन हालमे जो सभा बुलाई गई थी उसके अध्यक्ष श्री आईनर ही थे। श्रीमेरीमैन ने भी उनसे बड़े प्रेम और विनय-

पूर्वक वातचीत की और भारतीयोके प्रति अपना प्रेम-भाव दर्शाया। केपटाउनके समाचार-पत्रोमे भी पक्षपातकी मात्रा इधर-उधर समाचार पत्रोकी अपेक्षा सदा कम रहती। (द० अ० स० १६२५)

: २०१ :

ओलिव श्राईनर

दूसरी महिला है ओलिव श्राईनर। दक्षिण अफ्रीकाके विख्यात श्राईनर-कुटुबमे उनका जन्म हुआ था। वे वडी विदुषी थी। श्राईनर नाम इतना विख्यात है कि जब उनकी शादी हुई तब उनके पतिको श्राईनर नाम ग्रहण करना पडा, जिससे ओलिवका श्राईनर कुटुवके साथ सवध दक्षिण अफ्रीकाके गोरोसे लुप्त न हो जाय। यह कोई उनका वृथाभिमान नही था। मेरा विश्वास है कि उन महिलाके साथ मेरा अच्छा परिचय था। उनकी सादगी और नम्रता उनकी विद्वत्ताके समान ही उनका आभूषण थी। कभी एक दिन भी उनके दिमागमें यह खयाल नही आया कि उनके हवशी नौकर और स्वय उनके बीच कोई अतर है। जहा-जहा अग्रेजी भाषा वोली जाती है, तहा-तहा उनकी 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक आदरके साथ पढी जाती है। वह गद्य है, पर काव्यकी पक्तिमें रखने योग्य है। और भी उन्होने वहुत-कुछ लिखा है। इतनी विदुषी, इतनी वडी लेखिका होनेपर भी अपने घरमें रसोई करना, घर साफ-सुथरा रखना तथा वर्तन आदि साफ करना आदि कामोसे न तो वह कभी शर्माती और न कभी परहेज करती थीं। उनका यह खयाल था कि वह उपयोगी मेहनत उनकी लेखन-शक्ति को मद करनेके वदले उत्तेजित ही करती थी और उनके प्रभावसे भाषामें एक प्रकार की मर्यादा और व्यवस्थितता आ जाती थी। इस महिला ने भी

दक्षिण अफ्रीकाके गोरोमें उनका जो कुछ भी वजन था, उसका उपयोग भारतीयोके पक्षमें किया था। (द० अ० स०)

.. ..

ओलिव आईनर दक्षिण अफ्रीकामें वडी लोकप्रिय महिला है। जहा-जहा तक अग्रेजी भाषा वोली जाती है वहा-वहा तक उनका नाम विख्यात है। मनुष्यमात्रपर उनका असीम प्रेम था। जव देखिए तव यही मालूम होता कि उनकी आखोसे अविरल प्रेमकी धारा वह रही है। इसी देवीने 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक लिखी है। 'ड्रीम्स'की लेखिकाके नाम-से उनकी कीर्ति चारो ओर तभीसे है। उनका स्वभाव इतना सरस और सीधा-सादा था कि इतने वडे खान्दानमें पैदा होकर और इतनी वडी विदुषी होनेपर भी घरपर वे अपने वर्तन खुद ही साफ करती। (द० अ०स०)

: २०२ :

सुल्तान शहरियार

शहरियार साधारण आदमी नही है। वह काफी वडा आदमी है। लेकिन उसकी भी नजर आप लोगोपर यानी हिंदुस्तानपर ही है (प्रा० प्र०, ३.५ ४७)

: २०३ :

जॉर्ज बर्नार्ड शा

बर्नार्ड शा अंग्रेजोको ऊंचा समझते हैं। अंग्रेज समझते हैं कि उनके-जैसा खूबसूरत कौन है। वे बहुत अच्छा मजाक करते है। कहते हैं कि अंग्रेज कुछ गलती नही करते। वे धर्मके लिए ही सब-कुछ करते हैं। वे कहते हैं कि अंग्रेज धर्मके लिए लडाई करता है। लूट करता है तो भी वह धर्मके नामपर, क्योंकि किसीके पास अधिक पैसा क्यों रहे। हमें गुलाम बनाता है तो भी धर्मके नामपर—अच्छा बनानेके लिए। राजाका खून करता है तो वह भी धर्मके लिए अर्थात् जनमतके लिए। वे सब काम धर्मके नामपर करते है। (प्रा० प्र०, ८.७.४७)

: २०४ :

श्रीनिवास शास्त्री

मेरे लिए वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री सदृश सच्चे आदमी बहुत कम है, पर उनके आचरणोसे मुझे विस्मय होता है। उनका विश्वास है कि मैं भारतवर्षको अधकार-पूर्ण गढेमे लिए चला जा रहा हू, पर इससे मेरे प्रति उनका अनुराग कम नही हो गया होगा। मुझे पूर्ण आशा है कि इस असहयोग आदोलनने हजारो व्यक्तियोको यह बात सुझा दी होगी कि हम लोग व्यक्ति-विशेषकी अप्रतिष्ठा और अनादर न करके भी उसके आचरण, कार्यवाही और कार्यप्रणालीकी आलोचना और विरोध कर

सकते हैं। मनुष्य सदा अपूर्ण होता है, इससे हमें दूसरोंकी ओर सदा नर्म रहना चाहिए और जहांतक हो एकाएक किसी तरहका दोषारोपण नहीं करना चाहिए (य० इं०, २५ ४ २१)

... ...

दक्षिण अफ्रीका निवासी भारतीयोंको यह सुनकर बड़ी तसल्ली होगी कि माननीय शास्त्रीने पहला भारतीय राजदूत बनकर अफ्रीकामें रहना स्वीकार कर लिया है, बशर्ते कि सरकार वह स्थान ग्रहण करनेके प्रस्तावको आखिरी बार उनके सामने रखे। भारत सेवक-समिति और शास्त्रीजीने यह बड़ा ही त्याग किया है, जो वे इस निर्णयपर पहुंचे हैं। यह तो एक प्रकट रहस्य है कि यदि यह प्रस्ताव नहीं किया जाता तो वे भारतमें अपना काम छोड़कर उस जिम्मेदारीको अपने सिरपर लेनेके जरा भी इच्छुक नहीं थे। परन्तु जब उनसे साग्रह यह अनुरोध किया गया कि वे ही एक ऐसे आदमी हैं, जो इस समझौतेके अनुसार कार्य शुरू कर सकते हैं, जिसके स्वीकृत करानेमें उनका बहुत भारी हाथ रहा है, तो उन्हें इस प्रार्थना और आग्रहको मंजूर करना ही पड़ा। दक्षिण अफ्रीकासे समय-समयपर जो तार भेजे गये थे उनसे हमें पता चलता है कि वहांके अंग्रेज भी इस बातके लिए कितने उत्सुक थे कि शास्त्रीजी ही इस सम्माननीय पदको ग्रहण करें। शास्त्रीजीकी वक्तृत्व-शक्ति, निस्पृहता, मधुर विवेकशीलता और असीम सचाईने यूनियन सरकार और वहांके यूरोपीय लोगोंके हृदयमें उनके लिए चाह और आदर उत्पन्न कर दिया, जब वे हबीबुल्ला शिष्ट मंडलके साथ कुछ दिनके लिए दक्षिण अफ्रीका गये थे। मैं खुद जानता हूं कि हमारे दक्षिण अफ्रीका-निवासी भाई इस बातके लिए कैसे असीम चिंतातुर थे कि किस प्रकार शास्त्रीजी ही, वहां भारतके पहले राजदूत बनकर जायं। और श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्रीजीके लिए भी तो जिन्हें परमात्माने ऐसे उदार हृदयसे भूषित किया है, ऐसे सर्वसम्मत अनुरोधको अस्वीकार करना असंभव था। अब यह प्रायः निश्चित है कि शीघ्र ही

उनकी बाकायदा नियुक्ति होकर, उसकी खबर प्रकाशित कर दी जायगी।

इन पहले राजदूतका काम भी उनके लिए निश्चित कर दिया जायगा। नि.सदेह; यूनियन सरकार और हमारे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय भाई भी भारतके इस पहले राजदूतसे बडी-बडी आशाए तो करते ही होगे। चूकि शास्त्रीजी स्वय भारतीय और एक विख्यात पुरुष है, नि सदेह यूनियन सरकार जरूर यह सोचती होगी कि जहा तक भारतीयोसे सबध है, उन्हें समझा-बुझाकर शास्त्रीजी सरकारके प्रस्तावो आदिका काम सरल कर देगे। दूसरे शब्दोमे यो कहिए कि यूनियन सरकार उनसे आशा करती है कि शास्त्रीजी उसकी बातोको भारतीय समाज तथा भारत सरकारके सामने सहानुभूति-पूर्वक रक्खेंगे। इधर भारतीय समाज भी आशा करता है कि शास्त्रीजी इस बातका जरूर आग्रह करेंगे कि समझौतेका सम्मानयुक्त, बल्कि उदारता-पूर्वक पालन हो। दो प्रतिस्पर्धी उम्मीदवारोको सतुष्ट करना यो कठिन तो है ही, पर दक्षिण अफ्रीकामें, जहा कि जातियो और दलोके स्वार्थोमे आश्चर्यजनक पारस्परिक विरोध है, यह काम कही अधिक मुश्किल है। किंतु मैं जानता हू कि अगर इस सूक्ष्म तराजूको अपने हाथमें कोई उटा सकता है और दक्षिण अफ्रीकासे सबध रखनेवाले सभी दलोको सतुष्ट कर सकता है तो अकेले शास्त्रीजी ही एक ऐसे आदमी है। मेरा खयाल है कि यूनियन सरकारके मत्री यह तो अपेक्षा नही रखते होगे कि भारतीय समाजको उसके न्याय्य स्वत्वोको दिलानेमें शास्त्रीजी एक इच भर भी पीछे हट जाय। हा, अधिक-से-अधिक शास्त्रीजी यह कर सकते है कि वे भारतीयोको १९१४ के समझौतेका उल्लघन करके आगे बढनेसे रोके, कम-से-कम तबतक तो जरूर रोकें, जबतक कि वहाके भारतीय अनुकरणीय आत्मसयम और अपने अन्य व्यवहार द्वारा १९१४ में प्राप्त किए समझौतेसे आगे बढनेकी अपनी पात्रताको सिद्ध नही कर देते। अत यदि हमारे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय

भाई इस भारतके प्रतिनिधिके कामको सरल और अपनी परिस्थितिको सुरक्षित कर लेना चाहे तो वे उनसे बडे-बडे चमत्कारोकी आशाए करना छोड दे। उनका यह अनुमान गलत होगा कि "चूकि हम अभी एक सम्मान-नीय समझौता करा चुके है और उसपर अमल करानेके लिए भारतका एक महान पुरुष हमारे यहा आ रहा है, इसलिए अब तो हमारी परिस्थिति-मे एकदम कायापलट हो जायगा।" उन्हे याद रखना चाहिए कि मान-नीय शास्त्रीजी वहा उनके वकील बनकर, उनके प्रत्येक व्यक्तिगत शिका-यतके लिए लड़नेको नही जा रहे है। उनको मामूली व्यक्तिगत शिकायतें सुना-सुनाकर परेशान करना उस सोनेके अडे देनेवाले पक्षीकी हत्या करने-के समान है। वे तो वहा भारतीय सम्मानके रक्षक बन कर जा रहे है। सर्वसाधारण भारतीय समाजके स्वत्व और स्वाधीनताकी रक्षाके लिए वे वहा जा रहे है। शास्त्रीजी वहा यह देखनेके लिए जा रहे हैं कि यूनियन सरकार कही कोई नवीन रुकावटी कानून न बनाने पाए। अलावा इसके वे देखेंगे कि वर्तमान कानूनोका पालन उदारता-पूर्वक तो हो रहा है। उनके पालनमें भारतीयोके स्वत्वोको कोई हानि तो नही हो रही है, आदि। अतः यदि उनसे कोई व्यक्तिगत शिकायत की भी जाय तो वह किसी व्यापक सर्वसाधारण नियमका उदाहरण-स्वरूप हो। इसलिए यदि व्यक्तिगत मामलोमें शास्त्रीजीकी सहायता मागनेमें दक्षिण अफ्रीकाका भारतीय समाज दूरदर्शी सयमसे काम न लेगा तो वह उनकी परिस्थितिको असह्य और उस महान् उद्देश्यके लिए उन्हें असमर्थ बना देगा जिसके लिए वे वहा विशेष रूपसे भेजे गये है। और सचमुच एक राजदूतकी उपयोगिता केवल यही समाप्त नही हो जाती कि वह केवल सरकारी पदसे सबध रखनेवाले अपने कर्तव्यका पालन भर कर ले, बल्कि उसकी वह अप्रत्यक्ष सेवा कही अधिक उपयोगी है जो सरकारी तथा गैरसरकारी कामोको लेकर उससे मिलने-जुलनेवाले लोगोपर उसके मिलनसार स्वभाव और सच्चरित्रके प्रभाव द्वारा होती है। अत यदि हमारे देशभाई शास्त्री-

जीकी दिमागी और हृदयके महान् गुणोका उपयोग करना चाहे तो वे मेरी बताई उपर्युक्त मर्यादाओका जरूर खयाल रक्खे।

मै समझता हू कि यदि श्री शास्त्रीजी जावेगे तो श्रीमती शास्त्री भी उनके साथ दक्षिण अफ्रीका जावेगी। दक्षिण अफ्रीकामे रहनेवाले भारतीयोके लिए यह बडे ही लाभकी बात है। भारतीय बहनें प्रेमसे श्रीमती शास्त्रीको वहा घेर ले। उन्हे वे समाज-सेवाका एक अमूल्य साधन पावेंगी, क्योकि दक्षिण अफ्रीकामे फैली हुई हजारो बहनोका जीवन ऊचा उठानेमें वे बहुत सहायक होगी। (हि० न०, २८ ४ २७)

* * *

इस सप्ताहमे मिले एक पत्रमे एक सज्जनने क्लर्कस्ड्रोपकी प्रसिद्ध घटना का, जिसके बारेमे दक्षिण अफ्रीकाके अखबारोके पन्ने-के-पन्ने भरे रहते हैं, आखो देखा सच्चा वर्णन किया है। यूनियन सरकारके नि सकोच पूरी और स्पष्ट माफी माग लेनेसे यद्यपि इस घटनापर राजनैतिक दृष्टिसे अब कुछ भी कहना बाकी नही रह जाता है और न कुछ कहनेकी जरूरत ही है तो भी इस षडयत्रके सामने जिसका कि परिणाम श्रीशास्त्रीके लिए प्राणातक भी हो सकता था, उन्होंने जो उदारता और हिम्मतका व्यवहार किया है उसकी प्रशसा कितनी ही क्यो न की जाय वह कम ही होगी। मेरे सामने जो पत्र है उससे मालूम होता है कि जिस सभामें वे व्याख्यान दे रहे थे, उसको तोड देनेके लिए डेप्युटिमेयरके नेतृत्वमें जो दल आया था उसने बत्तिया बुझा दी, फिर भी वह भारतमाताका सच्चा सपूत और प्रतिनिधि अपने स्थानपर यत्किचित भी घबडाए बिना डटा रहा, जरा भी न हटा और जब भडाका होनेके कारण सभाके हालमे श्रोताओको सास लेना भी मुश्किल हो गया तब वे बाहर गए और वहा, जैसे कोई बात ही नही हुई हो, इस घटनाके प्रति इशारा तक न करते हुए उन्होने अपना व्याख्यान पूरा किया। यो तो इस घटनाके पहले ही दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोमें वे प्रिय हो गये थे, परतु शास्त्रीजीके इस धीर हिम्मतभरे

और उदार आचरणने वहाके यूरोपियनोके विचारमें उन्हें और भी अधिक गौरवान्वित कर दिया है। और क्योकि उन्हें अपने लिए यश नही चाहिए था (शास्त्री जैसे अधिक कीर्त्तिसे लजानेवाले मनुष्य कदाचित ही मिल सकेंगे) उन्होने जिस कामके वे प्रतिनिधि थे, उसके लाभमें अपनी लोकप्रियताका वडी योग्यता और सफलता-पूर्वक उपयोग किया। दक्षिण अफ्रीकामे उनके वहुत ही थोडे समयके निवासमे उन्होने अपने देश-वासियोका गौरव बहुत वढा दिया है। हम यह आशा करें कि वहाके भारतीय अपने आदर्श व्यवहारसे अपनेको उस गौरवके योग्य प्रमाणित करेगे।

परतु दक्षिण अफ्रीकाके मुश्किल और नाजुक प्रश्नको हल करनेमें उनके कार्यका महत्व केवल इसी पर, जो एक घटना-मात्र है, निर्भर नही है। हम उनके दफ्तरकी भीतरी कार्रवाईके विषयमें, सिवा उनके परिणामोके कुछ नही जानते। पर इसमे उन्हें उस सारी राजनीतिकला-का उपयोग करना पडता था जो अपने पक्षके सत्य होनेके विश्वाससे प्राप्त होती है तथा जो झूठ, कपट तथा नीचताको कभी वरदाश्त नही कर सकती। परतु हम यह जरूर जानते है कि सस्कृत और अग्रेजीकी अपार विद्वत्ता और जुदा-जुदा विपयोका ज्ञान, वाक्यपटुता इत्यादि कुदरतसे प्रचुरता-मे मिली हुई वरिशशोको अपने कार्यके लिए उपयोग करनेमें, उन्होने कोई कसर नही की है। चुनदा यूरोपियनोके वडे श्रोतृ-समूहके आगे वे भारतीय तत्त्वज्ञान और सस्कृतिपर व्याख्यान देते थे, जिससे उनके दिलोपर वडा असर होता था और उस पक्षपातके परदेको, जिसके कारण यूरोपियनोका वडा समूह अवतक भारतीयोमें कोई गुण ही नही देख सकता था, उन्होने पतला कर दिया है। दक्षिण अफ्रीकामे भारतीयोके प्रश्न मे, ये व्याख्यान ही शायद उनका सबसे वडा और अधिक स्थायी हिस्सा है।

शास्त्रीजीकी जगहके लिए योग्य व्यक्ति चुनना भारत सरकारके

लिए एक बडा गभीर प्रश्न होना चाहिए। दक्षिण अफ्रीकामे और भी अधिक ठहरनेके लिए उनपर जितना भी दवाव डाला गया उन्होने उसे स्वीकार नही किया है। दक्षिण अफ्रीकासे आये पत्रोसे मालूम होता है कि वहाके भारतीय श्री शास्त्रीके आनेकी तैयारीके कारण कितने चिंतित हैं। श्रीशास्त्रीने जिस कार्यको सफलता-पूर्वक आरभ किया है और जिसके वे प्रतिनिधि रहे है उसको जारी रखनेके लिए यदि कोई लायक व्यक्ति न मिला तो यह बडे ही दुःखकी वात होगी। मुझे आशा है कि दक्षिण अफ्रीकामे भारतके एजेन्टके पदको सरकार और प्रजाकीय दल, दोनोहीके लिए खुला रखनेका अब वायसरायके आफिसमे रिवाज पड गया है। यह आशा की जाती है कि इसके लिए जो कोई भी चुना जाय वह सरकार और प्रजा दोनोको समान रूपसे मान्य होगा और जो केवल भारत सरकारका ही नही, किंतु भारतके लोगोका भी प्रतिनिधि होगा। (हि० न०, १८.१०.२८)

... . ..

श्री श्रीनिवास शास्त्री भारतके एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान हैं। शिक्षकके रूपमें उनकी तभीसे ख्याति रही है, जवकि इनमेंसे वहुतेरे विद्यार्थी या तो पैदा ही नही हुए थे या अपनी किशोरावस्थामें ही थे। उनकी महान् विद्वत्ता और उनके चरित्रकी श्रेष्ठता दोनो ही ऐसी चीजें है, जिनके कारण ससारकी कोई भी यूनीवर्सिटी उन्हे अपना वाइस चासलर वनानेमे गौरव ही अनुभव करेगी। ('विद्यार्थियोसे')

.. . ..

मौतने न सिर्फ हमारे बीचसे, वल्कि समूची दुनियाके वीचसे भारत-माताके एक वडे-से-वडे सपूतको उठा लिया है। उनके परिचयमें आने-वाला हर कोई देख सकता था कि वे हिंदुस्तानको वहुत ही प्यार करते थे। पिछले दिनो जव मैं उनसे मद्रासमे मिला था, उन्होने सिवा हिंदुस्तान और उसकी सस्कृतिके, जिनके लिए वे जीए और मरे, दूसरी किसी वातकी

चर्चा ही नहीं की। जब वे मृत्युशय्यापर पड़े दीखते थे, तब भी मुझे विश्वास है कि उनको अपनी कोई चिंता नहीं थी। उनका संस्कृत-ज्ञान अंग्रेजीके उनके अगाध ज्ञानसे ज्यादा नहीं तो कम भी न था। मुझे एक ही बात और कहनी है और वह यह कि अगरचे राजनीतिमें हमारे खयाल एक-दूसरेसे मिलते नहीं थे, तो भी हमारे दिल एक ही थे और मैं यह कभी सोच नहीं सकता कि उनकी देशभक्ति हमारे किसी बड़े-से-बड़े देशभक्तसे कम थी। शास्त्रीजी जिंदा हैं, यद्यपि उनका नामधारी शरीर भस्म हो चुका है।
(ह० से०, २१.४.४६)

: २०५ :

खुशालशाह

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन राष्ट्रीय ऋणके संबंधमें जाँच करनेके लिए कांग्रेस महासमितिने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्त्तमान अवसरपर एक अत्यंत महत्त्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभाका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे बिना न रहेगा। श्री बहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशालशाह और श्री कुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके सादर अभिनंदनके अधिकारी हैं। 'यंगइंडिया'के विदेशी पाठक जानते हैं कि श्री बहादुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनों ही एक बार एडवोकेट-जनरल थे। खुशालशाह भारत प्रख्यात अर्थशास्त्री हैं, कितनी ही बहुमूल्य पुस्तकोंके लेखक हैं और बहुत वर्ष तक (आज अभी तक) बंबई यूनीवर्सिटीके अर्थशास्त्रके अध्यापक थे। ये तीनों सज्जन सदैव काममें घिरे रहते हैं, इसलिए राष्ट्रीय महासभाके सौंपे हुए इस उत्तरदायि-

त्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नही था। रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैंने इस लिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोका लिखा हुआ लेख नही, वरन् जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले हैं, और जो धाधलीबाज उपदेशक नही, वरन् स्वय जिस विषयके ज्ञाता है, उसीपर लिखने वाले और अपने शब्दोको तौल-तौलकर व्यवहारमें लानेवालोकी यह कृति है। (हि० न०, ६ ८.३१)

: २०६ :

पीर महबूबशाह

पीर महबूबशाह गिरफ्तार हो गए। वे बडे ही बहादुर आदमी थे। मुझे उनके दोष तथा निर्दोषिताके बारेमें कुछ नही कहना है। पर जो अभियोग उनपर चलाया गया था यदि वह ठीक है तो वह स्वीकार करना पडेगा कि उनकी भाषामे उत्तेजना फैलाने और शाति भग करनेके भाव थे और इस अवस्थामें उन्हे जो दड दिया गया है अर्थात् दो वर्षके लिए साधारण कारावास, बहुत ही हलका है। यदि अपराध साबित हो गया तो कोई भी दडसे बच नही सकता, चाहे वह कितना ही बडा आदमी क्यो न हो और चाहे वह कितना ही बडा सरकारी पदाधिकारी क्यो न हो। जिस बातके लिए मै उनकी प्रशसा करने बैठा हू वह उनकी वीरता, धीरता और उदासीनता है। उन्होने वीरता तथा धीरताके साथ अपने मुकदमेकी पैरवी करने तथा सफाई देनेसे इन्कार कर दिया और उदासीनताके साथ कानून-नियुक्त अदालतके निर्णयको स्वीकार करना तय किया। इससे मुझे विदित होता है कि उन्हे इस असहयोग सग्रामका तत्व मिल गया है। उनके अनु-

थायियोंने उनकी इस दडाज्ञाको जिस प्रकार सहन किया है उससे भी अतिशय सतोष होता है।

बादको समाचार मिला कि पीरसाहबने माफी माग ली और वे रिहा कर दिये गए। इससे तो हमारी प्रत्यक्ष दुर्बलता प्रकट होती है। दासताकी कमजोर हवामे पालित तथा पोषित होनेके कारण कभी-कभी हम लोगोमेंसे बडे लोग भी साधारण झझावातसे काप उठते है और उसके सामने सिर झुका देते है। हम लोगोने पश्चिमी सभ्यताका अनुकरण अवश्य किया, पर उसके अन्तर्गत जो शिक्षा लेनी पडती है उसके अभ्यस्त न होकर हमने अपनी अवस्था इतनी खराब कर डाली है कि सादी सजाकी साधारण कठिनाइया भी हमसे नही झेली जाती। पर पीर महबूबशाहकी माफीसे हमें हताश नहीं होना चाहिए। मान लीजिए कि एक आदमी कई घोडोपर असबाब लादे चला जा रहा है। मार्गमें एक घोडा थक गया। तो क्या अन्य घोडोका यह कर्तव्य नही है कि वे अपने साथीके भारको आपसमे बाट लें? इसी तरह हमे थोडा और प्रयास करके यह बोझ अपने ऊपर ले लेना चाहिए। हम लोग मनुष्य है, समझदार जीव है, यह समझ लिया जा सकता है कि जब हमारा एक साथी फिसल पडता है तो उसका बोझ सभालनेके लिए हमें कितना प्रयास करना चाहिए। (य० इ०, १२.६.२०)

: २०७ :

जनरल शाहनवाज

जनरल शाहनवाज आज आए थे। विहारसे मेरे चले जानेपर भी वे वहापर काम करते है। वेतन नही लेते। फिर भी बाकायदा

पन्द्रह दिनकी छुट्टी लेकर घर जा रहे हैं। उन्होंने बताया कि बिहारमें जो मुसलमान लौटकर नही आते थे और जिन्हें हिंदू पहले डराते थे वे भी अब लौट आये हैं, क्योंकि समझानेपर हिंदू अपना धर्म समझ गए और उन्होंने मुसलमानोंके स्वागतके लिए लगातार दो दिनतक परिश्रम करके उनका रास्ता साफ किया और जो झोपड़िया ढह गई थी उनके बनानेमें भी योग दिया। दूसरे देहातोंमें भी ऐसा ही अच्छा काम हुआ है। (प्रा० प्र०, ५.५.४७)

: २०८ :

राजकुमार शुक्ल

राजकुमार शुक्ल नामके एक किसान चपारनमें रहते थे। उनपर नीलकी खेतीके सिलसिलेमें बड़ी बुरी बीती थी। वह दुःख उन्हें खल रहा था और उसीके फलस्वरूप सबके लिए इस नीलके दागको धो डालनेका उत्साह उनमें पैदा हुआ था।

जब मैं कांग्रेसमें लखनऊ गया था तब इस किसानने मेरा पल्ला पकड़ा।

"वकीलबाबू, आपको सब हाल बताएंगे।"

कहते हुए चपारन चलनेका निमंत्रण मुझे देते जाते थे।

यह वकीलबाबू और कोई नही, मेरे चपारनके प्रिय साथी, बिहारके सेवा-जीवनके प्राण, बृजकिशोरबाबू ही थे। उन्हें राजकुमार शुक्ल मेरे डेरेमें लाए। वह काले अलपकेका अचकन, पतलून वगैरा पहने हुए थे। मेरे दिलपर उनकी कोई अच्छी छाप नही पड़ी। मैंने समझा कि ये इस भोले किसानको लूटनेवाले कोई वकील होंगे।

मैंने उनसे चपारनकी थोडी-सी कथा सुन ली और अपने रिवाजके मुताविक जवाव दिया, "जवतक मैं खुद जाकर सव हाल न देख लू तव-तक मैं कोई राय नही दे सकता। आप काग्रेसमे इस विषयपर बोलें, किंतु मुझे तो अभी छोड ही दीजिए।" राजकुमार शुक्ल तो चाहते थे कि काग्रेसकी मदद मिले। चपारनके विषयमें काग्रेसमे वृजकिशोरवावू वोले और सहानुभूतिका एक प्रस्ताव पास हुआ।

राजकुमार शुक्लको इससे खुशी हुई, परतु इतने ही से उन्हें सतोष न हुआ। वह तो खुद चपारनके किसानोके दुख दिखाना चाहते थे। मैंने कहा, "मैं अपने भ्रमणमे चपारनको भी ले लूगा और एक-दो दिन वहाके लिए दे दूगा।" उन्होने कहा—"एक दिन काफी होगा, अपनी नजरोसे देखिए तो सही।"

लखनऊसे मैं कानपुर गया था। वहा भी देखा तो राजकुमार शुक्ल मौजूद।

"यहांसे चंपारन वहुत नजदीक है। एक दिन दे दीजिए।"

"अभी तो मुझे माफ कीजिए, पर मैं यह वचन देता हू कि मैं आऊगा जरूर।" यह कहकर वहा जानेके लिए मैं और भी वध गया।

मैं आश्रममें पहुचा तो वहा भी राजकुमार शुक्ल मेरे पीछे-पीछे मौजूद।

"अव तो दिन मुकर्रर कर दीजिए।"

मैंने कहा—"अच्छा, अमुक तारीखको मुझे कलकत्ते जाना है, वहा आकर मुझे ले जाना।" कहा जाना, क्या करना, क्या देखना, मुझे इसका कुछ पता न था। कलकत्तेमें भूपेनवावूके यहा मेरे पहुचनेके पहले ही राजकुमार शुक्लका पडाव पड चुका था। अव तो इस अपढ-अनघढ परतु निश्चयी किसानने मुझे जीत लिया।

१९१७ के आरभमें कलकत्तेसे हम दोनो रवाना हुए। हम दोनोकी एक-सी जोड़ी—दोनो किसान-से दीखते थे। राजकुमार शुक्ल और मैं—हम दोनो एक ही गाडीमे वैठे। सुवह पटना उतरे।

पटनेकी यह मेरी पहली यात्रा थी। वहा मेरी किसीसे इतनी पहचान नही थी कि कही ठहर सकू।

मैंने मनमें सोचा था कि राजकुमार शुक्ल है तो अनपढ किसान, परतु यहा उनका कुछ-न-कुछ जरिया जरूर होगा। ट्रेनमें उनका मुझे अधिक हाल मालूम हुआ। पटनेमें जाकर उनकी कलई खुल गई। राजकुमार शुक्लका भाव तो निर्दोष था, परतु जिन वकीलोको उन्होने मित्र माना था वे मित्र न थे, बल्कि राजकुमार शुक्ल उनके आश्रितकी तरह थे। इस किसान मवक्किल और उन वकीलोके बीच उतना ही अंतर था, जितना कि बरसातमे गगाजीका पाट चौडा हो जाता है।

मुझे वह राजेंद्रबाबूके यहा ले गये। राजेद्रबाबू पुरी या और कही गये थे। बगलेपर एक-दो नौकर थे। खानेके लिए कुछ तो मेरे साथ था, परतु मुझे खजूरकी जरूरत थी, सो बेचारे राजकुमार शुक्लने बाजारसे ला दी।

परतु बिहारमे छुआछूतका बडा सख्त रिवाज था। मेरे डोलके पानीके छींटेसे नौकरको छूत लगती थी। नौकर बेचारा क्या जानता कि मैं किस जातिका था? अदरके पाखानेका उपयोग करनेके लिए राजकुमारने कहा तो नौकरने बाहरके पाखानेकी तरफ उगली उठाई। मेरे लिए इसमे असमजसकी या रोषकी कोई बात न थी, क्योकि ऐसे अनुभवोसे मै पक्का हो गया था। नौकर तो बेचारा अपने धर्मका पालन कर रहा था और राजेद्रबाबूके प्रति अपना फर्ज अदा करता था। इन मजेदार अनुभवोसे राजकुमार शुक्लके प्रति जहा एक ओर मेरा मान बढा, तहा उनके सबधमें मेरा ज्ञान भी बढा। अब पटनासे लगाम मैंने अपने हाथमे ले ली। (आ० क०)

: २०९ :

स्टोक्स

मिस्टर स्टोक्स ईसाई है। वह परमात्माके प्रकाशके सहारे चलना चाहते हैं। उन्होंने भारतवर्षको अपना घर बना लिया है। उन्होंने कोटागिरिमें अपना निवासस्थान बनाया है और एकातमें रहकर पहाडी जातियोंके उद्धारमे ही वे अपनी सारी शक्ति लगा रहे हैं। वहीसे निरपेक्ष होकर वे असहयोगकी गति भी देख रहे हैं। उन्होंने कलकत्ताके 'सर्वेन्ट' तथा अन्य पत्रोंमें असहयोगपर तीन लेख लिखे है। जिस समय मैं बगालमें दौरा कर रहा था मैंने इन लेखोंको पढा था। मिस्टर स्टोक्स असहयोग आदोलनके पक्षमे है, पर पूर्ण स्वाधीनताके परिणामको सोचकर वे डर जाते हैं अर्थात् उन्हें इस बातकी आशका है कि यदि अग्रेज भारतको एकदम छोटकर चले जायगे तो यहा अनेक तरहके उपद्रव उठ खडे होंगे। उन्हें भय लगता है कि तुरत ही विदेशियोंके आक्रमण होने लगेंगे, जैसे उत्तर पश्चिमसे अफगान और पहाडी गुर्खे भारतपर एक साथ ही टूट पडेंगे। पर कार्डिनल न्यूमनके शब्दोंमे मैं उस भविष्यकी बातकी चिंता नहीं करता। (य० इ०, २९ १२ २०)

: २१० :

जनरल स्मट्स

मैंने जनरल स्मट्सको इस आशयका पत्र लिखा कि उनका नवीन वक्तव्य सुलहका भग करता है। अपने पत्रमें मैंने उनके उस भाषणकी

ओर भी उनका ध्यान आकर्षित किया, जो सुलहके बाद एक सप्ताहके अदर ही उन्होंने दिया था। उस भाषणमे उन्होने ये शब्द कहे थे· "ये लोग (एशियावासी) मुझे एशियाटिक कानून रद करनेके लिए कह रहे है। जबतक ऐच्छिक परवाने वे नही ले लेते तबतक उस कानूनको रद करनेसे मैंने इन्कार किया है।" अधिकारी लोग प्राय ऐसी बातोंका जवाब नही देते जो उन्हे उलझनमें डालती है। अगर देते भी है तो गोल-मोल। जनरल स्मट्स इस कलामे सिद्धहस्त है। उन्हें आप चाहे जितना लिखें, उनके विरुद्ध चाहे जितने भाषण करें, पर यदि वे उत्तर देना नही चाहेंगे तो उत्तरमे उनके मुहसे एक शब्द भी निकलवाना असभव है। सभ्यताका यह सामान्य नियम उनके लिए बधनकारक नही हो सकता था कि प्राप्त पत्रोंका उत्तर देना ही चाहिए। इसलिए अपने पत्रके उत्तरमें मुझे किसी प्रकारका सतोष प्राप्त नही हो सका।

अल्बर्ट कार्ट राईट हमारे मध्यस्थ थे। मै उनसे मिला। वह स्तब्ध हो गए और मुझसे कहने लगे, "सचमुच मैं इस आदमीको समझा ही नहीं सकता। एशियाटिक कानूनको रद करनेवाली बात मुझे बिल्कुल ठीक-ठीक तरहसे याद है। मुझसे जो बन पडेगा मैं जरूर करूगा। पर आप जानते है कि जहा यह आदमी किसी एक बातको पकड लेता है तहा फिर दूसरेकी नही चलती। अखबारोके लेखोकी तो वह जरा भी परवाह नही करता। इसलिए मुझे पूरा डर है कि मेरी सहायताका आपको कोई उप-योग न होगा।" हास्किन वगैरासे भी मै मिला। उन्होने जनरल स्मट्स-को एक पत्र लिखा। उन्हे भी बडा ही असतोषकारक उत्तर मिला। मैंने 'इडियन ओपीनियन'में भी 'विश्वासघात' शीर्षक कई लेख लिखे; पर जनरल स्मट्स क्यो इन बातोकी परवाह करते? तत्त्ववेत्ता अथवा निष्ठुर मनुष्यके लिए आप चाहे जितने कडुवे विशेषणोका प्रयोग करें, उनपर कोई असर न होगा। वे तो अपना निश्चित काम करनेमें मस्त रहते है। मैं नही जानता कि जनरल स्मट्सके लिए इन दो विशेषणोमेंसे

किस विशेषणका उपयोग ठीक हो सकता है। यह तो मुझे जरूर कबूल करना होगा कि उनकी वृत्तिमें एक तरहकी 'फिलासफी'—सिद्धात-निष्ठा है। मुझे याद है कि जिस समय हमारा पत्र-व्यवहार जारी था, अखबारोमें लेख लिखे जा रहे थे, तब तो मैं उन्हें निष्ठुर ही समझता था। पर अभी तो यह युद्धका पूर्वार्ध—केवल दूसरा वर्ष था। युद्ध तो आठ वर्ष तक जारी रहा। इस बीचमें मैं उनसे कई बार मिला। बादकी हमारी बातोसे मेरा यह खयाल कुछ बदल गया और मैंने महसूस किया कि जनरल स्मट्सकी धूर्तताके विषयमें दक्षिण अफ्रीकामें बनी हुई सामान्य धारणामें कुछ परिवर्तन होना जरूरी है। दो बातें मैं पूरी तरह समझ गया। एक तो यह कि उन्होने अपनी राजनीतिके विषयमें एक मार्ग निश्चित कर लिया है और वह केवल अनीतिमय तो हरगिज नही। पर साथ ही मैंने यह भी देख लिया कि उनके राजनीति-शास्त्रमें चालाकीके लिए और मौका पडनेपर सत्याभासके लिए भी स्थान है।[1] (द० अ० स०, १९२५)

• • •

उसके बाद जनरल स्मट्सका उदाहरण लीजिए। वह अकेला जनरल नही है। उसका पेशा तो वकालतका है। वकीलोमें अटर्नी जनरल होनेके साथ ही वह कुशल किसान भी था। प्रिटोरियाके पास उसकी बहुत बडी जमीदारी है। वहा जैसे फलके वृक्ष है, वैसे आसपासके प्रदेशोमें कही नही पाए जाते। ये सब ऐसे लोगोके उदाहरण है, जो ससारके विख्यात सेनानायक थे और साथही जो रचनात्मक कार्यके महत्वको जानते थे। ('विजयी बारडोली' पृष्ठ ३९०)

---

[1]यह छपते हुए हम यह जान गए कि जनरल स्मट्सकी सरदारीका भी अत हो सकता है।—मो० क० गाधी

: २११ :

सापुरजी सकलातवाला

'वधु' सकलातवालाकी आतुरताका पार नही। उनकी वातोमें सच्चाई झलकती है। उनके त्याग वहुत वडे है। गरीवोके लिए उनके प्रेमका लोहा सभी मानते हैं। इसलिए मेरे नाम उनकी खुली भावुक अपीलपर मैंने उतनी ही गभीरतासे विचार किया है, जितनी ऐसे सच्चे देशभक्त और विश्वप्रेमीके पत्रके लिए चाहिए। अगर मुझे सच्चाईके जवावमें सच्चाईका व्यवहार करना है, या अपने धर्मका सच्चा वने रहना है तो 'हा' कहनेकी मेरी लाख इच्छा रहनेपर भी मुझे 'नही' ही कहना होगा। मगर मै अपने खास ढगपर उनकी अपीलके जवावमे 'हा' कह सकता हू। उनकी शर्त्तोपर मै उनसे सहयोग करु—इसकी उनकी अतिशय वलवती इच्छाके नीचे यह वडी शर्त्त मानी हुई है ही कि मै 'हा' तो तभी कहू जव उनकी दलीलसे मेरे दिल और दिमागको सतोप हो जाय। सच्चे विश्वासके कारण 'नही' कहना, उस 'हा' से लाख दर्जे अच्छा और वडा है, जो किसीको महज खुश करनेके लिए या जो उससे भी वुरी वात है, चितासे वचनेके लिए कहा जाय।

उनके साथ हार्दिक सहयोग करनेकी पूरी इच्छा होते हुए भी मै अपना रास्ता वद देखता हू। उनकी वास्तविकताए कपोल-कल्पित है और उनके आधारपर निकाले गये नतीजे जरूर ही निराधार है। जहा कही वे वास्तविकताए सच है, मेरी सारी शक्ति उनके जहरीले असर (मेरे प्रति) को ही दूर करनेमें लग जाती है। मुझे इसका खेद है। मगर हम जरूर दुनियाके दो छोरोपर है। मगर खैर, एक वडी चीज हम दोनोमें समान है। दोनोका ही कहना है कि देश और विश्वका भला ही हमारे एकमात्र उद्देश्य हैं। इसलिए इस समय हम लोग उलटी दिशाओमें

जाते हुए भले ही मालूम पड़ते हो, मगर मेरी आशा है कि एक दिन हम मिलेंगे जरूर। मैं वचन देता हू कि अपनी भूल समझते ही मैं काफी क्षति-पूर्ति करूगा। इस बीचमें मेरी भूल ही, चूकि मैं उसे भूल नही मानता, मेरा अवलब और तसल्ली होगी। (हि० न०, १७.३.२०)

: २१२ :

सत्यपाल

डॉ० सत्यपालने सार्वजनिक जीवनसे हटनेके लिए नाहक ही मेरा उल्लेख किया है। अगर अतरात्माकी प्रेरणासे उन्होंने सार्वजनिक जीवनसे हटनेका निश्चय किया है तब तो उनका निर्णय ठीक है; लेकिन अगर लाला दुनीचदको लिखे हुए मेरे निर्दोषपत्र के कारण ऐसा किया है तो उन्होंने बहुत बडी गलती की है। अव्वल तो वह पोस्टकार्ड पजाबके उस सारे वातावरणके सबधमें था, जिसके फलस्वरूप न केवल इस या उस व्यक्तिके बल्कि खुद मेरे खिलाफ अविश्वासकी भावना पैदा हुई है। कोई आलोचक चाहे तो इसे कायरता कह सकता है, लेकिन यह चाहे कायरता हो या आत्मविश्वासका अभाव हो, पर जबतक मुझमें यह चीज मौजूद है तबतक मैं मध्यस्थताके लिए बेकार हू। इसलिए डॉ० सत्यपाल-की प्रेरणासे जब सरदार मगलसिह और लुधियानाके दूसरे मित्र वर्धा आये तो मैंने उनसे कहा कि मैं तो इस कामके लिए बेकार हू, लेकिन राष्ट्रपतिकी हैसियतसे राजेंद्रबाबू पजाब जानेके लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं। उन्होंने यह मजूर भी कर लिया है कि स्वास्थ्य ठीक रहा और दूसरे काम-काज आड़े न आए तो जल्दी-से-जल्दी वह वहा जायगे। लेकिन मैंने तो इन मित्रोको सुझाया है कि अपने-आप अपनी मदद करनेके बराबर कोई मदद नही

है। अत उन्हे अपनी खुदकी मेहनतसे ही अपने घरको व्यवस्थित करना चाहिए। डॉ० सत्यपाल अगर अपनी अतरात्माकी प्रेरणासे सार्व-जनिक जीवनसे नही हटे है तो बहुत देरतक वह अपनेको उससे बाहर नही रख सकेगे। खुद उनकी प्रकृति ही इस कृत्रिम आत्मसयमके विरुद्ध विद्रोह करेगी। इसलिए मै इससे अच्छा एक तरीका सुझाता हू। वह यह कि वह दलबदीसे अलग हो जाय। पुराने झगडे-टटोको भूल जाय और पजावमे सच्ची एकता पैदा करनेके काममें जुट पडें। यह कैसे किया जा सकता है, यह मै नही कह सकता। मेरे पास ऐसी कोई सामग्री भी नहीं है जो इसके लिए कोई कार्यक्रम बना सकू। अत खुद उन्हीको यह सोचना चाहिए। मै तो सिर्फ यही कह सकता हू कि अगर वह सचमुच चाहते है तो ऐसा कर सकते है। यह तो हरएक जानता है कि पजावमें उनके अनु-यायी है, वह एक अदम्य कार्यकर्त्ता है और उन्होने काफी कुर्बानी की है, इसलिए पजावके काग्रेसियोमें अगर कोई एकता पैदा कर सकता है, तो निश्चय ही वह डॉ० सत्यपाल है। लेकिन चाहे वह हो या कोई और, जो कोई ऐसा करे उसे अपनेको भूलकर अपने या अपने दलके हितसे जनता-के हितको तरजीह देनी चाहिए, क्योकि वही वास्तवमे काग्रेसका भी हित है। मेरी हिचकिचाहटके पीछे मेरी जो यह तीव्र भावना है उसपर भी ध्यान रखना जरूरी है कि पजाबके काग्रेसियोको मनमे कोई गाठ रक्खे बगैर आपसमे हिलमिल जाना चाहिए और एक होकर काम करना चाहिए। (ह० से०, १९ ८.३९)

: २१२ :

तोताराम सनाढ्य

वयोवृद्ध तोतारामजी किसीकी सेवा लिए बगैर गए। वे साबरमती आश्रमके भूषण थे। वे विद्वान् नही थे। मगर ज्ञानी थे, भजनोके भंडार होते हुए भी वे गायनाचार्य न थे। वे अपने इकतारेसे और भजनोंसे आश्रमके लोगोंको मुग्ध कर देते थे। जैसे वे थे, वैसी ही उनकी पत्नी थी। वह तो तोतारामजीसे पहले ही चली गई।

जहा बहुतसे आदमी एक साथ रहते हो, वहा कई प्रकारके झगडे होते ही है। मुझे ऐसा एक भी प्रसग याद नही है कि जब तोतारामजी या उनकी पत्नीने उनमें भाग लिया हो, या किसी झगडेके कभी कारण बने हो। तोतारामजीको धरती प्यारी थी, खेती उनका प्राण थी। आश्रममें वर्षो पहले वे आये और उसे कभी नहीं छोडा। छोटे-बडे, स्त्री-पुरुष उनकी रहनुमाईके भूखे रहते और उनके पाससे अचूक आश्वासन पाते।

वे पक्के हिंदू थे। मगर उनके मनमें हिंदू, मुसलमान और दूसरे सब धर्म बराबर थे। उनमे छुआछूतकी गंध न थी। किसी किस्मका व्यसन न था।

राजनीति में उन्होंने भाग नही लिया था, फिर भी उनका देश-प्रेम इतना उज्ज्वल था कि वह किसीके भी मुकाबले खडा रह सकता था। त्याग उनमे स्वाभाविक था। उसे वे सुशोभित करते थे।

ये सज्जन फिजी द्वीपमे गिरमिटिए मजदूरकी तरह गए थे। और दीनबंधु ऐन्ड्रूज उन्हें ढूढ लाए थे। उन्हें आश्रममें लानेका यश श्री बनारसीदास चतुर्वेदीको है।

उनकी अंतिम घडी तक उनकी जो कुछ सेवा हो सकती थी, वह भाई

गुलाम रसूल कुरैशीकी पत्नी और इमाम साहबकी लडकी अमीना बहनने की थी ।

परोपकाय सता विभूतय (सज्जन पुरुष परोपकारके लिए ही जीते हैं) यह उक्ति तोतारामजीके बारेमें अक्षर-अक्षर सच थी । (ह० से०, १८.१.४८)

: २१४ :

तेजबहादुर सप्रू

आज सप्रूकी राय आई । उन्हें वैधानिक प्रश्नके सामने इस सवालका महत्व तुच्छ लगता है । इस निर्णयके देनेमें उन्हें साफ नीयत और ईमानदारीकी कोशिश दिखाई देती है । बापूने जरा सी आलोचना की :

सप्रूका काम मुजेसे उलटा है । जातीय माग पूरी हो जाय तो मुजेको विधानकी परवाह नही, सप्रूको विधान मिल जाय तो कुछ भी हो जाय उसकी परवाह नही । (म० डा०, १९ ८ ३२)

• •

आज सुबह फिर निर्णयपर बातें हुईं । जयकर, सप्रू और चिंतामणिकी रायोपर चर्चा हुई । बापू कहने लगे :

यह आशा रख सकते है कि जयकर सप्रूसे यहा अलग हो जायगे ।

वल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नहीं है ।

बापू : आशा इस लिए रख सकते है कि विलायतमे भी इस मामलेमे इनके विचार अलग ही रहे थे । वैसे तो क्या पता ?

वल्लभभाई—चिंतामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढ़ाई ।

बापू : क्योकि चिंतामणि हिंदुस्तानी है, जब कि सप्रूका मानस यूरोपियन

है ! चिंतामणि समझते हैं कि इस निर्णयमें ही बहुत कुछ विधान आ जाता है। सप्रू यह मानते हैं कि विधान मिल गया तो फिर इन बातोकी चिंता ही नही। (म० डा०, २१ ८ ३२)

: २१५ :

सम्पूर्णानन्द

श्री जयप्रकाशनारायण और श्री सपूर्णानदजीने साफ शब्दोमें कह दिया है कि हम २६ जनवरी को ली जानेवाली प्रतिज्ञामें जो भाग जोडा गया है उसके खिलाफ है। मुझे उनका बडा लिहाज है। वे योग्य है, वीर है और उन्होने देशके खातिर कष्ट उठाए है। लडाईमें वे मेरे साथी बन सकें तो इसे मै अपना सौभाग्य समझू। मै उन्हें अपने विचारका बना सकू तो मुझे कितनी खुशी हो। लडाई आनी ही है और मुझे उसका नायक बनना है तो यह काम मै ऐसे सहायकोके भरोसे नही कर सकता जिनका कि कार्यक्रमपर अधूरा विश्वास हो या जिनके दिलमें उसके बारेमें शकाए हो। (ह० से०, २० १.४०)

: २१६ :

साकरबाई

महासभा-सप्ताहमें मुझे बबईके श्रीगोविंदजी वसनजी मिठाईवाला की माताके पत्र मिले थे, पर उसी समय मै उनका उपयोग 'नवजीवन'में

न कर सका। श्रीगोविंदजीपर ववईकी अदालतमें एक फौजदारी मुकदमा चल रहा है। उसकी वाते ववईके अखवारोमे आगई है। उनकी चर्चा मैं यहा नही करना चाहता। इस मुकदमेमे श्रीगोविंदजीकी माता श्रीमती साकरबाईकी जो वीरता दिखाई देती है उसीकी तरफ मै, पाठकोका ध्यान दिलाना चाहता हू। साकरवाई वडी हिम्मतके साथ पुलिसके पास गई। अदालतमे भी अपने वेटेके पास कैदियोके कटरेके सामने खडी रही, जिससे अपने वेटेके चित्तमे किसी तरहकी कमजोरी न आने पावे। श्री गोविंदजी का लालन-पालन वडे ऐशोआराममे हुआ है। ववईके दगेके समय उन्हे जो चोटे आई थी वे तो अभी ठीक ही नही हुई है। उन्हे जेलकी यातनाए सहनेका कभी अवसर नही हुआ। मित्र लोग उनको जमानतपर छुडवाने-का प्रयत्न करते है। यह कहकर कि यह मुकदमा तो निजी है, राजनैतिक नही, सफाई पेश करनेकी प्रेरणा करते है। इन सव भयोसे वचानेके लिए तथा सत्यकी रक्षाके लिए साकरवाई अपने वेटेके पिंजडेके सामने खडी रही। अपनी उपस्थितिसे मानो उसको सुरक्षित कर दिया। साकरवाई-की हिम्मत तो देखिए, उन्होने स्वय ही श्री गोविंदजीको जमानतपर छुडानेसे मना कर दिया। वे वहन जानती थी कि असहयोगकी प्रतिज्ञा करनेवाला मनुष्य अदालतमे अपनी सफाई दे ही नही सकता, फिर मुकदमा चाहे खानगी हो चाहे सार्वजनिक, सच्चा हो या बनावटी। सो उन्होने इस प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिए अदालतमे जानेका साहस किया।

(हि० न०, ८ १.२२)

: २१७ :

सांडर्स

'स्टेट्समैन' और 'इग्लिशमैन' दोनो दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नका महत्त्व समझते थे। उन्होने मेरी लबी-जबी बातचीत छापी, 'इग्लिशमैन' के मि० साडर्सने मुझे अपनाया। उनका दफ्तर मेरे लिए खुला था, उनका अखबार मेरे लिए खुला था। अपने अग्रलेखमें कमी-वेशी करनेकी भी छूट उन्होने मुझे दे दी। यह भी कहू तो अत्युक्ति नही कि उनका-मेरा खासा स्नेह हो गया। उन्होने भरसक मदद देनेका वचन दिया। मुझसे कहा कि दक्षिण अफ्रीका जानेके बाद भी मुझे पत्र लिखिएगा और वचन दिया कि मुझसे जो-कुछ हो सकेगा करूगा। मैंने देखा कि उन्होने अपना यह वचन अक्षरश: पाला और जबतक उनकी तबीयत खराब न हो गई, उन्होने मेरे साथ चिट्ठी-पत्री जारी रखी। मेरी जिंदगीमें ऐसे अकल्पित मीठे सबध अनेक हुए है। मि० साडर्सको मेरे अदर जो सबसे अच्छी बात लगी वह थी अत्युक्तिका अभाव और सत्यपरायणता। उन्होने मुझसे जिरह करनेमें कोई कसर न रखी थी उसमें उन्होने अनुभव किया कि दक्षिण अफ्रीकाके गोरोके पक्षको निष्पक्ष होकर पेश करनेमे तथा उनकी तुलना करनेमे मैंने कोई कमी नही रखी थी। (आ० क०)

: २१८ :

वी० डी० सावरकर

गाधीजीने बतलाया कि लोकमान्यकी यह जन्मभूमि सारे भारतवर्षके लिए तीर्थ-भूमि है। यह भी याद दिलाया कि श्री सावरकर भी

यहीं रहते हैं और सावरकरके साथ अपने परिचय, इंग्लैंडमें उनके साथ वार्तालापकी बात की, उनके स्वार्थ-त्याग और देशसेवाका उल्लेख करके बतलाया कि उनके साथ जबर्दस्त मतभेद होते हुए भी मित्रता तो पहले ही जैसी बनी हुई है।

"मतभेद चाहे जितना हो, तो भी प्रेमभाव तो चलता रहना चाहिए। अगर ऐसा न हो तो मुझे मेरी पत्नीका भी दुश्मन बनना चाहिए। इस दुनियामें ऐसे दो व्यक्तियोंको मैं नही जानता जिनमें मतभेद कतईन हो। गीताका समदृष्टिका उपदेश माननेवाला होकर मैंने तो अपनी जिंदगीमें ऐसा प्रयत्न किया है कि जिसके साथ मतभेद हो, उसके साथ भी उतना स्नेह रखना जितना अपने माता, पिता, भाई-बहन, या पत्नीके साथ ।"

सभामें जानेसे पहले गांधीजीने, काले पानीसे तपश्चर्या करके लौटे हुए भाई सावरकरके घर जाकर उनसे भेंट कर ली थी। पांच-दस मिनटमें बहुत बात क्या हो सकती थी ? गांधीजीको यहां पर इसका पता चला कि अस्पृश्यता और शुद्धिके संबंधमें उनके विचारोंको उल्टा स्वरूप दिया जाता है। पर और अधिक चर्चाके लिए उन्होने सावरकरसे पत्र-व्यवहार करनेका आग्रह किया :

आप जानते है कि सत्यके प्रेमीके तौरपर, सत्यके लिए मरणपर्यंत लडनेवालेके तौरपर, मेरे मनमें आपका कितना आदर है। आखिर हम दोनोका ध्येय तो एक ही है। इसलिए आप जिस-जिस विषयमें मेरे साथ चर्चा करना चाहे उस विषयमें खूब पत्र-व्यवहार चलाइए और अगर आपकी इच्छा हो तो शुद्धि, खादी वगैरहके विषयमें खुलासा कर लेनेके लिए मैं दो-तीन दिन निकालकर आपके साथ रत्नागिरिमें रहनेको तैयार हूं।"

श्री सावरकरने कहा, "आप जैसे मुक्तको मैं बंदी बनाना नहीं

चाहता।" पत्र लिखनेकी सलाह उन्होंने खुशीसे स्वीकार कर ली।
(हिं० न०, १७.३.२७)

: २१६ :

अप्टन सिंक्लेयर

आजकल तो The Wet Parade (दि वेट परेड) पढ रहे हैं और बड़ी दिलचस्पीके साथ। सिक्लेयरके बारेमें कहा ·

यह आदमी तो अद्‌भुत सेवा कर रहा दीखता है। समाजकी एक-एक गदगीको लेकर बैठा है और उनका खुले आम भडाफोड करता है। (म० डा०, १२ ३ ३२)

•

अमरीकाके लेखकोंके बारेमे गजाजीको कुछ भ्रम हो गया है। हार्डीका साहित्य मैंने पढा नही है। ज्रोलाका भी नही पढा है। इसका मुझे हमेशा दु ख रहा है। मगर सिक्लेयरका बिलकुल तिरस्कार नही किया जा सकता। प्रचारकी दृष्टिसे लिखे हुए उपन्यासोमें प्रचारका ही दोप मानकर उन्हें हरगिज हलका नही बनाया जा सकता। प्रचारकके लिए तो उसकी सारी कला उसीमें भर दी जाती है। अपने खयालको वह छिपाता नही। और फिर भी कहानीमें रसको आच नही आने देता। Uncle Tom's Cabin (टामकाकाकी कुटिया) साफ तौरपर प्रचारके लिए लिखी गई चीज है। मगर उसकी कलाकी बराबरी कौन कर सकता है? सिक्लेयर एक जबरदस्त सुधारक है और सुधारके प्रचारके लिए उसने अलग-अलग उपन्यास लिखे है और यह कहा

जाता है कि सब रससे भरे हैं। समय मिला तो मैं उन्हें पढ़ूगा। (म० डा०, २९ ६.३२)

: २२० :

सिंह

भारतवर्षके इस सम्मानित सेवकके सम्मानमे औरोकी अजलियोके साथ-साथ मैं भी अपनी श्रद्धाजलि अर्पण करता हू। जब कभी भारत-वर्षके सेवकोकी सेवाओका मूल्य आका जायगा, लार्ड सिंहकी सेवाए बहुमूल्य गिनी जायगी। सभी राजनैतिक बातोमें उनकी सलाह पूछी जाती थी। उसकी कीमत भी बडी समझी जाती थी। लार्ड सिंहकी मौतसे देश गरीब ही हुआ है। (हि० न०, ८ ३ २८)

: २२१ :

श्रीकृष्ण सिन्हा

मुसलमानोको वहा (बिहारमे) डरनेका क्या कारण है? दो अच्छे मुसलमान-सेवक उनकी सेवा कर रहे है। फिर वहाके मत्रि-मडल मे श्रीकृष्ण सिन्हा हैं, जो पूरे सजग है। (प्रा० प्र०, २८ ५.४७)

: २२२ :

सिमंडज

मुझे इतना तो जरूर ही कह देना चाहिए कि विलायतमें हमने एक क्षण भी बेकाम नहीं जाने दिया। बहुतसे गश्ती-पत्र वगैरा भेजना तथा इसी प्रकारके अन्य सब काम एक आदमीसे कभी नहीं बन सकते। उसमें बड़ी मददकी जरूरत होती है। बहुत-सी सहायता तो ऐसी है जो पैसे खर्च करनेपर मिल सकती है, पर मेरा ४० साल का अनुभव यह है कि यह इतनी गहरी और फलशील नहीं होती जैसी कि शुद्ध स्वयंसेवकोंकी होती है। सौभाग्यवश हमें वहां ऐसी ही सहायता मिली थी। बहुतसे भारतीय नौजवान जो वहां अध्ययन कर रहे थे वे हमारे आसपास बने रहते और उनमें से कितने ही बिना किसी प्रकारके लोभके सुबह-शाम हमें हमेशा सहायता करते रहते। पते लिखना, नकलें करना, टिकिट चिपकाना या डाकघरमें जाना, आदि। किसी भी कामके लिए मुझे यह याद नहीं आता कि उन्होंने यह कहा हो कि यह काम हमारे दर्जेको शोभा नहीं देता, इसलिए हम नहीं कर सकते। पर इन सबको एक तरफ बैठा देनेवाला और मदद करनेवाला एक अंग्रेज मित्र दक्षिण अफ्रीकामें था। वह भारतमें रह चुका था। इसका नाम था सिमंडज। अंग्रेजीमें एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि जिन्हें परमात्मा चाहता है उन्हें वह जल्दी उठा लेता है। भरजवानीमें इस परदुःखभंजन अंग्रेजको यमदूत ले गये। 'परदुःखभंजन' विशेषण किसी खास उद्देश्य से ही लगाया गया है। यह भला भाई जब बंबईमें था तब, अर्थात् १८९७में, प्लेगके भारतीय बीमारोंके बीच बेधड़क होकर उसने काम किया था और उनकी उसने सहायता की थी। छूतके रोगके रोगियोंकी सहायता करते समय मृत्युसे जरा भी न डरना यह भाव तो मानो उसके खूनमें भर दिया गया था।

जाति अथवा रगद्वेष उसे छू तक न गया था। उसका स्वभाव बडा ही स्वतत्र था। उसने अपना एक सिद्धात बना रखा था कि माइनॉरिटी अर्थात् अल्पसख्यकोके साथ ही हमेशा सत्य रहता है। इसी सिद्धातके अनुरूप वह जोहासबर्गमें मेरी ओर आकर्षित हुआ। वह कई बार विनोदमें कहता कि याद रखिए आपका पक्ष बडा हुआ नही कि मैने इसे छोडा नही, क्योकि मै यह माननेवाला हू कि बहुमतके हाथमे सत्य भी असत्यका रूप धारण कर लेता है। उसने बहुत कुछ पढा था। जोहासबर्गके एक करोडपति सर जॉर्ज फेररका वह खास विश्वस्त मत्री था। शोर्टहैड लिखनेमें बाका था। विलायतमे हम पहुचे, तब वह अनायास कहीसे आ मिला। मुझे तो उसके घरबारकी कोई खबर नही थी। पर हम तो जनताके सेवक अर्थात् अखबारोकी चर्चाके विषय ठहरे। इसलिए उस भले अग्रेजने हमें फौरन ढूढ लिया और जो कुछ सहायता हो सकती थी वह करनेकी तैयारी बताई। उसने कहा, "अगर चपरासीका काम भी कहोगे तो जरूर करूगा। पर यदि शोर्टहैडकी आवश्यकता हो तो आप जानते ही है कि मेरे जैसा कुशल लेखक आपको कभी नही मिल सकता।" हमे तो दोनो सहायताओ-की आवश्यकता थी। और इस अग्रेजने रात-दिन एक भी पैसा न लेते हुए हमारा काम कर दिया, 'यह कहते हुए मै लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नही कर रहा हू। रातके बारह-बारह और एक-एक बजे तक तो वह हमेशा टाइप-रायटरपर ही डटा रहता। समाचार पहुचाना, डाकखाने जाना यह सब सिमडज करता और सब हँसते-हँसते। मुझे याद है कि इसकी मासिक आय लगभग ४५ पौड थी। पर यह सब वह अपने मित्रो वगैराकी सहायतामें लगा देता। उसकी उम्र उस समय करीब ३० सालकी होगी। पर अबतक अविवाहित ही था और आजीवन वैसे ही रहना भी चाहता था। मैने इसे कुछ तो लेनेके लिए बहुत आग्रह किया; पर उसने साफ इन्कार कर दिया। वह कहता, "यदि मै इस सेवाके लिए मजदूरी लू तो अपने धर्मसे भ्रष्ट हो जाऊ।" मुझे याद है कि आखिरी रातको हमें

अपना काम समेटते, असबाब बाधते सुबहके तीन बज गए थे। पर तबतक भी वह जागता ही रहा। हमें दूसरे दिन स्टीमरपर बैठाकर ही वह हमसे जुदा हुआ। वह वियोग बडा दु खदाई था। मैंने तो यह कई बार अनुभव किया है कि 'परोपकार' केवल गेहुए रगके लोगोकी ही विरासत नही है। (द० अ० स०)

: २२३ :

सुखदेव

'अनेकोंमेंसे एक' का लिखा हुआ पत्र स्वर्गीय सुखदेवका पत्र है। श्री सुखदेव भगतसिंहके साथी थे। यह पत्र उनकी मृत्युके बाद मुझे दिया गया था। समयाभावके कारण मैं इसे जल्दी ही प्रकाशित न कर सका।

लेखक 'अनेकोंमेंसे एक' नही है। राजनैतिक स्वतत्रताके लिए फासी-को गले लगानेवाले अनेक नही होते। राजनैतिक खून चाहे जितने निंद्य हों तो भी जिस देश-प्रेम और साहसके कारण ऐसे भयानक काम किए जाते हैं, उनकी कद्र किए बिना रहा नही जा सकता। और हम आशा रखें कि राजनैतिक खूनियोका सप्रदाय बढ नही रहा है। यदि भारत-वर्षका प्रयोग सफल हुआ, और होना ही चाहिए, तो राजनैतिक खूनियोका पेशा सदाके लिए बद हो जायगा। मैं स्वय तो इसी श्रद्धासे काम कर रहा हू। (हि० न०, ३० ४.३१)

: २२४ :

उमर सुभानी

श्री उमर सुभानीजीकी वडी अचानक और अकाल मृत्यु हो गई। हमारे बीचसे एक महान देशभक्त और कार्यकर्ता उठ गया। एक समय बवईमें श्री उमर सुभानीकी तूती बोलती थी। बवईका कोई सार्वजनिक कार्य, उमर सुभानीके दिन बिगड़नेसे पहले ऐसा न होता था जिसमें उनका हाथ न हो। फिर भी वह कभी सामने मचपर नही आते थे। मचको तैयार कर देते थे। बवईके सौदागरोमें वे बहुत प्रिय थे। उनकी सूझ प्राय: बहुत तीक्ष्ण और बेलाग होती थी। उनकी उदारता दोषकी हद तक पहुच जाती थी। पात्र-कुपात्र सब हीको वह दान दिया करते थे। प्रत्येक सार्वजनिक कार्यके लिए उनकी थैलीका मुह खुला रहता था। जैसा उन्होने कमाया वैसा ही खर्च भी किया। उमर सुभानी हर कामकी हद कर देते थे। उन्होने आढतके काममें भी हद कर दी और इसीसे उनपर तबाही आ गई। एक महीनेमे ही उन्होने अपनी आमदनीको दुगुना कर लिया और दूसरेही महीनेमे दिवाला पीट लिया। परतु उन्होने अपनी हानिको तो बहादुरीसे सह लिया, परतु उनके अभिमानने उन्हे सार्वजनिक कार्योसे हटा लिया, क्योकि अब उनपर इन कामोमे लाखो रुपया खर्च करनेको नही था। वह माध्यमिक रास्तेपर चलना जानते ही नही थे। यदि चदेकी फेहरिस्तमे सबसे पहले वह नही रह सकते तो बस फिर वह उस फेहरिस्त-की तरफ मुह मोडकर भी न देखेंगे। इसलिए गरीब होते ही वह सार्व-जनिक कार्योसे हाथ खीचकर बैठ गए। जहा कही और जब भी कोई सार्वजनिक कार्य होगा उमर सुभानीका नाम बिला याद आये न रहेगा और न उनकी देशकी सेवा ही कोई भूल सकता है। उनका जीवन हर अमीर नौजवानके लिए आदर्श और चेतावनी दोनो है। उनका जोश-

सारा देशभक्तिपूर्ण कार्य आदर्श योग्य है। उनका जीवन हमे बताता है कि रुपया रखकर भी एक मनुष्य काबिल हो सकता है और उस रुपएको सार्व-जनिक कार्योंकी भेंट कर सकता है। उनका जीवन अमीर नौजवानोको, जो बडे-बडे काम करनेकी धुनमे रहते है, चेतावनी भी देता है।

उमर सुभानी कोई निर्बुद्ध सौदागर नही था। जिस समय उनको हानि हुई उस समय और भी बहुतसे सौदागरोको हानि हुई थी। उन्होने जो बहुत-सी रुई भर ली थी उसको हम मूर्खता नही कह सकते। वह बम्बईके सौदागरोमे अच्छा स्थान रखते थे, फिर भी उन्होने इस प्रकार और लाभके ध्यानसे रुपया क्यो लगाया? परन्तु वह तो देशभक्तकी हैसि-यतसे हौसला बढ़ाए रखना अपना कर्तव्य समझते थे। उनका जीवन और नाम जनताकी जागीर था और उन्हे बहुत सोच-समझकर काम करना चाहिए था। मै समझता हू कि काम बिगड जानेके बाद सब लोग आत्मदर्शीकी बातें बताया करते है, परन्तु मै उनके दोष ढूढनेके अभिप्रायसे कुछ नही कह रहा हू। मै तो चाहता हू कि हम सब इस देशभक्तके जीवन-से शिक्षा ले। आनेवाली सन्तानको किसी कामके बिगड जानेसे शिक्षा लेनी ही चाहिए। दूसरोकी गलतियोसे भी हमे कुछ सीखना ही चाहिए। हम सबको उमर सुभानीकी तरह अपने हृदयमे देशप्रेम रखना चाहिए। हम सबको दान देनेमे उमर सुभानी होना चाहिए। हम सबको उमर सुभानीकी तरह धार्मिक द्वेषसे दूर रहना चाहिए। परन्तु हम सबको उमर सुभानीकी तरह लापरवाह और असावधान होनेसे बचना चाहिए। यही इस देशभक्तने हम सबके लिए वसीयत छोडी है और हम सबको उस वसीयतसे लाभ उठाना चाहिए।

मेरी उनके वृद्ध पिता और उनके परिवारके साथ अत्यन्त सहानुभूति है और मै उनके साथ उनके शोकमे सम्मिलित हू। (हि० न०, १५-७-२६)

: २२५ :

हसन शहीद सुहरावर्दी

यहापर मै कैसे भूल सकता हू कि शहीदसाहबने कलकत्तेमे बडा काम किया। अगर वह नही करते तो मै ठहरनेवाला नही था। शहीदसाहबके लिए हम लोगोके दिलमें बहुत सदेह थे। अभी भी है। उससे हमको क्या? आज हम सीखें कि कोई भी इन्सान हो, कैसा भी हो, उससे हमको दोस्ताना तौरसे काम करना है। हम किसीके साथ किसी हालतमे दुश्मनी नही करेंगे, दोस्ती ही करेगे। शहीदसाहब और दूसरे चार करोड मुसलमान पडे है। वे सब-के-सब फरिश्ते तो है ही नही। ऐसे ही सब हिंदू और सिख भी फरिश्ते थोडे ही है। अच्छे और बुरे हममें है, लेकिन बुरे कम है। (प्रा० प्र०, १८.१.४८)

: २२६ :

अब्दुल्ला सेठ

नेटालका बदर यो तो डरबन कहलाता है, पर नेटालको भी बदर कहते है। मुझे बदरपर लिवाने अब्दुल्ला सेठ आए थे। जहाज धक्केपर आया। नेटालके जो लोग जहाजपर अपने मित्रोको लेने आए थे, उनके रग-ढगको देखकर मै समझ गया कि यहा हिंदुस्तानियोका विशेष आदर नही। अब्दुल्ला सेठकी जान-पहचानके लोग उनके साथ जैसा बरताव करते थे उसमे एक प्रकारकी क्षुद्रता दिखाई देती थी, और वह मुझे चुभ रही थी। अब्दुल्ला सेठ इस दुर्दशाके आदी हो गए थे। मुझपर जिनकी

दृष्टि पडती जाती वे मुझे कुतूहलसे देखते थे, क्योंकि मेरा लिवास ऐसा था कि मैं दूसरे भारतवासियोंसे कुछ निराला मालूम होता था। उस समय फ्रॉक कोट आदि पहने था और सिरपर बगाली ढगकी पगडी दिए था।

मुझे घर लिवा ले गए। वहा अब्दुल्ला सेठके कमरेके पासका कमरा मुझे दिया गया। अभी वह मुझे नही समझ पाए थे, मैं भी उन्हें नही समझ पाया था। उनके भाईकी दी हुई चिट्ठी उन्होंने पढी और बेचारे पसोपेशमें पड गए। उन्होंने तो समझ लिया कि भाईने तो यह सफेद हाथी घर बधवा दिया। मेरा साहबी ठाट-बाट उन्हे बडा खर्चीला मालूम हुआ, क्योंकि मेरे लिए उस समय उनके यहा कोई खास काम तो था नहीं। मामला उनका चल रहा था ट्रासवालमे। सो तुरत ही वहा भेजकर वह क्या करते ? फिर यह भी एक सवाल था कि मेरी योग्यता और ईमानदारीका विश्वास भी किस हदतक किया जाय ? और प्रिटोरियामें खुद मेरे साथ वह रह नहीं सकते थे। मुद्दालेह प्रिटोरियामें रहते थे। कहीं उनका बुरा असर मुझपर होने लगे तो ? और यदि वह मामले-का काम मुझे न दे तो और काम तो उनके कर्मचारी मुझसे भी अच्छा कर सकते थे। फिर कर्मचारीसे यदि भूल हो जाय तो कुछ कह-सुन भी सकते थे। मुझसे तो कहनेसे रहे। काम या तो कारकुनोंका था या मुकदमेका —तीसरा था नहीं। ऐसी हालतमें यदि मुकदमेका काम मुझे नहीं सौंपते हैं तो घर बैठे मेरा खर्च उठाना पडता था।

अब्दुल्ला सेठ पढे-लिखे बहुत कम थे। अक्षर-ज्ञान कम था, पर अनुभव-ज्ञान बहुत बडा था। उनकी बुद्धि तेज थी और वह खुद भी इस बातको जानते थे। अभ्याससे अंग्रेजी इतनी जान ली कि बोलचालका काम चला लेते। परन्तु इतनी अंग्रेजीके बलपर वह अपना सारा काम चला लेते थे। बैंकमे मैनेजरोंसे बातें कर लेते, यूरोपियन व्यापारियों से सौदा कर लेते, वकीलोंको अपना मामला समझा देते। हिंदुस्तानियोंमे उनका

काफी मान था। उनकी पेढी उस समय हिंदुस्तानियोमे सबसे बड़ी नही तो, बडी पेढियोमें अवश्य थी। उनका स्वभाव वहमी था।

वह इस्लामका बडा अभिमान रखते थे। तत्त्वज्ञानकी बातोके शौकीन थे। अरबी नही जानते थे, फिर भी कुरान-शरीफ तथा आम तौरपर इस्लामी-धर्म-साहित्यकी वाकफियत उन्हे अच्छी थी। दृष्टात तो जबानपर हाजिर रहते थे। उनके सहवाससे मुझे इस्लामका अच्छा व्यावहारिक ज्ञान हुआ। जब हम एक-दूसरेको जान-पहचान गए तब वह मेरे साथ बहुत धर्म-चर्चा किया करते।

दूसरे या तीसरे दिन मुझे डरबन अदालत दिखाने ले गये। वहा कितने ही लोगोसे परिचय कराया। अदालतमें अपने वकीलके पास मुझे बिठाया। मजिस्ट्रेट मेरे मुहकी ओर देखता रहा। उसने कहा—"अपनी पगड़ी उतार लो।"

मैंने इन्कार किया और अदालतसे बाहर चला आया।

मेरे नसीबमें तो यहा भी लडाई लिखी थी।

पगडी उतरवानेका रहस्य मुझे अब्दुल्ला सेठने समझाया। मुसलमानी लिबास पहननेवाला अपनी मुसलमानी पगडी यहा पहन सकता है। दूसरे भारतवासियोको अदालतमें जाते हुए अपनी पगडी उतार लेनी चाहिए।

....पगडी उतार देनेका अर्थ था मान-भग सहन करना। सो मैंने तो यह तरकीब सोची कि हिंदुस्तानी पगडीको उतारकर अग्रेजी टोप पहना करू, जिससे उसे उतारनेमें मान-भगका भी सवाल न रह जाय और मैं इस झगडेसे भी बच जाऊ।

पर अब्दुल्ला सेठको यह तरकीब पसद न आई। उन्होने कहा—

"यदि आप इस समय ऐसा परिवर्तन करेंगे तो उसका उलटा अर्थ होगा। जो लोग देशी पगड़ी पहने रहना चाहते होगे उनकी स्थिति विषम हो जायगी। फिर आपके सिरपर अपने ही देशकी पगड़ी

शोभा देती है। आप यदि अंग्रेजी टोपी लगावेंगे तो लोग 'वेटर' समझेंगे।"

इन वचनोमें दुनियवी समझदारी थी, देशाभिमान था और कुछ संकुचितता भी थी। समझदारी तो स्पष्ट ही है। देशाभिमानके विना पगडी पहननेका आग्रह नही हो सकता था। संकुचितताके विना 'वेटर' की उपमा न सूझती। गिरमिटिया भारतीयोमे हिंदू, मुसलमान और ईसाई तीन विभाग थे। जो गिरमिटिया ईसाई हो गए, उनकी संतति ईसाई थी। १८९३ ई०में भी उनकी संख्या वडी थी। वे सव अंग्रेजी लिवासमें रहते। उनका अच्छा हिस्सा होटलमें नौकरी करके जीविका उपार्जन करता। इसी समुदायको लक्ष्य करके अंग्रेजी टोपीपर अब्दुल्ला सेठने यह टीका की थी। उसके अंदर वह भाव था कि होटलमें 'वेटर' वनकर रहना हलका काम है। आज भी यह विश्वास वहुतोंके मनमें कायम है।

कुल मिलाकर अब्दुल्ला सेठकी वात मुझे अच्छी मालूम हुई। मैंने पगड़ीवाली घटनापर पगडीका तथा अपने पक्षका समर्थन अखवारोंमें किया। अखवारोंमें इसपर खूब चर्चा चली। 'अनवेलकम विजिटर'—अनचाहा अतिथि—के नामसे मेरा नाम अखवारोंमें आया और तीन ही चार दिनके अंदर अनायास ही दक्षिण अफ्रीकामें मेरी ख्याति हो गई। किसीने मेरा पक्ष-समर्थन किया, किसीने मेरी गुस्ताखीकी भरपेट निंदा की।

मेरी पगडी तो लगभग अंततक कायम रही। वह कव उतरी, यह वात हमें अंतिम भागमें मालूम होगी। (आ० क० १९२७)

: २२७ :

विलियम विल्सन हंटर

दक्षिण अफ्रीकाके सवालके महत्वको भारतीयोसे भी पहले समझने-वाले और वैसी ही कीमती सहायता करनेवाले सज्जन सर विलियम विल्सन हटर थे। वे 'टाइम्स'के भारतीय विभागके सपादक थे। इनके पास ज्योही पहला पत्र पहुचा त्योही उन्होने उसमें दक्षिण अफ्रीकाकी स्थितिको यथार्थ स्वरूपमे जनताके सामने रख दिया। जहा-जहा उचित मालूम हुआ वहा-वहा उन्होने खानगी पत्र भी लिखे। अगर कोई महत्वपूर्ण प्रश्न छिड जाता तो इनकी डाक बराबर नियमसे हर सप्ताह आती। अपने पहले ही पत्रमे उन्होने लिखा था—"आपने वहाकी स्थितिका जो हाल लिखा है उसे पढकर मै दुखित हू। आप अपना काम निसन्देह विनय-पूर्वक, शातिके साथ और सयमसे ले रहे है। इस प्रश्नमे मै पूरी तरहसे आपके साथ हू और न्याय प्राप्त करनेके लिए मुझसे जो कुछ बन पडेगा सब करना चाहता हू। मुझे तो निश्चय है कि इस विषयमे हम एक इचभर भी पीछे पैर नहीं रख सकते। आपकी माग तो ऐसी है कि कोई भी निष्पक्ष मनुष्य उसमें तिलमात्र रद्दो-बदल नही कर सकता।" करीब-करीब यही शब्द उन्होने 'टाइम्स' के अपने पहले लेखमे लिखे थे और आखिर तक उसी बातपर कायम रहे। लेडी हटरने अपने एक पत्रमे लिखा था कि जब उनकी मृत्युका समय आया तब उन दिनोमे भी उन्होने भारतीयोके प्रश्नपर एक लेखमाला लिखनेके लिए एक ढाचा तैयार कर रखा था। (द० अ० स०)

: २२८ :

हरबत सिंह

कुछ दिन तो वाक्सरेस्टकी जेलमें हमने सुख-पूर्वक विताए। यहा हमेशा नए कैदी आते रहते थे, इसलिए नित्य नई खबरें भी मिलती रहती थीं। इन सत्याग्रही कैदियोंमें हरबतसिंह नामका एक बूढा था। उसकी अवस्था ७५ वर्षसे भी अधिक होगी। वह कही खानोमें नौकरी नही करता था। उसने तो बरसो पहले अपना गिरमिट पूरा कर दिया था। इसलिए वह हडतालिया नही था। मेरे गिरफ्तार हो जानेपर लोगोमें जोश खूब बढ गया था और वे नेटालसे ट्रान्सवालमे प्रवेश कर अपनेको गिरफ्तार करा दिया करते थे। हरबतसिंहने भी इनके साथ-साथ ट्रान्सवाल जानेका निश्चय किया।

एक दिन हरबतसिंहसे मैंने पूछा, "आप क्यो जेलमे आए? आप जैसे बूढोको मैंने जेलमे आनेका निमत्रण नही दिया है।"

हरबतसिंहने उत्तर दिया :

"मै कैसे रह सकता था, जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके लड़के तक हम लोगोके लिए जेल चले गए?"

"लेकिन आप जेलके दु खोको वर्दाश्त नही कर सकेंगे। आप जेल छोडकर चले जावें। क्या मैं आपके छूटनेके लिए कोशिश करू?"

"मैं जेल हरगिज नहीं छोडूंगा। मुझे एक दिन मरना तो हई है। फिर ऐसा दिन कहा, जो मेरी मौत यहीं हो जाय!"

इस दृढताको मैं कैसे विचलित कर सकता था? वह तो इतनी विकट थी कि विचलित करनेपर भी डिग नही सकती थी। हरबतसिंह की जो भावना थी, ठीक वही हुआ। उसने जेल ही मे अपनेको मृत्युके हाथोमें सौंप दिया। उसका शव वॉक्सरेस्टसे डरबन मगवाया गया था। सम्मान-

पूर्वक सैकडो भारतीयोकी उपस्थितिमें हरवतसिहका अग्नि-सस्कार किया गया। पर इस युद्धमे ऐसे एक नही, अनेको हरवतसिह थे। हा, जेलमें मरनेका सौभाग्य जरूर अकेले हरवतसिहको ही प्राप्त हुआ और इसी लिए दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमे उसका नाम उल्लेखनीय भी हो गया। (द० अ० स० १९२५)

: २२९ :

एमिली हाबहाउस

मिस हावहाउस लार्ड हावहाउसकी पुत्री है। वोअर युद्ध शुरू हुआ तव यह महिला लार्ड मिल्नरके सामनेसे होकर ट्रान्सवाल पहुची थी। जब लार्ड किचनरने अपनी जगत्प्रसिद्ध कासेन्ट्रेशन कैप ट्रान्सवाल और फ्रीस्टेटमें बैठाई उस समय यह महिला अकेली वोअर औरतोमें घूमती और उन्हे दृढ रहने, धीरज रखनेके लिए उपदेश करती और उत्साह देती। वह स्वय मानती थी कि इस युद्धमे अग्रेजोकी ओर न्याय नही है, इसलिए स्वर्गीय स्टेडकी तरह परमात्मासे प्रार्थना करती थी कि इस युद्धमे अग्रेजोका पराभव हो जाय। इस प्रकार वोअरोको सेवा करनेपर जब उसने देखा कि जिस अन्यायके खिलाफ वोअर लोग लडे थे, वैसा ही अन्याय अज्ञानके कारण वे ही अव भारतीयोके प्रति कर रहे हैं तब उससे नही रहा गया। बोअर जनता उसका वडा सम्मान करती थी और उनपर वहुत प्रेम रखती थी। जनरल वोथाके साथ उसका बहुत निकट सवध था। उन्हीके यहा वह ठहरती थी। खूनी कानून रद करवानेके लिए उसने अपनी ओरसे कुछ उठा न रक्खा। (द० अ० स० १९२५)

समाचारपत्रोंसे हमें विदित हुआ है कि कुमारी एमिली हावहाउसकी मृत्यु हो गई है। वह एक वहुत शरीफ और वडी वहादुर स्त्री थी। वे पुरस्कारका कभी न ख्याल करते हुए सेवा किया करती थी। उनकी सेवा ईश्वरार्पण की हुई मानव-समाजकी सेवा थी। वे शरीफ अग्रेजी कुलमे उत्पन्न हुई थी। वे अपने देशके प्रति प्रेम रखती थीं और इसी कारण वे उसके द्वारा किए गये किसी अन्यायको सहन नही कर सकती थी। उन्होने वोअर-युद्धके घोर अत्याचारको समझ लिया था। उन्होने विचार किया कि उस युद्धके सुलगानेमे इगलैंडका सरासर कसूर है। उन्होने ऐसे समयमे उस युद्धकी निंदा अत्यत कडी भाषामे की थी, जब कि इगलैंड उसके पीछे दीवाना हो रहा था। वे दक्षिण अफ्रीका गई और वहा उनकी आत्माने उन शिविर-कारागारोके खडे किए जाने तथा उनमे पराजित वीरोके वालवच्चोको जवर्दस्ती लाकर रखनेकी पशुताका घोर विरोध किया, जिन शिविर-कारागारोको लार्ड किचनरने युद्धमे विजय प्राप्त करनेके लिए आवश्यक ठहराया था। यह उसी समयकी वात है जव कि विलियम स्टेडने, अग्रेजोकी पराजयके लिए, ईश्वर-प्रार्थना करवाई थी। एमिली हावहाउस, यद्यपि वे दुर्वल थी, तथापि शारीरिक असुविधाओंका कुछ भी ख्याल न करके दक्षिण अफ्रीका फिर गई और वहा उन्होंने अपने प्रति अपमान तथा उससे गए-गुजरे वर्तावका आह्वान किया। वे वहा कैद कर ली गई और वापस लौटा दी गईं। उन्होने इन सवको एक सच्ची वहादुर स्त्रीकी भाति सहन किया। उन्होने वोअर-जातियोके दिल मजवूत किए और उनसे कहा कि आशाको कदापि न त्यागो। उन्होने उनसे यह भी कहा कि यद्यपि इगलैंड मदमे चूर है, तथापि इगलैंडके अनेक पुरुषो तथा स्त्रियोमें वोअर लोगोके प्रति सहानुभूति है और किसी-न-किसी दिन उनकी वात सुनी जायगी। और यही हुआ। सर हैनरी कैम्पवेल वैनरमैन जनसाधारण चुनावमे वडे वहुमतसे लिवरल दलके नेता चुने गए और उन वोअर लोगोके नुक्सानकी पूर्त्ति यथासभव की गई, जिन्होने युद्धमे क्षति

उठाई थी। युद्धके समाप्त होजानेपर उस अवसरपर जबकि दक्षिण अफ्रीका-का सत्याग्रह जारी था मुझे मिस हावहाउससे परिचित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। जो जान-पहचान हुई थी, वह क्रमश जीवनपर्यंतकी मैत्री बन गई। हिंदुस्तानियो तथा दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारके बीच सन् १९१४ ई० वाले समझौतेमे उनका भाग कोई मामूली भाग न था। वे जनरल बोथाकी मेहमान थी। उस समय जनरल बोथाने कई बार मुलाकात-विषयक मेरे प्रस्तावोपर टालमटूलकी थी, उन्होंने हर मर्तबा 'गृहसचिव'के सामने अपनी बात पेश करनेको कहा था, परतु मिस हावहाउसने जनरल बोथाके साथ यह आग्रह किया कि वे मुझसे अवश्य मिलें। इसलिए उन्होने 'केपटाउन' में जनरल साहबके निवास-स्थानपर जनरल तथा उनकी पत्नी, स्वय वे तथा मै इनके बीचमें वार्तालापके निमित्त एकत्रित होनेका प्रवध कराया। उनका नाम बोअर-लोगोमें एक ऐसा नाम था जिसके लेने-मात्रसे उन लोगोमें विश्वासका सिक्का जम जाता था और उन्होने अपने सारे प्रभावको हिंदुस्तानी मामलेमें लगाकर मेरा मार्ग सरल बना दिया था। जब मै हिंदुस्तानमें आया (और जबकि) रौलेट ऐक्टका आदोलन चल रहा था—उन्होने मुझे यह लिखा कि मुझे यदि फासीके तख्तेपर नही तो कारागारमें अपना जीवन अत करना पडेगा, और मै इस बातसे चिंतित नही हू। उनमे इस त्यागकी शक्ति पूर्ण रूपसे मौजूद थी। यह तो उनकी अटल धारणा थी ही कि कोई भी आदोलन, बिना उसके पोषकके बलिदानके सफल नही हुआ करता। अभी-पारसाल ही उन्होने मुझे लिखा था कि मै दक्षिण अफ्रीका निवासी भारतवासियोके पक्षमे अपने मित्र जनरल हार्टजोगसे खूब लिखा-पढी कर रही हू। उन्होने मुझे यह भी लिखा था कि आप उनके (जनरलके) प्रति कुपित न हो और आप उनसे जो आशा रखते हो, उसका ख्याल मुझे दे।

हिंदुस्तानकी स्त्रियोको चाहिए कि वे इस अग्रेज महिलाको याद रक्खें।

उन्होंने कभी विवाह नही किया। उनका जीवन स्फटिककी भांति स्वच्छ था। उन्होने अपनेको ईश्वर-सेवाके लिए अर्पित कर रक्खा था। उनका स्वास्थ्य तो बिलकुल गया-बीता था। उनको लकवेकी बीमारी थी। परतु उनके उस दुर्बल और रोगग्रसित शरीरमे वह आत्मा दीप्यमान थी, जो कि राजाओ और शाहशाहोके ससैन्य बलको भी ललकार सकती थी। वे किसी मनुष्यसे डरती न थी, क्योकि उनको केवल ईश्वरका भय था। (हि० न०, २२ ७.२६)

: २३० :

हास्किन

जैसे-जैसे आदोलन आगे बढता चला वैसे-वैसे अग्रेज भी उसमे रस लेने लगे। मुझे यह कह देना चाहिए यद्यपि ट्रान्सवालके अंग्रेजी अखबार अक्सर उस खूनी कानूनके पक्षमें ही लिखते और गोरोके विरोधका समर्थन करते थे, तथापि अगर कोई प्रख्यात भारतीय उनमें कोई लेख भेजते तो उसे वे खुशीसे छापते थे। सरकारके पास भारतीयोकी जो दरख्वास्ते जाती थी उन्हे भी वे या तो पूरी छापते थे या उनका सार दे देते थे। बडी-बडी सभाए होती थी। उनमें कभी-कभी वे अपने रिपोर्टर भी भेजते थे। और जहा ऐसा न हो वहा यदि सभाकी रिपोर्ट हम लिखकर भेज देते और वह छोटी होती तो उसे भी छाप देते थे।

गोरोका यह विवेक भारतीयोके लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ। आदोलनके बढते ही कितने ही गोरोका भी मन उसने आकर्षित कर लिया। इस श्रेणीके ऐसे गोरे अगुवा जोहासबर्गके एक लखपति मि० हास्किन थे। उनमें रगद्वेषका तो पहले ही से अभाव था। पर आदोलन शुरू होने-

पर भारतीयोकी हलचलमें उन्होने अधिक दिलचस्पी दिखाई। (द० अ० स०)

: २३१ :

नारायण हेमचंद्र

लगभग इसी दरमियान स्वर्गीय नारायण हेमचद्र विलायत आए थे। मै सुन चुका था कि वह एक अच्छे लेखक है। नेशनल इडियन एसोसिएशनवाली मिस मैनिगके यहा उनसे मिला। मिस मैनिग जानती थी कि सबसे हिल-मिल जाना मै नही जानता। जब कभी मै उनके यहा जाता तब चुपचाप बैठा रहता। तभी बोलता, जब कोई बातचीत छेडता।

उन्होने नारायण हेमचद्रसे मेरा परिचय कराया।

नारायण हेमचद्र अग्रेजी नही जानते थे। उनका पहनावा विचित्र था। बेढगी पतलून पहने थे। उसपर था एक बादामी रगका मैला कुचैला-सा पारसी काटका बेडौल कोट। न नेकटाई, न कालर। सिरपर ऊनकी गुथी हुई टोपी और नीचे लबी दाढी।

बदन इकहरा, कद नाटा कह सकते है। चेहरा गोल था, उसपर चेचकके दाग थे। नाक न नोकदार थी न चपटी। हाथ दाढीपर फिरा करता था।

वहाके लाल-गुलाल फैशनेबल लोगोमे नारायण हेमचद्र विचित्र मालूम होते थे। वह औरोसे अलग छटक पडते थे।

"आपका नाम तो मैने बहुत सुना है। आपके कुछ लेख भी पढे है। आप मेरे घर चलिए न ?"

नारायण हेमचद्रकी आवाज जरा भर्राई हुई थी। उन्होने हँसते हुए जवाव दिया—

"आप कहा रहते है ?"

"स्टोर स्ट्रीटमे।"

"तव तो हम पड़ोसी हैं। मुझे अग्रेजी सीखना है। आप सिखा देंगे ?"

मैंने जवाव दिया—"यदि मैं किसी प्रकार भी आपकी सहायता कर सकू तो मुझे वडी खुशी होगी। मैं अपनी शक्ति भर कोशिश करूगा। यदि आप चाहे तो मै आपके यहा भी आ सकता हू।"

"जी नही, मैं खुद ही आपके पास आऊगा। मेरे पास पाठमाला भी है। उसे लेता आऊगा।"

समय निश्चित हुआ। आगे चलकर हम दोनोमे बडा स्नेह हो गया।

नारायण हेमचद्र व्याकरण जरा भी नही जानते थे। 'घोडा' क्रिया और 'दौडना' सज्ञा वन जाती है। ऐसे मजेदार उदाहरण तो मुझे कई याद हैं। परतु नारायण हेमचद्र ऐसे थे, जो मुझे भी हजम कर जाय। वह मेरे अल्प व्याकरण-ज्ञानसे अपनेको भुला देनेवाले जीव न थे। व्याकरण न जाननेपर वह किसी प्रकार लज्जित न होते थे।

"मैं आपकी तरह किसी पाठशालामें नहीं पढा हूं। मुझे अपने विचार प्रकट करनेमें कहीं व्याकरणकी सहायताकी जरूरत नहीं दिखाई दी। अच्छा, आप वगला जानते हैं ? मैं तो वगला भी जानता हू। मै वगालमें भी घूमा हू। महर्षि देवेंद्रनाथ टैगोरकी पुस्तकोका अनुवाद तो गुजराती जनताको मैंने ही दिया है। अभी कई भाषाओके सुंदर ग्रथोके अनुवाद करने हैं। अनुवाद करनेमें भी शब्दार्थपर नहीं चिपटा रहता। भाव-मात्र दे देनेसे मुझे संतोष हो जाता है। मेरे वाद दूसरे लोग चाहे भले ही सुंदर वस्तु दिया करें। मैं तो विना व्याकरण पढ़े मराठी भी जानता हूं, हिंदी भी जानता हूं और अव अग्रेजी भी जानने लग गया हूं। मुझे तो

सिर्फ शब्द-भंडारकी जरूरत है। आप यह न समझ लें कि अकेली अंग्रेजी जान लेनेभरसे मुझे संतोष हो जायगा। मुझे तो फ्रांस जाकर फ्रेंच भी सीख लेनी है। मैं जानता हू कि फ्रेंच साहित्य बहुत विशाल है। यदि हो सका तो जर्मन जाकर जर्मन भाषा भी सीख लूगा।"

इस तरह नारायण हेमचद्रकी वाग्धारा बे-रोक वहती रही। देश-देशातरोमें जाने व भिन्न-भिन्न भाषा सीखनेका उन्हें असीम शौक था।

"तब तो आप अमेरिका भी जरूर ही जावेगे ?"

"भला इसमें भी कोई सदेह हो सकता है ? इस नवीन दुनियाको देखे विना कही वापस लौट सकता हू ?"

"पर आपके पास इतना धन कहा है ?"

"मुझे धनकी क्या जरूरत पड़ी है ? मुझे आपकी तरह तड़क-भडक तो रखना है ही नहीं। मेरा खाना कितना और पहनना क्या ? मेरी पुस्तकोसे कुछ मिल जाता है और थोड़ा-बहुत मित्र लोग दे दिया करते है, वह काफी है। मैं तो सर्वत्र तीसरे दर्जेमें ही सफर करता हू। अमेरिका तो डेकमें जाऊगा।"

नारायण हेमचद्रकी सादगी बस उनकी अपनी थी। हृदय भी उनका वैसा ही निर्मल था। अभिमान छूतक नही गया था। लेखकके नाते अपनी क्षमतापर उन्हे आवश्यकतासे भी अधिक विश्वास था।

हम रोज मिलते। हमारे बीच विचार तथा आचार-साम्य भी काफी था। दोनो अन्नाहारी थे। दोपहरको कई बार साथ ही भोजन करते। यह मेरा वह समय था, जब मै प्रति सप्ताह सत्रह शिलिगमे ही अपना गुजर करता और खाना खुद पकाया करता था। कभी मैं उनके मकानपर जाता तो कभी वह मेरे मकानपर आते। मै अग्रेजी ढगका खाना पकाता था, उन्हे देशी ढगके विना सतोष नही होता था। उन्हें दाल जरूरी थी। मैं गाजर इत्यादिका रसा बनाता। इसपर उन्हे मुझपर बडी दया आती। कहींसे वह मूग ढूढ लाए थे। एक दिन मेरे लिए मूग पकाकर लाए, जो

मैंने बड़ी रुचि-पूर्वक खाए। फिर तो हमारा इस तरहका देने-लेनेका व्यवहार बहुत बढ़ गया। मैं अपनी चीजोंका नमूना उन्हें चखाता और वह मुझे चखाते।

उस समय कार्डिनल मैनिंगका नाम सबकी जबानपर था। डाकके मजदूरोंने हड़ताल कर दी थी। जानबर्न्स और कार्डिनल मैनिंगके प्रयत्नोंसे हड़ताल जल्दी बंद हो गई। कार्डिनल मैनिंगकी सादगीके विषयमें जो डिजरैलीने लिखा था, वह मैंने नारायण हेमचंद्रको सुनाया।

"तब तो मुझे उस साधु पुरुषसे जरूर मिलना चाहिए।"

"वह तो बहुत बड़े आदमी हैं। आपसे क्योंकर मिलेंगे?"

"इसका रास्ता मैं बता देता हूं। आप उन्हें मेरे नामसे एक पत्र लिखिए कि मैं एक लेखक हूं। आपके परोपकारी कार्योंपर आपको धन्य-वाद देनेके लिए प्रत्यक्ष मिलना चाहता हूं। उसमें यह भी लिख दीजिएगा कि मैं अंग्रेजी नहीं जानता। इसलिए—अपना नाम लिखिए—बतौर दुभाषियाके मेरे साथ रहेंगे।"

मैंने उस मजमूनका पत्र लिख दिया। दो-तीन दिनमें कार्डिनल मैनिंगका कार्ड आया। उन्होंने मिलनेका समय दे दिया था।

हम दोनों गये। मैंने तो, जैसा कि रिवाज था, मुलाकाती कपड़े पहन लिए। नारायण हेमचंद्र तो ज्यों-के-त्यों, सनातन ! वही कोट और वही पतलून। मैंने जरा मजाक किया, पर उन्होंने उसे साफ हँसीमें उड़ा दिया और बोले—

"तुम सब सुधारप्रिय लोग डरपोक हो। महापुरुष किसीकी पोशाककी तरफ नहीं देखते। वे तो उसके हृदयको देखते हैं।"

कार्डिनलके महलमें हमने प्रवेश किया। मकान महल ही था। हम बैठे ही थे कि एक दुबलेसे ऊंचे कदवाले वृद्ध पुरुषने प्रवेश किया। हम दोनोंसे हाथ मिलाया। उन्होंने नारायण हेमचंद्रका स्वागत किया।

"मैं आपका अधिक समय लेना नहीं चाहता। मैंने आपकी कीर्ति

सुन रखी थी। आपने हड़तालमें जो शुभ काम किया है, उसके लिए आपका उपकार मानना था। संसारके साथ पुरुषोके दर्शन करनेका मेरा अपना रिवाज है। इसलिए आपको आज यह कष्ट दिया है।"

इन वाक्योका तरजुमा करके उन्हे सुनानेके लिए हेमचद्रने मुझसे कहा।

"आपके आगमनसे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूं। मैं आशा करता हूं कि आपको यहाका निवास अनुकूल होगा और यहां के लोगोसे आप अधिक परिचय करेंगे। परमात्मा आपका भला करे!" यो कहकर कार्डिनल उठ खडे हुए।

एक दिन नारायण हेमचद्र मेरे यहा धोती और कुरता पहनकर आए। भली मकान-मालकिनने दरवाजा खोला और देखा तो डर गई। दौडकर मेरे पास आई (पाठक यह तो जानते ही है कि मै बार-बार मकान बदलता ही रहता था) और बोली— "एक पागल-सा आदमी आपसे मिलना चाहता है।" मै दरवाजेपर गया और नारायण हेमचद्रको देखकर दग रह गया। उनके चेहरेपर वही नित्यका हास्य चमक रहा था।

"पर आपको लडकोने नही सताया?"

"हां, मेरे पीछे पड़े जरूर थे, लेकिन मैंने कोई ध्यान नहीं दिया तो वापस लौट गए।"

नारायण हेमचद्र कुछ महीने इग्लैडमें रहकर पेरिस चले गए। यहा फ्रेचका अध्ययन किया और फ्रेच पुस्तकोका अनुवाद करना शुरू कर दिया। मै इतनी फ्रेच जान गया था कि उनके अनुवादोको जाच लू। मैंने देखा कि वह तर्जुमा नही, भावार्थ था।

अतमें उन्होने अमेरिका जानेका अपना निश्चय भी निबाहा। बडी मुश्किलसे डेक या तीसरे दर्जेका टिकट प्राप्त कर सके थे। अमेरिकामे जब वह धोती और कुरता पहनकर निकले तो असभ्य पोशाक पहननेका

जुर्म लगाकर वह गिरफ्तार कर लिए गये थे। पर जहांतक मुझे याद है, बादमें वह छूट गए। (आ० क० १९२७)

: २३२ :

अकबर हैदरी

स्व० सर अकबर हैदरी अपूर्व गुणोकी राशि थे। वे एक बड़े विद्वान, दार्शनिक और सुधारक थे। वे एक चुस्त मुसलमान थे, परतु इस्लाम और हिंदू धर्ममें वह परस्पर विरोध नही पाते थे। उन्होने अन्य धर्मोका भी अभ्यास किया था। उनकी मित्रमंडलीकी विविधता ही उनकी उदारवृत्तिकी द्योतक थी। दूसरी गोलमेज कान्फ्रेन्ससे हम इकट्ठे एक ही जहाज में लौटे थे। जहाजपर सध्याकी जो हमारी प्रार्थना होती थी उसमे वे नियमित आते थे। गीताके श्लोक और हम जो भजन गाते थे उनमें वह इतना रस लेते थे कि उन्होंने महादेव देसाईसे उन सबका अनुवाद अपने लिए करा लिया था। उन्होने मुझसे प्रतिज्ञा की थी कि हिंदुस्तान पहुचनेपर साम्प्रदायिक ऐक्यके लिए हम दोनो साथ दौरा करेंगे, परतु ईश्वरने कुछ और ही सोच रखा था। स्व० लार्ड विलिग्डनने मेरे लिए दूसरा ही कार्यक्रम तय्यार कर रखा था। मुझे सत्याग्रह आदोलनमें कूदना पडा और सर अकबर और मेरे बीच तय किया हुआ प्रोग्राम लटकता ही रह गया। वे श्री अरविंदसे प्रभावित हुए थे। जिस समय पाडीचेरीके ऋषि श्री अरविंद अपने भक्तोंको त्रैमासिक दर्शन देते है उस समय वे अचूक तौर पर वहा रहते थे।

सर अकबरकी मृत्युसे देशकी भारी हानि हुई है। उनके दुखी कुटुबके प्रति मेरी हार्दिक समवेदना है। (ह० से०, १८१४२)

: २३३ :

सेम्युअल होर

सेम्युअल होरके भाषणके शब्द बापूको फिरसे सुनाने पर बापू बोले :

इसकी बात मुझे अच्छी लगती है। इसे एक भी बीच-बचाव करनेवालेकी गरज नही है, क्योकि इसका कोई विश्वस्त आदमी नही है। ऐसोके साथ लडनेमे मजा आता है। ऐसे आदमीके हाथसे ही भला होगा। सेकीसे यह आदमी हजार गुना अच्छा है। वह तो सोचे कुछ और कहे कुछ। यह आदमी जो सोचता है, वही कहता है। एक बार मैंने उससे पूछा—आप यह मानते है न कि यहा जो इतने सारे आदमी है, उनमेसे किसीकी शक्तिपर भी आपका विश्वास नही है? वह बोला—

"अगर सच्चे दिलसे कहा जाय तो मुझे कहना चाहिए कि यह बात सच है, मुझे विश्वास नहीं है।"

मैंने इसी बात पर उसे बधाई दी थी कि मुझे आपकी ईमानदारी बहुत पसद है।

प्रोवाने 'टाइम्स'में होरको जवाब दिया है। बापू कहने लगे :

बडा गौरवपूर्ण पत्र कहा जायगा और 'टाइम्स'का इसे छापना यही जाहिर करता है कि खुद 'टाइम्स'को भी सेम्युअल होरका वर्णन पसद नही आया। यह आदमी बेहया हो गया दीखता है। सच्चा तो था ही, मगर इसकी सच्चाईमे भी बेहयाई थी। जब उसने कहा कि उसे किसी भी हिंदुस्तानीकी बुद्धि या शक्तिपर विश्वास नही है। (म० डा० ३.५.३२)

. . . . . .

सर सेम्युअल होरसे तो बहुत बार मिलता था। इतना मुझे कहना

चाहिए कि वह मेरे साथ साफ दिलसे बात करता था। यह नही था कि मेरे साथ एक बात और दूसरेके साथ दूसरी बात। सबके साथ उसने एक ही बात की। वह साफ कहता था, "सत्ता तो हमारे हाथोमें है। तुम लोग मुझे सलाह दे सकते हो। उसपर अमल करना न करना हमारे हाथकी बात है। वह तुम्हे हमपर ही छोडना होगा।" मैंने कहा, "आजादी तो जब आवेगी तब, मगर आज इतना तो हो कि उस आनेवाली आजादीकी कुछ झलक आपके कामोमे दिखाई दे। कानून चाहे कुछ भी हो, लेकिन प्रथा तो ऐसी बने कि हमारे कामोमे हमारी सलाहसे आप चलें। अभी घनश्यामदास और पुरुषोत्तमदास हमारे अर्थशास्त्री हैं। अर्थशास्त्रमें वे हमारे नुमाइदे है। हिंदके अर्थशास्त्रके मामलोमें आप उनकी सलाहसे चलें।" मगर वह कहने लगा, "यह तो हो नही सकता।" (का०क०, ३ १२ ४२)

: २३४ :

हार्निमैन

इतनेमें प्रजाको सोता छोडकर सरकार मि० हार्निमैनको चुरा ले गई। मि० हार्निमैनने 'बबई क्रानिकल' को एक प्रचड शक्ति बना दिया था। इस चोरीमें जो गदगी थी उसकी बदबू मुझे अबतक आया करती है। मैं जानता हू कि मि० हार्निमैन अधाधुधी नही चाहते थे। मैंने सत्याग्रह कमेटीकी सलाहके बिना ही पजाब सरकारके हुक्मको तोड़ा था सो उन्हें पसद नही था। मैंने सविनय-भगको जो मुल्तवी किया, उससे वह पूरे सहमत थे। मेरे सत्याग्रह मुल्तवी रखनेका इरादा प्रकट करनेके पहले ही पत्र द्वारा उन्होंने मुझे मुल्तवी रखनेकी सलाह दी थी

और वह पत्र बबई और अहमदावादके फासलेके कारण, मेरा इरादा जाहिर कर चुकनेके बाद मुझे मिला था। इसलिए उनके देश-निकालेपर मुझे जितना आश्चर्य हुआ, उतना ही दु ख भी हुआ। (आ० क० १९२७)

• • • •

बबई सरकार और मेरे खयालसे भारत सरकार भी अपनेको इसलिए बधाई दे सकती है, क्योकि उन्होने हिंदुस्तानके और एक बहादुर अग्रेजके साथ जो अन्याय किया था उसे बडी आनाकानीके साथ आज हटाकर दूर किया है। उन्होने हार्निमैनको भारतमें, जिस देशपर उन्हे बडा प्रेम है और जिसके लिए वे बडा प्रयत्न कर रहे है, आनेसे न रोकनेकी बडी हिम्मत की है। यह कोई भी नही जानता है कि हार्निमैनको अकस्मात यहासे देशनिकाला देनेका सच्चा कारण क्या था। उनपर कोई मुकद्दमा न चलाया गया था और न उन्हे उन पर लगाए गये अपराधोसे इन्कार करनेका अवसर ही दिया गया था।

इस प्रकार अपनी ही इच्छासे जबरदस्ती समुद्रपार भेज देनेके ऐसे दृष्टातोसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत सरकारका कैसा अनुत्तरदायी अधिकार है। हार्निमैनके बनिस्बत और किसीने भी ऐसे अधिकारको रोकनेके लिए अधिक कोशिश और बहस न की थी और आखिर वे ही उसके बलि हो गए थे। श्री हार्निमैनके स्वागतमें मै भी अपना नम्र हिस्सा देता हू। उनके लौट आनेसे स्वराज्यके लिए जो शक्तिया युद्ध कर रही है उनमें सामर्थ्य और उत्साहकी वृद्धि होगी और उससे जो लोग ऐसे यशस्वी युद्धमे लगे हुए है उनके हृदयमे बडा ही आनद होगा। उनके सामने जो कठिन कार्य पडा हुआ है उसे करनेके लिए श्री हार्निमैनको तदुरुस्ती और दीर्घ आयुष्य प्राप्त हो! (हि० न०, १४.१.२६)

हार्निमैन अब गधे हांकने लगे हैं। बापू कहने लगे:

यह हार्निमैनका दूसरा पहलू है। (म० डा०, ८ ८ ३२)

• • • • • • •

आज अखबारोंमें पहलेकी पूर्तिमें और नरम दलके लोगोंके जवाबमें हुआ होरका भाषण आया।

शामको इसी भाषणपर हॉर्निमैनका लेख पढ़ा। बापूको यह लेख बहुत पसंद आया। इसमें हॉर्निमैन होरको राजनैतिक नीति-से शून्य और बेशर्म कहा है। बापूने कहा—यह ठीक है। सारा लेख पढकर कहने लगे :

यह आदमी आजकल जोरदार लेख लिख रहा है।—(म० डा०, भाग २)

× × ×

हॉर्निमैन समझनेकी शक्ति रखता है, इसलिए सारा लेख बढ़िया लिखा है। (म० डा०, भाग २)